जायसी की बिम्ब योजना

(A STUDY OF IMAGERY IN JAYASI)

(आगरा विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबन्ध)

लेखिका

डॉ० सुधा सक्सेना एम० ए० पी-एच० डी०

हिन्दी विभाग

गवर्नमेंट कालेज, तिमारपुर

दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली।

प्रकाशक



अशोक प्रकाशन

नई सड़क दिल्ली 6

प्रकाशक
प्रमोद प्रकाशन
नई सड़क दिल्ली ६

प्रथम संस्करण १९५५
मूल्य १५.००

मुद्रक
प्रतीक प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली।

प्रस्तावना

सामान्यतः काव्य के दो पक्ष सब स्वीकृत हैं भाव पक्ष और कला पक्ष। इसे ही दूसरे शब्दों में हम भाव की अनुभूति और उसकी अभिव्यक्ति कह सकते हैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति स्पष्ट रूप से दो अलग अलग तत्त्व हैं परन्तु काव्य में उनकी सत्ता अन्योन्याश्रित है। अनुभूति अभिव्यक्ति में स्थापित होकर ही साधारणीकृत हो सकती है और अभिव्यक्ति भी अनुभूति को सम्यक रूप से प्रस्तुत करके सफल हो सकती है। परन्तु अनुभूति सर्वत्र अभिव्यक्त होकर काव्य नहीं बनती कल्पना का पुट ही उसे काव्यात्मक अभिव्यक्ति का रूप देता है। इस रूप में काव्य जगत में अनुभूति और अभिव्यक्ति के बीच का सोपान है कल्पना। और कल्पना का प्रमुख कार्य है बिम्ब विधान। कवि की कल्पना का अध्ययन उसकी बिम्ब-भावना का अध्ययन ही है।

कवि के बिम्ब विधान का अध्ययन उसके समग्र व्यक्तित्व का अध्ययन है। यह हमें केवल कवि के काव्य तक सीमित नहीं रखता वरन् कवि के एकदम निकट ले जाता है जहाँ हम उसके संस्कारों भावों विचारों रुचियों सम्बन्धों प्रभावों परिस्थितियों और मनःस्थिति तक को स्पष्ट देख सकते हैं। वस्तुतः बिम्ब दर्पण है जिसमें कवि के व्यक्तित्व का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। कवि के साथ बिम्ब काव्य का अध्ययन भी करता है। काव्य में सचित्रात्मकता प्रेषणीयता प्राणवत्ता-सभी बिम्बों के द्वारा सम्भव हो सकती है। वस्तुतः कवि और काव्य का इतना समग्र अध्ययन बिम्ब के अतिरिक्त किसी अन्य प्रणाली से हो ही नहीं सकता।

यहाँ बिम्ब-विधान के आधार पर मध्यकाल के प्रमुख सूफी कवि जायसी का एक अध्ययन किया गया है जिसमें जायसी के कवि और काव्य दोनों का विवेचन विश्लेषण करने का प्रयत्न किया गया है। यह प्रयत्न हिन्दी भाषा के साहित्यिक शोध प्रबन्धों में एक नया भाग है। अभी तक इस दृष्टि को लेकर एक भी शोध प्रबन्ध हमारे सामने नहीं आया है। शोध प्रबन्धों से इतर आलोचना के क्षेत्र में भी कोई एक पुस्तक कल्पना और बिम्ब विधान पर नहीं है स्फुट रूप से इसकी सामान्य चर्चा ही उपलब्ध है। श्री केदारनाथसिंह ने अवश्य छायावाद के संदर्भ में कल्पना की चर्चा अपनी पुस्तक 'कल्पना और छायावाद' में की है जो इस विषय पर हिन्दी में एक मात्र पुस्तक कही जा सकती है परन्तु बिम्ब विधान का विवेचन उसमें अत्यल्प है। विदेशों में इस दृष्टि को लेकर अनेक प्रबन्ध और पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें स्पर्जियन की 'शेक्सपीयर'स इमेजरी एण्ड व्हाट इट टेल्स अस' फोगल की 'दि स्टडी आफ इमेजरी इन कीट्स एंड शैली' क्लीमैन की 'दि डेवलपमेन्ट आफ शेक्सपीयरियन इमेजरी' ट्यूव की 'एलिजाबेथन एण्ड मेटाफिजिकल इमेजरी' आदि आदि पुस्तकें विशेष उल्लेखनीय हैं।

आधुनिक हिन्दी आलोचकों में अब बिम्बों के अध्ययन की ओर रुचि बढ़ती जा रही है। परन्तु उनका मुख्य लक्ष्य आधुनिक छायावादी कवि हैं। प्राचीन कवियों

का बिंब विधान की दृष्टि से अध्ययन करने की ओर वे विशेष प्रयत्नशील नहीं हैं। आधुनिक कवि स्वयं बिम्ब विधान की ओर प्रयत्नशील हैं। अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव से बिंबात्मक अभिव्यक्ति को वह निरन्तर अधिक महत्व देते जा रहे हैं। परन्तु बिंब युग विशेष की विशेषता नहीं है वरन् प्रत्येक युग और प्रत्येक देश की कविता का एक शाश्वत तत्व है। इसीलिए हमने प्राचीन कवि जो इन मान्यताओं (बिम्ब विषयक) से अपरिचित था का अध्ययन किया है। साहित्यिक परम्पराओं से अन्य मध्यकालीन कवियों की अपेक्षाकृत जायसी दूर और अछूता है। इससे साहित्य के सहज गुण उसके वाङमय में आ गये हैं जो अन्यत्र दुर्लभ है। उसने अपने अनुभव को अपनी स्वतंत्र कल्पना दृष्टि से काव्य में उतारा है जिसके कारण उसके बिंबों में वह नवीनता ताजगी और प्राणवत्ता है जो अन्यत्र असम्भव है। इस दृष्टि से देखने पर हमें कवि जायसी सभी सूफी कवियों से महान् और हिन्दी कवियों में अनोखा प्रतीत हुआ है। उसका बिम्ब विधान ही हमें इस निष्कर्ष पर लाता है।

प्रस्तुत प्रबन्ध में बिम्ब के सिद्धान्त पक्ष पर काफी समय और बल दिया गया है जिसका कारण है। अभी तक हिन्दी आलोचना में बिम्ब पर बहुत कम विवेचन हुआ है जिसके कारण काव्य में बिम्ब की उपयोगिता महत्व स्वरूप कार्य कल्पना में उसका स्थान कल्पना के अन्य व्यापारों से अन्तर भाव से संबंध आदि आदि मूलभूत तत्वों से भी हम अनभिज्ञ हैं। बिम्ब के स्वरूप व विषय में अभी तक कोई निश्चित धारणा नहीं बन पाई है। इसी अभाव को दूर करने का प्रयत्न प्रबन्ध में बिम्ब का सिद्धान्त पक्ष करता है यूं भी यह हमारे सभी अनुसंधानों की भूमिका है। बिम्ब के विषय में कोई मत निश्चित किए बिना जायसी के बिम्ब विधान का अध्ययन असम्भव था। आगे जो भी काम बिम्ब विधान पर होगा हमें आशा है उसके लिए भी यह नींव का काम देगा।

प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में भारतीय और पाश्चात्य काव्य दृष्टियों का विवेचन है। काव्य को सभी ने भिन्न दृष्टिकोणों से देखा है और भिन्न तत्वों को काव्य में प्रतिष्ठा दी है। परन्तु प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में सर्व स्वीकृत तत्व बिम्ब है। वस्तुतः वही काव्य का प्राणतत्व है और विशेष महत्व का अधिकारी है।

द्वितीय अध्याय में बिम्ब का स्वरूप परिचय है। उसका स्वरूप महत्व गुण उपयोगिता निर्माण प्रक्रिया और भाषा में उसकी स्थिति आदि से अवगत कराया गया है।

तृतीय अध्याय में बिंब की जन्मदात्री कल्पना का विवेचन है। इसके साथ ही कल्पना के अन्य रूपों प्रतीक उपमान आदि की चर्चा है और उनके साथ बिम्बों के संबंध पर विचार किया गया है।

चतुर्थ अध्याय बिंब का भाव और भाषा से सम्बन्ध स्पष्ट करता है। बिम्ब भाव और भाषा के बीच की स्थिति है। यहां रस सिद्धान्त जो भारतीय काव्य सिद्धान्तों में प्रधान रूप से घोषित और स्वीकृत है के साथ बिंब के सम्बन्ध का विचार किया गया है।

पंचम अध्याय जायसी की बिम्ब योजना से प्रारम्भ होता है। इसमें उपात्त वस्तु अभिव्यक्तियों भावों बिम्बों की प्रकृति और अभिव्यक्ति में रूप के आधार पर

उनका वर्गीकरण किया गया है।

षष्ठ अध्याय में जायसी के सफल और असफल बिम्बों का परीक्षण है। साथ ही प्राचीन परम्पराओं से गृहीत उपमानों एवं कवि की कल्पना दृष्टि से उद्भूत नवीन उपमानों का विवेचन भी है।

सप्तम अध्याय में जायसी के भावों विचारों एवं बिम्ब के सम्बन्ध का विचार किया गया है। यहाँ आवृत्ति के आधार पर परम्परित बिम्बों विशिष्ट स्थल की विशिष्ट बिम्ब योजना जायसी के विचारों और भावों का बिम्बों द्वारा प्रकाशन और पद्मावत की समासोक्ति व पात्रों की प्रतीकात्मकता का विवेचन किया गया है।

अष्टम अध्याय में मध्यकालीन बिम्बों योजना में जायसी का स्थान और समग्र अध्ययन के आधार पर जायसी के व्यक्तित्व का विचार किया गया है। नवम् अध्याय प्रबन्ध का उपसंहार है।

जहाँ कालक्रमानुसार कवि के कई ग्रन्थ प्राप्त होते हैं वहाँ बिम्ब के विकास के आधार पर कवि के व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन किया जा सकता है। यह अध्ययन कवि को समझने में कुछ अधिक योग दे सकता है। परन्तु हमें जायसी में यह सुविधा नहीं मिली है। उसके मात्र तीन ग्रन्थ ही प्राप्त हुए हैं उनमें भी पद्मावत ही केवल विशेष उल्लेखनीय है। अतः बिम्बों के विकास का अध्ययन यहाँ नहीं हो सकता। एक ही ग्रन्थ बिम्ब का विकास सूचित नहीं कर सकता। अतः यह तत्व इस अध्ययन में अछूता ही रह गया है। अंग्रेजी में इस प्रकार के अध्ययन हुए हैं। क्लीमेन का डेवेलपमेण्ट आफ शेक्सपीरियन इमेजरी इसी प्रकार का प्रयास है।

अंत में इस प्रबंध को लिखने में मैंने जिन पुस्तकों से सहायता ली है उन सभी के विद्वान् लेखकों के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना कर्तव्य समझती हूँ। इसके साथ ही अपने निर्देशक आदरणीय डॉ० मनोहर लाल गौड़ धर्म समाज कॉलेज अलीगढ़ की भी मैं बड़ी आभारी हूँ क्योंकि उनके स्नेह और कुनिर्देशन के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। डॉ० योगेन्द्रप्रताप सिंह अंग्रेजी विभाग अलीगढ़ विश्व विद्यालय अलीगढ़ के प्रति भी मैं आभारी हूँ जिन्होंने अथ से इति तक सदैव मेरी सहायता की और मेरा पथ प्रदर्शन किया। नीरज जी को धन्यवाद देना भी मैं नहीं भूल सकती जो सदैव ही मेरे प्रेरक रहे हैं। बच्चन जी और डॉ० वासुदेव शरण अग्रवाल जी की भी मैं विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होंने समय समय पर अपनी अमूल्य सम्मतियाँ भेजकर मुझे कृतार्थ किया। साथ ही अपनी बहन नीता और छोटी-सी बहन कुसुम को भी धन्यवाद देना मैं नहीं भूल सकती जिन्होंने एक ने पाण्डुलिपि तैयार करवाने और दूसरी ने मेरा अपना ख्याल रखने में मेरी बहुत सहायता की थी।

अंत में मैं उन सभी के प्रति आभार प्रकट करती हूँ जिन्होंने इस प्रबंध के सम्पूर्ण होने में किसी भी प्रकार मेरी सहायता की हो। —सुषमा सक्सेना

नोट १—प्रबन्ध में डा० वासुदेव शरण अग्रवाल की पद्मावत की मूल और संजीवनी टीका (१९५५) का पाठ रखा गया है। उनके दोहों की संख्या व चौपाइयों की संख्या भी दी गयी और [illegible] दिया गया है। [illegible] के बिम्बों के उद्धरणों को [illegible] से [illegible] पर लिया गया है।

विषय-सूची

अध्याय १

काव्य का प्राण तत्व

काव्यानंद एक अनिर्वचनीय तत्व है। उसका विवेचन-विश्लेषण उतना ही कठिन है जितना ब्रह्मानन्द का परन्तु मानव का जिज्ञासु मन ब्रह्मानन्द का भी जानने का प्रयत्न करता है और उसी प्रकार काव्य के अन्तर्गत भी उस सनातन तत्व को खोजने का प्रयत्न करता है जो उसे जीवन्त बनाता है और उसे काव्य सत्ता से विभूषित करता है। इस अन्वेषण में विद्वानों ने तरह-तरह के प्रयत्न किये और उनके विभिन्न परिणाम घोषित किए हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम यह देखने का प्रयत्न करेंगे कि इन मान्यताओं के मूल म बिम्ब विषयक कोई धारणा रही है या नहीं? अगर है तो उसका रूप क्या रहा है?

भारतीय दृष्टि

संस्कृत और हिन्दी के अनेक विद्वानों में काव्य की आत्मा को लेकर पर्याप्त विचार-विमर्श हुआ है। कुछ समीक्षकों ने काव्य के अनिर्वचनीय तत्व को सौन्दर्य का रूप दिया है तो कुछ ने इसके विपरीत सहृदय पर पड़े काव्य के प्रभाव को अनिर्वचनीय तत्व माना है। कुछ बुद्धि पक्ष के समर्थकों ने काव्य में भाव को मूल न मानकर बौद्धिक जीवन मीमांसा को प्रधानता दी है। इस प्रकार मत वैभिन्य के आधार पर हिन्दी व संस्कृत काव्य समीक्षा में विभिन्न वादों एवं संप्रदायों का जन्म हुआ। इन काव्य संप्रदायों के अन्तर्गत काव्य के चार तत्वों का विचार हुआ है। यह है—सौन्दर्य अभिव्यक्ति प्रभाव और जीवन मीमांसा।

सौन्दय

व्यापक रूप से सौन्दर्य वह है जो हमारी ज्ञानेन्द्रियों को प्रिय लगे। प्रियता का भाव सौन्दर्य का मूल है। सुन्दर शब्द को सु+नर का रूप माना गया है। सु+नर अर्थात् अच्छा आदमी। यह अच्छापन उसकी प्रियता में निहित है। सौम्य का यह भाव विषयगत या विषयीगत दोनों हो सकता है। सौन्दर्य का मूल सामंजस्य अथवा समुचित संघटन (Harmony) में निहित है। सौन्दर्य किसी एक वस्तु में निहित नहीं

है वरन् सबका सम्यक गठन सम्यक पृष्ठभूमि में अर्पित ही सौन्दर्य सर्जन में समर्थ हो सकता है ।[1]

सौन्दर्य शब्द का प्रयोग यहाँ व्यापक अर्थों में नहीं किया जा सकता । क्योंकि इस व्यापकत्व में काव्य ही नहीं वरन् समस्त जीवन समाहित हो सकता है । यहाँ सौन्दर्य का एक सीमित अर्थ है । यह अर्थ सौन्दर्य के बाह्य पक्ष से सम्बन्धित है और मूलतः वस्तुपरक है । इसका प्रयोग यहाँ चमत्कार या बाह्य रूप सज्जा जनित सौन्दर्य के विभिन्न स्तरों के रूप में किया गया है ।

अधिकांश काव्य समीक्षकों ने काव्य के अन्तर्गत सौन्दर्य तत्व को सर्वाधिक प्रतिष्ठा दी है परन्तु इष्ट एक होने पर भी साधन की विभिन्नता के कारण वह सब एक ही श्रेणी में नहीं रह पा सके । कोई सौन्दर्य तक अलंकारों के मार्ग से पहुँचा है कोई रीति मार्ग से कोई गुणों के माध्यम से और कोई वक्रोक्ति के माध्यम से ।

यहाँ सर्वप्रथम अलंकार मार्ग का विवेचन किया जायगा ।

अलंकार सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य भामह हैं । भामह मुख्यतः सौन्दर्यदर्शी समीक्षक हैं । भामह के साथ रुद्रट दण्डी जयदेव आदि ने भी अलंकारों को प्रधानता दी है । अन्य समीक्षकों ने यद्यपि उसे काव्यात्मा रूप में नहीं स्वीकार किया परन्तु सौन्दर्य के प्रमुख हेतु के रूप में उसे स्वीकारा है ।

अलंकार शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ—वस्तु को अलंकृत या शोभित करने वाला[2] से ही उसका शोभाकारक धर्म स्पष्ट हो जाता है । उसका यही अर्थ काव्य में मान्य है ।[3] भामह का मत है कि निरलंकार काव्य कभी सुन्दर नहीं हो सकता उसी प्रकार जिस प्रकार स्वाभाविक सुन्दरता से युक्त होने पर भी अलंकारों के अभाव में वनिता के मुख मण्डल पर आभा दृष्टिगोचर नहीं होती । दण्डी का आग्रह तो अलंकारों के लिए इतना अधिक है कि अलंकारों की अनुपस्थिति में काव्य के स्थायित्व में भी उन्हें शंका होती है । अलंकृत काव्य का ही वह स्थायी काव्य मान सके हैं[4] भामह ने कहा कि अलंकारों में सौन्दर्य सृजन की इतनी सामर्थ्य है कि दुष्कृत भी रमणीय लगने लगता है ।[5] इसी से भोजदेव ने निरलंकार कविता को काव्य का दोष कहा है । हिंदी

1 That which is beautiful is harmonious and proportionable what is harmonious and proportionable is true, and what is at once both beautiful and true is of consequence agreeble and good Beauty ...is recognised by the mind only . Good is fundamental beauty beauty and goodness proceed from the same fount. What is Art—Leo Tolstory p 2.

२ अलंकरोतीति अलंकारः अथवा अलंक्रियते अनेन इति अलंकारः ।

३ काव्य शोभाकरान् धर्मान् अलंकारान् प्रचक्षते । २।१ काव्यादर्श

४ न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिता मुखम् । १।१३ काव्यालंकार

५ अलंकारान्तर एवापि न भाते सालंकृतं । १।६२ काव्यादर्श

६ भक्ति रा विराजते दूषणम् अपि शोभते । १।५४ काव्यालंकार

७ काव्यम् दोषमलंकाररहितं । १।२४ सरस्वती कंठाभरण

अलंकारवादी भी चमत्कार को काव्य का प्राण स्वीकार करते हैं। वह अच्छी से भी अच्छी सुन्दर वर्ण सुन्दर छन्द और सरस कविता को मात्र अलंकारों के अभाव के कारण उत्तम कोटि की कविता नहीं मानते।[१] काव्य की शोभा के लिए न गुण उपयुक्त है न अन्य कोई तत्व मात्र चमत्कार ही उसका विधान करने में समर्थ है ऐसा उस समय के सभी आचार्यों का सामान्य मत था।

चमत्कार के इन आग्रह करनेवाले के विवेचन से स्पष्ट है कि यह सभी काव्य मानते अलंकार को काव्य का नित्य धर्म सौन्दर्य और शोभा का मूल कारण मानते हैं। अलंकार के शोभा विधान के इस क्षेत्र में वह रस गुण रीति आदि सभी तत्वों को समाहित कर मान है। उन्होंने रसवत् प्रेयस् आदि अलंकार सदा का निर्माण करके इसका क्षेत्र बहुत व्यापक कर लिया है। उन्होंने चमत्कार को सौन्दर्य उद्दीपक या सौन्दर्य का निर्माता नहीं वरन् स्वयं सौन्दर्य का पर्याय मान लिया है। और उस काव्य के प्राण तत्व के रूप में प्रतिष्ठित किया है। यह सभी सौन्दर्य को काव्य का इष्ट मानते हैं। और उसके लिए अलंकारों का विधान आवश्यक समझते हैं।

यहाँ उन आचार्यों का मत भी उल्लेखनीय है जो चमत्कार को प्राण तत्व तो नहीं मानते परन्तु उसे सौन्दर्य विधायक अवश्य स्वीकार करते हैं। ये आचार्य हैं विश्वनाथ मम्मट रुद्रट आनन्दवर्धन आदि।

ये सभी आचार्य भामह और दण्डी से विपरीत काव्य आत्मा के स्थायित्व का कारण रस को मानते हैं अलंकार को नहीं। मम्मट ने स्पष्ट कहा है कि अलंकार हारादि आभूषणों के समान हैं। ये कदाचित् ही रस का उपकार करते हैं सर्वदा नहीं जहाँ रस है वहाँ भी चमत्कार रह सकता है। रसवादी विश्वनाथ ने चमत्कार को काव्य का अस्थिर धर्म माना है जो काव्य में शोभा के अतिशय के लिए प्रयुक्त होता है।[२] जिस प्रयत्न से भाव की अभिव्यक्ति का जन्म होता है उसी से यदि चमत्कार

---

१ [illegible]
[illegible]
२ (अ) [illegible] १।७ [illegible]
[illegible]

(आ) [illegible]
[illegible]
[illegible]

३ [illegible]
४ [illegible]
[illegible]
५ [illegible]

विधान हो जाय तो उसका आदर है अन्यथा कवि का पृथक और बुद्धिपूर्ण प्रयास नहीं होना चाहिये। स्पष्ट है कि अलंकार काव्य को प्राणवान नहीं बनाता केवल शोभा विधान में सहायक होता है। अलंकार प्रतिभा के आग्रह से स्वतः ही काव्य में प्रकट होता है[1] भावों के प्रवाह में स्वतः प्रवाहित होता है[2] अतः कवि को उसके लिए अलग से प्रयत्न करने की कोई आवश्यकता न होनी चाहिए। जैसे जैसे भावना समृद्ध होती जाती है अलंकार वाणी में स्वतः प्रकट होते जाते हैं।[3] सप्रयास लाए गये अलंकार काव्य की शोभा-वृद्धि में कभी सहायक नहीं हो सकते। हिन्दी के कुछ अलंकार शास्त्रियों ने इसी मान्यता को स्वीकारा है। एक सीमा तक ही अलंकारों का महत्व उन्हें मान्य रहा है। आचार्य देव अलंकार को रस का मुखापेक्षी मानते हुए कहते हैं कि काव्य के छंद रूपी शरीर में रस जीवन के सदृश है और अलंकार आभूषणों के सदृश। इनमें आभूषण न होने पर तन (छंद या काव्य) की सत्ता बनी रह सकती है परन्तु रस रूपी जीवन के अभाव में तो उसकी कल्पना ही नहीं की जा सकती।

हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक शुक्ल जी भी भावों के उत्कर्ष में सहायक अलंकारों को ही अलंकार' की संज्ञा देकर रस से उसकी गौणता को सिद्ध करते हैं। उन्होंने कहा है। 'अलंकार' एक युक्ति या वर्णन शैली मात्र है। यह शैली सर्वत्र काव्यालंकार नहीं कहला सकती' 'अलंकार में रमणीयता होनी चाहिए भावानुभव में वृद्धि करने वाले गुण का नाम ही रमणीयता है।[5] सामान्य रूप से सभी विद्वानों ने अलंकार को आंतरिक सौन्दर्य से सम्पन्न और भावानुभूति में सहायक मानने का आग्रह किया है आलंकारिक चमत्कार को काव्य प्राण तो माना ही नहीं उसका सप्रयास ग्रहण भी निंदनीय बताया गया क्योंकि अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं हैं। वे भाव की अभिव्यक्ति के विशेष द्वार हैं।[6] आधुनिक युग में अलंकारों को रस का अनुगामी माना गया। मात्र शब्द जाल या बाह्य रूप सज्जा के लिए उनका प्रयोग अनुचित माना गया।

---

१ प्रतिभानुगम क्रमात् स्वयमेव भवन्ति । अभिनव भारती

२ As emotion increases, expression swells and figure foam forth. Some Concepts on Alankar Shastra by Dr Raghavan.

३ The more emotions grow upon a man the more his speech if he makes any effort to express his emotions abounds in figures
—The World of Imagery S J Brown

४ अलंकार भूषन सुरस जाम बूँद सब भाय।
तन भूषन हू बिनु सिर बिनु जीवन मन रहा।
—काव्य रसायन

५ गोस्वामी तुलसीदास पृ ७०-७१

६ —— भूमिका, पृ ११

इस समग्र विवेचन से स्पष्ट है कि अलंकार को न्यूनाधिक रूप में सौन्दर्य का पोषक व स्वयं सौन्दर्य दोनों माना गया। संस्कृत के रसवादी व हिन्दी के अधिकांश विद्वानों ने उस सौन्दर्य का पोषक समझा है और कुछ विद्वानों ने स्वयं सौंदर्य का प्रयोग। इसकी धारणा प्रारम्भ में भावगत सौन्दर्य को तीव्र करने की रही थी जो बाद में मात्र वैचित्र्य की प्रतीक बन गई है। इसकी अभिव्यक्ति का मूल तत्व था सादृश्य अर्थात् समानता या असमानता दिखाकर, वस्तु के रूप गुण धर्म आदि का बोध कराना। अपने मूल में अलंकारवाद की मान्यता बिम्ब से बहुत निकट है। बिम्ब का लक्ष्य है ऐन्द्रियगम्यता के द्वारा मानस साक्षात्कार जो बहुधा सादृश्य के द्वारा होता है। अलंकार जब केवल चमत्कार का पोषक हो जाता है तब उसकी बिम्ब से दूरी बढ़ जाती है परन्तु जब तक वह रस का पोषक और भाव की सौन्दर्य-सम्पन्न अभिव्यक्ति पर बल देता है बिम्ब के बहुत निकट है। अप्रत्यक्ष रूप से अलंकार की मान्यता बिम्ब का ही पोषण करती है।

अलंकारवाद के बाद अब हम उस सौन्दर्यवाद का अध्ययन करेंगे जिसमें सौन्दर्य विधान के लिए रीति या गुण को मान्यता दी गई।

काव्यालंकार सूत्र के लेखक आचार्य वामन रीति सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। उन्होंने रीति को काव्य की आत्मा माना[1] और उसका क्षेत्र इतना व्यापक कर दिया कि काव्य के अन्य सभी गुण उसमें अन्तर्भुक्त हो गये। काव्यात्मा रीति को स्पष्ट करते हुए उन्होंने कहा कि गुणों के कारण[2] पद रचना में जो विशिष्टता[3] आ जाती है वही रीति है। रीतियों में काव्य इसी प्रकार निहित है जैसे रेखाओं के अन्तर्गत चित्र[4] वे अलंकार को काव्य का अनित्य धर्म कहते हैं और गुण को नित्य। केवल गुण सौंदर्य की सृष्टि कर सकते हैं केवल अलंकार नहीं। शोभाकारक धर्म तो गुण है[5] अलंकार उसमें केवल अतिशयता लाते हैं।[6]

स्पष्टतः वामन का इष्ट सौन्दर्य ही है। रीति का मूल प्रयोजन सौन्दर्य सर्जन है। कभी वह शब्दगत है कभी अर्थगत। डा॰ रामलाल सिंह ने स्पष्ट कहा है कि सौन्दर्य सृष्टि ही इसका लक्ष्य है।[7] वामन से पूर्व रुद्रट ने भी रीति की चर्चा की थी। उन्होंने 'काव्यालंकार' में प्रथम बार रसौचित्य के आधार पर रीति का वर्णन किया था।[8] राजशेखर ने रीति के साथ वृत्ति का सम्बन्ध जोड़ा और उसके अनेक विभागों

१ रीतिरात्मा काव्यस्य। १।२।६। काव्यालंकार सूत्र
२ विशेषो गुणात्मा। १।२।८
३ विशिष्टा पद रचना रीतिः १।२।७ काव्यालंकार सूत्र
४ एतासु तिसृषु रीतिषु रेखास्विव चित्रं काव्यं प्रतिष्ठितमिति १।४, वही
५ काव्यशोभायाः कर्तारो धर्मा गुणाः ३।१।१ वही
६ तदतिशयहेतवस्त्वलंकाराः ३।१।२ वही
७ समीक्षा शास्त्र डा॰ रामलाल सिंह पृ॰ १६८
८ भारतीय साहित्यशास्त्र भाग २ पं॰ बलदेव उपाध्याय पृ॰ २६२

की कल्पना की। कुन्तक ने रीति को मार्ग का नाम दिया और व्यक्ति के स्वभाव के आधार पर इसका वर्गीकरण किया।

इन आचार्यों ने रीति का कोई मौलिक लक्षण नहीं दिया। स्वाभाविक रूप में वामन का लक्षण ही इन्हें मान्य रहा। विश्वनाथ ने इसकी रसवादी विवेचना करते हुए कहा कि जिस प्रकार कामिनी के शरीर में सब अंगों का परस्पर अनुकूल संगठन होता है—सब अंग एक प्रकार से निबद्ध किये जाने पर ही शोभावर्धक होते हैं ठीक उसी प्रकार पदों की संघटना रीति कहलाती है और वह रसादि काव्य सौन्दर्य के उन्मीलन के लिए उपकार करने वाली होती है।[1] आधुनिक युग में रीति का स्थान शैली (स्टाइल) ने ले लिया है जो उससे अधिक व्यापक तत्व है।

समष्टि में रीतिवादियों की रीति की कल्पना उनकी सौन्दर्य वृत्ति की परिचायक है। विशिष्टता सौन्दर्य उत्पादन करके काव्य को जीवन्त बनाती है। गुण और अलंकार का आग्रह भी सौन्दर्य की उत्पत्ति और वृद्धि के लिए है। इन सौन्दर्यवादियों की दृष्टि भी कवि-कल्पना और मूर्ति निर्माण पर नहीं गई है। विशिष्टता बिम्ब से आ सकती है परन्तु रीति का विवेचन और क्षेत्र बिम्बगत धारणा से नितान्त भिन्न रहा है। विशिष्टता में वाक्य-विन्यास शब्द योजना माधुर्य ओज आदि गुणों पर भी बल दिया जाता है जिनका बिम्ब से कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। रीति और बिम्ब अपने सिद्धान्तों और प्रयोगों में नितान्त भिन्न हैं।

रीति सम्प्रदाय के पश्चात् काव्य सम्प्रदाय में वक्रोक्ति सम्प्रदाय का विशेष महत्व है। वक्रोक्ति सम्प्रदाय के प्रवर्तक आचार्य कुन्तक हैं। वक्रोक्ति की परिभाषा देते हुए कुन्तक ने कहा है कवि-कर्म-कुशलता से उद्भुत सौन्दर्य पर आश्रित एक कथन प्रकार ही वक्रोक्ति है।[2] प्रसिद्ध कथन शैली से भिन्न उक्ति जो कवि कौशल अथवा चारुता से युक्त हो वक्रोक्ति है। यह वक्रोक्ति शब्द और अर्थ दोनों में विद्यमान रहती है। यह प्रत्येक काव्य तत्व में निहित है और सम्मिलित रूप से उसी प्रकार प्रकट होती है जैसे प्रत्येक हिम से निकला हुआ हिम का तल।[3] वे वर्ण से लेकर प्रबन्ध तक में वक्रता की सम्भाव्य स्थिति स्वीकार कर लेते हैं। कुन्तक से पूर्व भामह ने वक्रोक्ति का विवेचन अलंकार रूप में किया था। उनकी वक्रता अतिशयोक्ति का विवेचन पर्याय वाची है। और मूलतः दोनों एक ही हैं। शब्द वक्रता और अर्थ वक्रता—दोनों का समन्वित रूप वक्रोक्ति है जो अलंकार की मूल है।[4]

---

१ यथ अंगरच रानि अंग संस्था विशेषवत् उपकर्त्रा रसादीनाम्
२ उभावेतावलंकार्यौ तयोः पुनरलंकृतिः
वक्रोक्तिरेव वैदग्ध्य भंगीभणितिरुच्यते। वक्रोक्ति जीवितम्
३ डा० रा० ना० राम ठाकुर भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा ११४
४ सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयार्थो विभाव्यते यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलंकारोऽनया विना — काव्यालंकार

अतिशयता या वक्रता का विवेचन करते हुए भामह कहते हैं कि अतिशयता 'लोकातिक्रान्त गोचरता' का नाम है। अर्थात् लोक का अतिक्रमण अथवा लोक सामान्य से वैचित्र्य। अतः अतिशयोक्ति (वक्रोक्ति) अतिशय+उक्ति—ऐसी उक्ति है जिसमें शब्द व अर्थ का लोकोत्तर अर्थात् असामान्य प्रयोग होता है।[1] परन्तु परवर्ती आलोचना में कुन्तक की काव्यात्मा रीति संकुचित से संकुचिततर होती गई और मात्र एक अलंकार के रूप में ही सीमित रही।

कुन्तक तथा वक्रोक्ति के समर्थक अन्य आचार्य उस सौन्दर्य का साधन ही मानते हैं। वक्रता सौन्दर्य का ही एक नाम है उनके द्वारा काव्यात्मा रूप में स्वीकृत वाग्वैदग्ध्य अथवा वैदग्ध्यभंगीभणिति का अर्थ काव्य में वैचित्र्य अथवा चारुत्व का विधान करना है। वक्रोक्ति के इस मत में बिम्ब की धारणा और भी दूर है। कथन का वैचित्र्य सदैव भाव का उपकारक नहीं होता न ही वह तन्मयता उत्पन्न करने में समर्थ हो सकता है जो बिम्ब के लिए नितांत आवश्यक है। वैचित्र्य प्रायः बाह्य चमत्कार बन कर ही रह जाता है। क्योंकि बिम्ब काव्य का अन्तरंग धर्म है। जहाँ वक्रता चारुत्व का विधान करती है वहाँ बिम्ब की सृष्टि सम्भव हो सकती है। परन्तु वक्रोक्ति के मूल में बिम्ब की सम्भावना निहित होगी ऐसा प्रतीत नहीं होता।

सौन्दर्य तत्व की पुनः रक्षा करने और अति व्याप्ति के दोष से मुक्त होकर काव्य का उचित रूप निर्देश करने वालों में औचित्य विचार चर्चा के प्रणेता क्षेमेन्द्र का नाम उल्लेखनीय है। ये औचित्य सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं।[2]

औचित्य सम्प्रदाय ही वस्तुतः ऐसा सम्प्रदाय है जिसने काव्य की अनिर्वचनी सत्ता को सबसे सही रूप में समझा है। इसमें काव्य के सभी मार्गों का समन्वय प्रस्तुत किया गया है। क्षेमेन्द्र ने औचित्य की परिभाषा करते हुए कहा कि उचित का भाव ही औचित्य है और यह उचित का भाव वस्तु अनुरूपता (हारमनी) अर्थात् सन्तुलन का ही एक नाम है। उनने कहा कि गुण अलंकार आदि की गणना करना व्यर्थ है जब तक उनको सुनियोजित करने वाले तत्व औचित्य का परिज्ञान उनमें न हो।[3] रुद्रट ने क्षेमेन्द्र से पूर्व ही औचित्य को विशेष महत्व दिया था और भरत ने यद्यपि औचित्य तत्व का उल्लेख नहीं किया पर उसकी आवश्यकता को उन्होंने अवश्य अनुभव किया था। धर्मानुक्रम को हास्य का उपादान बताते हुए उन्होंने कहा कि नाटक में पात्रों की वेशभूषा बोली (भाषा) आदि में औचित्य की रक्षा आवश्यक है नहीं तो

---

१ निमित्ततो वचो यत्तु लोकातिक्रान्तगोचरम्।
मन्यन्तेऽतिशयोक्तिं तामलंकारतया यथा।२।८१। काव्यालंकार

२ उचितं प्राहुराचार्याः सदृशं किल यस्य यत्।
उचितस्य च यो भावस्तदौचित्यं प्रचक्षते। औचित्य विचार चर्चा

३ काव्यस्यालमलंकारैः किं मिथ्यागणितैर्गुणैः।
यस्य जीवितमौचित्यं विचिन्त्यापि न दृश्यते।४

वह उतने ही हास्यास्पद बन जाते हैं जितना कण्ठ में मेखला और कमर में हार पहने हुए व्यक्ति।[1]

स्पष्ट है कि क्षेमेन्द्र काव्य के सौन्दर्य के प्रबल समर्थक हैं। सहृदय पर पड़े काव्य के प्रभाव-रस को वे प्रधानता देते हैं पर काव्य के सभी तत्वों का उचित और सम्यक निरूपण ही उनकी दृष्टि में विशेष महत्व रखता है। उन्होंने काव्यगत तत्वों की सफलता का प्रमाण रमणीयता और मनोज्ञता को माना जिनमें बिम्ब का स्थान अवश्य रहा होगा। अलंकार और भावगत औचित्य बिम्ब की सम्भावनाओं को प्रकट करते हैं। औचित्य मार्ग यद्यपि बिम्ब का पूर्णरूपेण समर्थक नहीं है पर सादृश्य अर्थात बिम्ब के सुनियोजन पर उसकी दृष्टि अवश्य रही है।

समष्टि में सौन्दर्य के पक्षपाती इन आचार्यों के अध्ययन से स्पष्ट है कि इन्होंने सौन्दर्य को (अधिकतर) व्यापक रूप में नहीं देखा है। और उसे मुख्यतः काव्य-शरीर के अन्तर्गत ही खोजने का प्रयत्न किया है। सौन्दर्य के इन समर्थकों के साथ बिम्ब का सम्बन्ध विशेष निकट का नहीं है क्योंकि बिम्ब काव्य में केवल सौंदर्य वृद्धि ही नहीं करता वह काव्य के भावों को दृश्य बना कर उसे प्रेषणीयता भी देता है। सौन्दर्य के समर्थक अलंकार रीति वक्रोक्ति और औचित्य आदि मुख्यतः काव्य के बाह्य सौन्दर्य तक सीमित हैं जबकि बिम्ब काव्य का प्राण है उसका प्रधान आंतरिक गुण है। भाव से भी इनका कोई विशेष सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता इस रूप में भी यह बिम्ब से दूर हो जाते हैं। बिम्ब का लक्ष्य भाव या विचार की ऐन्द्रियगम्य अनुभूति कराना है जबकि औचित्य के अतिरिक्त इन सौन्दर्यवादियों ने कहीं भाव को विशेष महत्ता स्वीकार नहीं की है। बिम्ब की धारणा में स्पष्टतः इन सौन्दर्यवादियों के प्रयत्न विशेष सहायक सिद्ध नहीं हुए हैं।

अभिव्यक्ति

सौन्दर्य के अतिरिक्त काव्य के प्राणतत्व के रूप में दूसरा तत्व जो हमारे सम्मुख आता है वह है अभिव्यक्ति। अभिव्यक्ति अंग्रेजी 'एक्सप्रेशन' का पर्याय है। अभिव्यक्ति मुख्यतः कवि के व्यक्तित्व पर निर्भर करती है, और काव्य में कवि को उपस्थित करने के कारण उसका विशेष महत्व है। अभिव्यक्ति की विशिष्टता ही काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करती है। भाव और अभिव्यक्ति मूल में एक हैं अपनी अभिव्यक्ति अर्थात् व्यक्त स्वरूप के अतिरिक्त उसका कोई अन्य अस्तित्व अकल्पनीय है। अभिव्यक्ति भाव के साथ साथ स्वयं कवि के मानस से उद्भूत होती है। भाव के अभिव्यक्त रूप के अतिरिक्त कवि के मानस में उसका कोई अन्य रूप था। यह एकदम असम्भव है। आत्माभिव्यक्ति के परे काव्य कोई और तत्व नहीं है। प्रेरक भाव (सबस्टैन्स)

---

१ कंठे मेखलया नितम्बफलके तारेण हारेण वा
पाणौ नूपुर बन्धनेन चरणे केयूर पाशेन वा
शौर्येण प्रणते रिपौ करुणया नायान्ति के हास्यताम्

और उसकी बाह्याकृति (फार्म्स) वस्तुतः एक ही वस्तु के दो रूप हैं। परन्तु सुविधा के अनुसार इसको विभाजित कर लिया गया है और काव्य के दो तत्व भाव और अभिव्यक्ति स्वीकार किये गये हैं। अभिव्यक्ति की सत्ता कवि की अनुभूति से पृथक् है अर्थात् कवि अपनी अनुभूति को जैसा रूप देता है वह अभिव्यक्ति अर्थात् काव्य का बाह्य पक्ष है। अभिव्यक्ति का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। भाषा से लेकर अलंकार शैली आदि सभी इसमें समाहित हो जाता है।

ध्वनि सम्प्रदाय के आचार्य आनन्दवर्धन काव्य में अभिव्यक्ति तत्व को पकड़ पाते हैं। परन्तु वह उसको समस्त बाह्याकार के रूप में न लेकर अभिव्यंजना अर्थात् जिसमें व्यंजना प्रधान हो के विशिष्ट अर्थ में लेते हैं। इस प्रकार वह उस अभिव्यक्ति के समर्थक हैं जो व्यंजक (सजेस्टिव) हो। साधारण अभिव्यक्ति (अभिधा) चाहे वह रीति गुण आदि से युक्त हो उनकी दृष्टि में काव्य नहीं है। व्यंजना उनके काव्य सिद्धान्तों का मूलाधार है। आनन्दवर्धन ने काव्य की आत्मा 'ध्वनि' को स्वीकार किया[1]। यह ध्वनि व्यंजना का ही एक नाम है। ध्वनि काव्य की रमणीयता में तो वृद्धि कर ही देती है, साथ ही उसमें रागात्मकता का सन्निवेश भी कराती है। वह काव्य को 'क्षणे क्षणे यन्नवतामुपैति' वाली सुन्दरता से समन्वित कर देती है। काव्य में सौन्दर्य अथवा कान्ति किसी चमत्कार या वैशिष्ट्य द्वारा प्रकट नहीं होती वरन् ध्वनित होती है उसी प्रकार जिस प्रकार रमणी के सुन्दर शरीर से लावण्य।[2] यह लावण्य किसी एक अंग किसी एक आभूषण या किसी एक उपकरण से नहीं झाँकता वरन् यह उसके समस्त रूप समस्त साजसज्जा से ध्वनित होता है। अतः लावण्य किसी एक विशेष तत्व का नाम नहीं है वरन् समस्त तत्वों से ध्वनित सौन्दर्य का नाम है।

आनन्दवर्धन ने काव्य के अन्तर्गत शब्दों के तीन व्यापार स्वीकृत किये हैं एक अभिधा दूसरा लक्षणा तीसरा व्यंजना। उनका मत है कि काव्य का शब्द व्यापार लक्षणा अथवा व्यंजना मूलक होना चाहिए। क्योंकि काव्य की प्रमुख सम्पत्ति भाव है और भाव कभी भी अभिधा से प्रकट नहीं हो सकता वह सदैव ही ध्वनित होता है। अतः काव्य की प्रमुख शक्ति व्यंजना ही है।[3] शब्द का यह रूप इतना सूक्ष्म और ग्राह्य है कि अन्य सम्प्रदाय वादी भी इसकी उपेक्षा नहीं कर सके। आधुनिक छायावादी कवि तक ध्वनि की मान्यता का सम्मान करते हैं।

१ काव्यस्यात्मा ध्वनिः १।१—ध्वन्यालोक

२ प्रतीयमानं पुनरन्यदेव वस्त्वस्ति वाणीषु महाकवीनाम् । यत्तत् प्रसिद्धावयवातिरिक्तं विभाति लावण्यमिवांगनासु —१.४ ध्वन्यालोक

३ Language has two uses, the evocative and indicative it evokes feelings or emotions and indicates objects. Poetic language... is a development of the former
—Language and Reality W. H. Urban

आधुनिक कवि दिनकर कहते हैं 'शायद ध्वनि से बारीक तत्व कविता में और कोई है ही नहीं।'[1]

ध्वनि के सर्वप्रथम विवेचक काव्यशास्त्री नहीं थे वरन् वैयाकरण थे। उन्होंने ध्वनि शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ बताते हुये कहा था कि जो ध्वनित हो वही ध्वनि है।[2] आनन्दवर्धन ने इसी मान्यता को प्रसार दिया। आनन्दवर्धन काव्य में रस के समर्थक भी थे। रस ध्वनि उनकी दृष्टि में श्रेष्ठ ध्वनि थी। रस अलंकार रीति आदि सभी व्यंजक होकर उनके मत में समाहित हो जाते हैं इस रूप में ध्वनि का क्षेत्र बड़ा व्यापक हो जाता है। विश्वनाथ आचार्य भी ध्वनि के पोषक हैं काव्य में अभिधा से परे अथवा अभिधा के अतिरिक्त भी जो अर्थ निहित रहता है उसे वह व्यंजना अथवा ध्वनि कहते हैं वह ध्वनि को 'वाच्यातिशायी व्यंग्य' के नाम से प्रकट करते हैं[3] पर विश्वनाथ उसी ध्वनि को श्रेष्ठ कहते हैं जो रस के उत्कर्ष में सहायक हो। उनकी दृष्टि रस पर प्रधान रूप से है ध्वनि को वह उसी के माध्यम से देखते हैं। ध्वनिकार की दृष्टि इसके विपरीत विशेषण ध्वनि पर ही है। उन्होंने कहा है कि व्यंग्यार्थ प्रधान एवं चारुता प्रधान कविता ही ध्वनि काव्य है।[4] वही काव्य का श्रेष्ठ रूप है। उन्होंने ध्वनि के आधार पर काव्य को उत्तम मध्यम और अधम तीन श्रेणियों में विभाजित किया। जिसमें व्यंग्यार्थ प्रधान हो वह उत्तम जिसमें अप्रधान हो वह मध्यम और जिसमें न हो वह अधम काव्य है। आनन्दवर्धन के पश्चात मम्मट ने ध्वनि की प्रौढ़ व्याख्या प्रस्तुत की है। उन्होंने कहा कि वक्ता श्रोता ध्वनि का विकार वाच्य वाक्य समीपवर्ती मनुष्य प्रकरण देश काल आदि की विशिष्टता के सन्निधान में प्रतिभाशाली व्यक्ति को वाच्यार्थ और व्यंग्यार्थ के अतिरिक्त जिस अन्य अर्थ की प्राप्ति होती है उसे ध्वनि कहते हैं यही व्यंग्यार्थ है।[5] ध्वनिकार इसे ही 'काव्य शरीर में आत्मा के समान सुन्दर (गुणालंकार युक्त) उचित (रसादि के अनुरूप) रचना के कारण रमणीय काव्य के सार रूप में स्थित और सहृदय प्रशंसित' कहते हैं।[1]

---

१ काव्य की भूमिका पृ० — दिनकर

२ ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः । ध्वनति ध्वनिः ध्वनयति ध्वन्यते इति वा ध्वनिः ध्वन्यते इति ध्वनि

३ वाच्यातिशायिनि व्यंग्ये ध्वनिस्तत्काव्यमुत्तमम् — साहित्यदर्पण

४ यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ
व्यङ्क्तः काव्य विशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः — ध्वन्यालोक

५ वक्तृ बोद्धव्य काकूनां वाक्य वाच्यान्यसन्निधेः
प्रस्ताव देश कालादेः वैशिष्ट्यात् प्रतिभाजुषाम्
यो ऽर्थस्यान्यार्थ धी हेतु व्यापारो व्यक्तिरेव सा ।

—काव्यप्रकाश ४ थ उल्लास

१ वृत्ति १—ध्वन्यालोक

मध्यकालीन काव्यशास्त्रियों ने भी ध्वनि पर बल दिया है यद्यपि यह बहुत प्रौढ़ नहीं है पर इसमें उनका आग्रह स्पष्ट है। कवि भिखारीदास ने ध्वनि काव्य को उत्तम काव्य कहा है।[1] आचार्य चिन्तामणि त्रिपाठी ने भी ध्वनि काव्य को श्रेष्ठ काव्य कहा और आचार्य आनन्दवर्धन के काव्य के त्रयी विभाजन को ही अनूदित करके रखा।[2] आधुनिक युग में भी ध्वनि को महत्व दिया गया। महाकवि हरिऔध ध्वनि की प्रधानता स्वीकार करते हुए कहते हैं "कविता में व्यंजना ही प्रधान होती है जहाँ इस शक्ति से काम न लिया जाकर अभिधा से काम लिया जाता है वहाँ कविता अपना महत्व खो बैठती है।" आधुनिक प्रयोगवादी कवि भी जिस चमत्कार को अभिव्यंजना का काव्य का उत्तम गुण समझते हैं वह भी कुछ और नहीं ध्वनि ही है। अज्ञेय ने काव्य के रस को स्पष्ट करते हुए कहा है "काव्य का रस कवि में या कवि के जीवन में वर्ण्यविषय अथवा अनुभूति में या किसी शब्द विशेष में नहीं है वह काव्य रचना की चमत्कारिक तीव्रता में है।"[4] उनकी चमत्कारिक तीव्रता और नवीन अप्रस्तुत व्यंजना की समस्या ध्वनि की ही है। समष्टि में ध्वनि तत्व को आधुनिक काल तक किसी न किसी रूप में मान्यता प्राप्त हुई है।

ध्वनि सिद्धान्त स्पष्टतः ही अन्य सभी देहवादी सिद्धान्तों से अधिक व्यापक है। उसने अभिव्यक्ति को अभिव्यंजना के अर्थ में महत्व देकर देहवादियों और आत्मवादियों (रसवादियों) के बीच कड़ी जोड़ने का प्रयत्न किया है। एक ओर वह व्यंजना की प्रधानता देकर रस की अनिवार्य स्थिति को घोषित करता है और दूसरी ओर काव्य को अभिधेयार्थ अर्थात् वाच्यार्थता से ऊपर उठा कर व्यंग्यार्थ को महत्व देकर देहवादियों से भिन्न हो जाता है।

देहवादी सम्प्रदायों में अंतिम ध्वनि संप्रदाय की धारणा भी बिम्ब के बहुत निकट नहीं है। व्यंजकता बिम्ब का एक आवश्यक गुण है इस रूप में यह बिम्ब के निकट प्रतीत होता है परन्तु बिम्ब ऐन्द्रियता पर बल देता है और अभिधा में भी उसका प्रणयन हो सकता है। इस रूप में वह ध्वनि से भिन्न हो जाता है। अतः जहाँ तक बिम्ब की व्यंजकता का प्रश्न है ध्वनि सिद्धान्त उसके निकट है पर बिम्ब जहाँ चित्रात्मकता पर बल देता है वहाँ ध्वनि सिद्धान्त उससे दूर हो जाता है। बिम्ब

---

1. वाच्यार्थ ते व्यंग्य में चमत्कार अधिकाय
   ध्वनि ताही को कहत हैं उत्तम काव्य विचार —काव्य निर्णय
2. शब्द अर्थ ते कहत कछु व्यंग्य अधिक जो होय
   सो उत्तम कवित्त है [illegible] —प्रकाश ५ ध्वनि गुण [illegible]
3. [illegible]
   [illegible]
4. रस कलश (भूमिका)—[illegible] हरिऔध पृ [illegible]
5. त्रिशंकु—अज्ञेय, पृ ४१

और ध्वनि दोनों के क्षेत्र प्रायः अलग हैं, जिनकी सीमारेखाएँ कभी कभी ही एक दूसरे को छूती हैं।

प्रभाव

काव्य में काव्य तत्वों के अतिरिक्त भी कोई तत्व है जो पाठक को प्रभावित करता है ? इस प्रश्न की सार्थकता ने रस की मान्यता को जन्म दिया। अब तक काव्य के प्राण तत्व के अन्वेषकों ने पाठक पर पड़े काव्य के प्रभाव से अपने को दूर रखा था रस-सिद्धान्त के अन्तर्गत सर्वप्रथम उस विशिष्ट प्रभाव की चर्चा हुई जिसके कारण पाठक काव्य पढ़ता है अभिभूत होता है और अप्रतिम आनन्द की प्राप्ति करता है। यह अप्रतिम आनन्द ही रस की सम्भावनाओं का मूल है।

काव्य के प्रभाव को महत्व देने वाला सम्प्रदाय रस सम्प्रदाय है। रस सम्प्रदाय के समर्थकों का मत है कि काव्य के पठन-पाठन में जो आनन्द आता है वह हमारे हृदय के सुप्त आनन्द का ही स्वरूप है जो काव्यगत उपादानों से परिपक्व होता है। इस तरह काव्यानंद और काव्य की अनिर्वचनीयता का स्थान स्वयं सहृदय में ही विद्यमान है। काव्यानंद का कारण रस है जो भाव रूप में सहृदय में निवास करता है और अन्य काव्यगत उपकरणों से परिपक्व होकर रस रूप में हमें आनंद प्रदान करता है। यह 'रस सर्वथा विषयीगत है। सहृदय की आत्मा में ही इसकी स्थिति है, वस्तु में नहीं वस्तु तो केवल उसको उद्बुद्ध करती है।'[1]

प्रभाव को मान्यता देने वाले इन आचार्यों ने सर्वप्रथम सहृदय की आवश्यकता को अनुभव किया। यद्यपि भारतीय काव्य-शास्त्र का समस्त विचार विनिमय सहृदय अथवा सामाजिक की दृष्टि से किया गया है प्रणेता या कवि की दृष्टि से नहीं परन्तु काव्यानंद में सहृदय का स्थान कितना महत्वपूर्ण है इस पर कभी विचार नहीं हुआ। केवल रस सिद्धान्त की कल्पना ही सहृदय के अभाव में अपूर्ण रह जाती है।

रस संप्रदाय के आदि आचार्य भरत हैं। यद्यपि इनसे पूर्व नन्दिकेश्वर आदि नाटकों के प्रसंग में रस की चर्चा कर चुके थे पर उसे व्यवस्थित रूप में भरत ने ही प्रकट किया। भरत का नाट्यशास्त्र रस का विवेचन करने वाला सर्वप्रथम प्राप्य ग्रन्थ है। भरत ने भी नाटकों के प्रसंग से रस का विवेचन किया है। उन्होंने कहा कि नाटकों में रस ही प्रधान है और उसके अभाव में नाटक की रचना नहीं हो सकती न नाट्यार्थ प्रवर्तित हो सकता है।[2]

रस शब्द का व्युत्पत्ति मूलक अर्थ है जिसका रस लिया जाय वही रस है।[3] इसके अनुसार रस आस्वादनीय वस्तु का नाम प्रतीत होता है। भरत ने भी इसे

१ रीतिकाव्य की भूमिका—डा. नगेन्द्र पृ. ५४
२ न हि रसादृते कश्चिदर्थः प्रवर्तते —६ अ. नाट्यशास्त्र
३ रस्यते इति रसः

आस्वादन योग्य ही माना था।[1] उन्होंने कहा कि जिस प्रकार सहृदय व्यक्ति विभिन्न प्रकार के व्यंजनों से पके भोजन को खाते हुए रस का स्वाद प्राप्त करते हैं उसी प्रकार दर्शक अथवा रसिक भी नाना भावों के अभिनय से व्यंजित तथा वाणी अंग और सत्व से मिले हुए स्थायी भावों का आस्वादन करते हैं।[2] भावों के आस्वादनीय होने की यह स्थिति ही रस है। भरत ने इसकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में कहा कि जिस प्रकार के व्यंजनों व औषधियों के संयोग से रस उत्पन्न हुआ करता है उसी प्रकार नाना भावों के संयोग से नाट्य रस निष्पन्न होता है।[3] विभाव अनुभाव एवं संचारी भावों के संयोग से रस की निष्पत्ति होती है।

यह सम्प्रदाय अपनी व्याप्ति में अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा बहुत आगे है और काव्यात्मा रस को उसके उचित रूप में प्रस्तुत कर सका है। रस सम्प्रदाय काव्य के बाह्य आवरणों—चमत्कार, विदग्धता आदि में उलझा नहीं है वरन् काव्यात्मा का रस रूप में दर्शन कराने में सफल हुआ है। भरत द्वारा वर्णित भाव और रस दोनों काव्य के प्राण हैं 'अन्योन्याश्रित'[5] हैं, बिना भाव की सत्ता के रस की स्थिति असम्भवनीय है और भाव की सत्ता भी रसमय ही है। रसहीन भाव हो ही नहीं सकता। यह भाव और रस दोनों ही सहृदय पर पड़े काव्यगत उपकरणों के प्रभाव के परिणाम हैं। काव्य वस्तु रस उत्पन्न कर सकती है भाव की व्यंजना कर सकती है पर स्वयं वह रस है न भाव। भाव सहृदयगत तत्व है जो काव्यानुशीलन से जागृत हो जाते हैं और फिर काव्यगत शब्दों से उद्दीप्त होकर रस दशा को प्राप्त हो जाते हैं।

भरत के पश्चात् काव्यशास्त्र के प्रणेता प्रमुखतः अलंकारवादी थे इनमें भामह और दण्डी प्रमुख थे। यह आचार्य रस तत्व से परिचित तो थे पर उसकी प्रधानता इन्हें मान्य न थी। दण्डी का मत तो बहुत उलझा-सा है। रस तत्व से दण्डी प्रभावित तो अवश्य थे पर उसका स्वरूप स्थान व महत्व वह ठीक से समझ नहीं पाये और फिर अलंकारवाद का आग्रह भी उन्हें अधिक था रसवत् रचना को वह माधुर्य गुण युक्त मानते हैं।[6] पर रस को वह काव्य का प्रमुख तत्व न स्वीकार कर

---

१ आस्वाद्यत्वात् रसः —नाट्यशास्त्र

२ यथा बहु द्रव्य युतैर्व्यंजनैर्बहुभिर्युतम्
आस्वादयन्ति भुञ्जाना भक्तं भक्तविदो जनाः ॥ ६।३२
भावाभिनय संयुक्तान् स्थायिभावांस्तथा बुधाः
आस्वादयन्ति मनसा तस्मान्नाट्यरसाः स्मृताः ॥ ६।३३

३ नाना व्यंजनौषधिद्रव्यसंयोगाद्रसनिष्पत्ति तथा नानाभावोपगमाद्रसनिष्पत्तिः। —नाट्यशास्त्र

४ विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रसनिष्पत्तिः। —नाट्यशास्त्र

५ न भावहीनोऽस्ति रसो न भावो रसवर्जितः।
परस्परकृता सिद्धिस्तयोरभिनये भवेत्। —६।३६, नाट्यशास्त्र

६ मधुरं रसवद् वाचि वस्तुन्यपि रसस्थितिः।
येन माद्यन्ति धीमन्तो मधुनेव मधुव्रताः। —काव्यादर्श

सके । वक्रोक्तिकार वामन ने रस को कांति-गुण के अन्तर्गत समाहित कर लिया है। और अलंकारवादी उद्भट ने रसवत प्रेयस और ऊर्जस्वित अलंकारों के अन्तर्गत रस का समन्वित कर लिया। उन्होंने रसवत् के अन्तर्गत स्थायी संचारी आदि भाव एवं विभावों आदि का उल्लेख भी किया है। उद्भट की भाँति रुद्रट ने भी रस को प्रामाणिक रूप से स्वीकृत किया उन्होंने कहा कि काव्य की सरसता का आधार रस को है। (सालंकारिकता के कारण) देदीप्यमान और दोषाभाव के कारण निर्मल रचना का निर्माता महाकवि सरस काव्य की रचना करता हुआ श्रेष्ठता को प्राप्त होता है।[2] ध्वनिकार आनंदवर्धन भी अलंकार की अपेक्षा रस के अधिक पक्षपाती हैं। उन्होंने ध्वनि काव्य को उत्तम काव्य कहा और समस्त ध्वनियों में रस-ध्वनि को सर्वश्रेष्ठ कहा।[3] और इस प्रकार स्पष्ट किया कि अलंकार रीति आदि सभी तत्वों में रस प्रधान है।

मध्ययुगीन हिन्दी आचार्यों ने भी रस को प्रधानता दी। महाकवि देव रस के प्रबल समर्थक थे उन्होंने अपने काव्य लक्षण में यद्यपि सभी तत्वों का समन्वय प्रस्तुत किया है। परन्तु रस सिद्ध कविता को ही कविता कहा। उन्होंने शब्दार्थ को काव्य का सार और रस को शब्दार्थ का सार कहा।[4] उनके मत से काव्य के अलंकार तो मात्र अलंकार (आभूषण) हैं। छंद तन है और रस जीव अर्थात् जीवन (प्राण) है छंद अथवा काव्य शरीर बिना आभूषण (अलंकार) के तो जीवित रह सकता है परन्तु काव्यात्मा रस के अभाव में छंद अथवा कविता शरीर राख के समान व्यर्थ है।[5] श्रीपति आदि ने भी रस का समर्थन किया है।

हिन्दी के काव्य शास्त्रियों एवं कवियों ने भी अधिकांशतः रस को ही काव्यात्मा के रूप में मान्यता दी है। आचार्य द्विवेदी ने कहा था रस ही कविता का प्राण है और जो यथार्थ कवि है उनकी रचना में रस अवश्य होता है। नीरस कविता कविता ही नहीं।[6] पं० रामनरेश त्रिपाठी भी द्विवेदी जी की भाँति सरस कविता को कविता कहने का विचार रखते हैं वह कहते हैं जिस रचना के सुनने से हृदय में रस की उत्पत्ति न हो उस रचना को कविता कहना ही क्यों चाहिये ? रस

१ रसवद्दर्शित स्पष्ट श्रृंगारादि रसादयम्
स्वशब्द स्थायि संचारि विभावाभिनयास्पदम् । — ४।४ काव्यालंकार

२ ज्वलदुज्ज्वलवाक्प्रसरः सरसं कुर्वन्महाकविः काव्यम्
स्फुटमाकल्पमनल्पं प्रतनोति यशः परस्यापि । १।४ —काव्यालंकार

३ रसभावतदाभास तत्प्रशान्त्यादिरक्रमः ।
ध्वनेरात्माङ्गिभावेन भासमानो व्यवस्थितः । २।३ ध्वन्यालोक

४ शब्द अर्थ सम्भार को रस तेहि काव्य सुसार । —शब्दरसायन

५ अलंकार भूषन सरस जीव देह सम भास ।
तन भूषन बिनु हू जिये बिनु भूषन तन राख । —शब्दरसायन

६ प्राचीन पंडित और कवि—महावीर प्रसाद द्विवेदी पृ० ३६

स्वाभाविक है। अलंकार यदि रस का सहायक है तो स्वाभाविक है, नहीं तो अस्वाभाविक है। अतः रस ही काव्य का मूल तत्त्व सिद्ध होता है क्योंकि छंद या भाषा केवल कलाम मात्र है अथवा उसको शरीर कह लीजिए, भाव और विचार ही उनके (कविताओं के) प्राण हैं। छायावादी कवि पंत भी यदि कवि के वियोगी होने की बात कहकर[3] काव्य में भाव की प्रतिष्ठा करते हैं जो रस की पृष्ठभूमि है। डा० रामकुमार वर्मा भी रस को मान्यता देते हुए कहते हैं "मेरी दृष्टि से रस अमर है, वह काव्य का सबसे महत्त्वपूर्ण अंग भी है। जब तक काव्य रहेगा, रस की सृष्टि निरन्तर होती रहेगी।"[4] आधुनिक कवि दिनकर ने कवि के हृदयगत रस की अभिव्यक्ति को कविता माना। उन्होंने कहा, "कविता तो कवि की आत्मा का आलोक है, उसके हृदय का रस है, जो बाहर की वस्तु का अवलम्ब पाकर फूट पड़ता है।"[5] स्पष्टतः आधुनिक और मध्यकालीन सभी युगों में रसवादी मान्यता को प्रतिष्ठा मिली है।

रस के सम्बन्ध की मान्यताओं से यह बात स्पष्ट है कि काव्यात्मा रस सहृदय में उत्पन्न होता है और सहृदय में उसकी पूर्ण प्रच्छन्न स्थिति होती है। स्पष्टतः समस्त रस सम्प्रदाय काव्यगत प्रभाव का ही आस्वादन है। यह प्रभाव रस का कारण अथवा स्वयं रस रूप है। काव्य में यह अनेक उपकरणों से उद्दीप्त होता है, अतः इसको किसी एक उपकरण में सीमित करना अनुचित है। यह हृदय में स्थित स्थायीभाव का परिपक्व रूप है। यहाँ सौन्दर्य, अभिव्यक्ति और रस का क्रम एक विकास की सूचना देता है। यह विकास स्थूल से सूक्ष्म की ओर है। वस्तुतः काव्यानन्द अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व है जिसकी भी स्थूल तत्त्व से इसकी व्याख्या असम्भव है। सूक्ष्म रस ही वस्तुतः काव्यानन्द की उचित व्याख्या हो सकती है।

परन्तु अपनी अभिव्यक्ति के लिए इस सूक्ष्म तत्त्व को भी स्थूल तत्त्व की आवश्यकता होती है। काव्य में यह अमूर्त तत्त्व मूर्त होकर आता है क्योंकि तभी वह सर्वथा प्रेषणीय बन सकता है। रस की सूक्ष्मता और भाव की प्रेषणीयता के लिए व उसके मूर्त और स्थूल रूप के लिये अभिव्यक्ति के एक ही माध्यम की आवश्यकता होती है। इसी आवश्यकता की पूर्ति करता है बिम्ब। बिम्ब भाव और रस का मूर्त रूप है, रस या भाव कथन से प्रकट नहीं हो सकते, वह व्यंजित हो सकते हैं। बिम्ब ही रस और भाव की व्यंजना करते हैं। इस रूप में बिम्ब रसवाद के अत्यन्त निकट

१ कविता कौमुदी भाग—रामनरेश त्रिपाठी पृ० १३
२ [illegible]—जुलाई १९३५ पृ० ६०
३ वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान।
उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान।—उच्छ्वास, पं० पृ० १३
४ [illegible]—डा० रामकुमार वर्मा पृ० ४४
५ मिट्टी की ओर—रामधारी सिंह दिनकर पृ० १४४

पा जाता है। रस के उपकरण जिनके द्वारा रस आस्वादनीय बनता है विभाव अनुभाव आदि सर्वदा बिम्बात्मक होते हैं। दृश्य और ऐन्द्रियगम्य वर्णनों के द्वारा ही भाव और रस अभिव्यक्ति पाते हैं। बिम्ब ही रस और भाव को अनुभवगम्य बनाता है। इस रूप में बिम्ब और भाव—एक दूसरे के पूरक—अन्योन्याश्रित प्रतीत होते हैं। बिम्ब सदैव भाव का उपकार उसकी अनुभवगम्य व्यंजना के द्वारा करता है और भाव सदैव रूपायित होने के लिए अथवा आस्वादनीय बनने के लिए बिम्ब के माध्यम से प्रकट होता है।

जीवन-मीमांसा

काव्य के प्राण तत्व के रूप में आधुनिक युग में एक अन्य तत्व भी स्वीकार किया गया। यह तत्व है जीवन मीमांसा।

आज के युग की बौद्धिकता सामाजिक विषमता और आर्थिक शोषण ने कवि और काव्य दोनों के मन में एक भयानक उथल-पुथल मचा दी है। इससे नैतिक मूल्यों के साथ काव्यगत मूल्यों में भी अन्तर आया है। पहले कविता का लक्ष्य धर्म अर्थ काम मोक्ष की प्राप्ति कहा गया है और कवि ने सर्वदा इन्हीं को वर्ण्य बनाने का प्रयत्न भी किया। सूफी संतों मध्ययुगीन भक्तों और रीति-युगीन शृंगार प्रिय कवियों का लक्ष्य क्रमशः मोक्ष धर्म और काम था। 'अब तब तक पहुँचा था। १६ के बाद की कविता में आर्थिक वैषम्य उभरने लगा। कवि ने दुःख और पीड़ा को भोगा यह पीड़ा उसकी अपनी नहीं थी वरन् समाज और वर्ग की अनुचित व्यवस्था से उभर कर उस तक आई थी। इससे कवि को विद्रोही बनाकर तात्कालिक जीवन की मीमांसा करने पर विवश कर दिया। भारतेन्दु युग में राष्ट्रीयता का रंग अधिक गहरा रहा और छायावाद में कला का विद्रोह अधिक रहा वस्तु की नवीनता उसमें कम थी वह मुख्यतः काम और मोक्ष ी समस्या को लेकर चला है। पर १६१२ के बाद व भारत-स्वतन्त्रता के बाद जब आर्थिक सामाजिक वर्ग-गत और शोषित व शोषक की समस्याओं ने जीवन को बहुत आकर्षित किया तब मार्क्स के भौतिकवादी दर्शन की छाया में रखकर कवियों ने इस युग अंकित किया। आगे चलकर यह भी अनुभव हुआ कि समस्याएं केवल बाहरी ही नहीं आंतरिक भी है समाज की ही नहीं व्यक्ति की भी हैं। आज सबसे बड़ी समस्या सबसे बड़ी विडम्बना (ट्रेजेडी) स्वयं व्यक्ति है—सचेतन और जागरूक व्यक्ति। आज का व्यक्ति स्वयं समस्या प्रिय है अपने हृदय के अन्तर्द्वन्द्व बुद्धि-हृदय के संघर्ष उलझनों और ग्रन्थियों (कम्प्लेक्सेज) को वह स्वयं प्रश्रय देता है क्योंकि यही उसके बौद्धिक व्यक्तित्व की अनिवार्य शर्त है। आज का कवि भी ऐसी ही एक जागरूक संघर्षप्रिय, बौद्धिक-चेतना होने के नाते स्वयं एक विडम्बना है। काव्य में वह अपने मन और बुद्धि के संघर्षों को विभिन्न स्तरों पर रखकर उनका समाधान खोजने का प्रयत्न करता है। फलतः नया कवि बाह्य जीवन की मीमांसा नहीं करता वरन्

अपने आंतरिक जीवन की समस्याओं का समाधान खोजता है। इस प्रकार जीवन मीमांसा के दो रूप स्वीकृत हो चुके हैं एक बाह्य जीवन की मीमांसा दूसरा आंतरिक जीवन की मीमांसा और काव्य के प्रगतिवाद व प्रयोगवाद (नई कविता) इसी की अभिव्यक्तियाँ हैं। इनमें एक की दृष्टि अन्तर्मुखी है दूसरे की बहिर्मुखी एक के सम्मुख मन और बुद्धि की उलझनें हैं तो दूसरे के सम्मुख तन और धन की। एक व्यक्ति के पीड़ित अहं मन और बुद्धि के अन्तर्द्वन्द्व का गायक है तो दूसरा समाज के दलित, दलित वर्ग का उद्धारकर्ता। यहाँ प्रथम प्रगतिवाद तत्पश्चात् प्रयोगवाद के जीवन मीमांसक रूप और शिल्प की मान्यता को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जायगा।

प्रगतिवाद

प्राचीन कवियों और आचार्यों के सम्मुख रमणीयता और रसमयता काव्य का मापदंड था और आनन्द प्राप्ति कराना उसका सर्व स्वीकृत उद्देश्य था परन्तु आधुनिक युग में यह मापदण्ड बदला और आलोचक को दिखाई पड़ा कि सुन्दर और स्वस्थ निर्माण ही कविता का उद्देश्य है। माखनलाल चतुर्वेदी ने कहा 'कविता को कुछ लोग विलास या विनोद मानते हैं किन्तु यथार्थ कविता विलास नहीं वह तो एक निर्माण है महान निर्माण। हिमालय की तरह स्थायी गंगा की तरह उपयोगी सूर्य किरणों की तरह आवश्यक और वायु की तरह अनिवार्य।'[1] आज की कविता स्वर्ग लोक अथवा कल्पना लोक के रंगीन वैभव में भी विश्राम नहीं करती वह जीवन निर्माण की इच्छुक है इसीलिए आज जीवन से हटी हुई कविता साहित्य की सबसे बड़ी निर्लज्जता[2] मानी जाती है। आज के कवि ने अनुभव किया कि स्वप्नों का कल्पना लोक आज के आर्थिक संघर्ष वर्ग वैषम्य में टिक नहीं सकता उसकी सुकुमार कल्पनाएँ आज के धूल धुआँर और कीचड़ में दम तोड़ देती हैं। अब से निकल इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है। और युग-जीवन ने उसके चिर संचित सुख स्वप्नों को जो चुनौती दी है। उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।[3] जीवन की अनेक समस्याओं को कवि ने अनुभव किया। उसने जीवन के असामञ्जस्य को समझ हुए पहले सामञ्जस्य स्थापित करने की चेष्टा की क्योंकि 'बाह्य असुन्दरता के ढूह में खड़े होकर आत्मिक सौन्दर्य की उपासना नहीं हो सकती निरन्न और निर्वसन जनता के बीच खड़े होकर आप परियों के सौन्दर्य लोक की कल्पना नहीं कर सकते।'[4] अतः कविता जीवन की उपासक उसको सुन्दर बनाने की इच्छुक हो चली। अब

१ साहित्यदेवता—माखनलाल चतुर्वेदी पृ० १३२।
२ आधुनिक कवि भाग १ भूमिका डा० रामकुमार वर्मा पृ० १।
३ स्वप्न—पंत।
४ प्रकाश के फूल—दिनकर, पृ० १८१।

कविता की परिभाषा नई दृष्टि से की गई। अंचल ने कहा 'कविता सामाजिक शक्तियों की अभिव्यक्ति और कवि के सामाजिक अनुभवों की स्वतंत्र वर्णना है।' अंचल जी पुनः इसी स्वर में कहते हैं 'साहित्य मनुष्य व उसकी परिस्थितियों या वातावरण के पारस्परिक संग्राम का व्यक्तीकरण है।' प्रगतिवादियों ने काव्य को एक सामूहिक चेतना माना जिसमें व्यक्तिगत सुख-दुख के गीत गाना मानवता के प्रति अपराध था। व्यक्तिगत अनुभूतियों के विषय में अंचल ने कहा 'प्रगतिवाद का लक्ष्य ही उस समाज की स्थापना है जिसमें व्यक्ति और समाज के पार्थक्य की रेखा न होगी। तब वैयक्तिक अनुभूति का क्या महत्व जो व्यक्तित्व को सर्वप्रधान बनाकर समाज के लिये अपरिचित रह जाती है।' इस प्रकार उन्होंने अनुभूति का अर्थ व्यक्तिगत अनुभूति से न लेकर समाजगत अनुभूति से लिया। यह अनुभूति शोषितों की पीड़ा और वर्ग संघर्ष की भीषणता से प्राप्त होती थी। आर्थिक वैषम्य उनके काव्य की प्रेरणा थी और इसको दूर करके अर्थ साम्य स्थापित करना उनका स्वप्न था और इस स्वप्न को सजीव करने का प्रयत्न था उनका काव्य। प्रगतिवादी सुमन ने कहा था 'कवि सबसे बड़ा समाजशास्त्री होता है' 'काव्य उसका उपलक्ष्य हो जाता है और लक्ष्य होता है उस सामाजिक सत्य और मानवीय जीवन-योजना की पूर्णता का ऐक्य बोध जो सामाजिक चैतन्य का मार्मिक आधार है।' यद्यपि इस मान्यताओं को सर्वसम्मति नहीं प्राप्त हुई फिर भी यह प्रगतिवादी काव्य की समाजशास्त्रीय व्याख्या का अच्छा विश्लेषण करती है।

इस प्रकार प्राचीन काव्यगत मान्यताओं का ह्रास हुआ और काव्य की अनिवार्यता बाह्य जीवन मीमांसा मानी गई। कवि ने अपने सामाजिक उत्तरदायित्व को समझा और समस्त अन्य आवश्यक तत्वों—रस कल्पना ध्वनि आदि को सामाजिक काव्य की अनिवार्यता समझ कर नये रूप में प्रस्तुत किया। कल्पना के विषय में उन्होंने कहा 'प्रगतिवाद को सपनों से आपत्ति नहीं है। परन्तु वे स्वप्न एक नूतन सुन्दर परिपूर्ण और स्वस्थ जीवन के निर्माण के प्रतीक होने चाहिये।' निर्माणकारी होने के लिए कल्पना का अनुभूति के आश्रित होना आवश्यक है। अनुभूति प्रधान रचना में कल्पना की स्वस्थ संतुलित और गरिमामयी अभिव्यक्ति ही उन्हें स्वीकार है। अंचल ने इस तथ्य को स्पष्ट करते हुए लिखा 'काव्यात्मक सर्जन में मैं कल्पना को अनुभूति की मुखापेक्षी मानता हूं। यदि अनुभूति में गहराई तीव्रता और व्यापकता होगी तो उसका शृंगार करने वाली कल्पना भी उदात्त विराट

१ काव्य संग्रह—भाग भूमिका पृ ४४।
२ समाज और साहित्य—अंचल आमुख पृ ।
३ कल्प संदर्भ भाग पृ ४२।
४ लाल चूनर—सुमन भूमिका पृ २।
५ समाज और साहित्य—अंचल पृ २५।

आत्म-मीमांसा और प्राणवान होगी नहीं तो वह केवल कल्पित और सार के मस्तक कँपूस जैसी निष्प्राण होगी।"[1] इस प्रकार समाज के नवजीवन का निर्माण, समता धर्म की स्थापना, वर्ग वैषम्य के प्रति क्रांति ही उनकी कविता के साध्य थे और अन्य काव्यगत समस्त तत्त्व उनके साधन रूप में प्रयुक्त हुए हैं।

इस प्रकार काव्य में जहाँ इन्होंने पुरानी मान्यताओं का खंडन किया वहाँ काव्य के उपकरणों के प्रति भी विद्रोह प्रकट किया। अलंकार छंद संगीतात्मकता का इनकी दृष्टि में बहुत अधिक महत्त्व न था परन्तु कल्पना को वह विस्मृत न कर सके उन्होंने उसे लोक-मंगलकारी रूप में स्वीकृत किया। दीन-हीन जनता साधारण शब्दों से काव्य में सुन्दर नहीं हो सकता था उसके लिए रूपों की आवश्यकता थी। फलतः बिम्बों का प्रयोग इनकी कविता में खूब हुआ है। यद्यपि उनका क्षेत्र और प्रसंग मानव जीवन और लोकमंगल हो गया है पर अपने विद्रोह सामाजिक विषमता शोषित वेदना को वाणी देने के लिए बिम्बों का प्रणयन भी आवश्यक हो गया। इस समय तक कला के क्षेत्र में भी पर्याप्त आन्दोलन हो चुका था। कवि कल्पना और मूर्ति निर्माण की उपयोगिता को खूब समझ चुके थे। प्रगतिवादी पंत छायावाद काल में ही पल्लव की भूमिका में सस्वर और सचित्र शब्दों पर बल दे चुके थे अतः काव्य में बिम्ब विधान का महत्त्व निर्विवाद सिद्ध किया जा चुका था और कवियों ने बहुतायत से बिम्बों का प्रयोग किया। इस प्रकार स्पष्ट है कि काव्यात्मा के रूप में जीवन-मीमांसा के साथ-साथ कल्पना और मूर्ति निर्माण की धारणा भी बलवती हो गई। बिम्ब-विधान की आवश्यकता प्रगतिवाद में सदैव बनी रही है।

प्रयोगवाद

जीवन मीमांसा का दूसरा रूप प्रयोगवाद में सामने आया। यह प्रगतिवादी भौतिकता और वस्तुपरकता के विरोध में मानव के अपने आन्तरिक द्वन्द्वों के प्रकाशन का स्वरूप है। प्रगतिवाद वस्तु से अधिक सम्बन्धित है और प्रयोगवाद व्यक्ति से। प्रगतिवाद में आत्मानुभूति का अभाव था। उसकी प्रतिक्रिया ने व्यक्ति की चिन्तन धारा को वस्तु से हटा कर आत्मा की ओर मोड़ दिया जिसके फलस्वरूप नई कविता अथवा प्रयोगवाद का जन्म हुआ।

प्रयोगवादी कवि काव्य में व्यक्ति को विशेष महत्त्व देते हैं उन्होंने व्यक्ति के अन्तःसंघर्षों और काम कुंठा के द्वन्द्वों और समस्याओं को अपने काव्य का वर्ण्य विषय बनाया। वे समाज और व्यक्ति के जीवन की विषम उलझनों के प्रति संघर्षशील हैं। वे नवीन सत्यों के अन्वेषक हैं। तारसप्तक की भूमिका में अज्ञेय ने लिखा था। वे "किसी मंज़िल पर पहुँचे नहीं हैं अभी राही हैं राही नहीं राहों के अन्वेषी।

१ प्रगतिवाद, [illegible], १९५५ पृ ४८।

२ पल्लव, भूमिका, पृ १०।

उनमें मतैक्य नहीं है सभी महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय अलग-अलग है।[1] इसके आठ साल बाद भी अज्ञेय यही कह सके "ये कवि अभी विराम स्थल पर नहीं पहुँचे हैं लेकिन उनके आगे प्रशस्त पथ है और एक आलोकित क्षितिज रेखा।[2] और आज भी सम्भवतः उनके लिए यही कहा जा सकता है।

काव्यगत तत्वों में उन्होंने कला-साधना पर विशेष बल दिया। उन्होंने कहा "केवल विषय या वस्तु का सत्य भी उतना ही अधूरा है जितना कि केवल विषयी या संवेदक का। कवि या साहित्य स्रष्टा के लिये यह अधूरापन विशेष रूप से खतरनाक है। क्योंकि इन दोनों को देखना और देखते रहना और संयुक्त ढंग से प्रस्तुत करना ही कवि कर्म का विशेष उत्तरदायित्व है।[3] भावपक्ष में वह आत्मगत भाव के विरुद्ध है। भाव का समाज में प्रेषणीय होना आवश्यक है इसलिए कविता को आत्माभिव्यक्ति की सीमाओं से दूर रखा जाय। उन्होंने कवि की तटस्थ प्रवृत्ति पर बल देते हुए कहा है "काव्य रचना मूलतः अपने को अपनी अनुभूति से पृथक करने का प्रयास है। अपने ही भावों के निर्व्यक्तीकरण की चेष्टा। बिना उसके काव्य निरा आत्म निवेदन है और सच होकर भी इतना व्यक्तिगत है कि काव्य की अभिधा के योग्य नहीं है—संप्रेषणीयता की कसौटी पर खरा नहीं उतरता।[4] इनकी उल्लिखित मान्यताओं में दो तत्व स्पष्ट होते हैं पहला यह कि काव्य में आत्माभिव्यक्ति का उतना स्थान नहीं है जितना निर्व्यक्तिक अभिव्यक्ति का दूसरा यह कि काव्य कला साधना है। भाषा और शब्दों की समस्या सदैव उसके सम्मुख बनी रहती है। परन्तु इनके प्रयोगों से इनकी मान्यताओं का समर्थन नहीं होता यह कवि घोर व्यक्तिवादी है और आत्माभिव्यक्ति ही इनके काव्य का मूल है। वास्तव में अति व्यक्तिवादी कवियों की यह मान्यताएं एक प्रकार का विरोधाभास उत्पन्न करती है।[5]

प्रयोगवादी कवि कल्पना को भी काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान देता है। उसकी संवेदना वस्तु जगत से संबंधित है फलतः उसकी कल्पना का विकास सूक्ष्म से स्थूल की ओर रहता है। कल्पना के विषय में धर्मवीर भारती कहते हैं "कल्पना और यथार्थ दोनों ही मानव जीवन के अंग हैं। साहित्य में भी केवल यथार्थवादी शैली से मनुष्य कभी सन्तुष्ट नहीं रह सकता और घूम फिर कर छायावादी शैली का आना आवश्यक है।[6] स्पष्टतः कल्पना को वह काव्य की आवश्यकता समझते हैं।

प्रयोगवादी अथवा नये कवि बिंब विधान के सम्बन्ध में अपने स्पष्ट विचार रखते हैं। उन पर इलियट लोरेन्स पाउण्ड आदि का व्यापक प्रभाव है जिसके कारण

---

1 तार सप्तक—सं० अज्ञेय भूमिका पृ० ...।
2 दूसरा सप्तक—सं० अज्ञेय भूमिका पृ० १४।
3 नई कविता अंक २ पृ० ...।
4 चिंता—अज्ञेय भूमिका पृ० ...।
5 आधुनिक हिन्दी कविता में काव्य शिल्प—डा० सुरेश चन्द्र गुप्त, पृ० ...
6 प्रगतिवाद एक समीक्षा धर्मवीर भारती, पृ० १९०-१९२

बिम्ब विधान के लिए उनका विशेष आग्रह है। उन्होंने प्राचीन प्रतीकों और उपमानों को छोड़कर नवीन उपमान और प्रतीक ग्रहण करने का आग्रह किया है। इसी प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण गिरिजाकुमार माथुर करते हैं।

'यह (नया कवि) अपने माध्यमों में तेजी से रद्दोबदल करने लगा, छन्द और उपमानों को उलट-पलट कर नई जमीन खोजने लगा। अपने गहरे और सूक्ष्म मनोवेगों की अभिव्यंजना के लिए अपरिचित प्रतीक जुटाने लगा।'[1]

यहां भ्रप्प का मूर्त से विशद बिम्ब की धारणा की ही स्वीकृति है। नये कवियों में नवीनता का विशेष आग्रह था। क्योंकि प्राचीन उपमान निरन्तर प्रयुक्त होकर रूढ़ और धन्ध मात्र रह गए थे बिम्ब विधान की शक्ति उनमें न थी। नयी कविता के लिए गिरिजाकुमार ने कहा 'घिसे पिटे चले और एक परिचित दायरे में घूमने वाले प्रतीक—उपमानों के स्थान पर वस्तु जगत के समस्त क्रियाकलापों को उसने अपनी वर्धमान क्षमतियों से छूकर उन्हें ग्रहण किया है। मानसिक जगत की अनेक सूक्ष्म प्रतिक्रियाओं के पर्दे उठाए हैं।'[2]

अलंकार छन्द, संगीत आदि को नई कविता में विशेष महत्व नहीं मिला पर अनुभूति की बिम्बात्मकता व बिम्ब विधान की नवीनता पर इसकी विशेष दृष्टि रही। समस्त नई कविता अपने आप में एक-एक अनुभूतिमय क्षण की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति है। कल्पना और उसके मूर्तिनिर्माण के व्यापार को प्रथम बार यह स्पष्ट महत्ता प्राप्त हुई है। प्रच्छन्न रूप से यदि बिम्ब को सबने स्वीकारा है पर उसका स्पष्ट उल्लेख प्रथम बार नये कवियों ने ही किया। स्पष्टतः जीवन मीमांसा उनके काव्य में प्रधान है पर कला और अनुभूति की अभिव्यक्ति की दृष्टि से इस युग में बिम्ब को विशेष महत्व मिला।

समष्टि में सभी भारतीय दृष्टिकोणों से परिचित हो जाने के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि यद्यपि भारतीय समीक्षकों की दृष्टि कल्पना और उसके व्यापार बिम्ब विधान पर प्रत्यक्षतः नहीं गई है पर अप्रत्यक्ष रूप से सभी ने कल्पना को स्वीकार किया है। कल्पना की दृढ़ धारणा उनमें नहीं थी पर कल्पना की सम्भावनाएँ उनके सिद्धान्तों में प्रच्छन्न रही थीं। आधुनिक युग में कल्पना की ओर कवियों का विशेष आग्रह रहा और समीक्षा भी कल्पना शब्द से परिचित हो गई। आधुनिक कवियों ने बिम्ब विधान के महत्व को समझा है और स्पष्ट रूप में उसका उल्लेख भी किया है। इस प्रकार प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बिम्ब की धारणा को सर्वत्र प्रश्रय मिला है।

पाश्चात्य दृष्टि

हिन्दी साहित्य के पाठक होने के कारण हमारा विशेष प्रयोजन हिन्दी व

[1] धूप के धान : गिरिजाकुमार माथुर, भूमिका पृ॰
[2] वही, पृ॰ ११

संस्कृत साहित्य के समीक्षकों से ही है परन्तु यहां संक्षेप में एक विहंग दृष्टि से पाश्चात्य आलोचना का दर्शन कर लेना भी समीचीन होगा। क्योंकि वहां कल्पना और बिम्ब विधान की आवश्यकता को स्पष्टतः और बहुत पहले से स्वीकार किया है। काव्य के प्रधान तत्वों के विषय में हडसन ने काव्य के चार तत्वों की ओर संकेत किया है।[१] ये चार तत्व हैं

१ विचार Intellectual Element thought

२ भाव Emotional Element feeling

३ कल्पना Element of Imagination

४ अभिव्यक्ति Technical Element or the Element of composition

काव्य में यही तत्व विशेष महत्व के अधिकारी हैं। इनमें भाव और विचार वस्तुतः एक ही सत्ता के दो स्वरूप हैं। उनमें मूलभूत अन्तर नहीं है केवल रूपगत अन्तर है। अतः इन चार तत्वों को तीन विभागों के अन्तर्गत सरलता से रखा जा सकता है। वे तीन विभाग हैं—भाव (विचार) भाषा और कल्पना। यहां हम इन्हीं तीन तत्वों के समर्थन कर्ता विद्वानों की मान्यताओं का उल्लेख करेंगे। और उनमें कल्पना व बिम्ब की मान्यता को समझने का प्रयत्न करेंगे।

१ भाव

अंग्रेजी के अधिकांश आलोचक भाव की अनिवार्य सत्ता को स्वीकार करते हैं। होमर और वर्जिल से लेकर आधुनिक कवि तक काव्य में भाव सत्ता का प्रयोग और समर्थन दोनों करते हैं। सभी रोमांटिक और उनके परवर्ती कवियों ने इसका स्पष्ट उल्लेख किया है और काव्य में भाव की सत्ता को विशिष्ट स्थान दिया है।

वर्डस्वर्थ ने कविता की परिभाषा देते हुए कहा है प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न ही कविता का रूप-धारण करती है और प्रशांत क्षणों में स्मृत मनोवेगों से ही इसकी उत्पत्ति होती है।[२] यहां कविता को प्रबल वेगवती भावनाओं की स्वाभाविक उमड़न की अभिव्यक्ति कह कर भाव सत्ता पर कवि ने विशेष बल दिया है। आलोचक मिल ने कविता क्या है ? के प्रश्न के उत्तर में कहा कि कविता विचार और शब्द हैं जिनमें भावना स्वाभाविक रूप में सन्निहित रहती है।[३] आलोचक

१ Introduction to the Study of Literature—Hudson. p 15

२ Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, It takes its origin from emotions recollected in tranquility
—Wordsworth

३ What is poetry but the thought and words in which emotion spontaneously embodies itself?
—Mill quoted by Hudson in Introduction the Study of Literature, p. 82,

हैज़लिट ने भी काव्य में भाव सत्ता को विशेष महत्व दिया। उसने कहा कि कविता की भाषा कल्पना और भावना की भाषा होती है।[1] फ़ास्साइस ने भी गेय पर निबन्ध लिखते हुए इसी तत्व पर बल दिया था। वह कहता है कि प्रत्येक कविता अविभाज्य ऐक्य की दृष्टि उपस्थित करती है। उसके अर्थ का विकास विचारों और भावों की उर्वरा भूमि से स्वाभाविक रूप से इस प्रकार स्थिर हो जाता है जैसे अशोक का हजार वर्षीय वृक्ष जिसमें न कोई शाखा और न कोई पत्ती टूटी हुई होती है।[2] इन्हीं आलोचकों की भाँति रस्किन ने भी भाव सत्ता पर विशेष बल दिया है उसने कहा कि काव्य रचना कल्पना के द्वारा उदात्त भावों के उदात्त क्षेत्र की ओर संकेत करती है।[3] रस्किन के इस कथन में कल्पना और उदात्त भावों की ओर विशेष बल दिया गया है। उदात्त भावों में वह श्रद्धा प्रेम, प्रशंसा आनन्द आदि की गणना करता है। इस प्रकार काव्य में भावसत्ता का वह पूर्ण समर्थक है। सभी रोमांटिकों की भावसत्ता के प्रति विशेष रुचि है। कवि शैली भी भाव को काव्य का एक अनिवार्य अंग मानता है। उसने दुखात्मक भाव को मधुर काव्य मान कर काव्य में भाव की अनिवार्यता को स्वीकार किया है।[4] वस्तुतः काव्य में भाव की स्थिति है भी अनिवार्य। कवि मिल्टन ने बहुत पहले ही कविता का स्वरूप बताते हुए उसे साधारण संवेदनात्मक और भावात्मक बताया था।[5] कवियों और आलोचकों ने सदैव इन तत्वों को प्रधानता दी। आलोचक कोर्टहोप ने कविता की परिभाषा करते हुए कहा था कि कविता कल्पना सम्पन्न भाव और विचारों की छन्दबद्ध भाषा में अभिव्यक्ति है।[6] आलोचक थियोडर वाट्स डटन ने भी कविता में भाषा भाव और संगीतात्मकता पर बल दिया है। उसने कविता को मानव मस्तिष्क की मूर्त और कलात्मक अभिव्यक्ति को भावात्मक और लयपूर्ण भाषा में हुआ माना।[7] बैबस लैहट आदि आलोचकों ने भी कविता में भाव और कल्पना पर विशेष बल दिया है। कैंबल ने

---

१ Poetry is the language of the imagination and the passion.
—Hazlitt, quoted by Hudson, An Intro p. 83

२ [illegible]

३ Poetry is the suggestion by the imagination of noble ground for noble creation. —Ruskin quoted by Hudson, p 84

४ We look before and after pind for what is naught... Our sweetest songs are those that tell of the saddest thought. —Shelley

५ Poetry should simple, sensuous and passionate. —Milton.

६ Poetry is the art of producing pleasure by the just expression of imaginative thought and feeling in metrical language. —Courthope, quoted by Hudson, Ibid p 84

७ Encyclopaedia Brittanica, Volume 18, p. 106

कहा कि कविता प्रबल भावनाओं और उन्नत कल्पना का प्रकाशन है।[1] लीहंट ने भी कहा कि कविता सत्य और सौन्दर्य के लिये आवेग का प्रकाशन है। वह अपने विचार कल्पना और विकल्पना से सन्निहित करके या उनके द्वारा स्पष्ट करती है। और भिन्नत्व में एकत्व के सिद्धान्त पर भाषा का निर्माण करती है।[2] यहाँ भी काव्य के भाव और विचार तत्व पर बल दिया गया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अंग्रेजी के प्रायः सभी कवि और आलोचकों ने भाव अथवा विचार को काव्य में प्रमुख स्थान दिया। भाव ही उनके मत से वह तत्व है जिसके आधार पर काव्य का निर्माण होता है। परन्तु इसमें उनकी दृष्टि प्रायः एकांगी नहीं रही है। उन्होंने भाव तत्व पर बल देने के साथ साथ काव्य के अन्य तत्वों पर भी दृष्टिपात किया है। कल्पना और अभिव्यक्ति को वर्डस्वर्थ शैली ह्यूम रस्किन आदि ने स्पष्टतः स्वीकार किया है। यद्यपि उनका भाव के लिए विशेष आग्रह है परन्तु वे सिद्धान्तवादी नहीं हैं वरन् समन्वयवादी हैं। उन्होंने अन्य तत्वों का भी बराबर उल्लेख किया है। कल्पना की ओर इनकी प्रमुख दृष्टि रही है। काव्य में कल्पना और मूर्तीकरण को किसी न किसी रूप में सभी ने मान्यता प्रदान की है। ह्यूम जैसे विद्वानों ने तो काव्य की भाषा को स्पष्टतः मूर्त (कंक्रीट) भाषा कहा है। अन्य विद्वानों ने भी बिम्ब विधान को स्वीकार किया है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अंग्रेजी समालोचकों में भावपक्ष के समर्थक आलोचकों ने भी कल्पना की अपेक्षा नहीं है। वह भाव का कल्पना के द्वारा ही काव्य में अभिव्यक्त करने का समर्थन करते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि भाव पक्ष का आग्रह करने पर भी बिम्ब विधान से पाश्चात्य समीक्षक पूर्णतः परिचित थे। बिम्ब की आवश्यकता को वह पर्याप्त समझते थे। इसी कारण काव्य में बिम्ब विधान मूर्तता अथवा संवेदनात्मकता की ओर उनकी दृष्टि बराबर रही है। भाव के साथ साथ बिम्ब विधान का महत्व सभी आलोचकों और कवियों को मान्य रहा है। कवि दृष्टि से विचार करने के कारण कल्पना से वह बहुत पूर्व ही परिचित हो चुके थे अतः उसके प्रमुख व्यापार मूर्ति निर्माण की अनिवार्यता और आवश्यकता को वह खूब समझ सके थे। इसी कारण भाव के साथ कल्पना और बिम्ब विधान पर वे सदैव बल देते रहे हैं। स्पष्ट है कि अंग्रेजी समीक्षा में भाव को प्रधानता देने वाले विद्वानों में बिम्ब विधान का पर्याप्त आदर था।

---

1 Poetry is a vent for overcharged feeling or a full imagination. —Keble, quoted by Hudson Introduction to the Study of Literature, p 84

2 Poetry is the utterence of a passion for truth, beauty and power embodying and illustrating its conceptions by imagination and fancy and modulating its language on the principle of variety in unity —Leigh Hunt. Ibid, p. 83.

भाषा

भाव के अतिरिक्त अंग्रेजी विद्वानों ने भाषा अर्थात् अभिव्यक्ति पर विशेष बल दिया है। अभिव्यक्ति पर बल देने वालों में सर्वप्रथम और सर्वाधिक उल्लेखनीय नाम है क्रोचे का। क्रोचे काव्य में अभिव्यक्ति को ही एकमात्र तत्व मानता है। परन्तु उनको हम केवल भाषा का समर्थक नहीं कह सकते। अभिव्यक्ति से उनका अर्थ भाव और भाव के अभिव्यक्त स्वरूप दोनों से है। इस कारण यद्यपि वह भाषा अर्थात् अभिव्यक्ति को काव्य में विशेष महत्व देता है परन्तु भाव की अपेक्षा भी वह नहीं करता। उसका आग्रह केवल भाव और भाषा को एक मानने के विषय में है। उनकी स्थिति उनकी दृष्टि में एक है अलग अलग नहीं। व्यापक रूप में वह भाव और भाषा दोनों ही तत्वों पर बल देता है यह स्वीकार किया जा सकता है। अतः अभिव्यंजनावादी होने पर भी वह भाषावादी नहीं है। भाव की अनिवार्यता उसे भी मान्य है।

काव्य के बाह्य पक्ष भाषा के संगीतात्मक होने की आवश्यकता भी कई विद्वानों ने अनुभव की है। संगीतात्मक और लयपूर्ण भाषा में अभिव्यक्त भावनाओं को ही वह कविता की संज्ञा दे सके हैं। कारलाइल ने कहा था कि कविता को हम संगीतात्मक विचार कह सकते हैं।[1] ड्राइडन ने भी इसी से मिलता-जुलता विचार प्रस्तुत किये हैं।[2] प्रसिद्ध विद्वान एडगर ऐलेन पो भी कविता की संगीतात्मकता पर विशेष बल देते हैं। उन्होंने कहा कि कविता सौन्दर्य का लयपूर्ण सर्जन है।[3] इस प्रकार स्पष्ट है कि इनकी दृष्टि काव्य के आंतरिक तत्व भाव से हट कर काव्य के बाह्य तत्व भाषा की लयपूर्णता और संगीतात्मकता पर आई है। संगीत और लय को उन्होंने काव्य का अनिवार्य अंग माना है। परन्तु ये आलोचक भी एकांगी नहीं हैं। वह केवल लयपूर्ण भाषा को काव्य नहीं कहते वरन् कविता में लयपूर्ण भाषा को एक अनिवार्यता मानते हैं। उन्होंने भाव आदि तत्त्वों पर भी बल दिया है। इस प्रकार यद्यपि इनका विशेष आग्रह लय और संगीतात्मकता के लिए है पर काव्य के अन्य तत्त्वों की उपेक्षा भी इनमें नहीं है। वे भाव और कल्पना का भी बराबर उल्लेख करते रहे हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि अंग्रेजी आलोचना में भाषा पर ही केवल बल देने वाला कोई मत नहीं है। प्रायः सामंजस्य पूर्ण दृष्टि से ही काव्य को परखने का प्रयत्न किया गया है। इसलिए काव्य में भाषा की संगीतात्मकता आदि पर बल देते हुए भी वह केवल उसकी अनिवार्यता स्वीकार नहीं करते वरन् भाव और कल्पना का भी महत्व स्वीकार करते हैं। यद्यपि इन विचारों में बिम्ब विधान का कोई स्पष्ट संकेत नहीं मिलता परन्तु उनकी समन्वयपूर्ण दृष्टि में भाव और कल्पना के साथ साथ बिम्ब विधान का स्थान भी अवश्य होगा ऐसा अनुमान सहज ही किया जा सकता है।

1 Poetry we will call musical thought. —Ibid. p. 83.
2 Poetry is an articulate music. —Dryden.
3 Poetry is the rhythmic creation of beauty —Edgar Allan Poe, quoted by Hudson, Ibid., p. 83—84

कल्पना

काव्य का तृतीय और अंतिम तत्व कल्पना है। कल्पना को पाश्चात्य साहित्यकारों ने विशेष महत्व दिया है। काव्य में कल्पना को वह अनिवार्य तत्व घोषित करते हैं। कवि शेली ने कल्पना पर बल देते हुए कहा था कि कविता कल्पना की अभिव्यक्ति है।[1] ड्राइडन ने भी कल्पना पर बल दिया है। उसने कल्पना को एसी शक्ति माना जो एक तेज शिकारी कुत्ते की तरह स्मृति-क्षेत्र पर ऐसे भावों की खोज में दौड़ मारती है जिनके द्वारा वह अनुभूतियों को अच्छी तरह प्रदर्शित कर सके।[2] हैजलिट भी काव्य में कल्पना पर विशेष बल देता है। उसने कविता की परिभाषा करते हुए उसे कल्पना और भावात्मक आवेग की अभिव्यक्ति माना था।[3] आलोचक जानसन ने कविता में भाव के साथ कल्पना को भी महत्व दिया उसने कहा कविता कल्पना की सहायता से तर्क (विचार) के द्वारा आनन्द और सत्य का विधान करती है।[4] आलोचक हडसन ने भी कल्पना पर बल दिया। उसने कहा कि कविता चेष्टा और कल्पना के द्वारा जीवन की अभिव्यक्ति है।[5] मैकाले का आग्रह भी कल्पना के लिए बहुत अधिक है। उसने कल्पना को समग्र रूप में ही महत्व नहीं दिया वरन् पृथक रूप से बिम्ब-विधान पर विशेष बल दिया। उसने कविता को बिम्ब विधान ही माना। उसने कहा कि कविता से हमारा अर्थ शब्दों को इस रूप में नियोजित करना है कि हमारी कल्पना में एक भ्रम की सृष्टि हो सके। शब्दों के द्वारा वही काम करने का है जो चित्रकार रंगों द्वारा करता है।[6] इस प्रकार उसने बिम्ब विधान या मूर्ति विधान पर विशेष बल दिया है। आधुनिक सभी आलोचक बिम्ब विधान के विशेष पक्ष पाती हैं उनका। बिम्ब-विधान विषयक विशेष आग्रह का अध्ययन अगले अध्याय में किया जायगा। यहां यही दिखाना पर्याप्त होगा कि अंग्रेजी आलोचना में भाव के साथ साथ कल्पना तत्व को पर्याप्त प्रधानता दी गई है वरन् किन्हीं आलोचकों ने भी उसे ही काव्य का प्रधान तत्व स्वीकार किया है।

बिम्ब की प्रधानता के आधार पर अंग्रेजी में बिम्बवाद (इमेजिज्म) नाम से

---

१ Poetry in a general sense may be defined as the expression of imagination. —Shelley Ibid, p 83

२ वाटसन पाश्चात्य साहित्यालोचन लीलाधर गुप्त द्वारा उद्धृत पृ १०

३ Poetry is the language of imagination and passion —Hazlitt, quoted by Hudson, p 83

४ Poetry is the art of uniting pleasure with truth by calling imagination to the help of reason. Johnson, Ibid p 82

५ Poetry is the interpretation of life through imagination and action. —Hudson.

६ By poetry we mean the art of employing words in such a manner as to produce an illusion on imagination, the art of doing by means of words what painters does by means of colours. —Macaulay quoted by Hudson, p. 83

एक मत विशेष का प्रतिपादन भी हुआ है। बिम्बवाद का पिता मूर्तिकार ह्यूम और नेता एज़रा पाउंड था। दोनों ही बिम्ब के विशेष समर्थक थे। एज़रा पाउंड ने कहा था कि जीवन में ग्रमकों रचनाएं करने की अपेक्षा केवल एक बिम्ब का निर्माण करना कहीं अधिक उत्तम है।[१] परन्तु बिम्बवाद और बिम्ब एक ही नहीं है। बिम्बवाद एक आन्दोलन है जो कि बिम्ब को विशेष महत्व देता है पर लयात्मकता आदि अन्य अनेक तत्वों पर भी उसका आग्रह रहा है Poetry a magazine of verse में पाउंड ने बिम्बवाद के मुख्य सिद्धान्त प्रकाशित कराये थे जो इस प्रकार हैं

१—वस्तु का आत्मगत या वस्तुगत प्रत्यक्ष कथन करना।

२—निरर्थक शब्दों का प्रयोग न करना।

३—लय का छंदबद्धता के अनुसार नहीं वरन् संगीतात्मकता के अनुसार निर्माण करना।

४—बिम्बवादियों के दल को दृढ़ बनाना।[२]

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्बवाद यद्यपि बिम्ब विधान पर विशेष बल देता है। परन्तु बिम्ब केवल वहीं तक सीमित नहीं है। बिम्ब को किसी आन्दोलन की अपेक्षा नहीं है वरन् वह कविता का सहज स्वाभाविक तत्व है जिसे प्रत्येक युग में प्रत्येक कवि ने स्वीकार किया है।

समष्टि में इस अध्ययन से स्पष्ट है कि भारतीय और पाश्चात्य आलोचना में काव्य के विभिन्न तत्वों को समर्थन प्राप्त हुआ है। परन्तु बिम्ब काव्य का अनिवार्य तत्व है जो देश काल की सीमाओं से परे है। इसी कारण श्रेष्ठ साहित्य चाहे वह किसी काल का हो या किसी जाति का हो रसवादी हो भाववादी हो, या कल्पनावादी बिम्ब का पोषक अवश्य है। बिम्ब श्रेष्ठ काव्य का सबसे बड़ा तत्व है। इस आधार पर यह सहज ही कहा जा सकता है कि भारतीय और पाश्चात्य आलोचनाओं में यद्यपि पर्याप्त अंतर है परन्तु बिम्ब विधान को दोनों ने, एक रूप में स्वीकार अवश्य किया है। भारतीय आलोचना शास्त्र ने उस प्रच्छन्न रूप से स्वीकारा है जिससे उसकी अनिवार्य सम्भावना का अनुमान लगाया जा सकता है जबकि पाश्चात्य आलोचना ने उसे स्पष्ट स्वीकार किया है। जो भी हो बिम्ब काव्य का प्रधान तत्व अवश्य रहा है। वस्तुतः यही एक ऐसा तत्व है जिसे देश काल और जाति की सीमाओं से मुक्त काव्य का एक मात्र प्राण तत्व कहा जा सकता है

---

१ Make it new —Ezra Pound, quoted by Lewis Poetic Image. 25.

२ Imagism and Imagists. —Hughes p. 26—27

अध्याय २

बिम्ब

बिम्ब बड़ा व्यापक शब्द है। समस्त मानव जीवन और उससे सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु इसमें आ सकती है। पृथ्वी तल के समस्त उपादान और समस्त क्रिया व्यापार अपने आप में सभी एक बिंब हैं। इसलिये कवि ब्लेक ने कहा था कि वह प्रत्येक वस्तु जिस पर विश्वास किया जाता है सत्य का बिम्ब है।[1] साधारणतः बिंब शब्द का प्रयोग छाया प्रतिच्छाया अनुकृति आदि के रूप में होता है। अंग्रेजी कोष में इस शब्द का अर्थ इसी रूप में दिया है। बिम्ब को किसी वस्तु की छाया अनुकृति सादृश्यता अथवा समानता[2] माना गया है। विश्वकोष में भी इसको प्रतिच्छाया के रूप में ग्रहण किया गया है। व्यक्ति या वस्तु के प्रतिबिम्ब को यहां 'बिम्ब' ही माना गया और प्रतिपादित किया गया कि साहित्य एवं अन्य कलाओं में इसका अर्थ है किसी सजीव या निर्जीव वस्तु की प्रतिच्छाया या उसके समान[3]। यद्यपि बिंब शब्द से हमारे *साहित्यशास्त्रियों ने छाया प्रतिच्छाया का आशय ही लिया है वह वास्तविक वस्तु नहीं* है परन्तु उससे भिन्न होते हुए भी अयथार्थ होते हुये भी उसके अनुरूप ही होती है। अनुकृति होते हुये भी वह सत्य का आभास दिलाती है।

बिंब शब्द का बड़ा व्यापक प्रयोग होता है। मनोविज्ञान दर्शन और साहित्य के क्षेत्रों में इसका विशेष महत्व है और इस प्रकार इस पर पर्याप्त विचार-विमर्श भी हुआ है।

मनोविज्ञान में बिंब शब्द से 'मानसिक पुनर्निर्माण' (mental re-creation) का अर्थ लिया जाता है। विश्वकोष में मनोवैज्ञानिक बिंब को इन शब्दों के द्वारा स्पष्ट किया गया है बिंब चेतन स्मृतियां हैं जो विचारों की मौलिक उत्तेजना के अभाव में उस विचार को सम्पूर्ण रूप में या आंशिक रूप में प्रस्तुत करती हैं।[4] यहां बिंब में

---

१ Every thing possible to be believed is an image of truth.
—*W Blake quoted by Lewis, Poetic Image, p. 27*

२ New English Dictionary

३ Images are representation or likeness of an animate and inanimate object.—Encyclopaedia Britanica, Vol. 14 page 328.

४ ... a useful psychological definition is that of C.W Bray Image are 'conscious memories which reproduce a previous perception, in whole or in part in the absence of the original stimulus to the perception. —Ency Brit. Vol. 12 page 103.

उत्तेजना का प्रतिविधान करने या उसको पुनः अनुभूत करा देने के तत्त्व पर बल दिया गया है। अन्यत्र अंक १४ में विश्वकोष में ही मानसिक पुनर्निर्माण के तथ्य को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि यह बिंब निर्माण पूर्णतः मानसिक व्यापार है और बिम्ब मस्तिष्क की आँखों से देखी जाने वाली वस्तु है[1]। उसका सम्बन्ध व्यक्ति की प्रत्यक्ष इन्द्रियों से नहीं वरन् उसकी कल्पना शक्ति से होता है। इसी से मनोवैज्ञानिक फरलांग (Furlong) ने कहा कि जन्मान्ध व्यक्ति भी बिंब विधान कर सकते हैं।[2] यह पूर्णतः एक मनःव्यापार अथवा मस्तिष्क की प्रक्रिया है, इंद्रियों से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। अन्तर केवल इतना रहता है कि जन्मान्ध व्यक्ति रूप की स्मृतियों के अभाव के कारण साधारण मनुष्य की अपेक्षा बिम्ब में समग्रता कम ला पाता है, उसका बिंब निर्माण विशृंखलित होता है।

मनोविज्ञान में बिंब का प्रयोग कई रूपों में किया जाता है। उसका सर्वप्रथम प्रयोग पश्चात् प्रतिमा (after image) के रूप में होता है। पश्चात् प्रतिमा को हम पश्च-संवेदना (after sensation) कह सकते हैं। प्रायः किसी देखी सुनी या अनुभूत की हुई वस्तु से मानसिक संवेदना का जन्म होता है। यह उत्तेजना प्रत्यक्ष वस्तु के दर्शन या अनुभव से विचारों और भावों को जन्म देती है। परन्तु उस प्रत्यक्ष वस्तु के न रहने पर हम उसके फौरन बाद भी उस उत्तेजना से विचारों एवं भावों का ग्रहण करते रहते हैं। प्रत्यक्ष का आधार न होने पर भी मानसिक संवेदना बनी रहती है। तब ऐसी स्थिति में हम प्रत्यक्ष की स्थानापन्न जिस अप्रत्यक्ष अनुभूति या वस्तु से उत्तेजना ग्रहण करते हैं वह पश्चात् प्रतिमा कहलाती है। यह मानस प्रत्यक्ष होता है जो हम आँखों को बन्द या खुली रखकर भी कर सकते हैं। (आँखों को खुली रखने में वस्तुतः हम किसी वस्तु को देखते हुए भी नहीं देखते। उस समय हम एक नया फोकस तैयार करते हैं जो वस्तु की सतह से कहीं अलग हमारी अपनी कल्पना में होता है) पश्चात् प्रतिमा में हमारी इच्छा शक्ति का महत्त्व बहुत कम होता है। उसकी उपस्थिति या अनुपस्थिति के लिए हमें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता है न ही उस पर हमारा

---

1. The strictly psychological use of the term image is for a purely mental idea, which is taken as being observed by the eye of mind —Ency Brit., Vol 14 p 378.
2. His (blind man's) experience will have the qualities of constancy and coherence, and presumably his mind will work rationally and non rationally in a way similar to that of sighted man. —Imagination—E.T Furlong p 74
3. We can still say that the visual after image is located or localizable in the space of physical objects. It shares also within the tactual after image the property that its enterence and exit depend little on our volition —Ibid., p 76.

किसी प्रकार का प्रतिकार ही रहता है। परन्तु इसकी उत्पत्ति अथवा सर्जन के लिये भौतिक वातावरण (Physical environments) की आवश्यकता अनिवार्य है प्रतिमा का दूसरा रूप काल्पनिक प्रतिमा (imagination image) या प्राथमिक स्मृत बिम्ब (Primary memory image) है। जब किसी प्रत्यक्ष वस्तु के अभाव में जबकि उसकी प्रत्य-संवेदना भी नहीं होती हम अपनी इच्छा शक्ति से किसी पूर्वानुभूत को अपनी कल्पना से प्रत्यक्ष कर लेते हैं। तब यह काल्पनिक रूपविधान काल्पनिक बिम्ब कहा जाता है। यह मानस प्रत्यक्ष हमारी अपनी इच्छा पर निर्भर होता है इसमें व्यवधान के पश्चात् भी वस्तु का मानस प्रत्यक्ष हो सकता है। इसमें भौतिक वातावरण की आवश्यकता भी नहीं होती। इसके लिये केवल तीव्र कल्पनाशक्ति की आवश्यकता होती है। मनोविज्ञान में प्रयुक्त बिम्ब के इन रूपों से स्पष्ट हो जाता है कि मनोविज्ञान में बिम्ब का अर्थ है वास्तविक वस्तु के अभाव में उसका मानस प्रत्यक्ष[१]।

परन्तु साहित्यिक बिम्ब और मनोवैज्ञानिक बिम्ब में पर्याप्त अन्तर है ये दोनों समानार्थी नहीं हैं। मनोवैज्ञानिक बिम्ब जहाँ वस्तु की मात्र प्रतिकृति या प्रतिच्छाया तक सीमित है वहाँ साहित्यिक बिंब भावसत्ता का पोषक है। वह बिंब एक मृत,निर्जीव और संवेदनारहित वस्तु है जबकि वह भाव या विचार को इस रूप में प्रस्तुत करता है कि वह मूल वस्तु की निर्जीव छाया न प्रतीत होकर सजीव और सप्राण होते हैं मूल वस्तु के अनुरूप होने पर भी उनकी पृथक सत्ता पृथक अस्तित्व होता है। मनोवैज्ञानिक बिंब का मानवीय भावनाओं के साथ सम्बन्ध नहीं होता जबकि साहित्यिक बिंब जीवन और जगत् के मानवीय सम्बन्धों का प्रकाशन करते है जीवन के संदर्भ में ही उनको प्रस्तुत किया जाता है। केवल विचारों (Perceptual experiences) के पुनर्निर्माण को महत्व देते हैं जबकि इसमें भावनात्मक सर्जन का स्थान विशिष्ट है। साहित्यिक बिम्ब के तीन अनिवार्य तत्वों—अनुभूति भावना आवेग—का भी मनोवैज्ञानिक पुनर्निर्माण में कोई स्थान नहीं मिलता। स्पष्ट है कि इन दोनों में स्पष्ट और मूलभूत अन्तर है।

---

१ Such a representation of the object by an effort of the will, when the stimuli ceased to act on the senses and when the excitations too no longer exit, is called a primary memory image.
A critical study of Shelley's imagery and revolution of his poetic arts. (Original thesis)—Dr J.B. Singh p.3

• It may be noted that the image in this sense refers to the revival, however partial or imperfect of a perceptual experience. —Ibid, p. 3

अध्यात्म शास्त्र में भी बिम्ब पर विचार किया जाता है। उनकी मान्यता है भाषा के अन्तर्गत बिम्ब आध्यात्मिक विचारों की जितनी स्पष्ट अभिव्यक्ति कर सकता है उतना भाषा का कोई अन्य माध्यम नहीं कर सकता। आध्यात्मिक विचारों को सहज ग्राह्य बना देने के लिए बिम्ब का माध्यम सदा आवश्यक है। अध्यात्मशास्त्री चेस्टरटन ने बताया कि हम अपने वार्तालापों में शाब्दिक भाषा से भी अधिक कई अन्य भाषाओं का प्रयोग करते हैं सामान्यतः शब्दों से अधिक हम रूप रंग आदि से ज्ञान प्राप्त करते हैं।[1] इस प्रकार बिम्ब आध्यात्मिक विचारों के विनिमय का एक बड़ा साधन प्रतीत होता है।[2] इन बिम्बों में मानव जीवन के सभी तथ्य सभी चरित्र सभी भावनाएँ आ जाती हैं। मानव जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक वस्तु इनसे अभिव्यक्त हो जाती है। गूढ़ विचारों को अभिव्यक्ति देने के कारण अध्यात्मशास्त्री मैसकॉल ने बताया कि बाइबिल जो अध्यात्म से पूर्णतः ओतप्रोत है सभी आधुनिक मतों एवं सम्प्रदायों की जननी है और स्वयं ईश्वर का प्रकाशित स्वरूप है अपने आध्यात्मिक विचारों को स्पष्ट शब्दों में बहुत ही कम रखती है उसकी भावाभिव्यक्ति का साधन बिम्ब ही है।[3] इस प्रकार अपनी अभिव्यक्ति में बाइबिल किसी अध्यात्मशास्त्री का उद्गार न होकर कवि का कथन है। परमात्मा की भाषा को सभी दार्शनिकों अध्यात्मशास्त्रियों ने रूपकों अथवा बिम्बों की भाषा बताया है। कुरान में कहा गया है 'परमात्मा जिसे चाहता है अपनी ज्योति की ओर अग्रसर करता है। अल्लाह सब कुछ का जानने वाला है और मनुष्यों से वह रूपकों की भाषा में बोलता है।'[4]

स्पष्ट है कि अध्यात्मशास्त्रियों का बिम्ब का विवेचन साहित्यिक बिम्ब के बहुत निकट है। उन्होंने इसे भाषा और भाव या विचार के सम्बन्ध में सूक्ष्म रूप से

१ ... the moods or the facts of human spirit were conveyed by something other than speech, by shapes or colours or by some such things. As a matter of fact of course there are a great many other languages besides the verbal.—G.K. Chesterton quoted by E.L. Mascall. —Words and Images, p. 110

२ ... to point out that one of the greatest methods of communication is by the use of artistic images. —Words and Images p. 110

३ ... that the Bible, which is universally accepted by Christians as embodying the revolution of God and as being source from which Christian theology flows, makes very little use indeed of the language of metaphysicians. Its typical instrument of communication is not the concept but the Image. Ibid., p. 109

४ सूरा २४ : ३५ कुरान

सम्भव है जिसको साहित्य में भी स्वीकार किया जा सकता है। बिम्ब की समस्या यहाँ भाषा की समस्या के रूप में प्रस्तुत हुई है और भाषा के सदर्भ—ज्ञान और उसकी प्रेषणीयता—के अन्तर्गत उसका विचार किया गया है। उनका मत है कि अतीन्द्रिय रहस्यात्मकता और ब्रह्म का प्रकाशन बिम्ब द्वारा सम्भव हो सकता है। अध्यात्म में रहस्य का स्थान प्रधान है और रहस्य के स्पष्टीकरण करने वाले माध्यमों में बिम्ब का स्थान प्रमुख है। अध्यात्मवादी बिम्ब को स्वयं ईश्वर के मनुष्यों से बोलने का एक माध्यम मानते हैं। भारतीय धर्म का अवतारवाद भी बिम्ब की अनिवार्यता को प्रकट करता है। धर्मशास्त्रियों ने अनुभव किया था कि धर्म और 'ईश्वर के गहन गंभीर रहस्य मानव की सहज बुद्धि के लिए अगम्य हैं। उनके लिए मूर्त माध्यम आवश्यक है जिससे जनजीवन उन रहस्यों को ग्रहण कर सके। स्वयं अपनी रहस्यात्मक अनुभूति को उन्होंने शब्दों से नहीं वरन् बिम्बों के माध्यम से प्रकट किया। राम-सीता, कृष्ण-राधा उनके अमूर्त भावों के लिए चुने गये बिम्ब हैं। भक्ति का सगुण मार्ग एक प्रकार से मानव की बिम्बों द्वारा समझाने और समझने की प्रवृत्ति का द्योतक है। महाकवि सूर ने इसी से कहा था कि जीवन के निराकार रहस्य ईश्वर के निर्गुण स्वरूप को समझने में मन भ्रमित हो जाता है उसके लिए किसी मूर्त आधार की आवश्यकता है

रूप रेख गुन जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै।
सब बिधि अगम बिचारहिं तातैं सूर सगुन लीला पद गावै॥

और 'सूर के कृष्ण' उनके अमूर्त विचारों अरूप अनुभूतियों के मूर्त और रूपयुक्त बिम्ब थे। इस प्रकार यद्यपि ईश्वर और गूढ़ रहस्यों का आधार लेकर अध्यात्म तथा धर्म के क्षेत्र में इसे अधिक रहस्यपूर्ण बना दिया गया है फिर भी उनकी मान्यताएँ साहित्यिक बिम्ब के बहुत निकट हैं।

साहित्य के अन्तर्गत बिम्ब का बड़ा व्यापक महत्त्व है। भावों और विचारों का जितना सफल और सहज प्रकाशन बिम्बों द्वारा हो सकता है उतना अन्य किसी साहित्यिक विधि से नहीं हो सकता। पाश्चात्य समीक्षा में काव्य पर विचार करते हुए कल्पना और उसके बिम्ब निर्माण के कार्य पर पर्याप्त बल दिया गया है और बड़े विस्तृत रूप में इसकी व्याख्या की गई है परन्तु भारतीय साहित्यशास्त्र में ऐसा कोई विवेचन नहीं मिलता। उन्होंने कल्पना को भी भावयित्री और कारयित्री प्रतिभाओं

१ See Words and Images Ch. V

२ The supernatural mystry the divinely provided medium, the evolution of grace, the appropriation of divine life in contemplation all these are brought together in a profound and coherent synthesis and in this the image as God's -chosen means of speaking the man, occupies the central place. —Words and Images —E.L. Mascall, p. 120

में समाहित कर लिया है। इसका कारण है कि पाश्चात्य साहित्य में काव्य में कवि को महत्व दिया गया है और कवि की दृष्टि से काव्य को परखा गया है अर्थात् इस बात पर पहले विचार-विमर्श हुआ कि कवि कविता का निर्माण क्या और कैसे करता है? स्वत ही यहाँ प्रेरणा (इन्सपिरेशन) अनुभूति (फीलिंग) भावना (इमोशन) कल्पना (इमैजिनेशन) पर पहले विचार हुआ। परन्तु भारतीय विद्वानों ने काव्य की समस्या को बिलकुल विपरीत छोर से पकड़ा। उन्होंने पहले यह विचार किया कि पाठक काव्य क्यों पढ़ता है? फलत पहले रस-सिद्धान्त का आविर्भाव हुआ जिसमें कवि को अप्रधान बनाकर पाठक की प्रधानता को स्वीकार किया गया। इसी कारण हमारे शास्त्रों में कवि की कल्पना का विवेचन कहीं उपलब्ध नहीं होता। परन्तु बिम्ब शास्त्र का नहीं वरन् काव्य का एक शाश्वत तत्त्व है जो सदैव विद्यमान रहता है। वह पाश्चात्य काव्य का भी उतना ही महान् सत्य है जितना भारतीय काव्य का। यहाँ इस चर्चा करने का तात्पर्य सिर्फ यह बताना था कि बिम्ब के महत्व व उसके रूप विषयक विचारों को जानने के लिए हमें अनिवार्य रूप से पाश्चात्य विद्वानों का मुखापेक्षी होना पड़ेगा। कुछ आधुनिक भारतीय विद्वानों ने (अवश्य मुख्यत पाश्चात्य विचारों के प्रभाव से) बिम्ब पर विचार किया है यत्र तत्र उनका उल्लेख भी किया जायगा। अस्तु।

(२) महत्व

बिम्ब काव्य का मूलभूत तत्व है। महाकवि वर्ड्सवर्थ ने इसीलिए समस्त काव्य को मानव अथवा प्रकृति का बिम्ब कहा था।[1] अंग्रेजी विश्वकोष में कविता की परिभाषा देते हुए डंटन ने उसकी 'बिम्बमयी अभिव्यक्ति' पर विशेष बल दिया था। उसने कहा 'कविता मानव हृदय की बिम्बमयी और रागात्मक अभिव्यक्ति है जो भावनात्मक व लयपूर्ण भाषा में प्रकट होती है।'[2] काव्य भाषा की बिम्बमयता एक अनिवार्यता है। बिम्बों की मोहकता से कवि पाठक को सहज ही उस भावभूमि पर ले जाता है जहाँ वह कवि की अनुभूति का प्रत्यक्षीकरण करने में समर्थ होता है। क्योंकि बिम्बों का प्रयोग और बिम्बों का ग्रहण मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। विको ने कहा था 'कविता मानव मन की पहली प्रक्रिया है। मनुष्य स्वभावत व्यापक नियमों तक पहुँचने से पूर्व काल्पनिक बिम्बों का सृजन करता है। यथार्थ का स्पष्टत प्रतिबिम्बित करने से पूर्व वह अपनी उलझी और अस्पष्ट भावना से वस्तु को ग्रहण करता है। इससे पूर्व कि वह स्पष्ट उच्चारण कर वह कुछ अस्पष्ट ध्वनियाँ और

---

1. Poetry is the image of man and nature —Wordsworth —English Critical Essays. 19th Century p. 14
2. Absolute poetry is the concrete and artistic expression of the human mind in the emotional and rhythmical language —T W Dunton. —Ency Brit. Vol. 18, page 106.

संकेतों से काम लेता है। इससे पूर्व कि वह गद्य बोले निसर्गतः उससे कविता का सर्जन होता है। इससे पूर्व कि वह पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग करे, वह रूपकों (बिम्ब) का प्रयोग करता है और रूपकों का प्रयोग उसके लिए अत्यन्त स्वाभाविक होता है।[1] मनुष्य मात्र की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति काव्य की मूल और स्वतः उद्भूत प्रवृत्ति है। दिनकर जी का कथन उचित ही है "बिम्ब कविता का एक अत्यन्त आवश्यक गुण है प्रत्युत कहना चाहिए कि यह कविता का एकमात्र शाश्वत तत्त्व है जो उससे कभी नहीं छूटता।"[2] बिम्बभाषा के महत्त्व को सभी कवियों ने समझा है। बिम्बवाद के पिता ह्यूम ने कहा कि कविता रोजमर्रा की भाषा नहीं है बल्कि दृश्य अथवा मूर्त भाषा है जो व्यक्ति के सम्मुख अमूर्त वस्तु का मूर्त रूप प्रदर्शित करती है काव्य में बिम्बविधान मात्र अलंकरण के लिए नहीं होता वरन् वह कविता का प्राण है।[3] आधुनिक कवि पन्त ने भी बिम्बभाषा के महत्त्व को पल्लव की भूमिका में स्वीकार किया है। उन्होंने लिखा 'कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है, उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों सेब की तरह जिसके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर झलक पड़े जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आँखों के सामने चित्रित कर सकें जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों।"[4]

---

१ Poetry is the primary activity of the human mind. Man, before, he has arrived at the stage of forming universals, forms imaginary ideas. Before he reflects with a clear mind, he apprehends with faculties confused and disturbed before he can articulate, he sings before speaking in prose, he speaks in verse before using technical terms, he uses metaphors and the metaphorical use of words is as natural to him as that which we call 'natural' —Vico, quoted by C.D Lewis, Poetic Image, p. 26

२ चक्रवाल, भूमिका रामधारीसिंह दिनकर पृ ७४

३ Poetry is not a counter language, but a visual concrete one. It is a compromise for a language of intution which hand over sensation bodily It always endeavours to arrest you and to make you gilding through an abstract process. Visual meanings can only be transferred by the new bowl of metaphor prose is an old pot that lets them leak out Images in verse are not mere decoration, but the very essence of an intutive language, —Speculation—T.E. Hulme p 135

४ पल्लव, प्रवेश—सुमित्रानन्दन पन्त पृ १७

अनेक विद्वानों ने बिम्ब को महान काव्य का परिचायक माना। विद्वान दार्शनिक अरस्तू ने कहा था कि रूपकों पर अधिकार करना कवि का प्रथम कर्म है क्योंकि यही कवि प्रतिभा के परिचायक हैं।[1] आलोचक लुईस भी बिम्ब की शाश्वतता और महानता का समर्थक है। वह कहता है कि बिंब ही कवि का मूल प्रतिपाद्य है। समय के परिवर्तन के साथ-साथ काव्य के उपकरण भी परिवर्तित होते हैं एवं परम्परा विषय-वस्तु भावगत प्रवृत्तियाँ यहाँ तक कि काव्य का मूलभूत विषय प्रतिपादन तक परिवर्तित हो जाता है परन्तु बिंब सदैव विद्यमान रहता है उसमें कभी परिवर्तन नहीं आता।[2] बिम्ब की इस शाश्वतता और महानता को अन्य रूप में कवि ड्राइडन ने भी स्वीकार किया कि कविता की महानता और कविता का जीवन उसकी बिम्ब प्रस्तुत करने की शक्ति में निहित है।[3] हिन्दी के सुप्रसिद्ध आलोचक आचार्य शुक्ल ने भी बिम्बों के महत्त्व को समझा था। उन्होंने अप्रस्तुत रूप विधान के नाम से साहित्यगत कल्पनाबिम्बों का अध्ययन किया। कल्पित रूप विधान के अन्तर्गत बिम्बों के महत्त्व को उन्होंने इन शब्दों में प्रस्तुत किया 'कविता में कही बात चित्र रूप में हमारे सामने आनी चाहिए।'[4] तन्मयता की स्थिति उत्पन्न करने में वह बिम्ब का महत्त्व स्वीकार करते हैं। रसमीमांसा में वे कहते हैं 'काव्य की कोई उक्ति कान में पड़ते समय जब काव्य वस्तु के साथ वक्ता या बोधव्य पात्र की कोई मूर्त भावना खड़ी रहती है तभी पूरी तन्मयता प्राप्त होती है।[5]

आधुनिक आलोचकों और कवियों का बिम्ब के लिए विशेष आग्रह है। बिम्बवाद के प्रमुख कवि और नेता एजरा पाउंड अपने बिम्बों के लिए पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। उन्होंने बिम्ब निर्माण को कवि का उच्चतम कर्म स्वीकार किया है। अपनी पुस्तक मेक इट न्यू में उन्होंने बिम्बों की उच्चता के विषय में कहा कि कवि जीवन में अनेकों ग्रन्थों का निर्माण करने की अपेक्षा केवल एक (सफल) बिम्ब का निर्माण

---

१ The greatest thing by far is to have a command of metaphors. This alone can't be imparted by another it is the mark of genius,
—Aristoled quoted by Lewis, P Image, p 17

२ Yet the image is the constant in all poetry and every poem is itself an image. Trends come and go, diction alters metrical fashions change even the elemental subject matters may change but metaphore remains the life principle of poetry the poet's chief test glory —Poetic Image, C. Day Lewis page 17

३ Imagination is, in itself, the very height and life of poetry
—Dryden quoted by Lewis, —Poetic Image, page 18.

४ चिन्तामणि—रामचन्द्र शुक्ल (भाग १)

५ रसमीमांसा—रामचन्द्र शुक्ल

करना कहीं अधिक अच्छा है।[1] आलोचक हर्बर्ट रीड ने कहा कि हमें केवल बिम्ब के आधार पर किसी कवि का परीक्षण करना चाहिये।[2] उसके बिम्बों की उत्कृष्टता उसकी प्रतिभा की समृद्धि की परिचायक है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि काव्य में बिम्ब का महत्वपूर्ण स्थान है। समस्त विद्वान् आलोचकों ने बिम्ब को काव्य का मूलतत्व और कवि प्रतिभा का एकमात्र परिचायक माना।

(२) स्वरूप

बिम्ब की इस महत्ता व उपयोग के पश्चात् बिम्ब के स्वरूप के विषय में भी कुछ जान लेना उपयोगी होगा। पाश्चात्य विद्वानों ने बिंब के स्वरूप के विषय में पर्याप्त विचार किया है पर शाब्दिक अन्तरों के अतिरिक्त उनकी मान्यताओं में विशेष अन्तर नहीं है। 'शेक्सपीरियन इमेजरी एण्ड व्हाट इट टेल्स टू अस' पुस्तक की सुप्रसिद्ध लेखिका मिस कैरोलिन स्पर्जियन ने बिम्ब के स्वरूप के विषय में लिखा कि काव्य में प्रयुक्त प्रत्येक उपमा रूपक कल्पनाचित्र या काल्पनिक अनुभूति जिसे कवि अपने विचारों और भावों से समन्वित करके प्रस्तुत करता है बिम्ब के अन्तर्गत आते हैं। व्यापक रूप में प्रत्येक रूप और उपमा जो समानता प्रदर्शित करने के लिए लाए जाते हैं बिम्ब हैं।[3] स्पर्जियन ने बिम्ब का क्षेत्र बड़ा व्यापक माना। सादृश्य विधान के जितने भी रूप हो सकते हैं उनके मत से वे सभी बिम्ब कहे जा सकते हैं केवल भावात्मकता और विचारात्मकता क्षमता का होना उनके लिए आवश्यक है। 'द वर्ल्ड आव इमेजरी' के लेखक स्टीफन ब्राउन ने भी बिम्ब को व्यापकता प्रदान की। उन्होंने कहा कि रूपक उपमा मानवीकरण सिनेकडोकी मेटोनिमी समासोक्ति, मुहावरे, लोककथा प्रतीक चिह्न—सब यदि किसी एक सामान्य शीर्षक के अन्तर रखे जा सकते हैं तो वह है बिम्ब।[4] आगे बिम्ब को स्पष्ट करते हुए उन्होंने लिखा कि बिंब किसी अन्य प्रकार के भावों या विचारों के लिए लाया गया ऐन्द्रिय गुणों से युक्त वस्तुविधान है जो शब्दों या लोकोक्तियों में प्रकट होता है। बिंब मुख्य वस्तु का क्षणिक स्थानापन्न है जो सादृश्यता में भी प्रकट हो सकता है और उसके बिना भी

---

१ It is better to present one image in a life time than to produce voluminous works. —Make It New Ezra Pound quoted by Lewis Poetic Image p 25

२ We should always be prepared to judge a poet by the force and originality of his metaphors —Herbert Read quoted by Lewis, Poetic Image, Page 17

३ Shakespeare's Imagery and what it. —Miss Spurgeon, p 5

४ The world of Imagery Stephan J Brown p 1

बिम्ब —

हो सकता है। इस प्रकार शाउम ने बिम्ब के क्षेत्र को व्यापकता दी और सादृश्य भावात्मक और विचारात्मक अनुभूतियों का प्रकाशन व ऐन्द्रियता आदि को बिम्ब के अन्तगत मान्यता प्रदान की।

द इमैजरी आव् कीट्स एण्ड शैली' के प्रसिद्ध लेखक रिचर्ड एच० फोगेल ने बिंब की व्याख्या करते हुए उसके संवेदनात्मकता के गुण पर विशेष बल दिया। उसने कहा कि मनोवैज्ञानिकों एवं आलोचकों में कविता को संवेदना की अनुभूति का प्रकाशन मानने की धारणा है यह संवेदना जो विभिन्न-दृश्य श्रवण घ्राण स्पर्श स्वाद प्रकारों से आती है। मस्तिष्क के सम्मुख मूल और मौलिक संवेदना को अधिक से अधिक विश्वसनीय सही और व्यापक रूप में प्रस्तुत करती है इस प्रकार से एक काव्यात्मक बिंब केवल संवेदना का प्रकाशन है। स्पष्ट है कि फोगल ने बिम्ब के संवेदनात्मकता के गुण का विशेष महत्व दिया है।

बिम्बगत इन सब मान्यताओं के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि बिंब हमारी पूर्वानुभूतियों एवं भावनाओं का मूर्तिकरण है जिसमें ऐन्द्रियता अपेक्षित है। भावना संवेदना एवं भावना इसकी मूल आवश्यकताएं हैं। यह अलंकार उपमानों, रूपकों मुहावरों आदि में या इन सबसे पृथक होकर भी अभिव्यक्त होता है। पाश्चात्य कथा समीक्षक कालरिज ने इन्हीं तथ्यों को कुछ परिवर्तन के साथ लेकर बिम्ब की सर्वांग पूर्ण व्याख्या की। उसने कहा 'बिम्ब किसी संवेदना की अनुभूति कोई भाव कोई मानसिक घटना कोई अलंकार या वस्तुओं की तुलनात्मक इकाई तक हो सकता है केवल उसमें किसी तथ्य को प्रस्तुत करने की सामर्थ्य होनी चाहिये'।

---

1 Imagery may be defined as words or phrases denoting a sense perceptible object... but some other object of thought belonging to a different order and category of being The sense perceptible object or image in question becomes a medium for conveying to the mind some notion regarding that other object of thought. The Image is momentarily substitute for the object. This substitution may involve a comparison or it may not. —Stephen J Brown, page 2.

2 See —The Imagery of Keats & Shelley R. H. Fogle p. 3

3 An image may be, for example a visual image, a copy of sensation or it may be an idea, any event in mind which represents something or it may be a figure of speech, a double unit involving comparison. Coleridge, quoted by I.A. Richards Coleridge on Imagination.

बिम्ब की इन व्याख्याओं में बिम्ब के कुछ आधारभूत तथ्यों पर हमारी दृष्टि जाती है जो बिम्ब को सफलता प्रदान करते हैं। ये हैं (१) अनुभूति (फीलिंग) (२) भाव (इमोशन) (३) आवेग (पैशन) (४) ऐन्द्रियता (सेन्सुअसनेस)। अब हम इन विशिष्टताओं के संदर्भ में बिम्ब का विवेचन करेंगे।

(१) अनुभूति—बिम्ब हमारी स्मृति अथवा पूर्वानुभूतियों की अभिव्यक्ति है। यद्यपि यह कल्पना का एक व्यापार है। परन्तु अनुभूतियों से विशेष रूप से सबद्ध है। कल्पना पूर्वानुभूतियों को ही रूप देती है और बिम्ब हमारे दृष्ट श्रुत या अनुभूत जीवन की भावपूरित व्याख्या है। साधारणतः घटनाएँ या स्मृतियाँ स्वयं बिम्ब नहीं होतीं वरन् अनुभूति की एक निश्चित गहराई उन्हें इस स्तर तक पहुंचा देती है।[1] इसीलिए आलोचक लुईस ने कहा था कि बिम्ब वस्तु का केवल चित्रण नहीं होता वरन् पूर्वानुभूति के एक विशिष्ट संदर्भ से उसका आकलन होता है यह संदर्भ उसकी एक मूल आवश्यकता है।[2] अनुभूतियों के इस व्यापक प्रसारण के कारण विद्वान् आलोचक लुईस बिम्ब को मानव हृदय का ही दूसरा रूप कहता है जो प्रत्येक चराचर वस्तु जगत के साथ अपने संबंध की घोषणा करता है (अनुभूतियों के प्रकाशन के माध्यम से) और उसे सिद्ध भी करता है।[3] बिम्ब का अनुभूति से इतना गहरा संबंध है कि आलोचक वैली ने तो बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया को स्मृतियों के संदर्भ में अनुभूतियों की व्याख्या करना ही कहा। भावात्मक प्रतिमाओं में अनुभूतियों का वैभव स्पष्ट परिलक्षित होता है। संवेदनात्मक प्रतिमा में अनुभूति कोई बाहर से समाहित हो जाने वाली वस्तु नहीं है वरन् अनुभूति ही प्रतिमा है। आलोचक वैली कहता है कि अनुभूतियाँ स्मृति में समाहित रहती हैं उनका स्वरूप मिश्रित रहता है। और जब यह मिश्रित स्वरूप अभिव्यक्त होने के लिए कोई आकार खोजता है तब काव्य या कला

---

१ Such memories may have symbolic value, but of what we can t tell, for they come to represent the death of feelings into which we cann t pear T S Eliot, Points of view from the uses of Poetry and Criticism, p. 53

२ Every image recreates not merley an object, but an object in the context of an experlence, and thus an object as part of a relation ship being in the very nature of metaphors. —Poetic Image, Lewis, page 29

३ Poetic Image is the human mind claiming kinship with every things that lives or has lived and making good his claim. —Poetic Image C.D Lewis, page 35

४ It is a eregetic charge of feeling upon the contents of memory the feeling stamped upon image from the image of the ordinary man. —Poetic Process, George Whalley page 76.

बिम्ब —

या मूर्तियों में बिम्ब का निर्माण होता है।[1] काव्य में अनुभूति और स्मृति एक तार में अनुस्यूत होकर बिम्ब द्वारा प्रकट होती है। इस रूप में बिम्ब व्यक्तित्व का प्रत्यक्ष बिम्बपथ करता है। व्यक्ति की अनुभूतियाँ और स्मृतियाँ—सभी उसके द्वारा प्रकट होती हैं। इसीसे काव्यात्मक बिम्ब के सम्बन्ध में कहा था कि बिम्बों में वस्तु की यथार्थ प्रतिच्छाया मात्र नहीं होती वरन् वह एक दर्पण की भाँति होता है जिसमें चेहरे की रूपरेखाओं से परे उससे सम्बन्धित किसी सत्य का उद्घाटन होता है।[2] यह सत्य कवि का व्यक्तित्व उसकी अपनी अनुभूतियाँ स्मृतियाँ आदि—है। बिम्ब मात्रा काव्य की माया नहीं है वरन् कवि का सुन्दर स्वरूप है। इस प्रकार काव्यात्मक बिम्ब में अनुभूति और स्मृति का महत्व निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है।

(२) भाव काव्यगत बिम्ब का दूसरा प्रमुख तत्व है भाव (इमोशन)। भाव वस्तुतः काव्य का मूलाधार है। भाव या विचार काव्य की आधार शिलायें हैं जिनके अभाव में काव्य का निर्माण सर्वथा असंभव है। काव्यगत बिम्ब में भी भाव को प्रमुख स्थान दिया गया है। (यहाँ भाव शब्द में ही विचार को समाहित कर लिया गया है)। बिम्बवाद के प्रमुख कवि एजरा पाउंड ने बिम्ब की व्याख्या में भावनात्मक विचार की प्रमुखता दी है। उसने कहा 'बिम्ब एक निश्चित समय में भावनात्मक और बौद्धिक विचारों को प्रकट करता है।'[3] यह कवि को आकस्मिक स्वच्छंदता की भावना भी देता है अर्थात् कवि समय और काल की सीमाओं से ऊपर उठ जाता है और बिम्ब के निर्माण में एक अचानक उत्पत्ति का आभास प्राप्त करता है।[4] बिम्ब का यह अकस्मात् उद्भव भाव और विचारों से अनुप्राणित होकर ही होता है। यही श्रेष्ठ बिम्ब का परिचायक है। पाउंड ने इन दोनों विचारधाराओं में भावात्मकता व विचार

---

1. ... feeling is not something added on the sensory images but that the feeling is the image, that it is the feeling that abides in memory secretly combining with and modifying other feelings. When these feelings emerge into the light and seeks a body they take on the aspect of image in poetry or painting or sculpture.
—Poetic Process, George Whalley p 176.

2. Poetic Image conveys to our imagination something more than the accurate reflection of an external reality......it looks out from a mirror in which life perceives not so much of its face as some truth about its face. —Poetic Image Lewis, page 18.

3. ... that which presents an intellectual and emotional complex in an instant of time. —Make it New Ezra Pound, page 36.

4. It is a presentation of such a complex instantaneously which gives that sense of sudden liberation, that sense of freedom from time limits and space limits, that sudden growth, which we can experience in the presence of the greatest works of Art. —Ibid. page 336.

त्मकता पर विशेष बल दिया है। काव्य में दोनों सापेक्ष महत्व रखते हैं। भाव की इस प्रधानता के कारण बिम्ब एक भावावेगमय क्षण की उत्पत्ति माना जाता है। इस प्रक्रिया में कवि की अर्धचेतनावस्था रहती है। वह देश काल से परे उस क्षणिक अनुभूति को भाव से अनुमानित कर चित्र रूप में प्रस्तुत करता है। आलोचक रिचर्डस इसी से बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को एक 'अर्द्ध अन्ध-विश्वासमयी पद्धति' कहता है। आलोचक काडवेल ने बिम्ब की भावनात्मकता पर बल देते हुए कहा कि वस्तुतः यही भाव का आरोपण काव्य की वस्तु को साधारण वस्तु से पृथक करता है और उसे विशिष्ट बनाता है। यह भावात्मक विशिष्टता सदैव ही बिम्बमयता के मूल में विद्यमान रहती है।[1] स्पष्ट है कि बिम्बों में भाव अथवा विचार की स्थिति अनिवार्य है। मिस स्पर्जियन ने बिम्ब की परिभाषा देते हुए उसकी भावनात्मकता अथवा विचारात्मकता पर भी बल दिया। उन्होंने कहा कि एक वर्णन या भाव जो तुलना या उपमा के द्वारा प्रस्तुत किया या समझाया जाये भावनात्मकता और संदर्भ का पुट लिए ही एक समग्रता का परिचय दे साथ ही लेखक की गहराई और समृद्धि से भी परिचित कराये और स्पष्ट करे कि वह क्या कहना चाहता है एक बिम्ब कहा जा सकता है।[2] स्पष्ट है कि भाव का योग बिम्ब के लिये आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

(३) आवेग : बिम्ब का तीसरा प्रमुख तत्व है आवेग (पैशन)। वस्तुतः यही वह तत्व है जो उसे इतिहासकारों अथवा पत्रकारों के विवरण आदि से पृथक कर देता है। इतिहास आदि में भी कभी कभी अनुभूतिमय भाव का ऐसा चित्रण मिलता है जो काव्यगत बिम्ब के बहुत निकट आ जाता है परन्तु आवेग अथवा संवेग के अभाव के कारण हम इसे साहित्यिक बिम्ब नहीं कह सकते। उसकी तटस्थता की स्थिति उसके संवेगहीन होने की सूचक है। साहित्य की कृति में [illegible] तटस्थता नहीं रहती। कवि अपने काव्य में तटस्थ वर्णन नहीं करता वरन् काव्य के प्रतिपाद्य में स्वयं अपने को

---

१ But poetry is like scientific argument, it is 'impure Its emotions are attached to real objects and this gives them a certain particularity Reality hovers in the ego s vision. This means that poetry is concrete and particularised although, of course in each case the concretion and generality refers to different speres of reality —Illuson & Reality C. Caudwell, page 133

'a description or an idea, which by comparison or analogy stated or understood, with something else, transmits to us through the emotions and associations it arouses, something of the 'wholeness the depth and richness of the way the writers views, conceives or has felt what he is telling us. —Shakespeare s Imagery and what it tell to us. —Miss C. Surgeon, page 9

प्रस्तुत करता है। काव्य में अपने आपको प्रस्तुत करने में वह आवेग पूर्ण होता है और उसके बिम्ब भी आवेग से पूर्ण होते हैं। आवेग पूर्ण होने के कारण ही वह साहित्यिक बिम्बों की कोटि में आते हैं। इसी कारण कालरिज ने कहा था बिम्ब कितना भी सुन्दर क्यों न हो जब तक वह कवि की शक्तिशाली वासना या आवेग से संयुक्त नहीं हो जाता कवि की विशिष्टता (व्यक्तित्व) को नहीं प्रतिपादित कर सकता।[1] स्पष्ट है कि काव्यगत बिम्ब जो कवि के व्यक्तित्व का प्रकाशक होता है का आवेग संयुक्त होना आवश्यक है।

(४) ऐन्द्रियता बिम्ब में संवेदना की अनुभूति का होना भी आवश्यक है। ऐन्द्रियता ही उसे साधारण वर्णन से विशिष्ट बनाकर बिम्ब की संज्ञा देती है। विशिष्टता बिम्ब की एक अनिवार्यता है। यह आवश्यक नहीं कि बिम्ब दृश्य ही हो वह किसी भी ऐन्द्रिय अनुभव की अनुभूति हो सकता है। यद्यपि दृश्य बिम्बों की संख्या सर्वाधिक होती है परन्तु वह घ्राणपरक श्रवणपरक आदि भी हो सकते हैं। दृश्येन्द्रिय का व्यापार जीवन में सबसे अधिक होने के कारण काव्य में भी दृश्य बिम्बों का प्राधान्य रहता है। सभी कवियों में दृश्य संवेदनाओं से युक्त बिम्ब अधिक मिलते हैं। अतः यह ऐन्द्रिय संवेदनाओं की अनुभूति काव्य में उनकी विशिष्टता समझी जाती है। अतः संवेदना की महत्ता के लिये अंतिम रूप में आलोचक सिसिल डे लुईस का कथन उद्धृत किया जा सकता है। उनके अनुसार बिम्ब शब्दों में चित्रित किया जाने वाला वह न्यूनाधिक संवेदनात्मक चित्र है जो कुछ अंशों में रूपकात्मक होता है और अपने संदर्भ में मानवीय अनुभूतियों से सम्बन्धित होता है पर साथ ही साथ कवि की विशिष्ट भावना और आवेग को भी पाठकों पर प्रस्तुत करता है।[2] स्पष्ट है कि ऐन्द्रियता बिम्ब की एक मूलभूत आवश्यकता है।

स्पष्ट है कि अनुभूति भाव आवेग व ऐन्द्रियता काव्यात्मक बिम्ब के प्रमुख तत्त्व हैं। इन्हीं के द्वारा बिम्ब जीवंत बनता है और काव्य में विशिष्ट महत्त्व का अधिकारी होता है।

---

1 Images, however beautiful do not of themselves characterise the poet. They become proofs of original genius only as far as they modified by a predominant passion or by associated thoughts or images awakened by that passion. —Coleridge quoted by Lewis, Poetic Image, page 19

2 We began to see then, that the poetic image is a more or less sensous picture in words of some degree metaphorical with an undernote of some human emotion in its contexts, but also charged with and releasing into the reader a special poetic emotion or passion. —Poetic Image C. D Lewis, page 22

(१) बिम्ब के गुणों

बिम्ब काव्य का आवश्यक तत्व है। यह मान लेने पर यह प्रश्न स्वतः उद्भूत होता है कि बिम्ब में वह क्या गुण हैं जो उन्हें काव्य में इतनी महत्ता प्रदान करते हैं और बिम्ब पाठकों को क्यों आकर्षित करते हैं। उनके आकर्षित करने का कारण बिम्ब के वह गुण हैं जो अभिव्यक्ति की किसी अन्य विधा में इतनी समग्रता से नहीं मिल सकते। और यही गुण काव्य में बिम्ब की महत्ता को प्रतिपादित करते हैं यद्यपि इन गुणों के आधार पर बिम्बों को किसी एक विभाग में नहीं रखा जा सकता या एक ही गुण किसी एक बिम्ब में अनुप्राणित है ऐसा कहा जा सकता है। काव्यगत बिम्ब में उनका प्रायः मिश्रित रूप प्रस्तुत होता है क्योंकि बिम्ब काव्य का स्वतः उद्भूत तत्व है और यदि उसका विश्लेषण किया भी जाय तो वह अपने सौन्दर्य की कुछ न कुछ क्षति कर ही लेता है।[1] यों भी बिम्ब अनुभूति और भाव से उत्पन्न सत्ता है जिसका विश्लेषण अर्थात् गुणों के आधार पर विभाजन नहीं किया जा सकता। विश्लेषण बुद्धि का धर्म है और बिम्ब विधान कल्पना का और इन दोनों को एक दूसरे पर आरोपित नहीं किया जा सकता। ऐसा करने पर वही परिणाम होगा जो तितली की सुन्दरता का विश्लेषण करने के लिए उसके परों को अलग अलग कर देखने से होता है। बिम्ब एक समग्र सत्ता है उसका सौन्दर्य उसके सम्पूर्ण अस्तित्व में निहित है। फलतः उसे किसी सीमित दायरे में बन्द नहीं किया जा सकता। यहां बिम्ब के जिन गुणों का उल्लेख किया जायगा वह प्रायः एक दूसरे की सीमा रेखा को स्पर्श करते हैं और उनके उदाहरण के रूप में आये बिम्बों में केवल वही एक गुण है, ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्रत्येक बिम्ब में दो या उससे अधिक गुण सदैव मिश्रित रहते हैं।

सिसिल डे लुईस ने बिम्बों का विवेचन करते हुए उनके निम्नांकित गुणों को मान्यता दी है जो किंचित् परिवर्तन के साथ यहां प्रस्तुत किए जा रहे हैं

(१) भावनाओं को उत्तेजित करने की शक्ति (Evocativeness)
(२) भाव को तीव्रता के साथ प्रस्तुत करने की सामर्थ्य (Intensity)
(३) अभिव्यक्ति की नवीनता (novelty) व ताजगी (freshness)
(४) परिचितता (familiarity)
(५) उर्वरता (fertility)
(६) औचित्य (congruity)

(१) भावनाओं को उत्तेजित करने की शक्ति—बिम्ब में हमारी सुप्त भावनाओं को जाग्रत करने की सामर्थ्य होनी चाहिये कि वह एक झटके के साथ

---

[1] *The Imagery of a poem is part of a living growth even decorative* and conventional images can hardly be detached for examination, without losing some of their sparkle. —Poetic Image Lewis page 40.

हमारी भावनात्मक अनुभूतियों को तीव्र कर दे इसी उत्तेजना में हम कवि की कल्पना से साक्षात् कर उसकी भावना का उचित ग्रहण कर सकते हैं। यह उत्तेजना प्रदान करने की शक्ति बिम्ब के किसी अंश में नहीं होती वरन् उसका समग्र रूप हमें उत्तेजना देता है। उसका शब्द चयन भावों को प्रस्तुत करने का क्रम—सब उसकी मानवीय भावनाओं को उत्तेजित करने की शक्ति का परिचय देता है। भावों का उत्तेजित करने के लिए यह आवश्यक नहीं कि बिम्ब में नवीनता हो कल्पित उपमान भी कभी-कभी ऐसे सन्दर्भ अथवा संदर्भ में प्रस्तुत किये जाते हैं कि उनम उत्तेजना पुरित कर देने की सामर्थ्य आ जाती है। समग्र बिम्ब से अधम कभी-कभी एक शब्द में भी बिम्ब का जीवन्त बना देने की शक्ति होती है।

मुर्रेन ने बिम्ब के इस गुण को स्पष्ट करते हुए बताया कि यह तत्व पूर्णत व्यक्ति (पाठक) पर निर्भर है। हम इसको किन्हीं सामाजिक भावनाओं से नहीं परख सकते यह पूर्णत वैयक्तिक व्यापार है।[1] परन्तु मेरे विचार से अनुभूतियों को उत्तेजित करने की सामर्थ्य बिम्ब में ही निहित होती है जो व्यक्ति मात्र के लिए समान है और मानवीय अनुभूतियाँ भी मूलरूप में हर चेतन हृदय में निवास करती हैं। अतः वैयक्तिकता का प्रश्न यहाँ इतना प्रमुख नहीं है यद्यपि ऐसा हो सकता है कि कोई विशिष्ट बिम्ब किसी विशिष्ट व्यक्ति को अधिक उत्तेजित करे सामान्यत ऐसा न कर सके पर ऐसी स्थिति में इसके लिए कोई विशेष कारण होगा जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण से ही स्पष्ट हो सकता है। हाँ उत्तेजना की मात्रा न्यूनाधिक हो सकती है पर उसका स्थान वहाँ अवश्य ही होगा। यदि बिम्ब में उत्तेजना प्रदान करने की अनुभूतियों को जगाने की शक्ति है तो वह हर व्यक्ति पर अपना प्रभाव डालेगा यह प्रभाव अधिक या कम हो सकता है पर प्रभाव न हो उत्तेजना अनुभूत ही न हो यह सामान्यत सम्भव नहीं है। वैयक्तिक रुचि का महत्व अवश्य है परन्तु वही सब कुछ नहीं है।

काव्य म अनेक बिम्ब ऐसे होते हैं जो हमारी अनुभूतियों को संकृत कर देते है। यह शक्ति बहुत अंशों में उनमें नवीनता और ताजगी के संयोग से आती है। यहाँ उत्तेजना के लिए मध्यकालीन कवि घनानंद का बिम्ब द्रष्टव्य है

अम्बर पति गु बर श्याम और, नवे घुन रावन भावन छवै।
हुँच कोहल में छवि फूलन की बर्षा उर ऊपर जात है हवै।
सह बोल कपोल करे कलकंठ बनी जलजावलि हवै।
पंच चाप तरंग उठे दुति की बरिहैं मनो रूप अबै धर च्वै ॥११॥[2]

---

1. For evocative power then, there is only the individual, subjective test —Poetic Image page 42
2. घनानन्द कवित्त ११ १

गा धीरज वह देखि हिलोरा जनु अकास टूट चहुं ओरा ।
उठै लहरि परबत की नाईं होइ फिरै जोजन लख ताईं ।
धरती लेत सरग लहि बाढ़ा सकल समुद जानहु भा ठाढ़ा ॥१५५॥२१४

यहां कवि किलकिलाती समुद्र की भयानक लहरों का आभास देना चाहता है पर पर्वत के समान उठती हुई लहरों के कहने से सम्भवतः कवि को संतोष नहीं है इसलिए वह समुद्र के खड़े होने का रूप प्रस्तुत करता है जो विस्तार को स्पष्ट कर देता है। इससे यहां कवि भयंकरता की जो सीमा देना चाहता था वह भी आ जाती है। यहां सकल समुन्द जानहु भा ठाढ़ा पद कवि के भाव को तीव्रतम रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। यही तीव्रता कवि को अभीष्ट थी जो बिम्ब के द्वारा प्राप्त होती है।

(१) नवीनता और ताजगी—बिंब की सफलता का बहुत बड़ा अंश बिंब के नवीन व ताजा (फ्रेश) होने के गुणों पर निर्भर करता है। पुराने बिंब काव्य में निरन्तर प्रयुक्त होते होते कभी-कभी इतने रूढ़ और प्रभावहीन बन जाते हैं कि न वह अनुभूतियों को संकेत कर पाते हैं और न काव्य का कोई उपकार ही कर पाते हैं। कुछ चमत्कारवादियों एवं परम्पराग्रस्त कवियों में प्रायः ऐसे बिंब पाये जाते हैं। उनके बिंब कोई रूप प्रस्तुत नहीं करते केवल भाषा के रूप में ही उनका उपयोग रह गया है। उनसे काव्य का किसी प्रकार का उपकार नहीं होता। आंखों के लिए जब सर्वप्रथम खंजन का बिंब प्रस्तुत किया गया होगा तब उसमें भावोद्‌भावन—चंचलता को साकार कर देने की—अपूर्व क्षमता होगी पर अब निरन्तर प्रयुक्त होते होते वह आंखों के लिए मात्र एक चिह्न के रूप से रह गया है। कमल हंस भ्रमर मीन आदि के उपमान भी ऐसे ही हैं। इनमें कमल (मुख के लिये) उपमान तो ऐसा है जो कभी सर्वाधिक जीवन्त होगा पर आज सर्वाधिक प्राणहीन है। तुलसी का कमल का प्रयोग यहां उल्लेखनीय है

श्री रामचन्द्र कृपालु भजमन हरण भव भय दारुणम् ।
नव कंज लोचन कंज मुख करकंज पद कंजारुणं ॥

वस्तुतः यह कमल के बिंब का सबसे बड़ा दुरुपयोग है और कवि की कल्पना की दरिद्रता का परिचायक है। बिंब की सजगता बार बार आवृत्ति के कारण बिल्कुल ही समाप्त हो गई है। उसमें न सजीवता देने की शक्ति है न प्रभावोत्पादकता। इसी गति के कारण कमल उपमान आज निष्प्राण हो गया है जब तक कि इसका किसी अभिनव रूप या अभिनव प्रसंग में उल्लेख न किया गया हो। अस्तु! काव्य में बिंब की नवीनता का महत्व निर्विवाद है।

बिंब की नवीनता के द्वारा कवि पाठक को भावभूमि के जिस स्तर पर ले जाता है वह अपूर्व होता है। पाठक के हृदय पर नवीनता का गहरा प्रभाव पड़ता है जैसे इस बिंब में

व्य

लागहि जर जरै जस बारू फिर फिर भंजेसि न बारू[1] ॥

यह नवीनता द्रष्टव्य है। कवि विरह की दग्धता के समस्त प्राचीन उपकरणों को छोड़कर जीवन से गृहीत एक नवीन कल्पना प्रस्तुत करता है जो बड़ी व्यंजक है। बिंब के चयन का क्षेत्र यहाँ अवश्य नवीन है पर वह बुद्धि के अटपटेपन को उभारने वाला नहीं है वरन् हृदय के भाव को अत्यन्त स्पष्टता के साथ अंकित कर देता है।

बिंबों की नवीनता के सुन्दर प्रयोग आधुनिक युग के प्रयोगवादी कवियों में प्रायः मिल जाते हैं। नये बिंबों का निर्माण ही उनकी कल्पना की उच्चता है। यद्यपि प्रतिभाशून्यता के कारण कहीं-कहीं वह नवीनता में भटक गये से लगते हैं फिर भी बिंबों के उपकरणों की नूतनता के लिए उनका योग प्रशंसनीय है। अज्ञेय की यह बिंब योजना नूतनता के लिए प्रशंसनीय है

अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहार न्हाई हुई
टटकी कली चम्पे की, वगैरह तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही, यह उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है[2]

अन्तिम पंक्ति में प्रस्तुत बिंब अपनी नूतनता में अनुपम है। साथ ही भाव व्यंजना की अद्वितीय सामर्थ्य रखता है। सिर्फ एक यही बिंब अज्ञेय जी के भाव को पूर्णतः प्रकट कर देता है। पुराने बिंबों के विरोध में नये बिंबों का यह निर्माण अत्यन्त सक्षम है और कला की उत्कृष्टता का प्रतिपादक है।

नवीनता के साथ-साथ ताजगी का सम्बन्ध नवीनता से है पर न प्रत्येक ताजा बिंब नवीन होता है। ताजगी के लिए जहाँ एक ओर नवीनता की आवश्यकता है। वहाँ वस्तु के साथ रागात्मक सम्बन्ध होना भी नितान्त आवश्यक है। इसी से संस्कृत और मध्यकालीन कविता में आये उपमान प्रायः नवीन न होते हुए भी ताजगी प्रदान करते हैं। छायावादी कविता ताजगी से पूरित उपमानों से विशेष समृद्ध है। भावी पत्नी का चित्रण कवि पन्त इन शब्दों में करता है जो रूढ़ि के प्रभाव में तो है ही पर अपरिचित भी नहीं है और भाव की प्रेषणीयता में पूर्ण सहायक है

नवल मधुरितु निकुंज में प्रातः
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात

---

१ पद्मावत राग—तुलसी ३२४ १
२ हरी घास पर क्षण भर—अज्ञेय पृ० ३०

भा भौरज बहु देहि हिलोरा, जनु अकास टूटै चहुँ ओरा।
उठै लहरि परबत की नाईं होइ फिरै जोजन लख ताईं।
धरती लेत सरग लेहि बाढ़ा सकल समुद्र जानहु भा ठाढ़ा ॥१४१॥२।४

यहां कवि किलकिलाती समुद्र की भयानक लहरों का आभास देना चाहता है पर पर्वत के समान उठती हुई लहरों के कहने से सम्भवतः कवि को संतोष नहीं है इसलिए वह समुद्र के खड़े होने का रूप प्रस्तुत करता है जो विस्तार को स्पष्ट कर देता है। इससे यहां कवि भयंकरता की जो सीमा देना चाहता था वह भी आ जाती है। यहां सकल समुद्र जानहु भा ठाढ़ा पद कवि के भाव को तीव्रतम रूप में प्रस्तुत करने में समर्थ है। यही तीव्रता कवि को अभीष्ट थी जो बिम्ब के द्वारा प्राप्त होती है।

(१) नवीनता और ताजगी—बिंब की सफलता का बहुत बड़ा अंश बिंब के नवीन व ताजा (फ्रेश) होने के गुणों पर निर्भर करता है। पुराने बिंब काव्य में निरन्तर प्रयुक्त होते होते कभी-कभी इतने जड़ और प्रभावहीन बन जाते हैं कि न वह अनुभूतियों को झंकृत कर पाते हैं और न काव्य का कोई उपकार ही कर पाते हैं। शुद्ध अलंकारवादियों एवं परम्परायस्त कवियों में प्राय ऐसे बिंब पाये जाते हैं। उनके बिंब कोई रूप प्रस्तुत नहीं करते केवल भाषा के रूप में ही उनका उपयोग रह गया है। उनसे काव्य का किसी प्रकार का उपकार नहीं होता। आंखों के लिए जब सर्वप्रथम खंजन का बिंब प्रस्तुत किया गया होगा तब उसमें भावोद्बोधन—चंचलता को साकार कर देने की—अपूर्व क्षमता होगी पर अब निरन्तर प्रयुक्त होते होते वह आँखों के लिए मात्र एक चिह्न के रूप से रह गया है। कमल हंस भ्रमर मीन आदि के उपमान भी ऐसे ही हैं। इनमें कमल (मुख के लिये) उपमान तो ऐसा है जो कभी सर्वाधिक जीवन्त होगा पर आज सर्वाधिक प्राणहीन है। तुलसी का कमल का प्रयोग यहां उल्लेखनीय है

श्री रामचन्द्र कृपालु भजमन हरण भव भय दारुणम्।
नव कंज लोचन कंज मुख करकंज पद कंजारुणं॥

वस्तुतः यह कमल के बिंब का सबसे बड़ा दुरुपयोग है और कवि की कल्पना की दरिद्रता का परिचायक है। बिंब की क्षमता बार बार आवृत्ति के कारण बिल्कुल ही समाप्त हो गई है। उसमें न संवेदना देने की शक्ति है न प्रभावोत्पादकता। इसी गति के कारण कमल उपमान आज निष्प्राण हो गया है जब तक कि इसका किसी अभिनव रूप या अभिनव प्रसंग में उल्लेख न किया गया हो। अस्तु! काव्य में बिंब की नवीनता का महत्व निर्विवाद है।

बिंब की नवीनता के द्वारा कवि पाठक को भावभूमि के जिस स्तर पर ले जाता है वह अपूर्व होता है। पाठक के हृदय पर नवीनता का गहरा प्रभाव पड़ता है जैसे इस बिंब में

तापहि चार जरै अस जाऊ फिर फिर भंजसि न काऊ[1] ॥

यह नवीनता द्रष्टव्य है। कवि विरह की व्यग्रता के समस्त प्राचीन उपकरणों को छोड़कर जीवन से गृहीत एक नवीन कल्पना प्रस्तुत करता है, जो बड़ी व्यंजक है। बिम्ब के चयन का क्षेत्र यहाँ अवश्य नवीन है पर वह बुद्धि के अटपटेपन को उभारने वाला नहीं है वरन् हृदय के भाव को अत्यन्त स्पष्टता के साथ अंकित कर देता है।

बिम्बों की नवीनता के सुन्दर प्रयोग आधुनिक युग के प्रयोगवादी कवियों में प्राप्त मिल जाते हैं। नये बिम्बों का निर्माण ही उनकी कल्पना की उच्चता है। यद्यपि अतिप्रयासिता के कारण कहीं-कहीं वह नवीनता में खटक गये से लगते हैं फिर भी बिम्बों के उपकरणों की नूतनता के लिए उनका योग प्रशंसनीय है। अज्ञेय की यह बिम्ब योजना नूतनता के लिए प्रशंसनीय है

अगर मैं तुमको ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका
अब नहीं कहता
या शरद के भोर की नीहार न्हाई हुई
टटकी कली चम्पे की वगैरह, तो
नहीं कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है
या कि मेरा प्यार मैला है
बल्कि केवल यही वह उपमान मैले हो गये हैं
देवता इन प्रतीकों के कर गये हैं कूच
कभी बासन अधिक घिसने से मुलम्मा छूट जाता है[2]

अन्तिम पंक्ति में प्रस्तुत बिम्ब अपनी नूतनता में अनुपम है। साथ ही भाव व्यंजना की अद्वितीय सामर्थ्य रखता है। सिर्फ एक यही बिम्ब अज्ञेय जी के भाव को पूर्णतः प्रकट कर देता है। पुराने बिम्बों के विरोध में नये बिम्बों का यह निर्माण अत्यन्त सफल है और कला की उत्कृष्टता का प्रतिपादक है।

नवीनता के साथ-साथ ताजगी का सम्बन्ध नवीनता से है पर न प्रत्येक ताजा बिम्ब नवीन होता है। ताजगी के लिए जहाँ एक ओर नवीनता की आवश्यकता है। वहाँ वस्तु के साथ रागात्मक सम्बन्ध होना भी नितान्त आवश्यक है। इसी से संस्कृत और मध्यकालीन कविता में प्राय उपमान प्राय: नवीन न होते हुए भी ताजगी प्रदान करते हैं। छायावादी कविता ताजगी से पूरित उपमानों से विशेष समृद्ध है। भावी पत्नी का चित्रण कवि पन्त इन शब्दों में करता है जो रूढ़ि के प्रभाव में तो है ही पर अपरिचित भी नहीं है और भाव की प्रेषणीयता में पूर्ण सहायक है

अरुण अधरों की पल्लव प्रात
प्रथम कलिका सी अस्फुट गात

१ पद्मावत नागमती—वियोगखंड ३४४ ५
२, हरी घास पर क्षण भर—अज्ञेय, पृ० ५७

नील नभ अन्तःपुर में तन्वि ।
दूध की आभा सदृश नवजात ।।
निष्कम्पित पर मृदु पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जड़ित पद नमित पलक दृग पात ।[1]

स्पष्ट है कि बिम्ब की ताजगी का प्रश्न उसकी नवीनता से बहुत निकट का है। पर कभी-कभी अत्यधिक नवीन उपमान भी अपनी अपरिचितता के कारण सप्रेष णीय नहीं बन पाते।

(४) परिचितता काव्यगत बिम्ब में नवीनता के साथ-साथ परिचय का प्रश्न भी सहज ही उठता है। पाठक केवल उन्हीं कल्पनाओं उन्हीं बिंबों के द्वारा भाव ग्रहण कर सकते हैं जो उनके अपने जीवन के बीच के हों और सहज ही उन भाव को वहन करने की सामर्थ्य रखते हों अर्थात् पाठकों के साथ बिंब का पूर्वापर रागात्मक सम्बन्ध होना चाहिए। नवीनता की प्रतिभावता केवल बुद्धि को चमत्कृत कर पाती है भाव व्यंजना में उससे व्यवधान ही पड़ता है। परन्तु परिचय को रूढ़ि और परंपरा के रूप में ग्रहण करना उचित नहीं है जैसा कि आलोचक लुईस ने किया है[2] क्योंकि ऐसी परिचितता नवीनता एवं ताजगी के अभाव में सफल नहीं कही जा सकती परिचितता बिंब की सफलता का एक सोपान होना चाहिये।

यह परिचितता बहुत कुछ वैयक्तिक जातीय व एकदेशीय होती है। व्यक्ति, जाति देश आदि के कारण स्वभाव का अन्तर होने से एक स्थल पर परिचित उपमान अन्य के लिए अपरिचित बन जाता है। अब्र की कवि चॉसर का एक उपमान द्रष्टव्य है जो देशीय भिन्नता को प्रकट करता है 'वह इतना चुपचाप आ रहा था जैसे अप्रैल में घास पर गिरती हुई ओस बूंदें।'[3] एक भारतीय के लिए यह बिंब उतना उत्तेजक नहीं हो सकता जितना एक यूरोप वासी के लिए। घास पर पड़ी ओस बूंद की कल्पना उत्तेजक अवश्य है पर अप्रैल में ओस बूंद की कल्पना कोई अधिक सुन्दर चित्र सामने नहीं लाती कारण कि भारतीय जीवन में यह उतना परिचित नहीं है।

यहाँ जायसी का एक बिंब और उल्लेखनीय है

सरवर हिया घटत नित जाई टूकि टूकि होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दंवगरा मेरवहु एका ।।

---

१ गुंजन सुमित्रानन्दन पंत, पृ ४ ४१

२ Familiarity can be found in those concrete images, I have mentioned words like rose, hill, west, moon—which through constant use in emotional contexts have created a permanent right of way through our hearts. —Poetic Image, Lewis, page 45.

३ Chaucer quoted by Lewis in Poetic Image p 45.

यहाँ बिम्ब को सफलता प्रदान करने में परिचय का बड़ा योग है। लोक जीवन से गृहीत यह बिंब उस व्यक्ति को कभी भावों की अनुभूति नहीं करा सकता जिसने कभी सरोवर के तल की मिट्टी को तीव्र ग्रीष्म में चटक चटक कर फटते न देखा हो। बिहुरत हिया उसके लिए सचित्र शब्द नहीं बन सकता साथ ही जिसने ईश्वर असाढ़ की प्रथम झड़ी के बाद उस मिट्टी में आई मृदुलता और कोमलता को नहीं देखा हो वह भी नागमती के संभावित सुख की कल्पना नहीं कर सकता। बिहुरत हिया और दवगरा दोनों ही शब्द परिचय के अभाव में लोक जीवन से असंबद्ध व्यक्ति के लिए अपने सुन्दर मधुर क्षमता रखते हुए भी व्यर्थ हो जाते हैं। यहाँ परिचितता का प्रश्न वैयक्तिक है।

अतः कवि को चाहिए कि वह उन्हीं बिंबों का प्रयोग करे जिनसे उसके पाठक भी परिचित हों। पंत ने इसी ओर इंगित करते हुए लिखा था कि यदि लेखक अपने अनुभवों और विचारों को अपने ही समाज से जिससे कि उसके पाठक भी अधिक परिचित हैं परिस्थितियाँ और बाह्य उपकरण चुन कर व्यक्त कर सके और पाठकों के परिचित साँचों में ढालकर अपनी कृतियों को सामने रख सके तो निस्संदेह उसके रचनात्मक विचारों में अधिक शक्ति होगी और उसकी कला में अधिक प्रभाव होगा। आधुनिक कवि नवीन बिम्बों को प्रस्तुत करने में जहाँ इस गुण का विस्मृत कर गए हैं वहीं उनके बिंब असफल सिद्ध हुए हैं। उनकी असफलता का कारण उनका बहुत अधिक वैयक्तिक होना है। वह मात्र कवि को ही प्रभावित कर सके हैं पाठकों से उनका कोई संबंध नहीं होता।

(२) उर्वरता—भावों की उर्वरता प्रदान करने की शक्ति भी बिंब का आवश्यक गुण है। बिंब केवल भाव को अभिव्यक्त करके ही न रह जाय वरन् हमारे सम्मुख भावों की एक परम्परा निर्मित कर दे हम केवल ध्यान ही न हो जाएँ विभोर भी हो सकें बिंब द्वारा जाग्रत उस भाव में देर तक अवगाहन कर सकें। सामान्य रूप में बिंब की उत्तेजना प्रदान करने की शक्ति और उर्वरता की शक्ति एक ही वस्तु के दो भिन्न नाम प्रतीत होते हैं परन्तु सूक्ष्म परीक्षण से ज्ञात होता है कि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। चेतना को झंकृत कर देने वाली वस्तु अनेक उर्वर नहीं होती अपने पीछे विचारों और भावों की शृंखला नहीं छोड़ जाती। बिंब की ध्वनि उसके प्रभावशाली बनाने में अपूर्व योग देती है। उर्वरता के लिए बिंब का लाक्षणिक एवं व्यंजक होना अपेक्षित है। जहाँ अप्रस्तुतों का अर्थात् सविस्तार वर्णन नहीं होता वरन् कम शब्दों में अधिक अर्थ देने का प्रयत्न किया जाता है अर्थात् सुगठितता (पार्टेसिटी) व संक्षिप्तता रहती है वहाँ बिंब उर्वरता के गुणों से सम्पन्न हो जाता है। उर्वरता के लिए जायसी का एक बिंब द्रष्टव्य है।

— मैं निसि धनि मन तनि बरसनी राम रैनि पुर्जंघि फिर धनी।

अर्थात् रात्रि होने पर पद्मावती फिर कमला की भाँति प्रकाशित हुई। प्रात: मे

देसा भूमि फिर बस गई थी। प्रथम मिलन के पश्चात् मलिन हुई पद्मावती पुनः उसी सौन्दर्य से मंडित हो गई थी जिससे पहले थी। यहां 'भूमि फिर बसी' मुहावरे के रूप में प्रयुक्त बिंब है जिसमें अपूर्व उर्वरता है। इस उर्वरता के कारण हम प्रथम पंक्ति में प्रयुक्त बिंब को विस्मृत-सा कर जाते हैं यद्यपि वह भी सुन्दर है। यहां सविस्तार वर्णन नहीं है थोड़े शब्दों में भावों की गहनता को प्रस्तुत किया गया है। यह केवल पद्मावती के समृद्ध सौन्दर्य का ही बिंब नहीं है वरन् उसकी मिलनोपरांत स्थिति राजा की भोग पूर्ण मनोवृत्ति को भी प्रकट करता है। केवल एक बिंब भावों की इस लंबी शृंखला को व्यक्त करने के कारण अत्यन्त सफल हुआ है। इसमें उर्वरता की अपूर्व क्षमता है। बिंब की अर्थ गहनता में पाठक भाव विभोर हो जाते हैं।

भाव विभोर करने की क्षमता और भाव की गहनता की दृष्टि से एक बिंब और उल्लेखनीय है।

> Give your hearts, but not into each other's keeping
> For only the hand of life can contain your hearts
> And stand together yet not too near together
> For the pillars of the temple stands apart,
> And the oak tree and the cypress grow not into each other's shadow[1]

इसके अन्तिम दो बिंब—तुम एक साथ रहो पर एक दूसरे में अपने व्यक्तित्व का विलय न करो क्योंकि मन्दिर के खम्भे अलग अलग ही खड़े रहते हैं और ओक व साइप्रस एक दूसरे की छाया में नहीं बढ़ सकते। भाव की सघनता के साथ प्रस्तुत करते हैं और पाठक को स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों पर सोचने के लिए विवश कर देते हैं। भाव व्यंजना को अपूर्व पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने के कारण यह बिंब विशेष सफल कहे जा सकते हैं। स्पष्ट है कि बिंब की उर्वरता क्षमता उसको प्रभावशाली और सफल बनाने में अपूर्व योग देती है।

(६) औचित्य—वस्तुतः औचित्य एक ऐसा तत्व है जो जीवन और जगत के प्रत्येक क्षेत्र के लिए अनिवार्य है। बिंब के लिए भी औचित्य के निर्वाह की क्षमता होने की अत्यन्त आवश्यकता है औचित्य के अभाव में बिंब कभी सफल नहीं हो सकता। इस कारण केवल औचित्य को ही बिंब का मूल तत्व माना जा सकता है।[2] केवल यही वह तत्व है जो अन्य गुणों को एक सम्यक अनुपात में प्रस्तुत करके बिंब को सफल बनाने में पूर्ण सहायक होता है। अन्यथा किसी एक गुण की अति हो जाने

1. Prophet, Khalil Gibran, page [illegible]
2. If there is any essential in imagery it is not boldness, or intensity but congruity—that the image should be congrous with the passionate argument and also with the form of the poem—Poetic Image,—C.D Lewis, page 46.

पर बिंब अनेक गुणों से सम्पन्न रहने पर भी केवल औचित्य के अभाव में प्रभावोत्पादन में असमर्थ हो जाता है और केवल उपहास का उपकरण ही बन पाता है।[1] औचित्य का संबंध बिंब के प्रयोग पर निर्भर है और तीव्रता नवीनता आदि भी इस पर आधारित है। इसके अतिरिक्त काव्य के मध्य में बिंब के चयन में भी औचित्य का बड़ा महत्व है। किस भाव के लिए क्या बिंब सफल हो सकता है यह सब औचित्य के संदर्भ में ही विचारा जाता है। औचित्य के कारण जिन बिंबों में अन्य गुणों का कोई विशेष स्थान नहीं रहता वह भी सफल बन जाते हैं। उपकरणों के जड़ और परम्परागत होने पर भी निम्नांकित बिंब परिस्थितिगत औचित्य के कारण भावाभिव्यक्ति की अपूर्व क्षमता रखता है।

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा, साजा बिरह दुंद दल बाजा।
धूम स्याम धौरे घन धाये सेत धुजा बग पाँति दिखाए।
खरग बीजु चमक चहुँ ओरा, बुंद बान बरिसैं घन घोरा।

इसमें यद्यपि उपकरण प्राचीन है पर असाढ़ मास की प्रकृति के अनुरूप होने के कारण इस रूपक में अपूर्व क्षमता आ गई है। यही बिंब यदि भाव विरह की व्यंजना का ध्यान न रखकर ग्रीष्म मास आदि के किसी और प्रसंग में दिया जाता तब संभवतः इसमें इतनी प्रभावोत्पादकता न होती। यहाँ संदर्भ—असाढ़ मास में वर्षा का रूपक—के कारण ही यह बिंब सफल हुआ है जो औचित्य पर आधारित है।

औचित्य का निर्वाह सूरदास के काव्य में भी पूर्णता से हुआ है। उनके अनेक बड़े-बड़े रूपकों को केवल रूप के आरोपण के कारण ही नहीं सराहा जा सकता वरन् अपने औचित्य-संदर्भगत भावगत आदि के कारण भी वे प्रशंसनीय हैं।

ऊधो भली करी तुम आए।
बिधि कुलाल कीन्हे काँचे घट, ते तुम आनि पकाए।
रंग दीन्हो हो कान्ह साँवरे अँग अँग चित्र बनाये।
गली गईं न नैन नेह तैं अवधि अटा पर छाए।
ब्रज करि अवा जोग करि ईंधन सुरति अगिनि सुलगाये।
फूँक उसास बिरह परिजारनि संग ध्यान दरस सियराये।
भरे संपूरन सकल प्रेम जल छुवन न काहू पाए।
राज काज तैं गये सूर प्रभु नंद नंदन कर लाए[2]।

---

१ In this knowlege of proportion lies the essential character of great imagery which till it embodies fitting conceptions is not great, but like that gaints robe upon a dwarf to which one of the speakers in macbeth compared and usurpers empty title —Aspects of Elizabethan Imagery—Miss Elizabeth Holmes, quoted by Lewis p. Image p. 47

२ मुद्रित सूरसागर संख्या ४११२ पृ० ५५१

कलशों के निर्माण का यह रूपक अन्तिम पंक्ति राज काज ते गये के अभाव में भी भाव को सफलता से स्थापित कर सकता था पर राज्याभिषेक के लिए कलशों की आवश्यकता का उल्लेख इस रूपक को सदर्भगत औचित्य के कारण सफल बनाता है। सूरदास सिर्फ कलशों के सारे व्यापार गोपियों के ऊपर आरोपित करने के लिए नहीं देते वरन कृष्ण का राज्याभिषेक होगा तब मंगल कलशों की आवश्यकता होगी इस परिस्थिति को रखकर इस बिंब को प्रस्तुत करते हैं इस परिस्थिति के कारण यह बिंब अधिक सफल है।

औचित्य बिंब का मूल तत्त्व है। अनौचित्य के कारण अनेक सुन्दर से सुन्दर बिंब भी अपना सौन्दर्य समाप्त कर देते हैं। विषयगत अनौचित्य के लिए हमारे हिन्दी काव्य में दो क्षेत्र बड़े समृद्ध हैं—एक केशव का काव्यक्षेत्र दूसरा नये कवियों का काव्य।

रामचन्द्रिका के अनेक उचित उपमान व रूपक अनौचित्य के कारण उपहासास्पद बन गये हैं। यथा

अरुन गात अति प्रात पद्मिनी प्राणनाथ मय।
मानहुं केशवदास कोकनद कोक प्रेम मय।
परिपूरन सिंदूर पूर कैधौं मंगल घट।
किधौं शक्र के छत्र मढ्यो मानिक मयूख पट।
कै श्रोणित कलित कपाल यह किल कापालिक काल को।
यह ललित लाल कैधौं लसत दिग्भामिनी के भाल को॥[1]
किधौं मुनि शापहत किधौं ब्रह्म दोष रत।
किधौं सिद्धि युत, सिद्ध परम विरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हौ, ठगोरी लीन्हे किधौं तुम।
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ॥[2]

यहां दोनों स्थलों पर भावगत अनौचित्य है। प्रथम में प्रभात के दृश्य को साकार करने के लिए कवि ने कई रूप रंग से परिपूर्ण चित्र दिये हैं। पर यहां केवल रंग साम्य के आधार पर उसने कापालिक का चित्र भी दे दिया है जो भाव के एकदम विपरीत है। सूर्योदय को देखकर वह भाव नहीं आता जो इस चित्र से आता है। दोनों में एकदम अन्तर है और इस कारण भावगत व्याघात आ जाने से बिंब का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। द्वितीय में भी रामचन्द्र के लिए ठग आदि का उपमान भाव में व्याघात डालता है। इस अनौचित्य के कारण ये दोनों बिंब सफल नहीं कहे जा सकते।

---

१ रामचन्द्रिका केशव पृ० ४४
२ वही पृ० ७१

बिम्ब

बिंबों का मनोवैचित्र्य नये कवियों में भी मिलता है । बिंब का इनके काव्य में प्रमुख स्थान है । जहां इन्होंने नये नये व सुन्दर बिंब दिये हैं वहां उनकी कविता सफल है पर जहां उनमें मनोवैचित्र्य है वहां उनकी कविता उत्कृष्ट नहीं कही जा सकती । वस्तुत नवीनता का भूत इन पर सिन्दबाद पर सागर की प्रेतात्मा की तरह चढ़ा हुआ है । इसी झोंक में वे नये नये बिंब तो प्रस्तुत करते हैं पर उनकी उपयोगिता कहां तक है इसको विस्मृत कर जाते हैं । मनोवैचित्र्य के कितने ही उदाहरण उनके काव्य से दिये जा सकते हैं ।

(१) भोर के बलिष्ठ हाथों ने
पूरब की मटकी से लाल लाल दहकता गोला निकाल ।
पर वह निकलते ही रात की काली संडासी से
छूट गिरते ही ढुलक चला पश्चिम की ओर ।[1]

(२) सोने की वह मेघ चील
अपने पंखों में ले अंधकार बैठ गयी, दिन अंडे पर[2] ।

(३) तुम यहीं बैठी रहो,
उड़ता रहे चिड़ियों सरीखा वह तुम्हारा श्वेत आंचल ।[3]

(४) उधर उस नीम की फुनगी पकड़ने को
झुके बादल ।[4]

(५) ये जो चांद से कटोरे तलुओं में दिखते हैं
ये मुझे तरसाते हैं ।[5]

(६) उस दूर क्षितिज की छाती पर
छाले सा
सहसा
एक सितारा फूट गया ।[6]

यहां समस्त स्थलों में मानवत मनोवैचित्र्य है । रूप साम्य के कारण भाव की हत्या भी गई है । न जाने नये कवियों को चांद तारे और छालों में क्या साम्य दिखाई देता है कि कहीं चांद को छाला और कहीं छाले को चांद कहा गया है । वस्तुतः यह मनोवैचित्र्य के छाले हैं जो उनके काव्य शरीर पर बहुत अधिक उभर कर आये हैं जिस से उनकी कुरूपता में ही वृद्धि हुई है । नये कवियों न प्रयोगों को इतना अधिक महत्व

१ अमरीता गुप्त वरदानीनाथ शर्मा द्वारा उद्धृत काव्य और कला पृ० ३
२ नरेशकुमार मेहता दूसरा सप्तक, पृ० ११
३ वही पृ० ११६
४ हरिनारायण व्यास दूसरा सप्तक, पृ ६०
५ दुष्यन्तकुमार लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा उद्धृत नयी कविता के प्रतिमान पृ १०७
६ शमशेर बहादुर दूसरा सप्तक पृ १११

किया है कि परम्पराओं की अपेक्षा ही कर गये हैं। परम्परा और प्रयोग का सम्यक मिश्रण ही किसी वस्तु को सफल बना सकता है। बिंब के लिये भी यह तथ्य ग्राह्य है।

समष्टि में बिंब की सफलता के लिये इन सभी गुणों की न्यूनाधिक्य रूप में आवश्यकता है। बिंब के गुणों का यह विभाजन बहुत स्थूल है। बिंब या प्रतीक या रूप सभी गुणों से अनुप्राणित रहता है अतः किसी बिंब की सफलता को किसी एकगुण के अन्तर्गत दृढ़ता से नहीं रखा जा सकता। फिर भी इस अध्ययन में बिंब के कुछ मूल भूत तत्वों को देखने का प्रयत्न है। अतः यह कहना व्यर्थ है कि एक गुण के स्पष्टीकरण के लिए प्रयुक्त बिंब में दूसरा कोई गुण नहीं है। गुणों का यह वर्गीकरण उसकी सफलता म निहित मुख्य गुण के आधार पर हो। समष्टि में कह सकते हैं कि एक बिंब की सफलता के लिए सभी तत्वों का उचित सहयोग आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी है।

(४) बिंब की उपयोगिता व कार्य

काव्य में बिंब की पर्याप्त उपयोगिता है। काव्य में वह कई कार्य करते हैं जो उसकी उपयोगिता को प्रकट करते हैं। इन कार्यों को निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है

(१) संवेदनात्मकता।
(२) मूर्तीकरण।
(३) प्रभविष्णुता।
(४) प्राणवत्ता।
(५) रूपग्रहता।
(६) बाह्य वस्तु जगत से भावनात्मक संबंध।
(७) अमूर्त भावों एवं विचारों को मूर्तता प्रदान करना।
(८) मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति करना।

(१) संवेदनात्मकता संवेदना प्रदान करना बिंब का प्रमुख लक्ष्य है। बिंब का उपयोग ही भाव को संवेदनीय बनाने के लिए होता है[1]। बिंब काव्य में ऐन्द्रिय गम्य वर्णनों के द्वारा संवेदना जाग्रत करता है। आलोचक ग्लिस पैरी कविता को बिंब और बिंब को संवदना कहता है। उसके अनुसार कविता का कार्य वस्तु का ज्ञान कराना नहीं वरन् उसका ऐन्द्रिय अनुभव कराना है। बिंब केवल शब्दों से नहीं बनता है,

1 Too much importance has always been attached to the sensory quality of images what gives an image efficacy is less its vivid ness as an image that its character as a mental event particularly connected with sensation. —Principles of Literary Criticism, I.A. Richards, page 114

रचना

वरन् यह यथार्थ-संवेदना है'[1]—आधुनिक कवि दिनकर ने बिंब की उपयोगिता को स्पष्ट करते हुये लिखा था कि काव्य का प्रधान गुण उक्ति या वर्णन का सौन्दर्य है। कविता में शब्दों की लड़ी संगीतपूर्ण होती है और उसके भीतर एक मोहक चित्र होता है जो आनन्द के प्रवाह में मनुष्य के मन को बहला ले जाता है।[2] यह मोहक चित्र संवेदनात्मक वस्तु वर्णन के कारण ही आता है। पाठक वैयक्तिक बन्धनों से ऊपर उठकर काव्य की गरिमा में डूब जाता है और काव्य के रस में अवगाहन करने लगता है। काव्य में संवेदनात्मक के कारण इस स्थिति का जन्म होता है। काव्य में इस कारण इन्द्रियगम्य चित्रों की विशेष उपयोगिता है। उदाहरण के लिए साकेत का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

सबने रानी की ओर अचानक देखा,
वैधव्य तुषारावृता यथा विधु लेखा।[3]

अर्थात् सबने रानी की ओर दृष्टिपात किया जो वैधव्य के तुषार से आवृत विधुलेखा के सदृश दिखाई दे रही थी। यह चित्र रानी के स्वरूप को स्पष्ट करने में पूर्ण समर्थ है। विधवा रानी का श्वेत वसना से आवृत रूप ही नहीं उसकी उदास मन स्थिति हीन-दशा सबका चित्रण करने के कारण चित्र में संवेदना पूरित कर देने की पूर्ण शक्ति आ गई है। संवेदना देने की सामर्थ्य के कारण यह चित्र पूर्ण सफल हुआ है।

संवेदनशीलता के लिए सूरदास के चित्र भी बड़े सफल कहे जा सकते हैं। उन का राधा के लिये प्रस्तुत यह चित्र अत्यन्त संवेदनशील है।

अति मलीन वृषभानु कुमारी।
अधो मुख रहत उरध नहि चितवति ज्यों गथ हारे थकित जुआरी
छूटे चिकुर बदन कुम्हिलाने ज्यों नलिनी हिमकर की मारी।[4]

यहाँ प्रथम चित्र—ज्यों गथ हारे थकित जुआरी—धर्म साम्य के आधार पर प्रस्तुत हुआ है और द्वितीय—ज्यों नलिनी हिमकर की मारी—रूप साम्य के आधार पर है। प्रथम में उसकी मन स्थिति थकित अवस्था का चित्रण है और द्वितीय में उसके

---

१ Poetry presents the clearest images the most memorable objects seen, but objects always, the things we can see, touch hear a taste and smell. —Robert P Tristram Coffin. Or the function of poetry is to convey the 'sense of things rather than the knowledge of things—and the image were not made of word at all, but were naked sense stimulus. —The Study of Poetry Bliss Perry P 94-5

२ चक्रवाल : रामधारीसिंह दिनकर पृ० ६

३ साकेत : मैथिलीशरण गुप्त पृ० २२०

४ सूरसागर ना० प्र० सभा १९६१, पृ० ७०३।

भिन्न रूप का। दोनों ही चित्र सूर की राधा को दस्य बना देते हैं। यहां इन चित्रों
संवेदनशीलता है जो बिंब द्वारा प्रकट है।

(२) अलंकरण—बिम्बों का कार्य काव्य का अलंकरण भी होता है। आंतरिक
भावों की अभिव्यंजना के साथ साथ बिंब काव्य की रूप-सज्जा में भी सहायता करते
। अलंकार भी एकदम बाहरी नहीं होते वह बिंब के साथ उद्भूत होते हैं और कवि
भावों से अनुप्राणित होते हैं। आधुनिक कवि पंत ने अलंकार के स्वरूप को बताते
ए कहा था अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं वे भाव की अभि
व्यक्ति के विशेष द्वार हैं। भाव की पुष्टि के राग की पूर्णता के लिए आवश्यक
उपादान हैं वे वाणी के आचार-व्यवहार रीति तथा नीति हैं। पृथक स्वरूप पृथक
परिस्थितियों और भिन्न अवस्थाओं के भिन्न चित्र हैं।[1] बिंब प्रधान भाषा अलंकारिक
हो जाती है। यद्यपि अलंकारिकता बिंब का प्रधान गुण नहीं है फिर भी बिंब रूप
सज्जा में वृद्धि करते हैं यह निर्विवाद है। अधिकांश अर्थालंकार बिंबात्मक या चित्रा
त्मक होते हैं। दिनकर कहते हैं 'चित्र रचना की सामग्री अक्सर अलंकारों की सामग्री
होती है किन्तु चित्र अलंकार लाये बिना ही रचे जा सकते हैं।'[2] अलंकार चित्रों का
आवश्यक धर्म नहीं है। चित्र सदैव अलंकारात्मक नहीं होते हैं।

अनेक बिंब काव्य में इस रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं कि रूप प्रस्तुत करने के
साथ साथ वह काव्य का अलंकरण भी करते हैं। रूपक अलंकार इस दृष्टि से उल्लेख
नीय है उसमें सदैव सफल बिंबों का आयोजन होता है। अन्य अलंकारों में भी बिंब
यथास्थान आ जाते हैं। वस्तुतः प्राचीन काव्य में बिंब को अलंकार रूप में देखने की
सामान्य धारणा थी। बिंब को काव्य का मूल तत्व मानने की मान्यता बाद की है।[3]
प्राचीन बिंब अधिकतर अलंकरणात्मक ही थे। आधुनिक काव्य से भी अलंकरणात्मक
बिंबों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। यहां बिंब काव्य के आंतरिक भावों को पूर्ण
सफलता के साथ अभिव्यक्त करते हैं साथ ही काव्य की बाह्य आकारगत सुन्दरता में
भी वृद्धि करते हैं। प्रसाद का बिम्ब यहाँ द्रष्टव्य है

---

[1] पल्लव : सुमित्रानन्दन पंत, पृ २१
[2] चक्रवाल : रामधारीसिंह दिनकर पृ ७
[3] Critics of the sixteenth seventeenth and eighteenth century were apt to take of imagery as mere ornament, mere decoration, like charries tastefully arranged on a cake. The idea that the imagery is at the core of the poem that a poem may itself be an image composed from a multiplicity of images, did not begin to have any wide official currency till the Romantic Movement. —Poetic Image, C.D Lewis page 18.

आह! यह मुख पश्चिम के व्योम
बीच जब घिरते हों घन श्याम
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छवि धाम।
या, कि नव इन्दु नील लघु शृंग
फोड़कर धधक रही हो कांत
एक लघु ज्वालामुखी अचेत
माधवी रजनी में अश्रांत।[1]

अलंकारवाद की दृष्टि से यहाँ रूपक और संदेह अलंकार कहे जा सकते हैं और बिम्बवादियों के लिए यह बिम्ब का एक अच्छा उदाहरण है। यह बिम्ब भावों को दृढ़ अथवा गाढ़ बनाता है उसकी सबल गति की सूचना देता है उसके प्रेम के स्पन्दनों से अपरिचित हृदय का बोध कराता है साथ ही काव्य के बाह्याकार में भी सौन्दर्य की वृद्धि करता है। अतः बिम्ब भाव का उपकारक तो है ही कला की उत्कृष्टता का भी परिचायक है।

प्राचीन कवियों के बिंब अधिकांशतः अलंकारों के रूप में प्रस्तुत हुए हैं, सिर्फ वही कवि स्वतन्त्र बिंब विधान कर सके हैं जिनका शास्त्रीय आधार कम है अर्थात् जो परम्परा से मुक्त हैं जैसे जायसी कबीर घनानन्द आदि। इनके बिंब परम्परा से मुक्त होने पर भी कला की उत्कृष्टता में सहायक हुए हैं क्योंकि बिंब स्वतः ही कुछ न कुछ रूपकात्मक होते हैं।[2] जायसी के काव्य में प्रायः श्रेष्ठ भाव श्रेष्ठ बिंबों में रूपक के रूप में आये हैं। यथा

मुहम्मद जीवन जल भरन, रहँट घरी कै रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।

यहाँ रहँट के बिंब से क्षणभंगुरता की सशक्त व्यंजना हुई है। भाव को इसकी सम्पन्नता के साथ प्रस्तुत करने के साथ साथ बिंब काव्य का अलंकरण भी करता है। इसे सहज ही रूपक या उपमा की कोटि में रखा जा सकता है।

आधुनिक कवि बिंबों को विशेष महत्त्व देते हैं। वे स्वतन्त्र रूप से इनकी उद्भावना करने के पक्ष में हैं। फिर भी उनके बिंब अलंकरण में पर्याप्त सहायक होते हैं। यहाँ भारती का यह बिंब दृष्टव्य है।

रख दिये तुमने नजर में बादलों को साधकर
आज माथे पर सरल संगीत से निर्मित अधर

---

1. कामायनी : जयशंकर प्रसाद [illegible]
2. Every poetic image therefore, is to some degree metaphorical —Poetic Image, Lewis page 18.

भारती के बीजकों की झिलमिलाती छांह में
बांसुरी रखी हुई ज्यों भागवत के पृष्ठ पर ।[1]

यह बिंब मानवगत तीव्रता को पवित्रता के वातावरण का व लौकिकत्व में अलौकिकत्व को बड़ी स्पष्टता से प्रतिपादन करता है। साथ साथ काव्य का अलंकरण भी करता है। रूपक के रूप में भी यह उतना ग्राह्य है जितना अलंकार रूप में। समष्टि में अलंकरण बिंब का आवश्यक कार्य नहीं माना जा सकता, फिर भी अलंकरण इसका एक प्रमुख कार्य है इसको भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता।

(३) प्रभविष्णुता—बिंब काव्य को प्रभविष्णुता प्रदान करते हैं। काव्यगत सूक्ष्म और गहन विचारों को सहज रूप में प्रस्तुत करना कि वह पाठक को ग्राह्य हो जायें बिम्ब का ही कार्य है। कभी कभी काव्यगत भाव और विचारों में इतनी सामर्थ्य नहीं होती कि वह जिस रूप में कवि के मन में आये हैं उसी मूल रूप में प्रस्तुत कर दिये जायें तो पाठक उनको ठीक उसी तरह ग्रहण कर ले जिस तरह कवि ने उन्हें अनुभूत किया है। उनकी सघनता गूढ़ता विशिष्टता लोकोत्तरता आदि इसमें बाधक होती है परन्तु बिम्बों के माध्यम से उनको इस रूप में प्रस्तुत किया जाता है कि वह सहज ही ग्राह्य बन जाता है। अधिकांश रहस्यवादियों के उद्गार इसीलिए ग्राह्य बन सके हैं कि वह बिम्बात्मक हैं। अन्यथा उनकी रहस्यानुभूति पाठक की बुद्धि से ऊपर की चीज है। क्लिष्ट भावों को अथवा गूढ़ व सघन विचारों को भी बिम्ब के माध्यम से अधिक सरलता से स्पष्ट किया जा सकता है। स्पष्टतः काव्य को प्रभविष्णु अथवा सहज ग्राह्य बनाना भी बिम्ब का एक प्रमुख कार्य है। उदाहरणार्थ कबीर ने मानव जीवन की क्षणिकता को जगत की अनित्यता को बड़ी गहराई से अनुभव किया था परन्तु यदि उनकी अनुभूत भावना इस बिम्ब में न उतरी होती तो उनकी क्षणभंगुरता ग्राह्य कभी न बन पाती वह सब उद्गार मात्र होकर रह जाती।

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात ।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा प्रभात ।।

पानी के बुलबुले का और प्रभात के तारे का—दोनों ही बिम्ब भाव को एकदम ग्राह्य बना देते हैं। कथित न होने पर भी जीवन की क्षणभंगुरता की भावना हमें हो जाती है और बिम्ब के अभाव में कथित होने पर भी यह विचार संभवतः ग्राह्य न हो पाता। स्पष्टतः बिम्ब ने भाव को प्रभविष्णु बनाने में अपूर्व सहयोग दिया है। इसीलिए, दर्शन में भी भावों को प्रभविष्णु बनाने के लिए बिंब का माध्यम अपेक्षित समझा जाता है।

केवल गूढ़ या अलौकिक भावों को ही बिम्ब स्पष्ट करे यही नहीं साधारण भावनाओं में भी यह अधिक संप्रेषणीयता ला देता है जैसे उदास सांझ का वर्णन करने में रूखा बाल का यह रूपक उदासी को और स्पष्ट कर देता है।

---

१ धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक पृ० १८६

तप के दुःख दैन्य निखर पर
यह बाला जीवन बाला।
रे कब से जाग रही वह
आँसू की नीरव माला।
पीली पड़, निर्बल, कोमल
कृश देह लता कुम्हलाई,
विवसना लाज में लिपटी
साँसों में शून्य समाई।[1]

इनमें बाला की पीली निर्बल कृश देह, अश्रु पूर्ण मुख, उदासी को और घना कर देते हैं भाव को तीव्रता के साथ स्पष्ट करते हैं इसलिए बिम्ब के कारण ही—भाव अधिक सहज और स्पष्ट हो जाता है। पाठक आसानी से उदासी का अनुभव कर लेता है। आधुनिक कवियों के बिम्ब भी उनके संघर्ष प्रिय संक्रांतियुगीन व्यक्तित्व को स्पष्ट करते हैं। यथा

यह व्यक्ति और समाज का
उत्तप्त की घड़ियाँ बनी हैं शृंखला
बँधी हुई है देह
मन को बाँधने बढ़ते पतन के हाथ हैं
है कौन किस का बँधता हो जा रहा
अब डूबता अंतिम प्रहर की छाँह में
आलोक हत मनुज मिट्टी से बना
जिसका कि पृथ्वी नाम है।[2]

इस प्रकार के अनेक बिम्ब देखे जा सकते हैं जो भावों को अधिक सहज बना कर प्रभविष्णुता में वृद्धि करते हैं वस्तुतः यह काव्य में बिम्ब का मुख्य कार्य है उसका उपयोग भी इसी रूप में है।

(४) प्राणवत्ता—बिम्ब काव्य को प्राणवत्ता भी प्रदान करते हैं। वह सिर्फ बाह्य कलेवर को ही सजाते-सुधारते नहीं वरन् उसकी आत्मा का भी सर्जन करते हैं। कवि अपने बिम्बों में सिर्फ रूप रंगों को ही नहीं देता वरन् अपने काव्य का प्राण उसकी जीवनी शक्ति को उसमें प्रस्तुत करता है। वस्तु के बाह्य वर्णन के अन्त में वह उस मूल अनुभूति को प्रस्तुत करता है जो काव्य की आधार शिला है। इसी से बिम्ब भार को दिखा देने वाली वस्तु नहीं है। इसी रूप में वह सफल हो सकते हैं। अन्यथा भाव सत्ता के लिए लाये गये बिम्ब उपहासास्पद ही बनते हैं। बिम्ब अपने मूल रूप में अनुभूति का ही व्यक्त करते हैं और इसी से वह काव्य की सुन्दरता ही केवल

1. गुञ्जन : सुमित्रानन्दन पंत, पृ. ५४
2. गिरिजाकुमार माथुर : नयी कविता के प्रतिमान, लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा उद्धृत, पृ. १६०

नहीं बढ़ाता वरन् उसके अन्दर गति प्राण और जीवन का संचार भी करता है।[1] उसके अन्दर वर्णित वस्तु का स्वरूप ही निहित नहीं रहता वरन् कवि के मौलिक विचार एवं भाव भी निहित रहते हैं। मुर्रेस ने इसी कारण बिम्ब को दर्पण का रूप कहा है जिसमें वस्तु वर्णन के साथ साथ कवि के भावों का प्रतिबिम्ब भी पड़ता जाता है और उसमें कवि के व्यक्तित्व आदि के नये नये रूप प्रतिभासित होते हैं। इस रूप में बिम्ब केवल प्रस्तुत वस्तु को ही बिम्बित नहीं करते वरन् काव्य की आत्मा को भी दृश्य बना देते हैं।[2] बिम्ब से पृथक कवि के भाव का कोई रूप कल्पना में ही नहीं आ सकता। काव्य की आत्मा उसकी आन्तरिक शक्ति बिम्ब द्वारा ही प्रकट होती है। अयोध्याकांड में तुलसीदास ने कैकेयी के लिए एक बिम्ब दिया है जो समस्त वर्णन को जीवन्त बना देता है।

नृप मनोरथ सुभग बनु सुख सुबिहंग समाजु।
भीलनी जिमि छाड़न चहति बचन भयंकर बाजु॥[3]

इसमें भीलनी और कैकेयी में धर्म साम्य के साथ साथ परिस्थितिगत साम्य भी है। कैकेयी की प्रकृति भीलनी सी है। वह राजा के सुख रूपी पक्षियों पर वचन रूपी बाण छोड़ती है। वह सुख को समाप्त करने में समर्थ होगी यह भी यहां ध्वनित है। भीलनी जिस प्रकार पूर्ण तैयारियां करके मौका देखकर कार्य करती है उसी प्रकार कैकेयी ने भी किया है और जिस प्रकार भीलनी सफल होती है उसी प्रकार कैकेयी भी अपना मनोरथ पूरा कर लेती है। पूर्व परिस्थिति का साम्य आगामी परिस्थिति का बोध और भावों की अपूर्व व्यंजना के कारण यह बिम्ब यहां यथार्थत काव्य का प्राण बनाकर आया है।

इसी प्रकार इड़ा का रूप वर्णित करने में प्रसाद जी ने अपूर्व बिम्ब दिया है।

बिखरी अलकें ज्यों तर्क जाल।
वह विश्व मुकुट सा उज्ज्वलतम शशिखंड सदृश था स्पष्ट भाल
दो पद्म पलाश चषक से दृग देते अनुराग विराग ढाल।[4]

यहां इड़ा के बाह्य रूप वर्णन के साथ साथ उसकी आंतरिक विशेषता भी स्पष्ट होती जाती है। बिम्ब उसका आकार ही नहीं प्रस्तुत करता वरन् उसकी शक्ति

---

१ 'motion spirit & life —George Chapman.

The images in poems are like a series of mirrors set at different angles, so that, as the theme moves on, it is reflected in number of different aspects. But they are magic mirrors, they do not merely reflect the theme, they give it life and form it is in their power to make a spirit visible. —The Poetic Image, C.D Lewis, page 80

रामचरित मानस : अयोध्याकांड पृ० १५०

कामायनी : जयशंकर प्रसाद पृ० १६८

योग्यता विशिष्टता आदि सभी प्रमुख गुणों को अभिव्यक्त कर देता है। ऐसे स्थलों पर स्पष्ट ही कहा जा सकता है कि बिम्ब ही काव्य का प्राण तत्व है। अनुभूति एवं भावों के साथ साथ ही यह कवि के अचेतन से उद्भूत हुआ है। यहाँ न भावों को बिम्ब से विलग किया जा सकता है न बिम्ब को भावों से। ऐसी प्राणवत्ता आधुनिक कवियों में भी पर्याप्त मिलती है। उदाहरण के लिए गीतकार नीरज का एक बिम्ब लीजिए—[१]

आज गगन में सावन बनकर
फिर घिर आई याद तुम्हारी।
जरा पुरा था बाग कि छूकर
हरा कर गई फिर पुरवाई
सपना ही था दब कि सहसा
सावन ने आवाज लगाई।
तनिक चुप था हिया कि आकर
निठुर पपीहा पिया कह उठा
कुछ सूनी थी सेज कि आकर
बूँदों की बाँसुरी बजाई।

यहाँ पूरा बिम्ब कवि के मानस में भावों के साथ इसी रूप में उत्पन्न हुआ था जिस रूप में प्रस्तुत हुआ है। प्राकृतिक उपकरणों के मानवीकरण और पीड़ा के मानवीकरण से भावों को व्यंजित किया गया है। जो अन्योन्याश्रित है। यहाँ बिम्ब भाव रूप होने से स्वयं ही काव्य का प्राण है। बिम्ब की प्राणवत्ता के कारण समग्र वर्णन जीवन्त बन गया है। स्पष्ट है कि बिम्ब द्वारा काव्य के भावों एवं विचार जीवन्त रूप में प्राणवान बनकर प्रकट होते हैं। काव्य में प्राणवत्ता का संचार बिम्बों द्वारा ही सम्भव है।

(५) क्रमबद्धता भाव को क्रमबद्धता देना भी बिम्ब का एक प्रमुख कार्य है। बिम्ब का निर्माण हमारी स्मृतियों और कल्पना से होता है जो दोनों ही अपने अपने क्षेत्रों में अत्यंत समृद्ध हैं। जब हम काल्पनिक मूर्तियों का सृजन करते हैं तब हम अपनी स्मृतियों को ही सजीव करते हैं। इन स्मृतियों में अनेक अनुभव अनेक संवेदनाएँ होती हैं। प्रतिमा अथवा बिम्ब निर्मित करते समय इन अनुभवों एवं संवेदनाओं को एक विशिष्ट क्रम में रखना होता है। बिम्ब का स्थान वस्तुतः इन संवेदनाओं और उनकी अभिव्यक्ति के बीच में होता है।[२] बिम्ब द्वारा क्रमबद्धता लाकर ही भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है।

१ दर्द दिया है, पृष्ठ ५८
२ The image stands between the first reception of the sense impression and its expression in words. —Remembering—Prof. ... page 216.

वस्तुतः हमारी मानसिक प्रक्रिया में ही भावों को क्रमबद्धता प्रदान करना सबसे बड़ा कार्य है। हमारी अनुभूति और इसके प्रकटीकरण के बीच में संवेदनाओं में क्रमबद्धता लायी जाती है। क्रमबद्ध रूप में ही हम अपनी अनुभूतियों को शब्दों में प्रकट करते हैं नहीं तो काव्य का प्रत्येक शब्द निरर्थक रहेगा। बिखरी बिखरी अनुभूतियों से हम कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते इस प्रकार शब्द निरर्थक और अनुभूतियां असंगत लगेंगी। इस कारण अनुभूतियों में क्रमबद्धता लाना आवश्यक है बिम्ब भावों को क्रमबद्ध कराने में सहायक होता है। बिम्ब का जन्म ही अनुभूतियों स्मृतियों आदि को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिए हुआ है।[1]

क्रमबद्धता को ही लक्ष्य करते हुए मिल ने कहा था कि काव्य मानवीय भावनाओं के गंभीरतम और रहस्यपूर्ण रूप को बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत करने का नाम है।[2] कवि बिम्बों में अपने बिमु कथित अचेतन स्मृतियों से एक क्रमबद्ध सुनिश्चित सृष्टि करता है।[3] बिम्बों का कार्य वस्तु को स्वीकारने अस्वीकारने परिवर्तित करने के साथ साथ क्रमबद्ध रूप में रखने का भी है।[4] स्पष्ट है कि भावों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना बिम्ब का एक मूलभूत कार्य है।

भावों की क्रमबद्धता अथवा शृंखलाबद्धता काव्य को प्रेषणीय बनाने में उपकार करती है। जैसे सूरदास के इस बिम्ब में भाव बिम्ब द्वारा ही क्रम प्राप्त करते हैं

> अब मैं नाच्यौं बहुत गुपाल
> काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
> महा मोह के नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
> भ्रम मोयौ मन भयौ पखावज चलत कुसंगत चाल।
> तृष्णा नाद करत घट भीतर, नाना विधि दै ताल
> माया को कटि फेंटा बांध्यो, लोभ तिलक दियो भाल।

१ If when we remembered or brought, past situations were always to act upon us, en masse and the events which had happened were to repeat themselves in strict chronological order .. To surmount these difficulties, the method of Images has been envolved —The place of Imagery in Mental Process, T H. Pear page 23

२ Poetry is the deliveration of the deeper and more secret workings of human emotions —Thoughts on Poetry and its varieties in Nineteenth Century Critical Essays' p. 432,

३ See, Lowes The Road to Xanadu page 432.

४ Accepting, rejecting, moulding them into keeping with each other with a lucidly conceived design Ibid., page 307

कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करहु नंदलाल।[1]

यदि यहां सूरदास नृत्य का इतना सांगोपांग रूपक न देते तो सम्भवतः उनकी अविद्या के उपकरण विशृंखलित होकर प्रभावहीन हो जाते। इस रूपक के सूक्ष्म ब्यौरे में क्रोध मोह तृष्णा माया—सबको आकार मिल गया है। विविध वस्तुएं बिम्ब के एक तार से अनुस्यूत होकर और अधिक प्रभावोत्पादक हो गई हैं। स्पष्ट है कि बिम्ब द्वारा उत्पन्न क्रमबद्धता सफलता का एक बड़ा कारण है। तुलसी ने भी कलह उत्पन्न दारुण फल को स्पष्ट करने के लिए क्रमबद्धता से पूर्ण एक बिम्ब दिया है

बिषम बीजु बरिषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी।
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा।

इस बिम्ब के कारण प्रभविष्णुता भी आई है और क्रमबद्धता भी। यह बिम्ब को सफल बनाती है। वर्षाऋतु में जिस प्रकार बीज का अंकुर फूट जाता है उसी प्रकार अनुकूल वातावरण पाकर कलह का बीज पल्लवित हो गया है जिसका दुःख रूपी फल—परिणाम प्राप्त होगा। यहां भावों को एक सूत्र में ग्रथित करने का कार्य बिम्ब ही करता है।

(६) बाह्य वस्तु जगत् से भावनात्मक संबंध बिम्ब कवि के भाव जगत् से बाह्य वस्तु जगत् का सम्बन्ध भी कराते हैं। वह वस्तु का केवल आकार मात्र प्रस्तुत नहीं करते वरन् उससे कवि के रागात्मक सम्बन्धों का भी परिचय देते हैं। कवि स्वभावतः भावनात्मक एवं अधिक संवेदनशील प्राणी है। वस्तु जगत् से उसका संबंध साधारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक प्रगाढ़ और सहज हो जाता है। प्रकृति प्रेमी कवि केवल काव्य में ही प्रकृति प्रेम का वर्णन नहीं करते जीवन और जगत् में भी वह लता गुल्मों वृक्षों को देखकर मुग्ध होते हैं काव्य में उनका यही रागात्मक संबंध एक कल्पनाजन्य आनन्द की सृष्टि करता है।[2] प्रकृति प्रेमी पंत ने अपने बाल्यावस्था के संबंध में कहा कि जिस समय वह मोह, बादल आदि रचनाएं लिखते थे, उस समय सचमुच वह प्रकृति को प्रेम करते थे, घंटों प्रकृति को प्रेम करते थे घण्टों प्रकृति की गोद में ही बिता देते थे।[3] वस्तु जगत् के रागात्मक संबंध का परिचय बिम्ब वही होती है जो उसकी रुचियों रुझानों आदि का भान कराती है। शुक्ल ने इस संबंध को

१ सूरसागर पद संख्या ८९ पृ ४४
२ Poetry begins where matter of fact or science ceases to be merely such, and to exhibit a further truth that is to say the connexion it has with the world of emotion, and its power to produce imaginative pleasure. —An Answer to the question what is poetry —J H.L. Hunt, p 302.
३ आधुनिक कवि भूमिका, सुमित्रानन्दन पंत पृ० ७, ८

वस्तुतः हमारी मानसिक प्रक्रिया में ही भावों को क्रमबद्धता प्रदान करना सबसे बड़ा कार्य है। हमारी अनुभूति और इसके प्रकटीकरण के बीच में संवेदनाओं में क्रमबद्धता लायी जाती है। क्रमबद्ध रूप में ही हम अपनी अनुभूतियों को शब्दों में प्रकट करते हैं नहीं तो काव्य का प्रत्येक शब्द निरर्थक रहेगा। बिखरी बिखरी अनुभूतियों से हम कुछ भी ग्रहण नहीं कर सकते इस प्रकार शब्द निरर्थक और अनुभूतियां असंगत लगेंगी। इस कारण अनुभूतियों में क्रमबद्धता लाना आवश्यक है बिम्ब भावों को क्रमबद्ध कराने में सहायक होता है। बिम्ब का जन्म ही अनुभूतियों स्मृतियों आदि को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करने के लिए हुआ है।[१]

क्रमबद्धता को ही व्यक्त करते हुए मिल ने कहा था कि काव्य मानवीय भावनाओं के गंभीरतम और रहस्यपूर्ण रूप को चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत करने का नाम है।[२] कवि बिम्बों में अपने बिखु खलित अचेतन स्मृतियों से एक क्रमबद्ध सुनिश्चित सृष्टि करता है।[३] बिम्बों का काम वस्तु को स्वीकारने अस्वीकारने परिवर्तित करने के साथ साथ क्रमबद्ध रूप में रखने का भी है।[४] स्पष्ट है कि भावों को क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत करना बिम्ब का एक मूलभूत कार्य है।

भावों की क्रमबद्धता अथवा शृंखलाबद्धता काव्य को प्रेषणीय बनाने में उपकार करती है। जैसे सूरदास के इस बिम्ब में भाव बिम्ब द्वारा ही क्रम प्राप्त करते हैं

> अब मैं नाच्यौं बहुत गुपाल
> काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।
> महा मोह के नूपुर बाजत निन्दा शब्द रसाल।
> भ्रम भोयौ मन भयौ पखावज चलत कुसंगत चाल।
> तृष्णा नाद करत घट भीतर नाना विधि दै ताल
> माया को कटि फेंट्यो बांध्यो, लोभ तिलक दियौ भाल।

---

१ If, when we remembered or brought, past situations were always to act upon us, 'en masse and the events which had happened were to repeat themselves in strict chronological order .. To surmount these difficulties, the method of images has been envolved.
—The place of Imagery in Mental Process, T H. Pear page 23

२ Poetry is the deliveration of the deeper and more secret workings of human emotions. —Thoughts on Poetry and its varieties in Nineteenth Century Critical Essays p 43?

३ See, Lowes The Road to Xanadu, page 432

४ Accepting rejecting moulding them into keeping with each other with a luckily conceived design Ibid., page 307

कोटिक कला काछि दिखराई जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास की सबै अविद्या, दूरि करहु नंद लाल।[1]

यदि यहाँ सूरदास नृत्य का इतना सांगोपांग रूपक न देते तो सम्भवतः उनकी अविद्या के उपकरण बिम्ब लक्षित होकर प्रभावहीन हो जाते। इस रूपक के सूक्ष्म ब्योरे में लोभ मोह तृष्णा माया—सबको आकार मिल गया है। विविध वस्तुएं बिम्ब के एक तार से अनुस्यूत होकर और अधिक प्रभावोत्पादक हो गई हैं। स्पष्ट है कि बिम्ब द्वारा उत्पन्न क्रमबद्धता सफलता का एक बड़ा कारण है। तुलसी ने भी कलह उत्पन्न दारुण फल को स्पष्ट करने के लिए क्रमबद्धता से पूर्ण एक बिम्ब दिया है

विषम बीजु बरिषा रितु चेरी। भुइँ भइ कुमति कैकयी केरी।
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा।

इस बिम्ब के कारण प्रभविष्णुता भी आई है और क्रमबद्धता भी जो बिम्ब को सफल बनाती है। वर्षाऋतु में जिस प्रकार बीज का अंकुर फूट जाता है उसी प्रकार अनुकूल वातावरण पाकर कलह का बीज पल्लवित हो गया है जिसका दुःख रूपी फल —परिणाम प्राप्त होगा। यहाँ भावों को एक सूत्र में ग्रथित करने का कार्य बिम्ब ही करता है।

(६) बाह्य वस्तु जगत् से भावनात्मक संबंध बिम्ब कवि के भाव जगत् से बाह्य वस्तु जगत् का सम्बन्ध भी कराते हैं। वह वस्तु का केवल आकार मात्र प्रस्तुत नहीं करते वरन् उससे कवि के रागात्मक सम्बन्धों का भी परिचय देते हैं। कवि स्वभावतः भावनात्मक एवं अधिक संवेदनशील प्राणी है। वस्तु जगत् से उसका संबंध साधारण मनुष्य की अपेक्षा अधिक प्रगाढ़ और सहज हो जाता है। प्रकृति प्रेमी कवि केवल काव्य में ही प्रकृति प्रेम का वर्णन नहीं करते जीवन और जगत् में भी वह लता पुष्पों वृक्षों को देखकर मुग्ध होते हैं काव्य में उनका यही रागात्मक संबंध एक कल्पनाजन्य आनन्द की सृष्टि करता है।[2] प्रकृति प्रेमी पंत ने अपने बाल्यावस्था के संबंध में कहा कि जिस समय वह मोह, बादल आदि रचनाएं लिखते थे उस समय सचमुच वह प्रकृति को प्रेम करते थे घंटों प्रकृति की ओर मग्न ही बिता देते थे।[3] वस्तु जगत् के रागात्मक संबंध का परिचय बिम्ब बड़ी होती है जो उसकी रुचियों, रुझानों आदि का ज्ञान कराती है। लुईस ने इस संबंध को

१ सूरसागर पद संख्या ८१ पृ ४४

२ Poetry begins where matter of fact or science ceases to be merely such, and to exhibit a further truth that is to say the connexion it has with the world of emotion, and its power to produce imaginative pleasure. —An Answer to the question what is poetry —J H.L. Hunt, p. 302.

३ आधुनिक कवि भूमिका, सुमित्रानन्दन पंत पृ० ७, ८

स्पष्टता से रखे हैं। बिम्ब में कवि की रागात्मकता प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों के प्रति त्रिकोणात्मक रहा है।[1] जिसका एक कोण कवि दूसरा प्रस्तुत और तीसरा अप्रस्तुत है। जब कोई कवि 'पद्ममुखी' स्त्री का वर्णन करता है तब एक ओर उस सौन्दर्य मूर्ति से उसका संबंध प्रकट होता है और दूसरी ओर पद्म से। साथ ही साथ वह काव्य के संदर्भ से पाठक के साथ प्रस्तुत और अप्रस्तुत का संबंध कराता चलता है। स्पष्ट है कि बिम्ब कई रूपों में भावनात्मक संबंध कराता है और कवि के भावात्मक संबंधों रुचि स्वभाव आदि—को प्रकाशित करके काव्य को समझने में अपूर्व योगदान देता है।

जहां कवि बिम्ब देता है वहां बिम्ब में वर्णित वस्तु से उसका रागात्मक संबंध प्रकट होता है। उदाहरण के लिये जायसी का एक बिंब प्रस्तुत है

सरवर हिया घटत नित जाई टूकि टूकि होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दवंगरा मेरवहु एका।

कवि जहां नागमती के वियोग से रागात्मकता स्थापित किये है वहां सरोवर की फटती मिट्टी दवंगरे के बाद उसके मसृण होने आदि से भी कवि का रागात्मक संबंध है। इस दृश्य ने जीवन में भी कवि को आकर्षित किया होगा उसके अचेतन मन पर कोई प्रभाव डाला होगा जो बिंब रूप में उभर कर आया है। यहां बिंब के द्वारा सरोवर के प्रति उसके रागात्मक भावों की व्यंजना हुई है।

निराला की जुही की कली एक प्रसिद्ध रचना है उसकी सारी महानता उसमें निहित बिंब के कारण है। क्या नायक-नायिका का इतना स्पष्ट प्रणय व्यापार जुही की कली और मलयानिल के माध्यम के बिना चित्रित हो सकता था? और क्या निराला कली मलयानिल के साथ रागात्मक संबंध स्थापित किये बिना उनको इस रूप में प्रस्तुत करसकते थे। शायद नहीं। उनके वर्णन में अप्रस्तुत रूप प्रस्तुत के अस्तित्व में घुल मिलकर आया है और दोनों ही समान महत्व के अधिकारी हैं

विजन वन-वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह-स्वप्न-मग्न-अमल कोमल तनु तरुणी
जुही की कली
दृग बंद किये शिथिल, पत्रांक में।
वासंती निशा थी
विरह विधुर प्रिया संग छोड़
किसी दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।

---

1 .. ... It also establishes through every metaphor an affinity between external objects. Metaphor— ..is a three cornered relationship. —Poetic Image C.D Lewis, page 55

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सुकुमार देह सारी झकझोर डाली
मसल दिये गोरे कपोल गोल,
चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हँसी खिली
खेल रंग प्यारे संग।

यह बिंब जहाँ एक ओर प्रणय-व्यापार के प्रति कवि की रागात्मकता का द्योतक है वहीं दूसरी ओर जुही की कली और मलयानिल के साथ भी उसके विशेष आकर्षण को प्रकट करता है। नायक-नायिका व कली और पवन यहाँ अन्यान्याश्रित हैं। दोनों ही कवि के रागात्मक संबंधों के परिचायक हैं। प्रायः प्रत्येक बिम्ब बाह्य वस्तु जगत् से कवि के भावनात्मक संबंधों का परिचय देता है। कवि बिम्ब रूप में केवल उन्हीं वस्तुओं को प्रस्तुत करता है जो उसके भाव का आलंबन होने में समर्थ होता है और इस तरह उसके रागात्मक संबंध की सूचक होती है। जहाँ अप्रस्तुत रूप में बिंब न दिया जाकर प्रस्तुत रूप में दिया जाता है वहाँ वह वर्णन ही कवि की रागात्मकता को प्रकट करता है। जैसे निराला के—वह आता दो टूक कलेजे के करता— में उनकी भिखारी के प्रति रागात्मकता का स्पष्ट परिचय मिलता है यहाँ बाह्य वस्तु जगत् के साथ संबंध बिंब द्वारा ही प्रकाशित हुआ है।

(७) अमूर्त भावों व विचारों को मूर्तता प्रदान करना। काव्य हमें सामान्यधरातल से उठाकर अलौकिकत्व की ओर ले जाता है। वह हमें वैशिष्ट्य से मुक्त करके सामान्य बना देता है। यह व्यक्तित्व मोक्ष रसात्मकता की स्थिति है पर काव्य की अभिव्यक्ति इसके विपरीत होती है वह सामान्य को विशिष्ट बन कर प्रस्तुत करती है। यहाँ सामान्य रहता है भाव और विशिष्टता लाता है बिम्ब। इस रूप में भाव और बिंब अन्योन्याश्रित हैं। बिंब ही भाव की अमूर्तता को रूपायित करता है। आलोचक अभी अमूर्त

१ अपरा : निराला, पृ ८-२

भावों के अभिव्यक्ति मूर्त रूप को भी बिम्ब कहता है। वैसी का कथन भाव के साथ बिंब के अभेद संबंध को पूर्णता से प्रतिपादित करता है।

कविता में सदैव जहां कवि गूढ़ और सबल भावों का चित्रण करता है। वहां अनिवार्य रूप से उसे बिंब का आश्रय लेना पड़ता है। मात्र शब्दों के द्वारा भाव की प्रेषणीयता नहीं की जा सकती बिंब ग्रहण उसके लिये अनिवार्य है। सुख-दुःख क्षोभ हास्य सब अमूर्त भाव हैं जो काव्य में बिंब द्वारा रूपायित होते हैं। यहां अमूर्त आनंद और रुदन को रूपायित करने का जायसी का एक प्रयत्न दृष्टव्य है

तहां हंससि तू मोसौं किये औरु सौं नेहु
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरिसै मेहु।

तू अन्य स्त्री से प्रीति करके मुझसे क्यों हँसी करता है, तेरे मुख पर तो प्रसन्नता की बिजली चमकती है और मैं पीड़ा से रुदन करती हूं अर्थात मेरे मुख पर वर्षा हो रही है। प्रसन्नता व हास्य की व्यंजना करने में बिजली का बिंब बड़ा समर्थ बन पड़ा है, इसी प्रकार क्षोभ अमर्ष दुःख से रुदन करने की व्यंजना के लिये मेघ के बरसने का बिंब बड़ा सार्थक है, दोनों ही बिंब अमूर्त भावों को मूर्तता प्रदान करने वाले हैं। इनके अभाव में यह भाव कभी अभिव्यक्ति न हो सकते थे।

प्रसाद की लज्जा का वर्णन इस दृष्टि से विशेष रूप से उल्लेखनीय है। लज्जा एक अमूर्त भाव है जिसे प्रसाद ने बिंबों द्वारा प्रकट किया है। लज्जा जैसे सूक्ष्म और अस्पष्ट भाव को कैसे हो झिलमिल परिधान दिये गये हैं

कोमल किसलय के अंचल में
नन्ही कलिका ज्यों छिपती-सी।
गोधूली के धूमिल पट में,
दीपक के स्वर में दिपती-सी।
मंजुल स्वप्नों की विस्मृति में
मन का उन्माद निखरता ज्यों।
सुरभित लहरों की छाया में
बुल्ले का विभव बिखरता ज्यों।

१ To speak of images and ideas as different in kind is a convenience of language in fact when we think of an image or an idea we are postulating an entity in order to describe a process. — —an image is a perceptual entity which is most clearly to be understood in analytical thinking. If an idea is introduced into poetic activity it takes on something of the character of an image and an image in technical activity will become an idea. —Poetic Process, G Whalley page 130

बैठी हो माया में छिपती,
        अधरों पर अंगुली धरे हुए।
माधव के सरस कुतूहल का,
        आंखों में पानी भरे हुये।
नीरव निशीथ में लतिका सी
        तुम कौन आ रही हो बढ़ती।
कोमल बांहें फैलाए सी,
        आलिंगन का जादू पढ़ती।[1]

यहाँ अस्पष्ट नारी मूर्ति द्वारा लज्जा जैसे सूक्ष्म भाव को अभिव्यक्त किया गया है। वस्तुतः यह सारा वर्णन ही जो लज्जा को रूप देता है बिम्ब द्वारा अरूप को रूप बना देने के कार्य का सुन्दर उदाहरण है। इस छाया मूर्ति के अभाव में संभवतः लज्जा भाव अनभिव्यक्त ही रह जाता। यह अस्पष्ट-सी नारी प्रतिमा जहाँ अपनी वर्ण-रेखाओं द्वारा लज्जा की प्रकृति का उन्मीलन करती है वहाँ स्वयं अस्पष्ट बनकर लज्जा की छायात्मकता को भी प्रदर्शित करती है। इस रूप में लज्जा भाव की अभिव्यक्ति का समस्त श्रेय बिम्ब का है। इसी प्रकार सौन्दर्य करुणा आदि को भी कवियों ने मूर्तित किया है जो बिम्ब द्वारा अमूर्त भाव की मूर्तता का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करती है। वस्तुतः अमूर्त भाव की मूर्त अभिव्यक्ति का नाम ही बिम्ब है।

(घ) मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति करना—बिम्ब केवल कवि के अमूर्त भावों अथवा विचारों को ही मूर्त नहीं करता वरन् वह कवि के आवेगमय भावात्मक क्षणों को भी अभिव्यक्त करता है। बिम्ब कवि के चरम सीमा तक पहुँचे हुए भाव को मूर्तित करता है। वह कवि के तीव्रतम हर्ष विषाद प्रेम घृणा ईर्ष्या आदि की अभिव्यक्ति है।[2] कवि के प्रत्येक भाव को वह तीव्रतम रूप में प्रस्तुत करता है और उसकी तीव्रता को पूर्ण मुखर बनाता है। जब कवि बिम्ब रचता है तब उसके भाव सीमांत तक पहुँचे हुए होते हैं इस कारण बिम्ब का माध्यम अपनाना भी आवश्यक हो जाता है। निराला के इस चित्र में

---

१ कामायनी : प्रसाद पृ ६०

२. Poet may prevail much in drawing the minds of his hearers to his own will and affection he may wind them from their former opinions. ...may move them to be of his side to mourne or to marvel, to love or to hate, to be pleased or angry to desire or to be satisfied to envy, to abhorre. to be subject to his power to speech with soever it tendeth. Henry Peacham quoted by Rosemound Tuve in Elizabethan & Metaphisical Imagery pp 181-82.

कोई नहीं छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन भर बंधा यौवन
नत नयन प्रिय कर्म रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ
करती बार बार प्रहार
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।
+ +
देखते देखा मुझे तो एक बार
उस भवन की ओर देखा छिन्नतार
देखकर कोई नहीं देखा मुझ उस दृष्टि से
जो मार खा रोई नहीं
सजा सहज सितार
सुनी मैंने नहीं जो भी सुनी झंकार।
एक क्षण के बाद वह काँपी सुघर
ढुलक माथे से गिरे सीकर
लीन होते कर्म में फिर ज्यों कहा—
'मैं तोड़ती पत्थर'।[1]

शोषित वर्ग की इस स्त्री के चित्र में कवि का उबलता हुआ विद्रोह झलक पड़ा है। स्त्री के श्रमण के बीच में 'सामने तरु मालिका अट्टालिका प्राकार' से वर्ग वैषम्य को अभिव्यक्ति मिली है। उसकी छिन्नतार 'मार खा रोई नहीं'-सी दृष्टि से शोषित वर्ग की करुणा मुखर हो उठी है। संक्षेप में इस बिम्ब में कवि का आर्थिक और वर्गगत वैषम्य को लेकर उठता हुआ प्रबल विद्रोह वाणी प्राप्त कर लेता है। तीव्रतम विरोध को प्रस्तुत करने के लिए ही ऐसे मूर्त और स्पष्ट बिम्ब का आश्रय लिया गया है।

विद्रोह की अनुभूति को ही नहीं अपने सुख दुःख के चरम क्षणों को वाणी देने के लिए भी कवि बिम्ब का प्रयोग करते हैं। उदाहरणार्थ एकाकीपन की तीव्र अनुभूति और विरह व्यथा की मार्मिक वेदना को स्पष्ट करने के लिए कवि बिम्बों का आश्रय लेता है। यह बिम्ब स्वयं में विरह एवं पीड़ा के नहीं हैं वरन् सुख और संयोग के हैं परन्तु विरोधात्मक स्थिति उत्पन्न करने के कारण यह वियोग भाव की व्यंजना करते हैं

तब याद किसी की आती है
मधुकर गुन गुन गुन सुन क्षण भर
कुछ ममता कर कुछ तरसा कर

---

१ निराला अपरा

जब कमल कली धीरे धीरे निज घूंघट पट खिसकाती है
तब याद किसी की आती है।[1]

स्पष्टतः कवि की तीव्र दुःखात्मक अनुभूति को व्यक्त करने में मधुकर व कमल कली के मानवीकरण (बिम्ब) ने बड़ा सहयोग दिया है। दुःख आदि के साथ-साथ सौन्दर्य प्रेम आदि की अभिव्यक्ति भी बिम्बों द्वारा सम्भव बन पाती है। उदास सौन्दर्य को हृदय बना देने वाला यह बिम्ब भी प्रशंसनीय है

तुम कितनी सुन्दर लगती हो जब तुम हो जाती हो उदास।
ज्यों किसी गुलाबी दुनिया में सूने खंडहर के आस पास
मदभरी चांदनी जगती हो।[2]

स्पष्टतः तीव्रतम भाव अर्थात् भावात्मक आवेग को चित्रित कर भाव व्यंजना करने में भी बिम्ब का बड़ा महत्व है यह बिम्ब का एक ऐसा कार्य है जो काव्य में इसे विशेष उपयोगिता प्रदान करता है।

समष्टि में काव्य में बिम्ब के कार्य और उसकी उपयोगिता कई रूपों में हमारे सामने आती है उसकी सघनतात्मकता अलंकरण प्रभविष्णुता भावकता सम्बद्धता वस्तु जगत् से रागात्मक सम्बन्ध की व्यंजना अमूर्त एवं मर्मस्पर्शी भावों का व्यक्तीकरण आदि अनेक कार्य काव्य में उसको विशिष्ट स्थान प्रदान करते हैं। यद्यपि उसकी उपयोगिता काव्य में बहुमुखी है और इन स्थूल विभाजनों में उसका उचित मूल्यांकन नहीं किया जा सकता फिर भी यह अध्ययन उसकी उपयोगिता के मुख्य रूपों को अभिव्यक्त करता है।

(२) बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया

बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया वस्तुतः काव्य निर्माण की प्रक्रिया है। काव्य सर्जन भाव को बिम्ब रूप में प्रस्तुत करने का ही प्रयास है। बिम्ब अथवा उसका मूलतर रूप कल्पना ही काव्य निर्माण का प्रमुख कारण है। काव्य में कल्पना अथवा चित्रों का सर्जन करना ही प्रधान कार्य है।

बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया यथार्थ में मन की प्रक्रिया है। जब चेतन रूप में हम निष्क्रिय रहते हैं अचेतन में हम बिम्बों का संकलन करते रहते हैं। ऐसे क्षणों में हम अनुभूति और भाव पर मनन (ब्रूडिंग) करते हैं। इस मनन से क्षणों के परिणाम ही काव्य में बिम्ब रूप से प्रकट होते हैं। यह मनन पूर्णतः अचेतन व्यापार नहीं है चेतन का काम भी है। अतः इसे चेतन-अचेतन मन (कांशस-अनकांशस माइंड) का व्यापार कहा जा सकता है। इस रूप में यह फ्रायड के कल्पना विषयक मत से भिन्न हो जाता है। फ्रायड काव्य और उसके संदर्भ में प्रस्तुत काव्यगत कल्पना को अचेतन मन का व्यापार मानता है। उसके अनुसार काव्य दमित वासनाओं की अभिव्यक्ति है

---

१ बाहर भरम मना : बीरव, पृ १०१
२ दुष्यन्त सक्सेना : कबीर भारती, पृ ११९

जो अधिकांश में काममूलक होती हैं। उसके अनुसार यही दमित वासनाएं एवं इच्छाएं जो उपचेतन व अचेतन में सुप्तावस्था मे पड़ी रहती हैं अनुभूति के जाग्रत हो जाने पर अचेतन से उपचेतन और फिर उपचेतन से अचेतन की ओर अग्रसर होती हैं। उपचेतन मन की अवस्था मे उनका परीक्षण और वाय परिहरण होता है और यही इच्छाएं व कामनाएं अब दोष-विनिमुक्त होकर चेतन मन की ओर अग्रसर होती हैं यहीं वह काव्यात्मक अभिव्यक्ति का रूप धारण करती हैं। परन्तु काव्य-निर्माण प्रक्रिया को केवल अचेतन तक सीमित करना उचित नहीं है उसमें कुछ चेतन प्रयत्न भी बराबर होते रहते हैं।

यद्यपि काव्य का स्वरूप आकार और अभिव्यक्ति का निर्माण अचेतन मन में होता है परन्तु उसमें सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का सामंजस्य करने वाला प्रयत्न चेतन द्वारा ही होता है। सत्यम् शिवम् सुन्दरम् से पृथक काव्य की सत्ता रह ही नहीं सकती और अचेतन की अस्पष्टता असंगठन असंतुलन आदि काव्य में प्रस्तुत सृष्टि की सुन्दरता संगठन संतुलन के निर्माता नहीं हो सकते। सुन्दरता और संतुलन का निर्माण चेतन प्रयत्न से ही होता है। काव्य में जो सौन्दर्य संगठन और संतुलन कल्पना द्वारा आता है वह कभी भी अचेतन के प्रयत्न से नहीं आ सकता वह निश्चय ही एक चेतन प्रयत्न है। कल्पना एक मानसिक प्रक्रिया है जिसका विस्तार मन के सभी स्तरों में है यह केवल शारीरिक प्रयत्नों से भिन्न है। इसी कारण इसे शारीरिक प्रयत्न (फिजिकल मैनुपुलेशन) न मानकर मानसिक संयोजन (मेन्टल मैनुपुलेशन) कहा जा सकता है। बिम्बों का प्रस्तुतीकरण अचेतन मन का कार्य है पर उसका संगठन और चयन चेतन मस्तिष्क का ही कार्य है। वस्तुतः अनेक स्मृतियाँ जो अचेतन में सुप्तावस्था में पड़ी रहती हैं अनुभूति द्वारा जाग्रत होकर काव्य में प्रकट होती हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने एक गीत में काव्य निर्माण की प्रक्रिया की व्याख्या इस प्रकार की है

बीजेर अंकुर रूपे तुलेछ जागाये ।
मुकुले प्रस्फुट वर्णे दियेछ राङाये ।
फूलेरे करेछ फल रसे सुमधुर ।
बीजे परिणत गर्भ आमि निद्रातुर ।
आलस्य मधुपार परे ओलिते भरिया ।
भेबेछिनु सब कर्म रहित पड़िया ।
प्रभाते जागिया उठि मेलिनु नयन ।
देखिनु भरिया आछे आमार कानन ।

अर्थात् संक्षेप में सोच रहा था कि समय यूं ही नष्ट हो गया। वास्तव में वह समय प्रभु ने स्वयं ग्रहण कर लिया। वह अन्तर्यामी है, इसलिए छिपे-छिपे बीज

को अंकुर बना देता है। अंकुर में मृदुल मौर मुकुल में रंग भर देता है फूल को फल और फल में मधुर रस भर देता है। मैंने प्रभात में आँखें खोलीं तो देखा मेरा सारा कानन भर गया है।

डा० हरद्वारीलाल शर्मा ने टैगोर के इस गीत को कवि के काव्य निर्माण के क्षणों में होने वाले अचेतन व्यापार का वर्णन कहा है। वस्तुतः टैगोर ने कवि के अचेतन मन का यही अपने अनचीन्हे चरणों द्वारा अभिव्यक्त किया है। अंकुर में मुकुल और मुकुल में रंगों को भर देने का कार्य जितना सूक्ष्म और अनजाने ही सृष्टा कर रहा है कवि का मानस भी उतना ही अनजाने और सूक्ष्म रूप में भाव को कल्पना और कल्पना को रूप रंग से पूरित बिम्बों के सांचे में ढाल देता है। इसी कारण कवि भी 'स्रष्टा' कहलाने का अधिकारी हो जाता है। वह अपने बिम्बों द्वारा एक सर्वथा नूतन सृष्टि प्रस्तुत करता है। बिम्बों के प्रस्तुतीकरण का यह व्यापार यद्यपि अचेतन मन करता है पर उसका सम्यक नियोजन कवि के चेतन मन के प्रयत्नों से होता है।

शुक्ल जी ने रूप-विधान (बिम्ब विधान) की चर्चा करते हुए उसको तीन भागों में विभाजित किया है

(१) प्रत्यक्ष रूप विधान।
(२) स्मृत रूप विधान।
(३) कल्पित रूप विधान।

शुक्ल जी द्वारा प्रस्तुत बिम्बों का यह वर्गीकरण वस्तुतः बिम्ब विधान का वर्गीकरण न होकर बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया के विभिन्न सोपान हैं। बिम्बों के विभाजन की दृष्टि से यह विशेष उल्लेखनीय नहीं है क्योंकि प्रथम दो—प्रत्यक्ष रूप विधान और स्मृत रूप-विधान—यथार्थतः काव्य जगत से सम्बन्ध ही नहीं रखते। स्वयं शुक्ल जी ने कहा है ऊपर गिनाए इन तीन प्रकार के रूप विधानों में से अन्तिम (कल्पित) ही काव्य समीक्षकों और साहित्य मीमांसकों के विचार क्षेत्र के भीतर लिए गये हैं और लिये जाते हैं। बात यह है कि काव्य शब्द व्यापार है। वह शब्द संकेतों द्वारा ही अन्तस में वस्तुओं और व्यापारों का मूर्त-विधान करने का प्रयत्न करता है। अतः जहाँ तक काव्य की प्रक्रिया का सम्बन्ध है वहाँ रूप और व्यापार कल्पित ही होते हैं। कवि जिन व्यापारों और वस्तुओं का वर्णन करने बैठता है वे उस समय उसके सामने नहीं होते कल्पना में ही होते हैं।[२] इनमें प्रथम दोनों रूप विधान बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया को स्पष्ट करने में पूर्ण सहायक हैं। वस्तुतः शुक्ल जी का लक्ष्य रूप-विधान के इस वर्गीकरण के अन्तर्गत मुख्यतः रूप-विधानों पर विचार करना नहीं था उनके समक्ष रसानुभूति की समस्या प्रमुख है उन्होंने यहाँ यही दिखाने का प्रयत्न किया है कि रसानुभूति प्रत्यक्ष स्मृति और कल्पना सब में हो सकती है। प्रासंगिक रूप से ही

हरद्वारीलाल शर्मा ... २

१ काव्य और कला : डा० हरद्वारीलाल शर्मा पृ० ११

२ रस मीमांसा : आचार्य शुक्ल पृ०

वह बिम्ब के विषय में कुछ कहते गये हैं। परन्तु शुक्ल जी के इस वर्गीकरण से यह अवश्य प्रतीत होता है कि बिम्ब की समस्या उनके सम्मुख प्रधान नहीं रही पर उसके विभाजन म बिम्बो की निर्माण प्रक्रिया अवश्य उनके मन में थी। जिसे वह बीच बीच में बाकी दर्ज करते गये हैं। बिम्ब के विभाजन के इस आधार पर हम बिम्ब निर्माण प्रक्रिया की पूर्णरूपेण मनोवैज्ञानिक व्याख्या कर सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में हम शुक्ल जी द्वारा दिये गये विभाजन के आधार पर बिम्ब-निर्माण प्रक्रिया का विवेचन करेंगे।

(१) *प्रत्यक्ष बिम्ब* *प्रत्यक्ष बिम्ब का अर्थ है हमारा नामरूपात्मक दृश्य मान* जगत्। जीवन में जो कुछ भी हम देखते सुनते अथवा अनुभव करते हैं सभी इसके क्षेत्र में आ जाता है। इस प्रकार प्रत्यक्ष बिम्ब के अन्तर्गत हमारे संपर्क में आने वाला सम्पूर्ण जगत् आ जाता है। कवि के व्यक्तित्व का उदय यहीं से होता है। प्रत्यक्ष जीवन में जो व्यक्ति जितना ही अधिक भावुक अथवा अनुभूतिप्रवण होगा वह काव्य रचना में उतना ही अधिक सक्षम होगा। शुक्ल जी कहते हैं भावुकता की प्रतिष्ठा करने वाले मूल आधार या उपादान प्रत्यक्ष रूप ही हैं। इन प्रत्यक्ष रूपों की मार्मिक अनुभूति जिनमें जितनी ही अधिक होती है वे उतने ही रसानुभूति के उपयुक्त हैं।[1] प्रत्यक्ष रूप अथवा बिम्ब ही समस्त कल्पना और काव्य के आधार हैं।

प्रत्यक्ष बिम्बों का क्षेत्र काव्य की दृष्टि से प्रेरणा (इन्सपिरेशन) अनुभूति (फीलिंग) और भावना (इमोशन) का क्षेत्र है। कवि की प्रेरणा सदैव प्रत्यक्ष जीवन से उद्भुत होती है। कवि न उसको स्मृति से प्राप्त कर सकता है न कल्पना से ही उसका सृजन कर सकता है। प्रेरणा सदैव जीवन से प्राप्त होती है और यही काव्य का वह मूल तत्व है जिसके आधार पर अन्य व्यापार क्रियाशील रहते हैं। आलोचक स्टीफन स्पेण्डर ने अपने लेख 'द मेकिंग आफ् पोयम' में प्रेरणा की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए कहा कि प्रेरणा ही वस्तुतः काव्य का मूल उद्गम और उसका अन्तिम लक्ष्य है। यही काव्य का प्रथम और अन्तिम तथ्य है।[2] बिम्ब निर्माण में भी प्रेरणा का अपना अलग महत्व है और यह प्रेरणा निश्चयात्मक रूप से प्रत्यक्ष बिम्ब से ही उद्भूत होती है।

प्रत्यक्ष रूप विधान से अनुभूति का जन्म भी होता है जिसका बिंब निर्माण में ही नहीं काव्य निर्माण म भी महत्वपूर्ण कार्य है। बिंब के अन्तर्गत अनुभूति की चर्चा पहले ही हो चुकी है। यहां संक्षिप्त में उसके महत्व और प्रत्यक्ष रूप से उसके

---

१ रस मीमांसा। आचार्य शुक्ल पृ २६

२ Inspiration is the begining of a poem and it is also its final goal. It is the first idea which drops into the poet s mind and it is the final idea which at least achieves in words. — Stephen Spender —The Creative Process ed. B. Ghiselin. P 118

सम्बन्धों पर विचार प्रस्तुत किया जायेगा। कवि प्रत्यक्ष जीवन से ही अनुभव प्राप्त करता है इसीलिए प्रत्यक्ष का महत्त्व काव्य में विशेष है। प्रत्यक्ष से अनुभूत भाव ही काव्य में आकार ग्रहण करते हैं। वर्ड्सवर्थ ने इसी कारण कविता की व्याख्या करते हुए अनुभूति और भाव पर विशेष बल दिया था। उसने कहा कि कविता शक्तिशाली अनुभूतियों का स्वतः प्रकाशन है।[1] स्पष्टतः काव्य में अनुभूतियों का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह अनुभूतियाँ निश्चित रूप से प्रत्यक्ष बिम्बों से ही प्राप्त होती हैं। इस कारण भी काव्य रचना में प्रत्यक्ष जीवन और जगत का सहानुभूतिपूर्ण अवलोकन आवश्यक हो जाता है।

प्रत्यक्ष रूपों का भाव को जाग्रत करने के कारण भी काव्य में विशेष स्थान है। भाव अनुभूति के पश्चात् की अवस्था है। एक प्रकार से उससे उद्भूत एक अधिक विस्तृत मनोदशा है। भाव भी प्रत्यक्ष जीवन से प्राप्त होते हैं। लुईस ने भावों पर विशेष बल दिया था और उन्हें बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया का एक आवश्यक सोपान माना था।[2] संक्षेप में अनुभूति भाव और प्रेरणा—तीनों ही तत्त्व बिम्ब के लिये परम आवश्यक और स्पष्टतः ही जीवन के प्रत्यक्ष रूपों से सम्बद्ध हैं। इसके अतिरिक्त रूप विधान का काव्य में विशेष महत्त्व प्रस्तुत करने (उपमान) के कारण भी प्रत्यक्ष रूप विधान का ही क्षेत्र है। कवि जिन बिम्बों को प्रस्तुत करता है वह प्रत्यक्ष जीवन से ही गृहीत होते हैं। अन्यथा नितान्त कपोल कल्पित होने पर वह पाठकों द्वारा ग्राह्य नहीं हो सकते। कवि उन वस्तुओं को बिम्ब रूप में प्रस्तुत करता है जिनका साक्षात्कार वह कभी कर चुका है और पाठक भी उन्हीं वस्तुओं को ग्रहण करता है जिनका कभी उसके जीवन से संबंध रह चुका है बिम्ब का त्रिकोणात्मक संबंध जिसको लुईस बिंब का प्रधान तत्त्व कहता है—प्रत्यक्ष से ही सम्बन्धित है।

यहाँ यह प्रश्न उठ सकता है कि जहाँ कवि ऐसी वस्तु का वर्णन करता है जिसका प्रत्यक्ष अनुभव नहीं हो सकता जैसे प्रलय मृत्यु स्वर्ग आदि तब वहाँ प्रत्यक्ष रूपों का क्या महत्त्व रह जाता है? जैसे प्रसाद की कामायनी में प्रलय का वर्णन कामायनी के स्वर्ग के उपमान आदि। यहाँ हम यह कहना चाहेंगे कि प्रत्यक्ष का अर्थ केवल देखना या सुनना ही नहीं है वरन् वह सब भी है जिसको हम पढ़ते हैं या मन से मानस साक्षात्कार कर स्मृतियों के रूप में प्राप्त करते हैं अर्थात् जिसमें हम पढ़कर व प्राचीन है। इसी कारण प्रसाद जी पुराणों वृत्तांतों आदि में

1. Poetry is the spontaneous overflow of powerful feelings, it takes its original from emotion recollected in tranquillity —Wordsworth

2. The identification of the poet with objects which appeal to his senses is the initial step in image making —Poetic Image C.D Lewis, page 67

संस्कारों की प्राप्त मान्यताओं के आधार पर प्रलय का इतना सजीव वर्णन है पाये और जायसी अनश्रुतियों से सामग्री ग्रहण कर स्वर्ग को स्थापित कर सके। कवि की कल्पना शक्ति बड़ी प्रबल होती है। प्रत्यक्ष का तनिक सा आधार पाकर ही वह अपूर्व नूतन उद्‌भावनाएं कर लेता है पर प्रत्यक्ष का आधार उसमें रहता अवश्य है। बिम्बों के विषय भी यद्यपि कवि नये नये खोजकर लाते हैं पर वह कल्पित नहीं होते हम उन का आत्म साक्षात्कार कर चुके होते हैं या ग्रहण ही कर सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब का समस्त लोक प्रत्यक्ष जीवन से अनुप्राणित है बिम्ब की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूपों का बड़ा योग है यह बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया के प्रथम सोपान हैं।

(२) स्मृत बिम्ब बिम्ब सर्जन का दूसरा चरण स्मृत रूप विधान है। स्मृति बिम्ब निर्माण का एक आवश्यक तत्व है।[१] वह सभी वस्तुएं और व्यापार जो कवि प्रत्यक्ष देखता सुनता या अनुभव करता है तब उसकी स्मृति में आकर स्थित हो जाते हैं और जब कवि काव्य सर्जन में प्रवृत होता है तब समानता सादृश्यता तुलना अथवा सामान्य वर्णन के लिए अपनी स्मृति से ही वस्तुओं और व्यापारों का ग्रहण करता है क्योंकि प्रत्यक्ष वैसी कोई वस्तु उसके सामने नहीं रहती वस्तुतः काव्य में कवि अपनी स्मृतियों का ही प्रकाशन करता है। स्मृति की समृद्धि कवि प्रतिभा का एक आवश्यक अंग है। कवि में अन्य सामान्य व्यक्तियों से अधिक संवेदनशीलता के कारण स्मृति का भण्डार पर्याप्त समृद्ध रहता है और कुछ स्मृतियां तो कवि के मानस को सदा ही उद्वेलित किया करती हैं।[२] प्रेमचन्द के उपन्यास रंगभूमि का प्रमुख पात्र अन्धा भिखारी सूरदास वस्तुतः प्रेमचन्द की स्मृति से उत्पन्न है उन्होंने जीवन में ऐसे व्यक्ति को देखा था और उससे प्रभावित भी हुए थे। वही कालान्तर में नवीन रूप धारण कर उनके उपन्यास का पात्र बना। कवि जब काव्य सर्जन में रत होता है तब वह स्मृति से उन्हीं पूर्व परिचित वस्तुओं और व्यापारों को प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए एक बिम्ब देखिये

१ Memory is the central factor in the process of image-making without memory there can be no poetic creation. —Poetic Process—George Whalley page 76

२ If the art of concentrating in a particular way is the discipline necessary for poetry to reveal itself, memory exercised in a p rti cular way is the natural gift of poetic genius The poet above all else is the person who never forgets certain sense—impressions which he has experienced and which he can re live again and again as though will all their original freshness. Stephen Spender —The Creative Process. page 114

रंजित भृंग घंटावलि झरत दान मधु नीर।
कुंज कुंज आवत चली, कुंजर कुंज समीर।।[1]

यहाँ कवि ने पवन की उपमा हाथी से की है। यहाँ स्पष्ट हो सकता है कि कवि ने इस प्रकार झूम झूम कर चलते हाथी को देखा होगा और उसके क्रियाव्यापारों से प्रभावित भी हुआ होगा अन्यथा वह हाथी का ही कोई और रूप प्रस्तुत करता। यहाँ कवि वस्तु से अधिक उसके क्रिया कलाप से प्रभावित है। उसकी मस्त गति उसकी स्मृति में विद्यमान थी पवन को देखकर वह उसी दृश्य को पुनः साकार कर लेता है। स्पष्ट है कि कवि स्मृतियों द्वारा ही बिम्ब निर्माण करता है। इसी कारण रिल्के ने कहा कि प्रत्येक वस्तु पहले स्मृति द्वारा धारण की जाती है तब काव्य में प्रस्तुत की जाती है। कवि की चेतना का प्रत्येक अनुभव कवि के कर्म में प्रकट होता है। जब कवि का कृतित्व समाप्त हो जाता है अर्थात वह लिखना बन्द कर देता है तब उसका कारण होता है कि उसकी स्मृति में बिम्ब का स्थान समाप्त हो गया है और इस कारण कवि की कल्पना भी निष्क्रिय हो जाती है।[2] जब कवि के पास बिम्बों का भण्डार होता है तो किसी सादृश्य के लिए एक के बाद दूसरा बिम्ब चित्रपट की भाँति जल्दी जल्दी उसके मस्तिष्क से गुजरने लगता है। इसका चयन कल्पना द्वारा बाद में किया जाता है स्मृति का कार्य केवल वर्णों को प्रस्तुत करने का है उनका संगठन और संकलन कल्पना द्वारा होता है। परन्तु निर्माण प्रक्रिया में स्मृति के महत्व को निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है। वस्तुतः स्मृति का महत्व समस्त काव्य व्यापार में है। बिम्ब में इसका और स्पष्ट रूप प्रकट होता है।[3]

---

१ बिहारी रत्नाकर, संख्या ८८

Everything in gestation and then bringing forth. To let each impression and each germ of feelings come to completion quite in itself, in the dark, in the inexpressible the unconscious, beyond the reach of one's own understanding with deep humility and patience the birth hour of a new clarity that alone is living and artists life—in understanding as in work. Rilke quoted by G Whalley Poetic Process, page 78.

When a poet breaks down as a poet and cease to write it is because the images cease to constellate and to well up from memory the imagination has failed at its primitive and secret source. —Poetic Process, G Whalley p 83

There is no kind of mental activity in which memory does not intervene. We are most familiar with it in the case of images... fugitive elusive copies of sensations. —Principles of Literary Criticism, I.A. Richard, p 106

संस्कारों की प्राप्त मान्यताओं के आधार पर प्रसंग का इतना सजीव वर्णन दे पाये और जायसी जनश्रुतियों से सामग्री ग्रहण कर स्वर्ग को रूपायित कर सके। कवि की कल्पना शक्ति बड़ी प्रबल होती है। प्रत्यक्ष का तनिक सा आधार पाकर ही वह अपूर्व नूतन उद्भावनाएं कर लेता है पर प्रत्यक्ष का आधार उसमें रहता अवश्य है। बिम्बों के विषय भी यद्यपि कवि नये नये खोजकर लाते हैं पर वह कल्पित नहीं होते हम उन का प्रारंभ साक्षात्कार कर चुके होते हैं या सहज ही कर सकते हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब का समस्त क्षेत्र प्रत्यक्ष जीवन से अनुप्राणित है बिम्ब की प्रक्रिया में प्रत्यक्ष रूपों का बड़ा योग है यह बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया के प्रथम सोपान हैं।

(२) स्मृत बिम्ब बिम्ब सर्जन का दूसरा चरण स्मृत रूप विधान है। स्मृति बिम्ब निर्माण का एक आवश्यक तत्व है।[1] वह सभी वस्तुएं और व्यापार जो कवि प्रत्यक्ष देखता सुनता या अनुभव करता है सब उसकी स्मृति में जाकर स्थित हो जाते हैं और जब कवि काव्य सर्जन में प्रवृत्त होता है तब समानता सादृश्यता तुलना अथवा सामान्य वर्णन के लिए अपनी स्मृति से ही वस्तुओं और व्यापारों का ग्रहण करता है क्योंकि प्रत्यक्ष वैसी कोई उपादान उसके सामने नहीं रहती वस्तुत काव्य में कवि अपनी स्मृतियों का ही प्रकाशन करता है। स्मृति की समृद्धि कवि प्रतिभा का एक आवश्यक अंग है। कवि में अन्य सामान्य व्यक्तियों से अधिक संवेदनशीलता के कारण स्मृति का भण्डार पर्याप्त समृद्ध रहता है और कुछ स्मृतियां तो कवि के मानस को सदा ही उद्वेलित किया करती है।[2] प्रेमचन्द के उपन्यास रंगभूमि का प्रमुख पात्र अन्धा भिखारी सूरदास वस्तुत प्रेमचन्द की स्मृति से उत्पन्न है उन्होंने जीवन में ऐसे व्यक्ति को देखा था और उससे प्रभावित भी हुए थे। वही कालान्तर में नवीन रूप धारण कर उनके उपन्यास का पात्र बना। कवि जब काव्य सर्जन में रत होता है तब वह स्मृति से उन्हीं पूर्व परिचित वस्तुओं और व्यापारों को प्रस्तुत करता है। उदाहरण के लिए एक बिम्ब देखिये

---

१ Memory is the central factor in the process of image-making without memory there can be no poetic creation —Poetic Process—George Whalley page 76

२ If the art of concentrating in a particular way is the discipline necessary for poetry to reveal itself, memory exercised in a particular way is the natural gift of poetic genius The poet above all else, is the person who never forgets certain sense—impressions which he has experienced and which he can re live again and again as though will all their original freshness. Stephen Spender —The Creative Process. page 114

रनित भृंग घंटावलि, झरत दान मधु नीर।
कुंज कुंज आवत चलै, कुंजर कुंज समीर॥[१]

यहाँ कवि ने पवन की उपमा हाथी से की है। यहाँ स्पष्ट हो सकता है कि कवि ने इस प्रकार झूम झूम कर चलते हाथी को देखा होगा और उसके क्रियाव्यापारों से प्रभावित भी हुआ होगा अन्यथा वह हाथी का ही कोई और रूप प्रस्तुत करता। यहाँ कवि वस्तु से अधिक उसके क्रिया कलाप से प्रभावित है। उसकी मस्त गति उसकी स्मृति में विद्यमान थी पवन को देखकर वह उसी दृश्य को पुनः साकार कर लेता है। स्पष्ट है कि कवि स्मृतियों द्वारा ही बिम्ब निर्माण करता है। इसी कारण रिल्के ने कहा कि प्रत्येक वस्तु पहले स्मृति द्वारा धारण की जाती है तब काव्य में प्रस्तुत की जाती है। कवि की चेतना का प्रत्येक अनुभव कवि के कर्म में प्रकट होता है।[२] जब कवि का कवित्व समाप्त हो जाता है अर्थात वह लिखना बन्द कर देता है तब उसका कारण होता है कि उसकी स्मृति से बिम्ब का स्थान समाप्त हो गया है और इस कारण कवि की कल्पना भी निष्क्रिय हो जाती है।[३] जब कवि के पास बिम्बों का भण्डार होता है तो किसी सादृश्य के लिए एक के बाद दूसरा बिम्ब चित्रपट की भाँति जल्दी जल्दी उसके मस्तिष्क से गुजरने लगता है। इनका चयन कल्पना द्वारा बाद में किया जाता है स्मृति का कार्य केवल रूपों को प्रस्तुत करने का है उनका संगठन और संकलन कल्पना द्वारा होता है। परन्तु निर्माण प्रक्रिया में स्मृति के महत्व को निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है। वस्तुतः स्मृति का महत्व समस्त काव्य व्यापार में है। बिम्ब में इसका और स्पष्ट रूप प्रकट होता है।[४]

---

१ बिहारी रत्नाकर, संख्या ८८

२ Everything in gestation and then bringing forth. To let each impression and each germ of feelings come to completion quite in itself, in the dark, in the inexpressible the unconscious, beyond the reach of one's own understanding.. with deep humility and patience the birth hour of a new clarity that alone is living and artists life—in understanding as in work, Rilke quoted by G Whalley Poetic Process, page 78.

३ When a poet breaks down as a poet and cease to write it is because the images cease to constellate and to well up from memory the imagination has failed at its primitive and secret source. —Poetic Process, G Whalley p 83

४ There is no kind of mental activity in which memory does not intervene. We are most familiar with it in the case of images fugitive elusive copies of sensations. —Principles of Literary Criticism, I.A. Richard, p 106

(३) कल्पित बिम्ब—काव्य में प्रयुक्त समस्त बिम्ब कल्पना के द्वारा ही निर्मित होते हैं। अतः काल्पनिक बिम्बों का क्षेत्र पूर्णतः काव्यगत बिम्बों का क्षेत्र है। यह बिम्ब निर्माण का अन्तिम सोपान है। पर यह पिछली दोनों अवस्थाओं से अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। और पिछली अवस्था की ही एक आगामी अवस्था है। प्रत्येक काव्यगत बिम्ब को प्रत्यक्ष एवं स्मृति का आश्रय अवश्य लेना पड़ता है। केवल कल्पना से उद्भूत बिम्ब कभी सफल नहीं हो सकते। शुक्ल जी ने कल्पना के विषय में कहा था "काव्य के प्रयोजन की कल्पना वही होती है जो हृदय की प्रेरणा से प्रवृत्त होती है और हृदय पर प्रभाव डालती है। हृदय के मर्मस्थल का स्पर्श तभी होता है जब जगत या जीवन का कोई सुन्दर रूप मार्मिक दशा या तथ्य मन में उपस्थित होता है।"[1] यही बात काव्यात्मक बिंब के विषय में कही जा सकती है। कल्पित बिम्ब का क्षेत्र चयन संगठन सामंजस्य आदि का क्षेत्र है। कवि अपनी स्मृति से कल्पना से बिम्बों का निर्माण करता है। उन्हें भावना एवं परिस्थिति के अनुरूप बनाकर प्रस्तुत करता है तभी वह एक सफल बिम्ब कहा जा सकता है। जैसे इस वचन में

सूनी नीलिमा पर विलीन तारे यों दीप रहे हैं
चमक रहे हों नील चीर पर बूटे ज्यों चाँदी के
या प्रशांत निस्सीम जलधि में जैसे चरण २ पर
नील वारि को फोड़ ज्योति के द्वीप निकल आये हों।

यहाँ कवि ने भावानुरूप बिम्बों की योजना की है। नीले वस्त्र पर चाँदी के बूटों की कल्पना अभिनव है पर केवल चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं है। प्रकाश का आभास दिखाने में चाँदी शब्द अक्षम है। इसीलिए कवि को दूसरे बिम्ब में केवल द्वीप न रखकर ज्योति के द्वीप पद रखना पड़ा है। यहाँ कवि की स्मृति से चयन और संगठन करके कल्पना ने उन्हें सुन्दर रूप में प्रस्तुत किया है। काल्पनिक निर्माण ही काव्य निर्मिति की पूर्णता है।

समष्टि में बिम्ब निर्माण की इस प्रक्रिया में सारा व्यापार अन्तिम रूप विधान (काल्पनिक) में पूर्ण होता है। परन्तु इससे पहले दो सोपानों का भी अपना विशिष्ट महत्व है। एक के भी न होने से बिम्ब प्रक्रिया अपूर्ण रह जाती है। ऐसी स्थिति में कवि कभी बिम्ब निर्माण नहीं कर सकता। बिम्ब की प्रक्रिया प्रत्यक्ष स्मृति कल्पना के तीन रूपों में ही पूर्ण होती है। अतः बिम्ब के निर्माण में इनका विशेष महत्व है। वस्तुतः यह प्रक्रिया मन प्रक्रिया है। इसलिए इसमें प्रत्यक्ष स्मृति आदि का स्थान निश्चित है। कल्पना भी अतः मन का ही व्यापार है। बिम्ब के ये तीनों सोपान

१ रस मीमांसा—रामचन्द्र शुक्ल पृ० २६१
२ उर्वशी—दिनकर, पृ० ५

उसके मनोवैज्ञानिक विकास अथवा कवि के बिंब प्रस्तुत करने के आंतरिक व्यापार का विश्लेषण करते हैं। पर जैसा पहले ही कहा जा चुका है काव्य का निर्माण काल्पनिक बिम्बों से ही होता है। बिम्ब स्मृति से ज्यों के त्यों गृहीत नहीं किये जाते वरन् उन्हें कुछ परिवर्तन कुछ परिवर्द्धन के साथ काव्य में प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्यक्ष और स्मृति का कार्य प्रत्येक व्यक्ति में होता है। पर कल्पना की क्षमता अथवा बिंबों के काल्पनिक निर्माण की शक्ति प्रत्येक में नहीं होती। इसी के आधार पर एक व्यक्ति कवि बन जाता है और दूसरा नहीं। काव्य का बिम्ब विधान पूर्णतः काल्पनिक बिम्ब विधान है। प्रत्यक्ष और स्मृति इस बिम्ब विधान की दो सीढ़ियाँ हैं।

४ बिम्ब की स्थिति—बिम्ब के विषय में इतना जान लेने पर यह प्रश्न स्वतः ही उठता है कि काव्य में प्रस्तुत बिम्ब की क्या स्थिति है? बिम्ब काव्य के किसी अंश में रहता है या समग्र कविता बिम्ब है? अगर उसका स्थान काव्य के किसी अंश में है तो वह अंश कौन से हैं? वस्तुतः बिम्ब का महत्त्व उसकी समग्रता में ही है और पूरी कविता स्वयं में एक बिम्ब होती है पर काव्य के अंशों में भी उसकी अभिव्यक्ति होती है। काव्य में कोई वाक्य या उसका कोई एक पद भी बिम्ब दे सकता है। कभी कभी केवल एक शब्द बिम्ब को जीवन्त बनाने की शक्ति रखता है और कभी कभी सभी शब्द अर्थात् पूरा पद मिलाकर एक बिम्ब प्रस्तुत किया जाता है।

भाषा के माध्यम से देखने पर बिम्ब को दो भागों में रखा जा सकता है। (१) जहाँ सभी वाक्य अथवा एक पूरा वाक्य एक ही बिम्ब देता हो। (२) जहाँ केवल एक वाक्यांश अथवा केवल एक शब्द मात्र बिम्ब प्रस्तुत करने में समर्थ हो।

(१) वाक्य अथवा वाक्यों के बिम्ब—काव्य में अधिकतर बिम्ब में प्रयुक्त प्रत्येक वाक्य प्रत्येक शब्द बिम्ब को प्रस्तुत करने में योग देते हैं। अधिकतर जहाँ बिम्ब अधिक समष्ठित या सांगरूपक के रूप में आता है वहाँ वाक्य का प्रत्येक पद बिम्ब-विधान करता है। ऐसे स्थलों पर वाक्य अथवा वाक्यों में प्रस्तुत प्रत्येक संज्ञा क्रिया आदि बिंब निर्माण में सहायता देती है। उदाहरण के लिए कामायनी का एक प्रसिद्ध रूपक उद्धृत है:

सिन्धु सेज पर धरा वधू अब
तनिक संकुचित बैठी-सी
प्रलय-निशा हलचल स्मृति में
मान किए-सी ऐंठी-सी।[1]

यहाँ 'सेज' और 'वधू' संज्ञाएँ, 'संकुचित' विशेषण 'मान किए' 'ऐंठी' आदि क्रियाएँ—सभी बिंब को प्रस्तुत करने में सहायक हुई हैं। संज्ञाएँ सादृश्य स्थापित करने में विशेषण व क्रियाएँ साधर्म्य स्थापित करने में विशेष रूप से सफल हुई हैं। यहाँ स्पष्टतः देखा जा सकता है कि किसी एक क्रिया अथवा विशेषण पर ही बिम्ब आधारित नहीं है वरन् उसका प्रत्येक वाक्यांश बिम्ब की प्रतीति कराने में योग

१ कामायनी—प्रसाद, पृ ३४

देता है। यहाँ सेज और वधू के रूप की भी उतनी ही महत्ता है जितनी ऐंठने और मान करने की मुद्रा की। किसी एक के भी अभाव में बिम्ब विशृंखलित हो सकता है।

जायसी का भी एक सांग रूपक द्रष्टव्य है

मीर गंभीर कहाँ हो पिया तुम्ह बिनु फाट सरोवर हिया।

विरह के कारण नागमती का हृदय उसी प्रकार विदीर्ण हो गया है जिस प्रकार सरोवर के पानी के सूख जाने पर उसके तल की मिट्टी विदीर्ण हो जाती है। यह पूरा रूपक नागमती के विरह की व्यंजना के लिए प्रस्तुत किया गया है नागमती के दुखित और व्यथित हृदय को प्रेषणीय बनाने के लिए सरोवर की मिट्टी के फटने का रूप चित्र दिया गया है। यहाँ 'नीर' और 'सरोवर' संज्ञाएं साधर्म्य के आधार पर बिम्ब को प्रस्तुत करती हैं। 'गंभीर' विशेषण नीर और रत्नसेन के साम्य को अधिक गहरा व स्पष्ट बना देता है। 'फाट' क्रिया से उसके हृदय की विदीर्ण अवस्था की व्यंजना होती है। 'फाट' में हृदय के विदीर्ण होने की सारी ध्वनियां तक सम्मिलित हो गई हैं। यह पूर्णतः सस्वर शब्द है जो साधर्म्य के आधार पर प्रस्तुत किया गया है। इस रूपक में भी प्रत्येक संज्ञा क्रिया और विशेषण भाव को मूर्तित करने में सहायता देते हैं। इस प्रकार अन्य बिम्ब भी देखे जा सकते हैं। बिहारी की उत्प्रेक्षा में भी यही बात है।

सोहत ओढ़ पीत पट स्याम सलोने गात

मनो नीलमनि सैल पर आतप परयौ प्रभात[1]।

यहाँ परयौ क्रिया कोई बिम्ब नहीं प्रस्तुत करती बिम्ब की दृष्टि से वह निष्प्रयोजन है परन्तु फिर भी प्रस्तुत और अप्रस्तुत—दोनों में बिम्ब बनता है क्योंकि वहाँ प्रस्तुत संज्ञा और विशेषण बड़े व्यंजक हैं। प्रस्तुत में आये दोनों विशेषण पीत स्याम और सलोने—प्रस्तुत वस्तुओं पट और गात को रंगों से पूर्ण कर देते हैं, वह इसी रंग की सामर्थ्य (कलरफुलनस) के कारण बिम्ब सफल हुए हैं। अप्रस्तुत योजना भी बिम्ब प्रधान है। 'नीलमनि सैल'—में विशेषण और संज्ञा दोनों हैं संज्ञा गुण (प्रभाव) साम्य पर आधारित है। विशेषण नील उसको रंगरूप से पूर्ण कर देता है। प्रभात दूसरी संज्ञा है जिसमें रंग की उज्ज्वलता को प्रस्तुत करने और पीतपट का बोध कराने की पूरी शक्ति है। यहाँ बिम्ब का मुख्याधार संज्ञा और विशेषण है। क्रिया का इस बिंब में कोई योगदान नहीं है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि सांग रूपक में काव्य का केवल एक अंश बिम्ब नहीं देता है वरन् प्रत्येक अंश बिंब देता है। इस प्रकार सांग रूपक में बिम्ब की स्थिति एक से अधिक क्रियाओं विशेषणों संज्ञाओं में मानी जा सकती है। केवल एक शब्द के बिंब से सांग रूपक नहीं बन सकता।

---

१ बिहारी—रत्नाकर, पृ १८७

वाक्यों में सांग रूपक न होने पर भी बिंब बनता है। रूपक के न होने पर भी कई स्थलों पर कोई वाक्य अथवा एक पूरा वाक्य बिंब देते हैं और वहाँ प्रत्येक संज्ञा क्रिया आदि इस ओर क्रियाशील रहती हैं। यथा

कहा हँसनि तू मो सों किए बीज लौं मेहु।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरिसै मेहु।

यहाँ बिजली और मेह दोनों का रूप प्रस्तुत किया गया है। बिम्ब केवल वाक्यांश में न होकर 'चमकै बीजुरी' 'बरसै मेहु' चार वाक्यांशों में है। चमक और बरिसे दोनों क्रियाएँ हैं जो व्यंजित भाव को मूर्त करती हैं। बिजली और मेह क्रमशः हँसी और रुदन को व्यक्त करते हैं।

वाक्यों और वाक्य से निर्मित बिंब मुहावरों और लोकोक्तियों के द्वारा भी प्रस्तुत होता है। मुहावरे और लोकोक्तियाँ अधिकतया बिंबात्मक होती हैं। उनका जन्म किसी घटना या कथा से होता है वहाँ चित्रात्मकता सदैव बिंब के मूल में होती है और इसलिए वह प्रायः रूपात्मक होते हैं। यथा

धै निसि धनि जस ससि परगसी।
राजा देखि भुइमि फिर बसी।

यहाँ 'भुइमि फिर बसी' मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया गया बिंब है। यह बिंब बड़ा व्यंजक है, अपने पीछे विचारों की एक शृंखला छोड़ जाता है। राजा ने रानी को रात में चन्द्रमा के समान प्रकाशित होते देखा और अनुभव किया कि वह भूमि फिर पल्लवित हो गई है। यह राजा की मनोवृत्ति परिस्थिति रानी का सौन्दर्य, सबको ही मुखर करता है। यह बिंब भी वाक्य अथवा वाक्यों से प्रस्तुत बिंब की श्रेणी में ही आता है।

(२) वाक्यांशों में बिम्ब—वाक्यों अथवा वाक्य के अतिरिक्त ऐसा भी होता है कि बिंब ग्रहण करान में केवल एक शब्द का ही महत्व हो। अकेला वही वाक्यांश बिंब प्रस्तुत करने की पूर्ण सामर्थ्य रखता है। ऐसी स्थिति में बिंब की सफलता एक ही शब्द अथवा एक ही वाक्यांश पर निर्भर करती है, वहीं उस प्रस्तुत बिंब का आधार स्तम्भ होता है। एक शब्द से बिंब ग्रहण अधिकतर प्रस्तुत बिंब विधान में होता है। अप्रस्तुत योजना में रूपक का कुछ न कुछ अंश अवश्य रहता है और हम यह कह चुके हैं कि रूपक में केवल एक शब्द या वाक्यांश बिंब नहीं बना सकता एक से अधिक वाक्यांश ही अप्रस्तुत योजना (रूपक) में बिंब बनाते हैं। परन्तु प्रस्तुत योजना में वहाँ एक ही वाक्यांश बिंब देता है वहाँ उसका स्वतन्त्र रूप से महत्व होता है और बिंब की सफलता का श्रेय भी इस एक वाक्यांश को जाता है।

वाक्य को मुख्यतः तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है (१) क्रिया, (२) विशेषण और (३) संज्ञा।

के लिए आवश्यक है। उदाहरणार्थ

सतगुरु सुआ के नाऊँ बारी सुनि पाए जस धाव मजारी।

यहाँ मजारी (बिल्ली) संज्ञा स्पष्टतः बिम्बात्मक है जो उसकी व्यंजनात्मकता का परिणाम है। यहाँ हम बिल्ली से केवल चार पैर वाले जानवर का अर्थ नहीं लेते वरन् सन्दर्भ के कारण उसके चुपके से झपट्टा मारने धीरे-धीरे आक्रमण करने आदि का रूप सेवकों पर आरोपित करते हैं। यहाँ संज्ञा द्वारा बिम्ब पूर्ण सफल हुआ है। एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है

मानस प्रेम भयउ बैकुंठी नाहीं तो काह छार एक मूठी।

यहाँ छार (क्षार—राख) संज्ञा निस्सारता तुच्छता व्यर्थता आदि भावनाओं को मूर्तित करने का प्रयत्न करती है। यहाँ भी वह इन भावों की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति करती है। अधिकांशतः जहाँ परिकर अलंकार का साधन संज्ञा होती है वहाँ संज्ञा में बिम्ब प्रस्तुत करने की सामर्थ्य रहती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि वाक्यांशों में भी ऐन्द्रियता आदि के आधार पर प्रायः सुन्दर बिम्बों का निर्माण होता है।

समष्टि में कहा जा सकता है कि बिंब की स्थिति काव्य में वाक्य अथवा वाक्यांश किसी भी रूप में रह सकती है। वाक्यांशों में प्रायः क्रियाएं एवं विशेषण—भावगत साधर्म्य अथवा सादृश्यता को प्रदर्शित करते हैं और संज्ञा रूप साम्य को। वाक्यों में भी इनकी स्थिति प्रायः यही रहती है। परन्तु बिंब निर्माण दोनों ही अवस्थाओं में हो सकता है। बिंब निर्माण के लिए वर्णन में ऐन्द्रियता एवं भावोत्पादकता का गुण होना आवश्यक है इन गुणों का किसी भी माध्यम में समावेश हो जाने पर बिंब निर्माण संभव हो जाता है। अतः बिंब की स्थिति को प्रत्येक वाक्य अथवा वाक्यांश में संभव माना जा सकता है।

अन्त में इस अध्ययन से स्पष्ट है कि बिंब का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। काव्य में उसका विशिष्ट स्थान है। बिंब का सुन्दर प्रयोग काव्य की उच्चता है। यही कवि कर्म का श्रेष्ठ रूप है और कवि प्रतिभा का उत्तम परिचायक है। बिंब का गुण है भावपूरित एवं संवेदनाओं से युक्त ऐन्द्रियगम्य वर्णन जो भाव का मानस-प्रत्यक्ष कराने में समर्थ हो। इसमें बिंब के आधारभूत तत्व हैं अनुभूति भाव आवेग और ऐन्द्रियता। बिंब में इन तत्वों का होना एकान्त आवश्यक है इनके अभाव में बिंब निर्माण नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त बिंब में उत्तेजकता सीव्रता, नवीनता परिचितता उपरता औचित्य आदि गुणों का होना भी आवश्यक है, यह बिंब की सफलता के सोपान हैं। काव्य में बिंब के विशेष महत्व का कारण उसकी उपयोगिता है। बिंब काव्य में कई काम करता है जिनमें संवेदनात्मकता अलंकरण प्रभविष्णुता प्राणवत्ता चमत्कारिता बाह्य वस्तु जगत् से भावनात्मक संबंध अमूर्त भावों एवं विचारों को मूर्तता प्रदान करना मर्मस्पर्शी भावों की अभिव्यक्ति

देना आदि प्रमुख हैं। बिंब निर्माण की प्रक्रिया को भी बिंब के अध्ययन के अन्तर्गत
समझना आवश्यक है। बिंब की निर्माण प्रक्रिया एक मन: प्रक्रिया है जिसमें कल्पना
का महत्वपूर्ण स्थान है। प्रत्यक्ष स्मृति और कल्पना इस प्रक्रिया के सोपान हैं। इसको
पार कर ही बिंब की महत्वपूर्ण मंजिल आती है। भाषा की दृष्टि से बिंब काव्य
में दो रूपों में रहता है। एक वाक्य में दूसरा वाक्यांशों में। बिंब के लिए भाषा
की कोई निश्चित सीमाएँ नहीं हैं ऐन्द्रिय और भावसम्पन्न वर्णन कहीं भी और किसी
भी स्थिति में बिंब रचना कर सकते हैं।

अध्याय ६

बिम्ब और कल्पना

कल्पना

कल्पना काव्य की सबसे बड़ी विधायिका शक्ति है। यही वह तत्व है जिसके कारण कवि के भाव या विचार इतिहास धर्म या उपदेश बनने से बच जाते हैं और इन रूक्ष रूपों में अभिव्यक्ति न पाकर काव्य के सरस रूप में अभिव्यक्त होते हैं। काव्य में कवि की अनुभूतिप्रवणता चिन्तन-शक्ति ही सब कुछ नहीं है कवि की कल्पना शीलता और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी काव्य रचना में आवश्यक है। सत्य और सौन्दर्य की सृष्टि कवि कल्पना के द्वारा ही करता है। प्रत्येक कवि और प्रत्येक कलाकार के लिए कल्पना शक्ति उसकी मूल आवश्यकता है।

'कल्पना' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के 'क्लृप' धातु से हुई है जिसका अर्थ है रचना करना अथवा सृष्टि करना। परन्तु हिन्दी में यह शब्द अंग्रेजी शब्द 'इमैजिनेशन' के समानान्तर भाव को अभिव्यक्त करने के लिए प्रयुक्त हुआ है और उसी शब्द के आधार पर कल्पना का विचार एवं विस्तार हुआ है। अंग्रेजी के 'इमैजिनेशन' शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के 'इमैजिनेशियो' शब्द से हुई है जिसका अर्थ है 'रूपों की सृष्टि करना'। स्पष्ट है कि सृष्टि करना अथवा रचना करना कल्पना का मुख्य अर्थ है और रूपों की सृष्टि करना अथवा पुनः निर्माण करना एक ही वस्तु है। 'इमैजिनेशन' शब्द के मूल में जो 'इमेज' शब्द है उसका अर्थ है मूर्ति अथवा रूप। इस तरह कल्पना एक ऐसी मानसिक प्रक्रिया मानी जा सकती है जिसमें कवि मूर्ति अथवा रूपों की सृष्टि करता है।

व्यापक रूप में कल्पना केवल कलाकार की नहीं मानव मात्र की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। व्यवहार में कल्पना का प्रयोग प्रत्येक व्यक्ति की उस अन्तर्दृष्टि के लिए होता है जिसके द्वारा वह भविष्य का मानस प्रत्यक्ष कर सकता है और भूत का पुनर्निर्माण कर सकता है। हम चाहें कोई व्यापारी या नौकर हों वैज्ञानिक या अनुसंधाता हों अथवा कोई मूर्तिकार या चित्रकार हों—दैनिक जीवन में भी पग पग पर

अपनी स्वतः उद्भूत कल्पना शक्ति से कार्य किया करते हैं। इसके द्वारा ही हम भविष्य के स्वप्न का निर्माण करते हैं और स्मृति के खंडहरों में घूम आते हैं। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में यह कल्पना हमारी सहायता करती है। परन्तु मानव मात्र में स्वतः उद्भूत यह कल्पना कलाकार की कल्पना से सर्वथा भिन्न है। साधारण जगत् में कल्पना का व्यावहारिक उपयोग होता है सर्जन की प्रेरणा जनसाधारण की कल्पना में नहीं होती परन्तु कवि की कल्पना सर्जन की उत्कट प्रेरणा से भरपूर सौन्दर्य का एक अभिनव लोक रच सकने में समर्थ होती है। इसमें प्रथम को व्यावहारिक कल्पना और द्वितीय को सौन्दर्यपरक या कलात्मक कल्पना (ऐसथेटिक इमैजिनेशन) कहा जा सकता है।

कला के संदर्भ में कल्पना का अर्थ है सौन्दर्यपूर्ण नूतन सृष्टि निर्माण में समर्थ मन शक्ति। यहां सृजन की प्रेरणा के साथ साथ सृष्टा के मन में सौन्दर्य सर्जन की कामना भी रहती है। वह अपनी संकल्पात्मक वृत्ति से ऐसी सृष्टि का निर्माण करता है जो सत्यम् शिवम् और सुन्दरम् से परिपूर्ण होती है। व्यावहारिक कल्पना में सुन्दरम के तत्व का अभाव रहता है जो कि सौन्दर्यपरक कल्पना का प्रमुख तत्व है। इसी के द्वारा कलाकार भिन्नत्व में अभिन्नत्व भेद में अभेद की स्थापना करता है। व्यावहारिक कल्पना जोड़-तोड़ करके नूतन सृष्टि तो कर सकती है पर उसमें सुन्दरम के तत्व का समावेश करना उसकी सीमा से बाहर है। इसी से अक्सर अभियंता भवन की सुन्दरता के सम्बन्ध में जानने के लिए भवन निर्माता कलाकारों आरकीटेक्ट (आर्कियोलाजिस्टस) के पास जाया करते हैं।

मनोविज्ञान में कल्पना शब्द से साधारण जन मानस की कल्पना और कवि की कल्पना दोनों का आशय लिया जाता है। उनके अनुसार अनुमान (सपोजल) दिवा स्वप्न (डे-ड्रीम्स) स्वप्न (ड्रीम्स) विभ्रम (हेलुसिनेशन) और भ्रम (इल्यूजन) व स्मृति (मेमोरी) सभी कल्पना के क्षेत्र में आते हैं। मनोविज्ञान में कल्पना के दो रूप स्वीकृत हैं निरुद्देश्य और सोद्देश्य। बिना किसी इच्छा अथवा प्रयास से उत्पन्न हे संभावनाएं जो स्वतः ही हमारे मानस पटल पर आती रहती हैं निरुद्देश्य कल्पना कहलाती हैं। पर ऐसी निष्प्रयास और निष्प्रयोजन कल्पना को जिसे स्वप्न दिवा स्वप्न आदि कहते हैं काव्य में कोई महत्व नहीं दिया जा सकता। दिवा स्वप्नों में एवं स्वप्नों में पाये जाने वाले असंतुलन, वायवीयशून्यता और असंगठन का कलात्मक कल्पना में कोई स्थान नहीं है। यद्यपि सौन्दर्य निर्माण की धारणा स्वप्नों आदि में भी रह सकती है, पर सर्जनात्मकता के अभाव के कारण ऐसी कल्पना सौन्दर्य पूर्ण होकर भी कलात्मक कल्पना के क्षेत्र में नहीं आती। अनुमान भ्रम, विभ्रम आदि को भी सर्जन और सौन्दर्य दोनों के सामंजस्य का अभाव होने के कारण कलात्मक कल्पना की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। 'साहित्य में भाव के स्तर पर दृष्ट वस्तुओं में अदृष्ट

सम्बन्ध सूत्रों को खोज निकालने वाली मानस-क्रिया का नाम कल्पना है।[1] अथवा 'पूर्व अनुभूतियों की पुनर्योजना से अपूर्व की अनुभूति उत्पन्न करने की क्रिया या शक्ति" कल्पना है। स्पष्ट है कि साहित्य में कल्पना का कार्य नवनिर्माण है। यह पूर्वानुभूतियों या स्मृतियों का पुनर्निर्माण करती है और प्रत्यक्ष रूपों में अप्रत्यक्ष संबंध सूत्रों द्वारा पुनर्निर्मित को नवीन रूप में प्रस्तुत करती है। प्रस्तुत अध्याय में हम 'कल्पना' शब्द से कलात्मक कल्पना के इसी रूप का आशय लेंगे।

कल्पना के संबंध में संस्कृत काव्यशास्त्री मौन हैं। उन्होंने प्रतिभा को काव्य निर्माण का मूल कारण माना है। उन्होंने कहा है कि पूर्वजन्मों के फल से प्राप्त प्रतिभा कवित्व का बीज है इसके अभाव में काव्य सृष्टि असम्भव है। यदि हो भी जाय तो हास्यास्पद ही बन पावेगी।[3] यह प्रतिभा काव्य की उत्पत्ति का प्रधान हेतु है। काव्य प्रकाशकार मम्मट ने काव्य हेतुओं की चर्चा करते हुए काव्य रचना की शक्ति लोक शास्त्र के अवलोकन की चतुराई एवं अभ्यास को काव्य का हेतु बताया।[4] यहाँ काव्य रचने की शक्ति से तात्पर्य प्रतिभा का ही है। वस्तुतः संस्कृत समीक्षकों द्वारा विवेचित यह प्रतिभा कल्पना की ही समानधर्मी है, उसी का एक रूप है। प्रत्येक प्राणवान नवोन्मेषशालिनी अथवा अपूर्व वस्तु के निर्माण में समर्थ प्रज्ञा ही प्रतिभा है।[5] जो कल्पना का ही दूसरा नाम है। राजशेखर द्वारा किये गए कल्पना के दो विभाग 'कारयित्री' और 'भावयित्री' संघटनात्मक और भावात्मक कल्पना के ही दो रूप हैं। संस्कृत विद्वानों द्वारा विवेचित 'प्रतिभा' कल्पना का एक पर्याय प्रतीत होती है।

कल्पना के स्वरूप का विचार करते हुए विद्वानों ने उसे काव्य की मूल उद्गम शक्ति कहा है। पाश्चात्य समीक्षकों का ध्यान सर्वप्रथम कल्पना की ओर गया था सभी विद्वानों ने इस पर अपना मत प्रकट किया। यहाँ हम उनकी मान्यताओं को देखते हुए कल्पना के स्वरूप को समझने का प्रयत्न करेंगे।

महान् दार्शनिक प्लेटो ने कला को जीवन का अनुकरण[6] माना था। उसने कल्पना को 'असत्य' के रूप में स्वीकार किया था। उसकी कल्पना विषयक यह मान्यता कला से सम्बन्धित न होकर रहस्य और ईश्वर से सम्बन्धित थी जिसके

---

१ कल्पना और छायावाद : केदारनाथ सिंह पृ० १
२ हिन्दी साहित्य कोश—हरद्वारीलाल शर्मा पृ० २ ५
३ कवित्वस्य बीजम् कवित्व बीजम् । जन्मान्तरगत संस्कार विशेषः कश्चित् । यस्माद्विना काव्यं न निःसरेत् निःसृतं वा हास्यायतनं स्यात् । —१६ काव्यालंकार सूत्र वृत्ति
और—शक्तिः कवित्व बीज रूपः संस्कार विशेषः यं विना काव्यं न प्रसरेत् प्रसृतं वा उपहसनीयं स्यात् —वृत्ति १।३ काव्यप्रकाश—मम्मट
४ शक्तिर्निपुणता लोकशास्त्र काव्याद्यवेक्षणात् ।
काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास इति हेतुस्तदुद्भवे ।। १।३ काव्यप्रकाश—मम्मट
५ प्रज्ञानवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा मता । अपूर्व वस्तु निर्माणक्षमा प्रज्ञा—लोचन
६ Art is the imitation of life — Plato

बिम्ब और कल्पना—

कारण कल्पना का उत्तम भ्रम का समानान्तर समझ लिया था। परन्तु अरस्तू ने इस मान्यता को नहीं स्वीकार किया। उसने माना कि कला जीवन का रूप अनुकरण मात्र नहीं है वरन् उससे 'कुछ अधिक' है। अरस्तू की यही कुछ अधिक की धारणा कालान्तर में कल्पना के रूप में पल्लवित हुई। उसने कल्पना को सामञ्जस्य लाने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठापित किया। इससे प्रतीत होता है कि कल्पना के स्वरूप और उसके तत्त्वों को यद्यपि ठीक-ठीक नहीं समझ पाया परन्तु कल्पना का अनुभव उसने अवश्य किया था।

रोमान्टिक कवियों और उस काल के समीक्षकों ने कल्पना पर पर्याप्त विचार किया। रोमान्टिक काल से पूर्व लाक आदि ने कल्पना का कोई महत्त्वपूर्ण स्थान नहीं दिया था[1] परन्तु रोमान्टिक कवि ब्लेक ने घोषित किया कि केवल एक ही शक्ति काव्य का निर्माण कर सकती है वह है कल्पना।[2] उसने कहा कल्पना का संसार अनन्तता का संसार है। वह ऐसा पवित्र स्थान है जहाँ इस पार्थिव शरीर का अन्त हो जाने पर हम सब जायेंगे। कल्पना का यह विश्व असीम अनन्त और शाश्वत है।[3] ब्लेक ने काव्य में कल्पना की आवश्यकता तो समझी पर उसका तात्त्विक विवेचन उसके कथनों में प्रकट न हो सका। उसने कल्पना को आध्यात्मिकता का आवरण पहना कर देखा है। उसके मतानुसार कल्पना ईश्वर की एक स्थानापन्न है। ब्लेक की यह रहस्यवादी व्याख्या कल्पना के किसी स्पष्ट रूप को सामने नहीं रखती। उस अनन्त रहस्य की तरह इसका स्वरूप भी धुंधला और अस्पष्ट है। यद्यपि सभी रोमान्टिक कवियों ने कल्पना की व्याख्या अतीन्द्रिय ढंग से की है परन्तु आध्यात्मिकता का इतना अधिक आरोपण और किसी ने नहीं किया है।

कालरिज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बायोग्राफिया लिटरेरिया' में कल्पना की सर्वप्रथम प्रौढ़ व्याख्या की उसने कल्पना को प्राथमिक और प्रतिनिधि (प्राइमरी एण्ड सेकेण्डरी) दो भागों में विभाजित किया है। कालरिज ने प्राथमिक कल्पना को

---

1. He assumed that in perception the mind is wholly passive a more recorder of impressions from without ~ lazy look on an external world — Romantic Imagination, C.M Bowra Page 2.
2. One power alone makes a poet Imagination The Divine Vision, Ibid page 14
3. This world of imagination is the world of Eternity it is the divine bosom into which we shall go after death of vegetated body This world of Imagination is infinite and Eternal, Ibid page 5

चर्चा करते हुए उसकी अनन्तता का संकेत किया है ।[१] उसकी प्राथमिक कल्पना पुर मानसिक प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध अनन्त सत्य से अधिक है और उसकी पुनः सृषि विधायिनी कल्पना (सेकेण्डरी इमैजिनेशन) इन्द्रियजगत् से सम्बन्धित है । यह कल्पन रहस्यवादी कल्पना दृष्टि से भिन्न उसका तात्विक रूप भी प्रस्तुत करती है ।

शेक्सपीयर ने भी कल्पना की व्याख्या की । उसने कहा—

कवि की दृष्टि एक सुन्दर आवेग पूर्ण प्रवाह में
स्वर्ग से पृथ्वी
और पृथ्वी से स्वर्ग की परिक्रमा करती है ।
और इस प्रक्रिया में उसकी लेखनी—
वायवीय शून्यता को
स्थानीय आवास एवं नाम देती है ।[२]

उसकी दृष्टि में कल्पना केवल एक वायवीय अथवा ऐन्द्रजालिक रंगीन सृष्टि ही नहीं थी वरन् वह यथार्थ जीवन और जगत् से अनिवार्य रूप से सम्बन्धित थी । वस्तुतः यह एक ऐसी अन्तर्दृष्टि है जो अतीन्द्रिय और अव्यक्त के साथ-साथ ऐन्द्रिय और व्यक्त को भी अपने विशाल आवरण में छिपा लेती है । यथार्थ को प्राप्त करने का सर्वोत्तम साधन कल्पना ही है । शेक्सपीयर की यह मान्यता कल्पना के तात्विक रूप और उसके मूर्तिकरण के गुण को प्रकट करती है ।

कीट्स ने भी कल्पना को यथार्थ जगत् से सम्बन्धित माना । उसने कल्पना की तुलना आदम के स्वप्न से की है ।[३] जिसमें आदम ने जागने पर अपनी कल्पना को अपने सामने सच बनकर खड़ा हुआ पाया था । उसने कल्पना को प्रकाशन और सर्जन दोनों कर सकने में समर्थ शक्ति माना और वस्तुतः सर्जन के द्वारा प्रकाशन

---

१ The primary Imagination I hold to be a living power and prime agent of all human perception and as a repetition in the finite mind of the eternal act of creation in the infinite I am. — Biographia Literaria — Coleridge page 159

२ The poet s eye in a fine frenzy rolling
Doth glance from heaven to earth
Earth to heaven
And as Imagination bodies forth
The forms of things unknown, the poet s pen
Turns them to shape and gives to airy nothing
A local habitation and a name.

३ Imagination may be compared to Adam s dream — he evoke and found it truth. — Writers on Writings, page 131

सम्बद्ध थी ।[1] कीट्स की यह करने की शक्ति माना जो यथार्थ से अनिवार्य रूप से मान्यता कल्पना के नवनिर्माण और यथार्थ को साकार कर देने के गुण पर बल देती है और इस प्रकार कल्पना के सर्वांगीण रूप को प्रस्तुत करती है ।

कवि वर्ड्सवर्थ ने कल्पना को विशिष्ट अन्तर्दृष्टि के रूप में देखा जो अनन्त शक्ति, विचारों और भावों से समन्वित थी ।[2] यह दृष्टि भी कल्पना के तत्त्वों और उसके गुणों को सम्यक् रूप से स्पष्ट करती है । शैली कवि ने भी काव्य को कल्पना की अभिव्यक्ति मानकर विशेष महत्त्व दिया । उसे काव्य की प्रथम आवश्यकता के रूप में स्वीकृत किया जो कवि के मानस की विशिष्ट अन्तर्दृष्टि की परिचायक अनन्त की रहस्यात्मक और इसके साथ-साथ यथार्थ जगत् से भी सम्बन्धित थी । रोमांटिक युग के पश्चात् रस्किन हैजलिट आदि ने भी कल्पना पर विचार किया । उन्होंने उसके व्यावहारिक स्वरूप पर बल दिया । पर कालरिज आदि विद्वान् कवियों की मान्यतायें तब भी समादृत थी और आज भी उन स्थापनाओं का महत्त्व अक्षुण्ण है । समष्टि में पाश्चात्य समीक्षकों एवं कवियों ने कल्पना के तात्त्विक रूप को समझा है । प्रारम्भ में अवश्य वह रहस्यवाद के आवरणों से आच्छादित रही पर कालान्तर में उसका स्वरूप स्पष्ट हो गया और वह ऐसी अन्तर्दृष्टि विशेष मानी गई जो यथार्थ और रहस्य से एक साथ सम्बन्धित थी । प्रत्यक्षीकरण अथवा साकार रूप निर्माण उसका अनिवार्य गुण था ।

हिन्दी कवियों और कला समीक्षकों ने भी कल्पना पर पर्याप्त विचार किया है । उन्होंने उसे पाश्चात्य समीक्षा से मर्यादापूर्ण रूप में ग्रहण किया । कवि पंत ने 'कल्पना के सत्य को सबसे बड़ा सत्य और ईश्वरीय प्रतिभा का अंश माना ।'[1] यह मान्यता कल्पना के यथार्थ जगत् से सम्बन्धित रूप और अतीन्द्रिय सत्ता को व्यक्त करने के रूप—दोनों के सामञ्जस्य को प्रस्तुत करती है ।

हिन्दी आलोचकों में आचार्य शुक्ल ने कल्पना की विशद् व्याख्या प्रस्तुत की । उन्होंने कल्पना को भावों के क्षेत्र में समग्र और यथार्थ से सम्बद्ध दृष्टि माना । उन्होंने कहा किसी भावोद्रेक द्वारा परिचालित अन्तर्वृत्ति जब उस भाव के पोषक स्वरूप

1 ...he saw the imagination as the power which both creates and reveals, through creating Keats accepted the works of the imagination not merely as existing in their own right but as having a relation to ultimate reality through the light which they shed on it. — Romantic Imagination, C.M Bowra, page 15.

Imagination — is but another name fore absolute power
And clearest insight, amplitude of mind
And reason in her most exalted mood.
Ibid page 19

1 आधुनिक कवि माला —सुमित्रानंदन पंत, पृ १०

गढ़कर या काट छाँटकर सामने रखने लगती है तब हम उसे सच्ची कवि कल्पना कह सकते हैं। यों ही सिर पच्ची करके बिना किसी भाव में मग्न हुए कुछ मनोखे रूप गढ़ा करना या कुछ को कुछ कहने लगना या तो बावलापन है या दिमागी कसरत सच्चे कवि की कल्पना नहीं। भावाश्रय और कल्पना में इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है कि एक काव्य समीक्षक ने दोनों का एक ही कहना ठीक समझ कर कह दिया है। कल्पना भावमय है। 'इमैजिनेशन इज इमोशन'।[1] स्पष्टतः शुक्ल जी भावशील कल्पना को काव्य का प्रमुख गुण मानते हैं। भाव के लिए अनुपयुक्त कल्पना भी व्यर्थ है। वह कुछ और हो सकती है कल्पना नहीं। शुक्ल जी कल्पना की रहस्यवादिता के पक्ष में नहीं थे क्योंकि अतीन्द्रिय सत्ता की अभिव्यक्ति मान लेने पर यथार्थ जगत् का उससे कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता जब कि कल्पना यथार्थ को प्राप्त करने का सबसे सहज साधन है। शुक्ल जी कल्पना को यथार्थ से सम्बद्ध और भावाभिव्यक्ति में अनिवार्य रूप से सहायक मानते थे।

छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा ने भी कल्पना पर विवेचन प्रस्तुत किया। उन्होंने कहा 'कलाकार यदि सत्य अर्थों में कलाकार है तो वह कल्पना को सौन्दर्यमय आकार देगा। उसमें वास्तविकता का रंग भरेगा और फिर उससे जीवन संगीत की सुरीली लय की सृष्टि करेगा।'[2] यद्यपि यहाँ कवयित्री की दृष्टि कल्पना के तात्त्विक स्वरूप को प्रकट करती है पर उन्होंने कल्पना में सुन्दरम् के तत्त्व पर विशेष बल दिया है ऐसा प्रतीत होता है। अन्य विद्वानों ने भी थोड़े मत मतान्तरों के साथ कल्पना के इसी स्वरूप को स्वीकार किया है।

कल्पना विषयक इन सभी पाश्चात्य और भारतीय मान्यताओं को जानकर समष्टि रूप में कहा जा सकता है कि कल्पना एक ऐसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है जो सत्य—आन्तरिक सत्य और बाह्य सत्य—का प्रकाशन करती है और काव्य के भावोद्रेक में सहायक होकर नूतन सृष्टि निर्माण करती है।

कल्पना को अनेक विद्वान् समीक्षकों ने अनेक भागों में विभाजित किया है। यहाँ हम कल्पना के इन विभागों को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

कालरिज ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'बायग्राफीया लिटरेरिया' में कल्पना की विशद् चर्चा के साथ-साथ उसके दो प्रमुख विभाजन किये (१) प्राथमिक कल्पना (प्राइमरी इमैजिनेशन) (२) प्रतिनिधि कल्पना (सेकेण्डरी इमैजिनेशन)। इन दोनों भेदों को स्पष्ट करते हुए उसने लिखा कि प्राथमिक कल्पना ही वस्तुतः जीवनीशक्ति है। यही मानव विचारों की प्रमुख प्रतिनिधि है। यह पार्थिव मस्तिष्क में अपार्थिव के सर्जन का पुनर्स्थापन है। इसके विपरीत प्रतिनिधि कल्पना प्राथमिक कल्पना की प्रतिध्वनि है यद्यपि यह कार्यशीलता में प्राथमिक के समान ही है परन्तु

1. प्रसाद की भूमिका आचार्य शुक्ल पृ. १७ १८
2. दीपशिखा—महादेवी वर्मा पृ. ५

गुण और कार्य प्रणाली में उससे भिन्न है।[1] आलोचक आई० ए० रिचर्ड्स ने कालरिज की प्राथमिक कल्पना की स्थापना पर विचार करते हुए लिखा कि यह कल्पना सामान्य विचार है जो संवेदना उत्पन्न करता है।[2] कवि वर्ड्सवर्थ भी कालरिज की प्राथमिक कल्पना को कल्पना नहीं स्वीकार करता। उसने कहा कि कल्पना का उन बिम्बों से कोई सम्बन्ध नहीं है जो केवल यथार्थ के ज्यों के त्यों प्रतिरूप हों वरन् यह एक अधिक उन्नत सृष्टि है जहां वस्तु जगत् से सम्बद्ध मानव मन की प्रक्रिया को ही स्पष्ट किया जाता है।[3] कालरिज के द्वारा प्रतिपादित प्राथमिक कल्पना विचार शक्ति है और प्रतिनिधि कल्पना ही शुद्ध काव्यात्मक कल्पना का स्वरूप है। क्योंकि संगठन सृजन और सौन्दर्य का संगमन उसका ही लक्ष्य है। प्राथमिक कल्पना केवल मात्र विचार शक्ति है जो अतीन्द्रिय और ऐन्द्रिय के बीच सम्बन्ध प्रतिपादित करती है, प्रतिनिधि कल्पना ही सर्जन और सौन्दर्य की विशेषताओं से समाहित होने के कारण काव्यात्मक कल्पना का रूप प्रस्तुत करती है।

कल्पना का एक अन्य भेद भी है बिम्बकल्पना (फैन्सी)।[4] वह कि काव्यात्मक कल्पना का एक प्रमुख भेद है अथवा एक प्रधान अंग है जो अनेक कारणों में कल्पना

---

१ The primary imagination I hold to be a living power and prime agent of all human perception and as a repetition in the finite mind of the eternal act of creation in the infinite I am The secondary imagination I consider as the echo of the former co-existing with the conscious will yet still as identically with the primary in the kind of its agency and differing only in degree and in the mode of its operations. Biographia Lit. Coleridge, page 159

It is normal perception that produces the usual world of senses. —Coleridge on Imagination I.A. Richards, page 58.

३ Imagination ... has no reference to images that are merely a faithful copy existing in the mind of absent external objects but a world of higher import, denoting operations of the mind upon those objects and process as of creation, or of composition governed by certain fixed laws — Preface of the Poetical Works. — W Wordsworth, page 726

४ 'बिम्बकल्पना' शब्द अंग्रेजी के 'फैन्सी' के पर्याय के रूप में लिया गया है। डा० नगेन्द्र ने इसके लिए 'ललित कल्पना' शब्द का प्रयोग किया है परन्तु मेरे विचार से ललित कल्पना ब्यूटीफुल इमैजिनेशन का अच्छा पर्याय है, फैन्सी का नहीं। अतः अतिव्याप्ति के कारण इस शब्द को न लेकर बिम्बकल्पना शब्द का ही प्रयोग किया गया है। 'बिम्बकल्पना' में ही ललित कल्पना की पूरी ध्वनि है जो फैन्सी को ठीक-ठीक व्यक्त कर सकती है। अन्य शब्द अभिरुचि आदि भी भाव [illegible] पूर्णतः व्यक्त करने की क्षमता के अभाव के कारण नहीं स्वीकार गये हैं।—लेखिका

कल्पना संकलन करती है यह जीवन और जगत् के रूपों या दृश्यों को सारा का सारा ज्यों का त्यों ग्रहण नहीं करती वरन् उनका संकलन करके सारग्रहण करती है और वस्तुओं एवं दृश्यों में आवश्यक जोड़-तोड़ करके और काँट-छाँट के पश्चात व्यवहार करती है। यह उसकी समाहार की शक्ति है। इसी प्रकार वह संग्रहण भी करती है अर्थात् एक वस्तु का कोई एक उपादान और दूसरी वस्तु का कोई अन्य उपादान अथवा व्यापार संगृहीत करके प्रस्तुत करती है। और बाह्य जगत की विभिन्न वस्तुओं को एक सूत्र में संगृहीत करके मानसिक जगत की वस्तु बना लेती है। उसका एक अन्य कार्य संस्मरण है। कल्पना हमारी स्मृति में पड़े हुए पुराने अनुभवों बिम्बों अथवा मूर्तियों को ही पुनः प्रस्तुत करती है। स्मृति में पड़े वे अनुभव मूर्तियाँ या छवियाँ आदि ही कल्पना द्वारा नये परिवेश के साथ काव्य जगत में प्रस्तुत होते हैं। कल्पना का अन्तिम कार्य संगठन है। कल्पना के संगठन का रूप भी संकलन अथवा ऐक्य विधान के अन्तर्गत समाहित किया जा सकता है। यह वह कार्य है जो कल्पनागत औचित्य की रक्षा करता है। कवि कल्पना औचित्य के आधार पर ही संगठन करती है।

प्रसिद्ध आलोचक आइ० ए० रिचर्ड्स ने अपनी पुस्तक 'प्रिंसिपल्स आव लिटरैरी क्रिटिसिज्म' में कल्पना की विशद चर्चा प्रस्तुत की। उसने कालरिज से कुछ अंशों में भिन्न कल्पना के छः कार्य बताए तो कुछ अंशों में उससे अभिन्न भी हैं। उसने कहा[1]

(१) मूर्तियाँ मुख्यतः दृश्य बिम्बों का निर्माण उसका प्रधान कार्य है।

(२) अलंकृत भाषा का प्रयोग भी कल्पना का ही परिणाम है। रूपक उपमा आदि कल्पना के ही निर्माण हैं। इनके द्वारा कल्पना रूप-वैविध्य तो लाती ही है साथ ही प्रस्तुत और अप्रस्तुत के बीच सादृश्य के कारण काव्य में एकरसता भी नहीं आने देती।

(३) साहित्य में कल्पना का एक सीमित रूप भी है जो पाठक अथवा प्रेक्षक में विद्यमान रहता है। यह पाठक को काव्य का रसास्वादन करने की क्षमता देती है।

(४) साहित्य में नाट्यकार आदि की योजना के रूप में कल्पना का एक पर्याप्त व्यापक रूप भी प्रकट होता है।

(५) इसके पश्चात साहित्य में आलोचक की बौद्धिक कल्पना (साइन्टिफिक इमैजिनेशन) भी होती है। यह काव्य के तत्वों पर आधारित रहती है। काव्य में शिल्पगत योजना इसी कल्पना का परिणाम है।

(६) कल्पना का अन्तिम और सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्य है मौलिक उद्भावना (ओरिजिनल फार्मूलेशन)। इसके कारण ही साहित्य में नये नये विषयों की खोज मार्मिक प्रसंगों की योजना एवं समर्थ जीवन्त पात्रों की रचना होती है। कल्पना

1 See Principles of Literary Criticism I.A. Richards page 139-42.

का यह पक्ष ऐक्य-विधान से सम्बन्धित है। कालरिज ने इसके लिए ही कहा है कि वह ऐन्द्रजालिक संश्लेषणात्मक शक्ति जिसे कल्पना नाम से अभिहित किया गया है, अपने को विरोधी स्थितियों और विषम गुणों के संतुलन एवं समन्वय में प्रकट करती है।

कल्पना के इन कार्यों से स्पष्ट है कि कल्पना काव्य-निर्माण के प्रत्येक क्षेत्र में कवि की सहायता करती है। काव्य के अन्तर्गत हम कल्पना का प्रकाशन तीन रूपों में स्वीकार कर सकते हैं—(१) कथा में (२) चरित्र में और (३) अभिव्यक्ति में। कथा और चरित्र में कल्पना किस प्रकार नवीन उद्भावनाएँ और अभिनव संघटन करती है, इसका विवेचन हमारा ध्येय नहीं है। यहाँ हम उसका केवल अभिव्यक्ति में व्यक्त होने वाला रूप ही लेंगे। अभिव्यक्ति में कल्पना मुख्यतः तीन रूपों में प्रकट होती है।

(१) बिम्ब
(२) प्रतीक
(३) उपमान

बिम्ब की चर्चा हम पिछले अध्याय में विस्तृत रूप से कर चुके हैं अतः यहाँ उसकी चर्चा अनावश्यक होगी। यहाँ हम अन्य दोनों कलात्मक अभिव्यक्तियों के रूपों को लेकर बिम्ब से उनके भेद एवं अभेद को स्पष्ट करेंगे और देखने का प्रयत्न करेंगे कि कल्पना के यह सभी रूप कहाँ तक एक दूसरे की सीमा रेखा को स्पर्श करते हैं।

प्रतीक और बिम्ब

कवि की कल्पना के निर्माण का एक माध्यम प्रतीक है। प्रतीक का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। गणित तर्कशास्त्र मनोविज्ञान धार्मिक कर्मकांडों ज्योतिष आदि सभी क्षेत्रों में इसका प्रयोग होता है। परन्तु सभी में इसका स्वरूप भिन्न है। साहित्यिक प्रतीक स्वच्छन्द और भावसत्ता से सम्बद्ध होते हैं जबकि अन्य क्षेत्रों में प्रयुक्त प्रतीक एक परम्परागत और सांकेतिक अर्थ मात्र को ध्वनित करते हैं। बीजगणित के प्रतीक जड़ होते हैं धर्म एवं धार्मिक कर्मकांडों के अन्तर्गत व सांकेतिकता एवं संकेत के—तात्विक सम्बन्धों पर आश्रित रहते हैं। धर्म के क्षेत्र में प्रतीकों का इतना व्यापक और विशिष्ट महत्व माना गया है कि इन्हीं के आधार पर तात्विक भेद होने के कारण

धार्मिक सम्प्रदायों (creeds) को भी प्रतीक (symbol) कहा गया है।[1] ज्योतिष आदि क्षेत्रों के प्रतीक भी साहित्यिक प्रतीकों से भिन्न सत्ता रखते हैं। कभी कभी साहित्य के अन्तर्गत भी अन्य सम्प्रदायों आदि क्षेत्रों के प्रतीकों का प्रयोग होता है। जैसे सिद्ध और नाथ साहित्य में अथवा तान्त्रिकों आदि की पदमयी अभिव्यक्ति में परन्तु उनको साहित्यिक प्रतीकों से भिन्न समझना चाहिये। सिद्धों एवं नाथों द्वारा प्रयुक्त षटदल-कमल गंगा-यमुना योगिनी आदि प्रतीक साहित्यिक प्रतीक न होकर धार्मिक प्रतीक हैं जिनके स्वरूप और अर्थ में किसी प्रकार का सादृश्य खोजने का प्रयत्न मात्र व्यर्थ ही है। सम्भवत कभी उनमें किसी प्रकार का सामंजस्य किसी ने अनुभव किया हो। वह एक प्रकार के चिन्ह (emblem or sign) के रूप में प्रयुक्त किये गये हैं। प्रतीक और उसके निहित अर्थों में साम्य का वैसा कोई आधार नहीं है। रूप धर्म प्रभाव किसी भी प्रकार की सादृश्यता का उनमें अभाव है। कबीर के काव्य में प्रयुक्त सुरति निरति उलटवासियों में आये अधिकांश प्रतीक साहित्यिक प्रतीक के शुद्ध रूप को उतना अभिव्यक्त नहीं करते जितना कि धार्मिक कर्मकाण्डों की गूढ़ प्रतीकात्मक पद्धति को। उनके 'काहे री नलिनी तू कुम्हलानी' आदि पदों में नलिनी आदि साहित्यिक प्रतीक के सुन्दर रूप को प्रस्तुत करते हैं। पर 'आकासे मुख औंधा कुआं पाताले पनिहारि' आदि पद हठयोग साधना के प्रतीक हैं साहित्य के अन्तर्गत प्रधान महत्व के अधिकारी भाव जगत् से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। न कवि के हृदय का तादात्म्य उनके साथ होता है न पाठक के हृदय की सहानुभूति ही उनके साथ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि धर्म ज्योतिष गणित आदि के प्रतीक साहित्यिक प्रतीक से भिन्न अर्थ एवं भिन्न सत्ता रखते हैं।

साहित्य के अन्तर्गत 'प्रतीक' शब्द का बड़ा व्यापक व्यवहार होता है। जिससे साधारणत उसके सही अर्थ समझने में भ्रांति हो जाती है। जिस प्रकार साधारण रूप से प्रयुक्त 'व्यंजना' शब्द शब्दशक्ति 'व्यंजना' से भिन्न है उसी प्रकार साधारणतः प्रयुक्त 'प्रतीक' शब्द भी अभिव्यक्ति के एक विशिष्ट स्वरूप 'प्रतीक' से भिन्न है। साधारणत हम पात्रों को कथा की घटनाओं को—सभी को प्रतीक कह देते हैं।

---

1 It appears as a term in logic, in mathematics in semantics and semiotics and epistemology It has also had a long history in the world of Theology (symbol is an synomym for creed) of liturgy of fine arts and of Poetry The shared element in all these current uses is probably that of something standing for, representing some else .. Algebric and logical symbols are conventional agreed upon signs, but religious symbols are based on something intrinsic, relation between sign and the thing 'signified metonymic or metaphoric The cross the Lamb the Good shepherd" — Theory of Literature—Wellek & Warren p 193

हर बिम्ब, हर उपमान भी प्रतीक की श्रेणी में रख लिया जाता है जबकि मूलतः यह अभिव्यक्ति के वास्तविक स्वरूप प्रतीक से भिन्न होता है। वस्तुतः कथा भाव, घटना उपमान बिंब आदि प्रतीकात्मक हो सकते हैं, प्रतीक नहीं। यह किसी अन्य सत्य की अभिव्यक्ति कर सकते हैं, कोई अन्य संकेत दे सकते हैं पर अभिव्यंजना में प्रकट होने वाले प्रतीक के रूप से उनका प्रयोग भिन्न ही रहेगा। प्रतीकात्मकता और प्रतीक की भिन्नता को ध्यान में रखने की आवश्यकता है। प्रतीकात्मकता या सांकेतिकता (सबस्टिटनेस) सिर्फ प्रतीक का ही धर्म नहीं है वरन् काव्य का प्रत्येक भाव प्रत्येक घटना यहाँ तक कि संपूर्ण काव्य प्रतीकात्मक हो सकता है पर वह प्रतीक नहीं है। प्रतीक का यथार्थ रूप अभिव्यक्ति में भाषा के माध्यम से प्रस्तुत होने वाला सांकेतिक शब्द है जो कवि के भावजगत से संबंधित रहता है। यहाँ हम 'प्रतीक' शब्द का प्रयोग प्रतीकात्मक के व्यापक अर्थ में न करके भाषा के एक सांकेतिक स्वरूप के अर्थ में ही करेंगे।

प्रतीक' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के प्रतियंच शब्द के आधार पर हुई है। जिसका अर्थ है प्रतिस्थान अथवा एक वस्तु के लिए किसी अन्य वस्तु की स्थापना। संस्कृत साहित्य में प्रतीक के लिए 'उपलक्षण' शब्द आया है। जिसके अनुसार जब कोई नाम या वस्तु इस रूप में व्यवहृत हो कि वह वस्तु इस गुण में अपने समान अन्य वस्तुओं के गुणों का ज्ञान भी करा दे तो उस शब्द को उपलक्षण कहा जा सकता है। परन्तु आधुनिक समीक्षा में प्रतीक शब्द जिस भाव को व्यक्त करता है वह उपलक्षण से गृहीत नहीं है। हमारी समीक्षा में यह शब्द अंग्रेजी के शब्द सिम्बल के पर्याय रूप में आया है। सिम्बल शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक क्रिया (συμβάλλειν) से हुई है जिसका अर्थ है (throwing to-gether chance encounter conflict, union in tension.) परन्तु इस धातु का भाव सिम्बल (σύμβολον) शब्द में न रह सका। यद्यपि इसी धातु से उत्पन्न एक अन्य शब्द (σύμβολον) भाव भी चिह्न (sign or token) आदि के रूप में प्रयुक्त होता है पर सिम्बल अपने स्वतन्त्र अर्थों में प्रकट हुआ। उसका विकास स्वतः हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सिम्बल शब्द या उसके पर्याय प्रतीक का विकास स्वतन्त्र रूप से हुआ है। सिम्बल में ग्रीक क्रिया का भाव लुप्त हो गया है प्रतीक में भी उपलक्षण का अर्थ समाप्त हो हो गया है।

प्रतीक के स्वरूप को समझने के लिए हमें सर्वप्रथम भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गई मान्यताओं का अध्ययन करना अपेक्षित होगा। कल्पना और उसके अन्य क्षेत्रों की भाँति प्रतीक पर भी सर्वप्रथम पाश्चात्य साहित्यकारों ने विचार किया और इसके स्वरूप एवं सीमाओं की स्पष्ट व्याख्या प्रस्तुत की। भारतीय साहित्य में प्रतीक की विवेचना आधुनिक युग से प्रारम्भ हुई जो मुख्यतः पाश्चात्य विचारों से प्रभावित रही। यहाँ पहले हम पाश्चात्य विद्वानों, तदनन्तर भारतीय विद्वानों के प्रतीक विषयक मतों का उल्लेख करेंगे।

विश्वकोश के १२ वें अंक में प्रतीक का लक्षण देते हुए कहा गया है कि अमूर्त का मूर्त द्वारा प्रस्तुतीकरण प्रतीक है। उसका कथन है कि प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य वस्तु के लिये होता है जो मस्तिष्क के सम्मुख किसी अप्रस्तुत वस्तु की सादृश्यता को अपने संबंध सूत्रों द्वारा प्रस्तुत करती है। यहां प्रतीक की अप्रस्तुत के प्रस्तुतीकरण की प्रवृत्ति और उसमें संबंध सूत्रों व मूलभूत सादृश्यता को प्रमुख स्थान दिया गया है।

रहस्यवादी कवि कालरिज ने प्रतीक की व्याख्या कुछ भिन्न रूप में की। उसके सम्मुख प्रतीक का रूप एक पारदर्शी सत्ता का रूप था जिसमें से वह 'सांत' 'अनन्त' विशेष सामान्य—सबका आभास प्राप्त कर सकता था। उसका कथन है कि प्रतीक का प्रमुख लक्षण है कि वह व्यष्टि में किसी विशेष सत्ता का अथवा विशेष में किसी सामान्य सत्ता का अथवा सामान्य में किसी विश्वव्यापी सत्ता का आभास देता है और सबसे ऊपर नश्वर म अनश्वर की झलक उत्पन्न करता है।

कालरिज की यह परिभाषा प्रतीक के तात्विक विवेचन से अधिक उसके रहस्यवादी स्वरूप को प्रकट करती है। यद्यपि अमूर्त को मूर्त रूप में प्रस्तुत करने के प्रतीक के गुण को कालरिज भी स्वीकार करता है परन्तु उसका प्रतीक को केवल सान्त या अनन्त का आभास देने वाला अनश्वर की झलक देने वाला कहना पूर्णत: उपयुक्त नहीं है यद्यपि रहस्यवादी कवियों जायसी कबीर, प्रसाद महादेवी आदि में ऐसी अतीन्द्रिय सत्ता का आभास देने वाली प्रतीक योजना मिल जाती है, फिर भी प्रतीक का रूप केवल यही है ऐसा नहीं माना जा सकता। सभी प्रतीकों का संबंध किसी अनश्वर सत्ता से ही हो यह युक्तियुक्त नहीं है। काव्य में प्रयुक्त अधिकांश प्रतीक लाक्षणिक होते हैं और वह अतीन्द्रिय सत्ता के साथ साथ ऐन्द्रिय सत्ता और भौतिक अनुभवों एवं भौतिक वस्तुओं को भी अभिव्यक्त करते हैं।

वेबस्टर ने प्रतीक के विषय में बताया कि प्रतीक अपने संबंध सामंजस्य रूढ़ि अथवा संयोग से किसी अन्य वस्तु की ओर संकेत करता है परन्तु उसका उद्देश्य

---

१ The term (Symbol) given to visible object representing to the mind the resemblence of something which is not shown but realized by association with it. —Encyclopaedia Britanica, Vol. 21 p. 700

२ A symbol is characterised by a translucence of the special in the individual, or of the general in the special, or of the universal in the general, above all by the translucence of the eternal through and in the temporal. —The States Man's Manual, Complete Works, Vol. I —S T Coleridge pp 407-8.

समानता अथवा सादृश्यता नहीं है वह मुख्यतः किसी अदृश्य वस्तु का दृश्य संकेत है।[1]

वेबेस्टर की यह परिभाषा प्रतीक के सत्य रूप को प्रकट करती है। अदृश्य वस्तु के दृश्य संकेत को आंतरिक अवस्था के बाह्य व्यक्त रूप समझा जा सकता है। आन्तरिक अवस्था में हम अनुभूति विचार और भाव आदि ले सकते हैं। प्रतीक इन्हीं का प्रतिबिम्बित करते हैं। प्रतीक के मूल में सादृश्य प्रधान अवश्य है परन्तु उसका उद्देश्य सादृश्य नहीं है। वैसे भी अधिकांश प्रतीक सादृश्य या सामम्य पर निर्मित न होकर प्रभाव साम्य की भूमिका पर स्थापित होते हैं। उदाहरण के लिए अत्यन्त प्रचलित प्रतीक शूल व फूल को देखा जा सकता है। यह सामान्यतः दुःख-सुख व्यक्त प्रसन्नता के प्रतीक हैं। यहां हम भावों और वस्तुओं म— जो प्रतीक रूप में प्रस्तुत हुई हैं अन्य किसी प्रकार का सादृश्य न होकर प्रभाव का साम्य ही है। रूप और धर्म का साम्य भी प्रतीकों में होता है जैसे सुन्दरी नायिका के लिए चन्द्र कमल आदि के प्रतीक। परन्तु अधिकांश प्रतीक रूप या धर्म के साम्य पर निर्मित न होकर प्रभाव साम्य के आधार पर ही निष्पन्न होते हैं। स्पष्ट है कि वेबेस्टर का मत कि प्रतीक का उद्देश्य समानता या सादृश्यता प्रस्तुत करना नहीं वरन् भाव का सांकेतिक रूप प्रस्तुत करना है पूर्णतः उपयुक्त है। प्रतीक का उद्देश्य सादृश्यता या समानता नहीं वरन् भाव-व्यंजना है।

W H Auden ने प्रतीक और उसके अर्थ सम्बन्ध को स्पष्ट करते हुए प्रतीक की व्याख्या इस प्रकार की है—"प्रतीक का अर्थ उसकी अपनी अनुभूति के आधार पर स्पष्ट होता है उसका अर्थ निश्चित नहीं होता है कोई भी दो व्यक्ति एक ही प्रतीक के दो भिन्न-भिन्न परिणाम निकाल सकते हैं।[2]

---

१ Symbol is that which stands for or suggests something by reason of relationship association, convention or accident but not intentional resemblance especially a visible sign for something invisible, as an idea a quality or a totality such as a state or a church Webester quoted by William Tindall, The Literary Symbol page 6

२ A symbol is felt to be such before any possible meaning is consciously recognized i.e. an object or even which felt to be more important than reason can immediately explain. A symbol correspondence is never one to one but always multiple and different persons perceive different meanings. — W H. Auden quoted by W Tindall—The Literary Symbol, p. 21

प्रतीकात्मक अर्थों में पूर्ण भिन्नता संभव नहीं है अनेक परस्पर सम्बन्ध रखने वाली भावनाएँ अवश्य उससे ध्वनित हो सकती हैं। वह अपने अर्थों में उतना निश्चयात्मक नहीं है जितना चिन्ह आदि। प्रतीक के अर्थ इसी कारण पारस्परिक सम्बन्धित कई रूपों के हो सकते हैं। उदाहरण के लिए दुख पीड़ा निराशा व्यथा आदि के प्रतीक कभी इनमें से एक कभी दो और कभी सब भावनाओं को व्यक्त करते हैं। यीट्स ने उत्कृष्ट कला के विषय में कहा था कि सच्ची कला सांकेतिक और प्रतीकात्मक होती है। उसका प्रत्येक आकार प्रत्येक भाव प्रत्येक ध्वनि प्रत्येक वर्ण किसी अवर्णनीय तत्व का संकेत होता है। पर उसके प्रतीकों की निश्चयात्मकता गणित की निश्चयात्मकता और स्थिरता नहीं होती।[1]

Poetic Process के लेखक व्हाय लैसी प्रतीक को प्रतीकात्मकता के व्यापक अर्थ में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ उसके आकार में प्रत्येक प्रतीकात्मक एवं सांकेतिक वस्तु का समाहार हो जाता है।[2] इस व्यापक रूप में प्रतीक की व्याख्या करते हुए वे कहते हैं कि प्रतीक सुविधा के लिए काव्य में उस प्रधान वस्तु के लिए प्रयुक्त होता है जो काव्य में प्रमुख और विशेष अर्थवान होती है। और इस रूप में प्रतीकात्मक विशेषण काव्य की पूर्ण परिपक्वता को प्रकट करता है।[3] यहाँ प्रतीक का अर्थ प्रतीकात्मकता से लिया गया है जिसका क्षेत्र बड़ा व्यापक है। इसमें प्रतीक के साथ साथ उपमा, रूपक बिम्ब सभी को समाहित कर लिया गया है। इस कारण यह परिभाषा प्रतीक के यथार्थ स्वरूप को प्रकट न करके काव्य की प्रतीकात्मकता के स्वरूप और महत्व को स्पष्ट करती है।

आरनाल्ड हाउसर ने भी प्रतीकात्मकता के विषय में लिखा है। वह कहते हैं प्रतीकात्मक भाषा वह है जिसमें बहिर्लोक अन्तर्लोक का हमारी आत्मा और मन का प्रतीक होता है प्रतीकात्मक भाषा अथवा प्रतीक का यह स्वरूप भी रहस्यवादी अथवा

१ True art is expressive and symbolic and makes every form every sound, every colour every gesture, a signature of some analy table essence. The permanence which symbol ensure how ever is not the permanence or certa nity of Mathematic. Yeats, quoted by George Whalley — Poetic Process, p 164

२. Poetic Process—George Whalley p 166.

३ .. the term symbol may conveniently be reserved for those poetic events which we recognize to be specially valuable, those poetic entities which bring value most sharply into focus. The adjective symbolic then refer to the fullest development in Poetic — Poetic Process George Whalley., p 166

४ Symbolic language is the language in which the world outside is a symbol of the world inside, a symbol for our soul and mind
Arnold Houser Symbols and Values p. 231

भाववादी है। साहित्यिक प्रतीक के तात्विक विवेचन का इसमें अभाव ही है।

पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रस्तुत प्रतीक के इन लक्षणों में कालरिज, कारलाइल, हाउसमर आदि की परिभाषाएँ मुख्यतः रहस्यवादी हैं और रहस्यवादी रचनाओं में प्रयुक्त प्रतीक के रूप को ही केवल स्पष्ट कर पाती हैं। उनमें सम्पूर्णता का अभाव है। अन्य सभी परिभाषाएँ उसके प्रतिस्थापन या अमूर्त के मूर्त संकेत के स्वरूप को स्पष्ट करती हैं और यह लक्षण अपने आप में पूर्ण है। इन सबके आधार पर कहा जा सकता है कि प्रतीक किसी अदृश्य या अमूर्त सत्ता का मूर्तीकरण है जो अपने सम्बन्ध या परम्परा द्वारा आकार ग्रहण करता है। प्रतीक अरूप मानवीय अनुभूतियों को व्यक्त करने का एक मूर्त माध्यम है जो धीरे धीरे व्यापक प्रयोगों में आवृत्ति के द्वारा निश्चित अर्थ ग्रहण करता है। हिन्दी विद्वानों ने प्रतीक की चर्चा को पाश्चात्य समीक्षकों से ही ग्रहण किया और उसके समग्र रूप को अपनाया है। हिन्दी साहित्य कोष में प्रतीक की परिभाषा इस प्रकार दी गई है:

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य (अथवा गोचर) वस्तु के लिये किया जाता है जो किसी अदृश्य (अगोचर या अप्रस्तुत) विषय का प्रतिविधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करती है अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्तर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतिनिधित्व करने वाली वस्तु प्रतीक है। अमूर्त अदृश्य अथवा अप्रस्तुत विषय का प्रतिविधान मूर्त दृश्य अथवा प्रस्तुत विषय द्वारा किया जाता है।[1]

हिन्दी के अन्य समीक्षकों ने प्रतीक के विषय में बहुत अधिक नहीं लिखा है। जिन्होंने प्रतीक की चर्चा की भी है उन्होंने प्रायः प्रतीक के इन्हीं कार्यों और इसी स्वरूप का पिष्टपेषण मात्र किया है। प्रतीक की कोई नवीन व्याख्या उनमें नहीं प्राप्त होती। सामान्य रूप से यही लक्षण प्रतीक के लिए सर्वमान्य है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीक किसी अदृश्य या अव्यक्त सत्ता के दृश्य और व्यक्त रूप हैं यही धर्म उपमान और बिम्ब का भी है। वस्तुतः प्रतीक उपमा या रूपक के संक्षिप्त संस्करण हैं अथवा उन्हें रूपकातिशयोक्ति भी कहा जा सकता है जिसमें उपमेय के स्थान पर उपमान प्रयुक्त किया जाता है।[2] प्रतीक के लिए यह आवश्यक है कि उसके उपमेय और उपमान में पूर्वापर सम्बन्ध हो वह केवल एक क्षण मात्र नहीं वरन् उसका सापेक्ष महत्व है वह जीवन की पर्वभूमि से ही रूप प्राप्त करता है। इसी कारण सभी विद्वानों ने प्रतीक और भाव के संबन्ध सूत्र पर विशेष बल दिया है। सम्बन्ध सूत्र का अर्थ है कि प्रतीक उस परिस्थिति उस भावभूमि में पहले रह चुका हो जिसका अब उसे प्रतिविधान करना है। परिस्थिति विशेष या संदर्भ विशेष के अभाव में उसका कोई अर्थ ही नहीं रह जाता। संदर्भ की अपेक्षा और

---

१ हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ४७१

२ आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान—डा० जगदीश प्र० मिश्र, पृ० १६६

परिस्थिति की परिचितता ही प्रतीक को रूप प्रदान करती है। 'प्रतीक जीवन के प्रवाह में स्नात होकर ही अर्थ प्राप्त करते हैं। यथार्थ जीवन के साहचर्य से ही उनमें अर्थ बढ़ते या बदलते हैं। मनुष्य के व्यक्तिगत अनुभव से असम्पृक्त रह कर न तो उनमें अर्थ आता है न व्यक्तित्व।'[1] प्रतीक का विकास सामान्य से विशेष का विकास है। प्रारम्भ में यह वस्तुएं मानवीय अनुभूतियों भावनाओं एवं परिस्थितियों के साथ सामान्य रूप से व्यवहृत होती हैं। कालांतर में वही उस परिस्थिति भाव या अनुभूति विशेष की द्योतक बन जाती है। इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए डा० हजारी लाल शर्मा ने अपनी पुस्तक 'काव्य और कला' में लिखा

सच तो यह है कि प्रतीक की सर्जना सम्भव नहीं इसका आविष्कार होता है अर्थात् जो पदार्थ है उसी को खोज निकाला जाता है। यह गुण मानस में जन्मता और पलता है। कोई भी पदार्थ प्रतीकात्मकता तभी ग्रहण करता है जब जनमन अनजाने ही उसे स्वीकार कर ले और प्रतीक का सारा अर्थ या अभिप्राय समझना न पड़े। जब कोई पदार्थ प्रतीक बन जाता है तब वह साधारण होते हुए भी असाधारण अर्थ-ज्योति का विस्तार करने लगता है।[2]

प्रतीक का काव्य में क्या उपयोग है अथवा काव्य में वह क्या कार्य करता है इसकी चर्चा करते हुए हिन्दी साहित्य कोश में कहा गया है कि प्रतीक कई काम कर सकते हैं—

(१) किसी विषय की व्याख्या करना
(२) उसको स्वीकृत कराना
(३) पलायन का पथ प्रस्तुत करना
(४) सुप्त या दमित अनुभूतियों को जाग्रत करना
(५) अलंकरण या प्रवचन का साधन होना।[3]

काव्य में प्रतीक किसी न किसी रूप में यह सभी कार्य करते हैं परन्तु उनका प्रमुख कार्य है वस्तु के या भाव के आध्यात्मिक अथवा मानसिक अर्थों का प्रतिबिम्बित करना। इस कारण प्रतीक का सबसे बड़ा गुण उसकी प्रतिबिम्बित करने की शक्ति अथवा व्यंजनात्मकता है। अनुभूति भाव या वस्तु की सम्यक व्यंजना ही प्रतीक का प्रथम और अंतिम उद्देश्य है उसका एक मात्र कार्य है।

प्रतीक की व्यंजनात्मक क्षमता के विषय में डा० शंकरसिंह ने लिखा कि प्रतीक विधान में व्यंजना का गुण जितना ही अधिक होगा उतनी ही सफलता प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति के द्वारा मिलेगी। अन्योक्ति प्रतीक पर ही आश्रित रहती है जिस प्रस्तुत में जितना ही अधिक प्रतीकत्व होगा उस पर की गई अन्योक्ति भी उतनी ही सुन्दर

१ कल्पना और छन्दवाद—डॉ० रामलखन सिंह पृ० ८०
२ काव्य और कला—डा० हजारी लाल शर्मा, पृ० ७१
३ हिन्दी साहित्य कोश—पृ० ७७१-७२

और मार्मिक होगी। इसलिए कल्पना व भाव जगत को आन्दोलित करने के लिए प्रतीकों में व्यंजकता परमावश्यक मानी गई है।[1] प्रतीकों में व्यंजकता का कारण शक्ति को घनीभूत करने की अपूर्व क्षमता है जिसके कारण काव्य में वह विशेष महत्व का अधिकारी बनता है। व्यंजकता अर्थात् अपने शब्दों के उच्चारण से अधिक अर्थ सामर्थ्य प्रतीक को उत्कृष्टता प्रदान करती है। काव्य में भाव या वस्तु की व्यंजना ही प्रतीक का मुख्य कार्य है।

प्रतीकों को मुख्य रूप से तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है—

(१) वैयक्तिक प्रतीक (प्राइवेट सिम्बल्स)—जो मुख्यतः व्यक्तिवादी कवियों में पाया जाता है। आधुनिक नये कवियों में इस प्रकार की प्रतीक योजना अधिकतर प्राप्त होती है।

(२) रूढ़िगत प्रतीक (ट्रैडिशनल सिम्बल्स)—जो परम्परा से काव्य में चले आ रहे हैं। प्राचीन कवियों ने नये प्रतीकों की खोज कम की है उनमें इसी प्रकार की प्रतीक योजना अधिक प्राप्त होती है।

(३) प्राकृतिक प्रतीक (नेचुरल सिम्बल्स)—जो साधारण जनमानस के द्वारा प्रयुक्त होते हैं और सहज ही भावों का माध्यम बन जाते हैं क्योंकि उनमें भाव की एक दीर्घ परम्परा संयुक्त रहती है।

प्रयोगों के आधार पर भी प्रतीकों का वर्गीकरण किया जा सकता है। प्रयोग के आधार पर उनके दो प्रमुख विभाग किये जा सकते हैं (१) रूढ़ और (२) स्वच्छन्द।

(१) रूढ़—(अ) परम्परागत प्रतीक—रूढ़ प्रतीकों का प्रथम रूप परम्परागत है। परम्परागत प्रतीक क्लैसिकल साहित्य में बहुत प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी के प्राचीन और मध्यकालीन कवियों की प्रतीक योजना इसी श्रेणी की है। कबीर ने हंस आदि को आत्मा के प्रतीक रूप में प्रयुक्त किया है जो परम्परागत है आधुनिक कवियों में भी ऐसी प्रतीक योजना प्राप्त हो जाती है। पंत जी की कुछ पंक्तियाँ यहाँ उदाहरण रूप में प्रस्तुत की जा सकती है—

देखूं सब के उर की डाली
किसने रे क्या क्या चुने फूल

---

1 Th greater the suggestive quality of the symbol used, the more answering emotion it looks in those to whom it is addressed, the more truth it will convey A good symbolism therefore, will be more than mere diagram or mere Allegory it will use to the utmost the resources of beauty and passion its appeal will not to the clever brain but to the desirous heart the intuitive sense of man—Mystiicsm. E. Underhill. p. 13

क्या है छवि उपवन के प्रसून ?
इसमें कलि किसलय कुसुम शूल ।[1]

यहां प्रयुक्त कलि किसलय कुसुम शूल आदि प्रसन्नता आनन्द पीड़ा, व्यथा आदि के चिर परिचित प्रतीक हैं। पंत के यह प्रतीक परम्परागत प्रतीकों की श्रेणी में ही आयेंगे।

(आ) साम्प्रदायिक प्रतीक—साम्प्रदायिक प्रतीक भी रूढ़ होते हैं। धार्मिक संस्थाओं आदि में स्वीकृत हो जाने के कारण इनके स्वरूप को एक निश्चितता प्राप्त हो जाती है। निश्चयात्मक होने के कारण उनमें व्यंजनात्मकता का अभाव रहता है जिससे यह काव्य में विशेष प्रभावोत्पादक नहीं बन पाते। साम्प्रदायिक कवियों में ऐसी प्रतीक योजना बहुधा प्रयुक्त होती है। हिन्दी में नाथों सिद्धों आदि का साहित्य इस प्रकार के प्रतीकों से भरा पड़ा है। कबीर आदि में भी ऐसी प्रतीक योजना उपलब्ध है। जायसी ने सिद्ध और नाथों के साम्प्रदायिक बिम्बों का पर्याप्त प्रयोग किया है

गढ़ तस बांक जैस तोरि काया परखि देखु तैं ओहि की छाया।
पाइअ नाहि जूझि हठि कीन्हे जेइ पावा तेइ आपुहि चीन्हे।
नौ पौरी तेहि गढ़ मंझियारा औ तेहि फिरहिं पांच कोटवारा।
दसवं दुआर गुपुत एक नाकी अगम चढ़ाव बाट सुठि बांकी।

यहां गढ़ नव पौरी पांच कोतवाल दसवां द्वार क्रमशः शरीर नव इन्द्रिय पंच प्राण और ब्रह्म रंध्र के प्रतीक हैं जो साम्प्रदायिक हैं। कवि की भावनात्मकता का परिचय इनसे कम होता है यह प्रधानतः कवि पर पड़े साम्प्रदायिक प्रभाव को स्पष्ट करते हैं।

(२) स्वच्छन्द—(अ) प्राकृतिक प्रतीक—काव्य में सर्वाधिक संख्या प्राकृतिक प्रतीकों की ही होती है। इन प्रतीकों का प्रयोग प्रायः लाक्षणिक पद्धति पर होता है जिसमें कल्पना आभ्यान्तर सम्बन्ध योजना के द्वारा अर्थों का उत्कर्ष उपस्थित करती है। प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग प्रत्येक श्रेष्ठ कवि के काव्य में प्रचुर रूप से मिलता है। प्राचीन और आधुनिक सभी कवियों ने इसका प्रयोग बहुतायत से किया है। प्रसाद की पंक्तियों में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग द्रष्टव्य है

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को सबने आ डेरा डाला।[2]

यहां झंझा झकोर गर्जन नीरदमाला व बिजली सभी प्रकृति के उपकरण हैं जो पीड़ा व्यथा अन्तर्द्वन्द्व आदि के प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं।

(आ) आध्यात्मिक या रहस्यवादी—आध्यात्मिक एवं रहस्यवादी प्रतीक

१ सुमित्रानंदन पंत गुञ्जन पृ० [illegible]
२ आंसू—प्रसाद पृ० १६

...साम्प्रदायिक प्रतीकों के काफी निकट है परन्तु दोनों में पर्याप्त भिन्नता भी है। साम्प्रदायिक प्रतीक रूढ़ होते हैं उनमें कवि की अपनी अनुभूति अथवा कवि के अपने चिन्तन का कोई योगदान नहीं रहता जबकि रहस्यवादी अथवा आध्यात्मिक प्रतीक कवि के अपने चिन्तन और कल्पना से उत्पन्न मनोमूर्तियों के द्वारा आध्यात्मिक अर्थों और अलौकिक सत्ता का प्रतिबिम्ब करते हैं। यद्यपि दोनों ही अलौकिक और अतीन्द्रिय का संकेत देने का प्रयत्न है परन्तु दोनों की निर्माण-प्रक्रिया और रूप में पर्याप्त अन्तर है। महादेवी जी की कविता की पंक्तियों में रहस्यवादी प्रतीकों की अभिव्यक्ति उल्लेखनीय है

टूट गया वह दर्पण निर्मम।
उसमें हँस दी मेरी छाया
मुझ में रो दी ममता माया
अश्रु हास में विश्व समाया
खेल रहे थे आँखमिचौनी—
प्रिय ! जिसके परदे में तुम हम।

यहाँ दर्पण आँखमिचौनी हम-तुम आदि आध्यात्मिक प्रतीक हैं जो जीवन के भ्रम उसके आवागमन और प्रत्यक्ष व परोक्ष सत्ता को व्यंजित करते हैं।

(२) वैयक्तिक प्रतीक—वैयक्तिक प्रतीकों का प्रयोग अधिकतर अति आधुनिक काव्य में ही हुआ है। प्राचीन और मध्यकालीन कवियों में भी यद्यपि अपनी वैयक्तिक अनुभूति का योग रहता था पर उनकी वैयक्तिकता अन्य के लिए विचित्रता नहीं बनती है। नई कविता और नये युग की कविता में ऐसे प्रतीकों का विधान प्रायः मिल जाता है। परिचितता के अभाव के कारण ऐसे प्रतीक अधिकतर अस्पष्ट और असम्बद्ध रहते हैं।

प्रतीकों के साथ महत्व और स्वरूप के पश्चात् बिम्ब से उनके सम्बन्ध अर्थात् उनकी समानताओं—असमानताओं का उल्लेख करना भी आवश्यक है। बिम्ब और प्रतीक दोनों ही कल्पना के दो रूप हैं। इस कारण इनमें अनेक समानताएँ हैं परन्तु फिर भी दोनों एक नहीं हैं दोनों की अपनी भिन्न भिन्न सीमाएँ हैं।

प्रतीक मूल में बिम्ब ही होते हैं। काव्य में निरन्तर प्रयुक्त होते होते वह प्रतीक का स्वरूप धारण करते हैं उन्हें रूपक का संक्षिप्त संस्करण इसी कारण कहा जा सकता है। वह आवृत्ति के कारण ही निश्चित अर्थ प्राप्त करते हैं। थियरी आफ लिटरेचर के लेखक वेलेक और वारेन ने बिम्ब के द्वारा प्रतीक की उत्पत्ति के इस व्यापार को इस प्रकार प्रस्तुत किया है। बिम्ब सबसे पहले एक रूपक के रूप में प्रयुक्त होते हैं, पर निरन्तर उन्हीं निश्चित अर्थों में रूप व प्रतिरूप बनकर उपस्थित होते हैं तब वह

प्रतीक बन जाते हैं।[1] इसका बड़ा स्पष्ट उदाहरण जायसी के पद्मावत से ही उद्धृत किया जा सकता है। पद्मावत में सामान्यतः भ्रमर कमल आदि शब्द रत्नसेन और पद्मावती के प्रतीक बनकर प्रयुक्त हुए हैं पर उनका मूल बिम्ब है। पद्मावत में प्रथम बार जहाँ कवि रत्नसेन के लिए भ्रमर शब्द का उल्लेख करता है वहाँ उसका रूप बिम्ब का ही है। यहाँ भ्रमर के कमल या मालती से प्रेम करने के भाव को रत्नसेन पर आरोपित किया गया है। कवि कहता है

> जस मालति कह भंवर बियोगी तस ओहि लागि होइ यह जोगी।
> सिंघल दीप जाइ ओहि पावा सिद्ध होइ चितउर लै आवा।

अथवा पद्मावती का रूप वर्णन सुन कर राजा की अवस्था में कवि भ्रमर और कमल का बिम्बवत प्रयोग करता है

> हीरामन जो कमल बखाना सुनि राजा होइ भंवर भुलाना।
> आवै आउ पतंग उजियारे कहहि सो दीप पतंग कै मारे।

यही कमल भ्रमर व मालती जो कथा के प्रारम्भ में उपमान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं कथा के अनन्तर धीरे धीरे प्रतीक का रूप धारण कर लेते हैं। यह उपमाएँ कवि के मानस में उस निश्चित अर्थ की द्योतक बन जाती है जो वह उनके द्वारा व्यंजित करता है। अतः भाव व्यंजना के लिए केवल उपमान का रूप ही पर्याप्त रहता है। उपमेय की आवश्यकता न कवि को रहती है, न पाठक को। कथा के मध्य भाग से कवि उनका प्रतीकात्मक प्रयोग करने लगता है

> भंवर जो पावा कंवल कहु मनु चिता बहु केलि।
> आइ परा कोइ हस्ति तह चूर गयउ सब बेलि।

यहाँ प्रयुक्त भ्रमर और कमल दोनों ही प्रतीक हैं। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि किसी भाव या विचार अथवा वस्तु को अभिव्यक्त करने के लिए कवि के मानस में एक उपमान या एक बिम्ब निश्चित हो जाता है। प्रारम्भ में कवि उसका सर्वांग रूप में अर्थात् उपमान और उपमेय—दोनों का उल्लेख करके—वर्णन करता है पर अर्थ निश्चित हो जाने के कारण कालान्तर में वह उसी उपमान को बिना उपमेय का उल्लेख किये प्रयोग करता है और हम इसी प्रयोग को प्रतीक कहते हैं। काव्य में अभिव्यक्ति का विकास बिंब से प्रतीक की ओर होता है। प्रारम्भ में प्रत्येक कवि की रचनाएं बिंबों से युक्त होती हैं पर आगे चल कर वही उपमान बराबर एक निश्चित अर्थ में प्रयुक्त होने के कारण प्रतीक बन जाते हैं।

---

१ Primarily we think, in the recurrence and persistence of symbol. An 'image' may be invocked once as a matephor but if it persistently recurs, both as presentation and representation, it becomes a symbol

— Theory of Literature., p. 194

प्रतीकवादी कवि यीट्स ने भी अपने प्रतीक विधान के सम्बन्ध में इसी प्रकार की मान्यता की अभिव्यक्ति की है। उसने कहा कि उसकी कविता के असंख्य बिम्बों में प्रतीक जैसी कोई निश्चयात्मकता नहीं है परन्तु कुछ अवश्य ही प्रतीक के शुद्ध रूप को प्रकट करते हैं। यह वह हैं जो समय के बीतने के साथ साथ अधिकाधिक प्रतीकात्मक अर्थों में प्रयुक्त होने लगे हैं। ऐसे उदाहरणों में उसके गुफाओं और गुम्बदों के बिम्बों को लिया जा सकता है।[1] आलोचक T H Wickstead ने भी ब्लेक (Blake) के पहले गीतों (Songs of innocence आदि) के लिये कहा कि उसमें यथार्थ प्रतीकात्मकता बहुत कम है पर एक निश्चित अर्थों में निरन्तर प्रतीकात्मक रूपकों का प्रयोग अवश्य है।[2] इसी प्रकार प्रसाद के आंसू आदि प्रारम्भ की रचनाओं में भी ऐसे बिंब प्रयुक्त हुए हैं जो कालान्तर में प्रतीकात्मक अर्थ देते हैं जैसे वसंत आदि। वसंत प्रारम्भ में यौवन का उपमान बन कर आया है पर परवर्ती रचनाओं में (कामायनी) में वह यौवन का प्रतीक बन कर आया है।[3] अन्य कवियों में भी इसी प्रकार उपमानों का आवृत्ति के आधार पर प्रतीकात्मक प्रयोग हुआ है। वस्तुतः काव्यात्मक अभिव्यक्ति में प्रतीक और बिंब कभी भी एकदम पृथक सत्ता धारण किये नहीं रहते। उनका रूप प्रायः मिला जुला रहता है। जिसका अर्थ यह होता है कि उनके अस्तित्व का सही रूप सामने न आकर कवि की अनुभूतियों या भावनाओं का प्रतीकात्मक वर्णन सामने आता है।[4]

उदाहरण के लिए आधुनिक कवि गोपालदास नीरज का प्रयोग देखिए—

लो गुलाब के फूल छू गये जबसे अधर अपावन मेरे।
ऐसी गंध बसी है मन में, सारा जग मधुबन लगता है।[5]

यहाँ गुलाब के फूल, गंध मधुबन क्रमशः अधर, मादकता व सौन्दर्य लोक के प्रतीक हैं। ये प्रतीक भाव को तीव्रता के साथ अवश्य प्रस्तुत करते हैं, पर भाव की

---

१ One finds in his poetry beside innumerable images that have not the difiniteness (Fixity) of symbols many images that are certainly symbols, and as the years went he began to use these with more and more deliberately symbolic purpose such images as caves and towers. —Yeats quoted by Welleck & Warran — Theory of Literature, p 194

२ There is comparatively little actual symbolism but there is constant and abundant use of symbolic metaphor —Ibid. 194

३ कामायनी—प्रसाद पृ० ३३

४ A poem generally comprises many images symbols and metaphors fused into oneness by imaginations resulting in a symbolic representation of experiences. —Realism & Imagination—Joseph Chiari, p. 111

५ गीत भी अगीत भी—नीरज पृ० १०

समग्र अभिव्यक्ति करने में यह समर्थ नहीं है। इसके लिए कवि ने प्रतीकों से साथ साथ उपवन पुलाव आदि का पूरा रूपक भी प्रस्तुत किया है गन्ध स्पर्श आदि की संवेदनाओं ने इसे और अधिक जीवन प्रदान किया है प्रेम की अनुभूति और भावुकता की समग्र अनुभूति प्रतीक और बिम्ब दोनों के द्वारा पूर्ण होती है। स्पष्ट है कि काव्य में प्रतीक और बिम्ब अनेक रूपों में अन्योन्याश्रित हैं दोनों की सामंजस्यमयी अभिव्यक्ति ही काव्य को उत्कृष्टता प्रदान करती है।

यद्यपि प्रतीक मूल रूप में बिंब है और काव्यात्मक अभिव्यक्ति में भी उनका स्वरूप मिश्रित-सा रहता है परन्तु दोनों एक नहीं हैं दोनों में अनेक समानताएं होने के साथ साथ अनेक विभिन्नताएं भी हैं। बिंब प्रतीकात्मक अर्थों में प्रयुक्त अवश्य हो सकते हैं पर वे प्रतीक नहीं हैं[1] उनमें कुछ मौलिक अन्तर है। अब हम उनके अन्तर को समझने का प्रयास करेंगे।

प्रतीक और बिम्ब का सर्वप्रथम अन्तर यह है कि प्रतीक अधिकतर जातीय चेतना के आधार पर निर्भर रहते हैं जबकि बिम्ब के निर्माण में व्यक्ति की अपनी चेतना क्रियाशील रहती है। वे जातीय चेतना से उतने सम्पृक्त नहीं हैं जितने व्यक्तिगत चेतना से। यद्यपि बिम्ब के उपकरणों का भी जातीय चेतना से परिचित होना आवश्यक है परन्तु वह जातीय चेतना से जीवन प्राप्त नहीं करता। प्रतीक इसके विपरीत जातीय चेतना द्वारा ही जीवन्त बनता है। कुश-कूस मार्ग-मार्ग आदि प्रतीकों ने जीवन के प्रवाह में स्नात होकर ही अर्थ प्राप्त किया है। बिम्बों के रूप में यही उपकरण कवि की चेतना एवं वैयक्तिक कल्पना द्वारा अभिनव रूप में प्रस्तुत होकर भी सफल और उत्कृष्ट बन सकते हैं। प्रतीक भी यदा कदा केवल वैयक्तिक कल्पना के आधार पर निर्मित होते हैं जैसे नये कवियों में परन्तु उनकी सफलता संदिग्ध ही रहती है। जन साधारण के मानस में उनका कोई निश्चित अर्थ नहीं होता इस कारण काव्य में वह विचित्रता का आभास तो अवश्य करा देते हैं, भाव की अनुभूति उनके द्वारा यथोचित रूप में नहीं हो पाती। इसी कारण सामान्यतया काव्य में वही प्रतीक ग्रहण किये जाते हैं जो परम्परा से हमारे जीवन में चले आ रहे हों साधारण जन चेतना में जिनका रूप निर्मित हो चुका हो। कवि को केवल उन्हें ढूँढने की आवश्यकता होती है। इसी कारण डा० हरिद्वारी लाल शर्मा ने कहा है—प्रतीक की सर्जना सम्भव नहीं इनका आविष्कार होता है अर्थात् जो पदार्थ है उसी को खोज निकाला जाता है। यह युग मानस में जन्मता और पलता है।[2] इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीक यद्यपि बिम्ब के बहुत निकट है परन्तु दोनों के उद्गमों में बहुत अन्तर है एक समाज की चेतना पर निर्भर करता है दूसरा कवि (व्यक्ति) की चेतना पर।

---

१ Images are used symbolically but they are not symbols. —Realism & Imagination — Joseph Chiari p. 111

२. काव्य और कला—डा० हरद्वारी लाल शर्मा पृ० ०

प्रतीक और बिम्ब में दूसरा एक बड़ा स्पष्ट अन्तर है। प्रतीक सर्वैव एक भाव या वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है जबकि बिम्ब एक वस्तु का अभिव्यक्त न करके पूरे चित्र पूरे दृश्य को मूर्तित करता है। आलोचक सिसिल डे लुईस ने कहा है कि एक उत्कृष्ट बिम्ब प्रतीक का ठीक उल्टा होता है। प्रतीक सांकेतिक होता है और केवल एक वस्तु का प्रतिनिधित्व करता है जैसे एक अंक एक संख्या को प्रदर्शित करता है। काव्य में बिम्ब कभी-कभी ही प्रतीकात्मक रूप लेते हैं। वे अपने संदर्भ के कारण भाव मत्पकता से सम्पन्न होते हैं जिसमें प्रत्येक पाठक की भावनाएँ उसके अपने अनुभवों के आधार पर जागृत होती हैं।[1] प्रतीक में समग्रता का वह गुण नहीं होता जो बिम्ब का एक विशिष्ट गुण है। प्रतीक की सांकेतिकता उसमें तीव्रता तो अवश्य ला देती है पर वह समग्रता अथवा भाव या विचार की पूर्णता बिम्ब के अभाव में नहीं आ सकती। इसी कारण उत्कृष्ट रचनाओं में प्रतीक और बिम्ब दोनों साथ-साथ प्रयुक्त होते हैं। प्रतीक तीव्रता अथवा भावात्मक गहराई लाता है और बिम्ब समग्रता। प्रतीक केवल एक भाव या विचार को प्रस्तुत कर सकते हैं जबकि बिम्ब भाव और विचार को उस की समग्रता में अभिव्यक्त करते हैं।

इस स्वरूपगत भिन्नता के अतिरिक्त बिम्ब और प्रतीक में उद्देश्यगत अन्तर भी है। प्रतीक का उद्देश्य है भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करना अथवा उनका संकेत देना जबकि बिम्ब का उद्देश्य है भाव या विचार को मूर्त रूप देकर प्रेषणीय बनाना। प्रतीक में यद्यपि ऐन्द्रियता और रमणीयता होती है पर उसका उद्देश्य भाव या विचार का प्रतिनिधित्व करना है। प्रतीक का उपयोग भावों या अर्थों को मूर्तता देने के उद्देश्य से नहीं किया जाता अपितु स्थूल व साधारण वस्तु को मानसिक एवं आध्यात्मिक गुणों के आधार पर अमूर्त भावों या विचारों का संकेत वाहक मानकर प्रस्तुत किया जाता है। प्रतीक स्थूल विचारों को सूक्ष्मता प्रदान करता है। इस रूप में भी प्रतीक और प्रतिमा एक दूसरे के विपरीत होते हैं। प्रतिमा सूक्ष्म को स्थूल रूप देती है और प्रतीक द्वारा स्थूल को सूक्ष्म बनाया जाता है। प्रतीक में भाव के मानसिक और आध्यात्मिक अर्थों का संकेत दिया जाता है जबकि बिम्ब में भाव को दृश्य बनाने का प्रयत्न किया जाता है। प्रतीक काव्य में गहराई और तीव्रता लाने के लिये सांके तिकता लाता है स्थूल को सूक्ष्मता देता है और बिम्ब काव्य को प्रेषणीय व आस्वादनीय बनाने के लिए सूक्ष्म और अरूप भावों को स्थूल और रूप युक्त बनाता है। प्रतीक

[1] An intense image is the opposite of a symbol. A symbol is denotative. *it stands for one thing only as the figure 1 represents* one unit. Images in poetry are seldom purely symbolic, for they are affected by the emotional viberations of their context so that each reader's response to them in apt to be modified by his personal experience. — Poetic Image — C. Day Lewis. *p* 40-41

[2] काव्य और कला—डा. [illegible], पृ. १९६

व बिम्ब का यह उद्देश्यगत अन्तर दोनों के उपयोग और कार्य क्षेत्रों में भी अन्तर ला देता है जिसका उल्लेख उपयुक्त पंक्तियों में किया जा चुका है।

समष्टि में बिम्ब और प्रतीक दोनों ही कल्पना के दो रूप हैं और काव्य की उत्कृष्टता के परिचायक हैं परन्तु उनमें अनेक समानताएँ एवं विभिन्नताएँ हैं। मूल रूप की समानता होते हुये भी उनमें अनेक रूपगत और उद्देश्यगत अन्तर है, उनके उद्गम स्थलों में भी भिन्नता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रतीक और बिम्ब कल्पना के दो भिन्न स्वरूप हैं जिनकी सीमारेखाएं एक दूसरे को स्पर्श करती हैं पर उनका क्षेत्र अलग अलग ही है।

उपमान और बिम्ब

अब तक हमने प्रतीक और उसके संदर्भ में बिम्ब को समझने का प्रयत्न किया। अब हम कल्पना के एक अन्य प्रमुख रूप उपमान के साथ बिम्ब का सम्बन्ध देखने का प्रयत्न करेंगे।

काव्य में उपमान का स्थान विशिष्ट है। समस्त अर्थालंकारों का क्षेत्र उपमान का ही क्षेत्र है। सभी सादृश्य मूलक अलंकार जिनमें वैषम्य व अतिशय को भी लिया जा सकता है उपमान या उपमा के अन्तर्गत ही आते हैं। अप्पय दीक्षित कहते हैं कि काव्य रूपी रंगशाला में उपमा रूपी नटी चित्र भूमिका के भेद से अनेक रंग रूपों में आकर नाचती हुई काव्य मर्मज्ञों का मनोरंजन करती है।[1] उपमानों का क्षेत्र बड़ा व्यापक है साथ ही काव्य में वह विशिष्ट महत्व का अधिकारी भी है। पण्डित राज शेखर ने कहा कि उपमान अलंकारों की मुकुट मणि है काव्य सम्पत्ति का सर्वस्व है और मेरा कहना तो यह है कि उपमान कवि वंश की माता के समान है।[2] सभी अलंकार जो मुख्यतः अर्थों के साम्य वैषम्य या अतिशय के आधार पर निर्मित होते हैं उपमानों के अन्तर्गत आ जाते हैं। पंडित रामदहिन मिश्र ने उपमानों के व्यापकत्व का कारण बताते हुये कहा उपमा ही समता मूलक अलंकारों की शिरोमणि है और बहुत व्यापक है। कारण यह है कि सांसारिक कोई भी पदार्थ जब दृष्टिगत या करगत होता है तब हम उसकी तुलना करने लगते हैं यह किसके समान है ऐसा कोई पदार्थ है या नहीं इत्यादि यह उपमा उस वस्तु के आकार प्रकार की या रूप रंग की या गुण धर्मों की जाती है। जहां समता नहीं होती वहां विरोध दिखाई देता है। किन्तु समान रूप रंग गुण धर्मवाली वस्तुओं की अधिकता के कारण विरोध उतना व्यापक नहीं है फिर भी ज्ञान ग्रहण का यह भी एक साधन है।[3] वस्तुतः वैषम्य और अतिशय का जन्म

१　उपमैका शैलूषी संप्राप्ता चित्र भूमिका भेदान्
　रञ्जयति काव्य रंगे नृत्यन्ती तद्विदां चेतः।
　　　　　　—चित्र मीमांसा

२　अलंकार शिर रत्नं सर्वस्वं काव्य सम्पदाम्।
　उपमा कवि वंशस्य मातैवेति मतिर्मम। —अलंकार शेखर

३　काव्य में अप्रस्तुत योजना—रामदहिन मिश्र पृ० १००

मानव के सहज कौतूहल से उसके रूप रंग-गुण धर्म को प्रकाशित करने की प्रवृत्ति से होता है उपमानों की योजना भी इसी के द्वारा होती है। अतः उपमानों का क्षेत्र केवल समता मूलक अलंकारों तक ही नहीं विषमता और प्रतिनाम मूलक अलंकारों तक भी है।

पाश्चात्य साहित्य में प्रयुक्त मेटाफर (रूपक) शब्द बहुत कुछ अंशों में उपमान का ही समानार्थी है। यह केवल एक अलंकार मात्र नहीं है, वरन् व्यापक रूप में समस्त अलंकारों का मूल है। उपमा की जैसी व्यापकता पाश्चात्य साहित्यकारों ने रूपक में स्वीकृत की है। आलोचक हरबर्ट रीड ने इसे समानता का सहज प्रकाशन माना था।[1] आलोचक जे० एम० मरे ने भी रूपक को अत्यन्त प्रमुख स्थान दिया है। उसने अपनी पुस्तक में लिखा है कि काव्य रचना में जहाँ भी कवि अभिव्यक्ति चाहता है वहाँ उसे अनिवार्य रूप से रूपक का आश्रय लेना पड़ता है। समानता या तुलना रूपक के द्वारा ही आ सकती है।[2] कवि काव्य रचना करने में अपने भावों और अनुभूतियों की जटिल अवस्था को शब्दों में प्रस्तुत करना चाहता है वहाँ यदि वह अपने अस्पष्ट भावों और अनुभवों का रूप के द्वारा प्रस्तुत करता है तो उसकी निश्चित अनुभूतियाँ भी सहज ग्राह्य हो जाती है इसीलिए काव्य रचना में कवि को अनिवार्य रूप से रूपक का आयोजन करना पड़ता है। रूपक के विषय में लिखता हुआ लेखक वैली आगे कहता है कि रूपक में कवि की भावनाएँ वैयक्तिक स्वतन्त्रता रखते हुये भी एक तार में अनुस्यूत हो जाती है रूपक भावों को शब्द रूप में प्रस्तुत करने का प्रमुख

---

1. Herbert read, in English prose style, admirably described metaphore as 'the swift illumination of an equivalance. —quoted by George Whalley—Poetic Process p 145.
2. Try to be precise, and you are bound to be metaphorical, you simply can not help establishing affinities between all the provinces of the animate and inanimate world for the voltile essence you are trying to fix is quality and in the effort you will inevitably find yourself ransacking heaven and earth for a similitude. —The Problem of Style — J.M. Murry
३. The poet's task, in composing a poem, is to discover and fashion in words an equivalent for the complex state of feeling and awereness which accompanies paradigmatic experience. He must give a precise body to those feelings he is not concerned to describe either the feelings or the physical objects with which those feelings may have seen historically associated. — Poetic Process. G Whalley. p. 139

उपमान के क्षेत्र में नहीं रखा जा सकता। इस प्रकार स्पष्ट है कि उपमान सदैव बिंब नहीं होता और न ही बिम्ब सदैव उपमान होता है उनका क्षेत्र भिन्न है यद्यपि इनमें नैकट्य पर्याप्त है।

(आ) बिंब और उपमान में एक अंतर और भी है और वह यह कि उपमान भावहीन भी हो सकता है परन्तु बिंब सदैव भाव का उपकारक बन कर ही काव्य में प्रयुक्त होता है। बिंब का उद्गम भाव है और उसका लक्ष्य भी भाव की अभिव्यंजना है। पर उपमान के साथ भाव आवश्यक नहीं है, उपमान का लक्ष्य सादृश्य अथवा समानता उपस्थित करना है भाव या विचार को प्रकट करना नहीं। यद्यपि उसके द्वारा भाव एवं विचारों की सम्यक अभिव्यक्ति होती है पर उसकी प्रकृति में समानता का अधिक महत्त्व है। भाव को उद्दीप्त न करने पर भी उपमान की सत्ता बनी रहती है। उपमान कभी कभी तो मात्र चमत्कार की सृष्टि के लिए लाये जाते हैं भाव का उनसे कोई विशेष सम्बन्ध नहीं रहता। जैसे

छिग लंक जनु मांस न लागा दुहुँ कर नलिनि नलिन बस लागा
जब फिरि चली देखि मैं पाछें अछरी इन्द्र फेरि बस काछे
जबहि चली मनु भा पछिताऊ अबहुँ दिस्टि लागि मोहि भाऊ।
मोहि क पवन छपि अछरी गईं गईं समीप नहीं परगट गईं।

अथवा

बेनी कारी पुहुप लै निकसी जमुना आइ।
पूजा नेह अमंग सी सेंदुर सीस चढ़ाइ।

यहां चमत्कार की दृष्टि प्रधान रही है। नागे या भृ लतिक से पद्मावती की कमर की क्षीणता समुचित रूप में सामने नहीं आती वरन् यह उपमान वस्तु को उपहास का उपकरण और बना देते हैं। द्वितीय उदाहरण में काल्पनिक साम्य है जो विशेषतः बुद्धि बल के आधार पर निर्मित हुआ है जिससे भाव का कोई विशेष उपकार नहीं होता है। व्यतिरेक प्रतीप रूपक आदि के रूप में प्रस्तुत उपमानों में अधिकतर रूपक आदि में बिंब नहीं बन पाते। व्यतिरेक और प्रतीप में तो उपमान होते हुए भी बिंब का एकांत अभाव रहता है। इसी प्रकार अतिशयोक्ति पूर्ण उपमान भी भाव के उपकारक कम चमत्कार के जन्मदाता अधिक होते हैं। अप्रस्तुत के निम्नांकित अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन में भी भाव का उपकार कम हुआ है।

पुहुप सुगंध करहिं सब आसा मकु हिरगाइ लेइ हम बासा।
अधर दसन पर नासिक सोभा दारिउँ देख सुआ मन लोभा।
खंजन दुहुँ दिसि केलि कराहीं दुहुँ वह रस को पाव को नाहीं।
देखि अमिय रस अधरन्हि भयउ नासिका कीर।
पवन बास पहुँचावै अस रस छांड न तीर।

यहां उसके नेत्रों नाक अधर के लिए क्रमशः खंजन तोता और दाड़िम उपमान लिया गया है। जो अतिशयता के कारण अधिक भाव व्यंजक नहीं बन पड़ा है। यहां उपमान भाव व्यंजना में सहायक नहीं है। इसके विपरीत बिंब सदा भाव का उपकार ही करते हैं बिंब रूप में शरीर ही काव्य की आत्मा बन जाता है। भाव की सत्ता उसमें आवश्यक है भाव और बिंब का अस्तित्व पृथक पृथक नहीं रखा जा सकता। स्पष्ट है कि भाव के आधार पर उपमान और बिंब पृथक पृथक प्रत्यक्ष प्रतीत होते हैं।

(ड) उपमान और बिंब का एक बड़ा स्पष्ट अन्तर और भी है वह यह कि उपमान का सम्बन्ध भाषा से अधिक है और बिंब का भाव से। उपमान भाषा का अवश्य ही किसी न किसी रूप में उपकार करता है परन्तु बिंब का भाषा सौन्दर्य से कोई सैकट्य नहीं है। उपमान यदि भावोपकार न भी हुआ तो काव्य की अलंकृति का साधन तो अवश्य हो जाता है। बहुत से रूपकों उपमानों आदि के अन्तर्गत आये उपमान कभी कभी केवल भाषा की अलंकृति के लिए लाए गये जान पड़ते हैं जैसे केशव आदि में। जायसी में भी ऐसी उपमान योजना है पर उसकी मात्रा बहुत कम है। केशव का एक उदाहरण द्रष्टव्य है

किधौं यह राजपुत्री, बरही बरी है किधौं
उपधि बर्यो है यहि, सोभा अभिरत हौ।
किधौं रति रतिनाथ जस साथ केसोदास।
जात तपोबन सिव बैर सुमिरत हौ।
किधौं मुनि सापहत किधौं ब्रह्मदोष रत
किधौं सिद्धियुत सिद्ध परम बिरत हौ।
किधौं कोऊ ठग हौ ठगौरी लीन्हें किधौं तुम।
हरि हर श्री हौ शिवा चाहत फिरत हौ।

यहां राम के लिए कवि ने शापग्रस्त मुनि ब्रह्म दोष युक्त व्यक्ति और ठग उपमान भी प्रस्तुत किये हैं। ऐसा लगता है कि कवि की हार्दिक अनुभूति यहां नहीं है वह केवल अलंकार को पूर्ण करने के लिए इधर उधर से उपकरण ढूंढ रहा है और इस प्रयत्न में जो भी उसके हाथ आया है चाहे वह भाव का अपकारक ही क्यों न हो कवि ने प्रयोग कर दिया है। चमत्कार और अलंकरण की प्रवृत्ति प्रधान होने के कारण ये उपमान भाव का उपकार नहीं करते और सफल बिंबों की श्रेणी में भी नहीं आ सकते। चमत्कार के कारण कवि की बिम्बात्मक अनुभूति तो तिरोभावित ही हो गई है। उपमान सदैव भाषा में किसी न किसी प्रकार का अलंकरण या सौन्दर्यवर्धन करते हैं जो अधिकतर बाह्य होता है। पर बिंब का आवश्यक गुण अलंकरण नहीं है वरन् मूर्तता प्रतिपादन है। यद्यपि बिंब भी अलंकरण करने में सहायक होते हैं परन्तु अलंकरण में सहयोग न देने पर भी वे श्रेष्ठ बन सकते हैं। प्रस्तुत वर्णन के बिंबों में यह तथ्य स्पष्टता से दीख पड़ता है। इसके अतिरिक्त जहां मुहावरे या लोकोक्तियों

आदि के रूप में बिम्ब को प्रस्तुत किया जाता है वहां भी वह अलंकार की श्रेणी में नहीं आ सकते । यथा

मैं निसि धनि जस ससि परगसी
राजै देखि पुहुमि फिर बसी ।

रात्रि में राजा ने रानी के अभूत सौन्दर्य को देखा तो उसे महान आश्चर्य हुआ क्योंकि उसके द्वारा उजाड़ी गई भूमि (अर्थात् सौन्दर्य भूमि) पुनः वैसी ही बस गई थी । मुहावरे के रूप में प्रयुक्त यह बिंब भाषा में किसी अलंकार की योजना नहीं करता पर भावोद्बोधन की अपूर्व क्षमता और ऐन्द्रिय ग्राह्यता के कारण श्रेष्ठ बिम्बों की कोटि में इसकी गणना हो सकती है ।

स्पष्ट है कि बिंब और उपमान काफी निकट होते हुए भी एक नहीं हैं उनमें कुछ बड़े मौलिक अन्तर हैं जो उनके अस्तित्व को पृथक पृथक कर देते हैं ।

उपमानों का मूलाधार साम्य है यही उपमान निर्माण का प्रमुख कारण है । साम्य का आधार बिंब में भी रहता है परन्तु बिंब का निर्माण साम्य के आधार पर ही नहीं होता उसके निर्माण में कवि की कल्पना का मूर्तिकरण व्यापार प्रधान है । काव्य में इस साम्य के आधार पर उपमान के कई रूप हो जाते हैं । अधिकांश बिंबों में साम्य का कोई न कोई रूप अवश्य रहता है । अब हम उपमान के रूप और उससे बिम्ब की निकटता या दूरता का ज्ञान करने व उपमान के रूपों के आधार पर बिम्ब और उपमान के सबन्धों का विचार करेंगे ।

उपमानों का प्रयोग काव्य में मुख्यतः चार प्रकारों से किया जाता है

(१) मूर्त प्रस्तुत के लिए अमूर्त उपमान का प्रयोग ।
(२) अमूर्त मूर्त ।
(३) मूर्त मूर्त ।
(४) अमूर्त अमूर्त ।

डा० सावित्री सिन्हा ने अपने शोध ग्रन्थ में उपमान योजना की एक प्रणाली और बताई है वह है अमूर्तामूर्त रूप उपमान योजना । जहां एक ही प्रस्तुत के लिए चाहे वह मूर्त हो या अमूर्त मूर्त तथा अमूर्त दोनों ही प्रकार के उपमान नियोजित किये जाते हैं । इस प्रकार की योजना करते समय कवि को इस बात के लिए सतत जागरूक रहना पड़ता है कि उसका विधान कहीं दुरारूढ़ न हो जाय ।[1] सम्भवतः ऐसे प्रयोग मालोपमा आदि में मिल सकते हैं । उपमानों के प्रयोगों की इन प्रणालियों के आधार पर अब हम यह देखेंगे कि उपमानों के इन प्रयोगों से बिंब का क्या सम्बन्ध है ।

(क) मूर्त अप्रस्तुत के लिए अमूर्त उपमानों का प्रयोग— मूर्त वस्तु के लिए प्रस्तुत अमूर्त उपमान प्रभाव और धर्म साम्य पर निर्मित होते हैं और काव्य के भाव को तीव्र करना उनको अभीष्ट रहता है, उसको दृश्य बनाना नहीं । ऐसे प्रयोग छायावादी कवियों में बहुतायत से मिलते हैं । मध्य कालीन कवियों में इस

१ मध्ययुगीन कृष्ण भक्ति काव्य में अभिव्यंजना शिल्प डा० सिन्हा पृ० २६५

प्रकार की उपमान योजना का अभाव सा है। फिर भी कुछ उदाहरण मिल सकते हैं जैसे रामचरितमानस में

सोक समय सासंक नृप भयउ कैकयी गेह
मनहु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेह।[1]

यहाँ दशरथ और कैकयी के लिए क्रमशः स्नेह और निष्ठुरता अमूर्त उपमान लाए गए हैं जो हृदयगत भावनाओं के स्पष्टीकरण से भाव को तीव्र कर देते हैं उनके चरित्रों की विशेषता भी इन उपमानों में प्रकट हो जाती है। इसी प्रकार जायसी ने भी पद्मावत में एक अमूर्त उपमान दिया है

पियर पात दुख झरे निपाते
सुख पाल्लौ उपनै होइ राते।

दुख के समान पीले पत्तों को झाड़कर वृक्ष पत्रहीन हो गये हैं, उनकी जगह सुख के लाल पल्लव निकल आये। यहाँ पीले पत्तों और नव किसलयों के लिए अमूर्त उपमान दुख सुख दिये गये हैं। परन्तु इस प्रकार के उदाहरण बहुत ही कम हैं। मूर्त के अमूर्त उपमान छायावादी काव्य की विशेषता है पंत की बादल, निराला की विधवा आदि कविताओं के उपमान इस प्रकार की उपमान योजना की प्रणाली का अच्छा रूप प्रस्तुत करते हैं। जायसी ने और एक स्थल पर रानी के विमान के लिए अमूर्त उपमान की योजना की है

सिंघलदीप आइ बेवानू पहुँचा मन सौं अधिक गगन सौं ऊँचा ॥

परन्तु इस प्रकार की अप्रस्तुत योजना से बिम्ब का स्पष्ट रूप सामने नहीं आता एक अस्पष्ट सी मानसिक अनुभूति तो अवश्य होती है जिसके आधार पर हम रूप का कुछ आभास कर लेते हैं परन्तु वह आभास अविस्तर धुंधला और बहुत अस्पष्ट होता है। रूप का होना बिम्ब के लिए आवश्यक है। रूप का अर्थ यहाँ गंध रस आदि भी है। अर्थात् उपमान में ऐन्द्रियता आवश्यक है। अमूर्त दृश्येन्द्रिय गम्य ही नहीं ऐन्द्रियगम्य भी नहीं होती। अतः अमूर्त उपमान योजना में स्पष्ट और सफल बिम्ब नहीं निर्मित होते। इन स्थलों पर साथ में प्रयुक्त क्रियाओं विशेषणों के द्वारा चाहे रूप का कुछ आभास हमें हो जाय पर वह उतना स्पष्ट नहीं होता जितना मूर्त उपमानों का हो सकता है। क्रियाओं और विशेषणों से अमूर्त उपमानों में अवश्य कुछ मांसलता आ जाती है जैसे इन वर्णनों में

१—गिरिवर के उर से उठ कर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर ।[2]
२—कभी लोभ सी लम्बी होकर,
कभी तृप्ति सी फिर हो पीन।[3]

---

१ रामचरितमानस अयोध्याकांड तुलसी पृ० ३६४
२ पल्लव पंत पृ ४८
३ पल्लव पंत पृ ११३

२—धीरे धीरे संशय से उठ
बढ़ अपयश से शीघ्र अछोर।
नभ के उर में उमड़ मोह से
फैल लालसा से निशि भोर।[1]

इनमें सब अमूर्त उपमानों के साथ क्रियाएँ उठ उठकर लम्बी होकर पीन होकर उठकर बढ़कर उमड़कर फैलकर आदि क्रमशः उच्चाकांक्षाओं लोभ तृप्ति संशय अपयश मोह लालसा उपमानों को कुछ रूप प्रदान करती हैं परन्तु फिर भी उपमान की अमूर्तता के कारण बिम्ब पूर्णतः स्पष्ट नहीं हो पाता। यहाँ हम अपनी कल्पना से क्रिया के आधार पर काल्पनिक मूर्तता लाने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार बिम्ब की अपूर्ण अनुभूति कर पाते हैं। अतः यह स्पष्ट कहा जा सकता है कि अमूर्त उपमान ऐन्द्रियता के अभाव में बिम्ब गत पूर्णता को प्राप्त नहीं कर पाते।

(आ) अमूर्त के लिये मूर्त उपमान योजना—अमूर्त भावों और विचारों की मूर्त उपमान योजना भाव को रम्य बनाने के लिये की जाती है। अरूप रूपायित हो जाने पर सहज प्रेषणीय हो जाता है इसीलिए भक्त कवियों से लेकर आज के प्रगतिवादी प्रतीकवादी कवियों तक ने इस प्रकार की योजना की है। मध्ययुगीन कवियों में ऐसे उपमानों का बाहुल्य है। जायसी सूर आदि में ऐसे उपमान बराबर मिल जाते हैं। जैसे

बिरह हस्ति तन सालै घाइ करै तन चूर।
बेगि आइ पिय बाजहु गाजहु होइ सदूर।

अथवा सूर का

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै।

२—अब मैं नाच्यौ बहुत गुपाल
काम क्रोध को पहिरि चोलना कंठ विषय की माल।

यहाँ बिरह मन काम क्रोध जैसे अमूर्त विषयों के लिए क्रमशः हाथी पंछी और वस्त्रों का रूप दिया गया है जो सुन्दर बिम्बात्मक कथन की श्रेणी में आता है। आधुनिक कवियों में भी इस प्रकार की उपमान योजना पर्याप्त हुई है। जैसे

(१) जल उठा स्नेह-दीपक सा नवनीत हृदय था मेरा।
अब शेष धूम रेखा से चित्रित कर रहा अँधेरा।[2]

(२) ऐ हिम के झंझावात अभी तुममें जीवन की झंझाएँ।
लख गईं सुनहली फसलों सी सदियों की पकी सभ्यताएँ।[3]

---

१ आधुनिक कवि—सुमित्रानंदन पंत
२ आँसू—जयशंकर प्रसाद
३ धूप के धान—गिरिजाकुमार माथुर, पृ० ११

यहाँ स्नेह को दीपक, हृदय को नवनीत और विरह दशा को धूम रेखा से चित्रित किया गया है। द्वितीय उदाहरण में पत्नियों की परिपक्व सम्पदाओं के लिये पकी मुसकुरी फसलों का उपमान दिया गया है। मूर्त उपमान योजना में सदैव सुन्दर बिम्बों का निर्माण होता है। बिम्ब की रूप की आवश्यकता को यह उपमान पूरा करते हैं। भाव के इस मूर्तीकरण में ऐन्द्रियता अवश्य आ जाती है। अधिकतर अमूर्त भावों को सहज और प्रेषणीय बनाने के लिये मूर्त बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि अमूर्त भावों को अथवा अमूर्त विषयों के लिए की गई मूर्त उपमानों की योजना सदैव बिम्बात्मक होती है। ऐसी बिम्ब योजना कवि की सं प्रेषकता का प्रतिपादित करती है।

(इ) मूर्त के लिए मूर्त उपमान—इस प्रकार की उपमान योजना अधिकांशतः बिम्बात्मक होती है। मूर्त उपमान में रूप रस गंध आदि सभी होता है इसलिये बिम्ब का निर्माण भी सहज ही हो जाता है। कहीं कहीं तो ऐसे स्थलों पर प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही बिंब प्रस्तुत कर सकते हैं। इस प्रकार की उपमान योजना प्राचीन साहित्य से लेकर नवीन साहित्य तक में बराबर होती आई है। मध्य युगीन व आधुनिक सभी कवियों ने इसका बहुलता से प्रयोग किया है—

(१) भई कोमल पदुमावति बारी, जस बौरें सब करी सँवारी।
भंवर आइ लुबुधे बहु पासा, जस केवा लेइ चंप सुबासा।

(२) प्रस्फुटित जब उर्वशी चांदनी में हुम की छाया से।
तथा सर्प के मुख से जैसे मणि बाहर निकली हो,
याकि चांदनी स्वयं स्वर्ण प्रतिमा में ढाल ढली हो।[1]

(३) रात के कज्जल तिमिर में झिलमिलाती
प्रात की कंचन किरण सी कौन तुम हो।[2]

यहाँ पद्मावती उर्वशी और प्रेयसी के लिए क्रमशः बाड़ी, मणि व चांदनी एवं प्रात की कंचन किरण आदि मूर्त उपमान प्रस्तुत किये गये हैं। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही मूर्त हैं और दोनों स्थलों पर ही बिंब योजना करने में उपमान पूर्ण समर्थ हुए हैं। उपमान रूप को अधिक प्रभावोत्पादक रूप में प्रस्तुत करने के लिए मूर्तता का आश्रय ही लेते हैं। इसमें उनका रूप स्वतः रूप रस गंध से युक्त हो जाता है। और वे सहज ही बिंब का रूप धारण कर लेते हैं। समष्टि में सभी मूर्त उपमान यदि वह केवल चमत्कार के लिये नहीं हैं वरन् भाव व्यंजना के लिए हैं तो सदैव बिंब प्रस्तुत करते हैं। इनमें ऐन्द्रियता एवं भावोद्दीपन की सामर्थ्य होने से बिम्ब स्वतः ही निर्मित हो जाता है।

---

१ उर्वशी : दिनकर, पृ० ३
२ मत्स्यगंधा : भट्ट, पृ० ५२

(४) अमूर्त के लिए अमूर्त योजना—अमूर्त के लिए अमूर्त योजना काव्य में अपेक्षाकृत कम होती है। मध्ययुगीन सारी कविता—ज्ञान व भक्तिपरक या शृंगार परक—में इसका अभाव सा है। आधुनिक कविता में भी इसके उदाहरण कम ही मिलते हैं। प्रसाद ने कुछ ऐसे सफल प्रयोग अवश्य किये हैं जैसे कामायनी के चिन्ता सर्ग में —

निकल रही थी मर्मवेदना करुणा विकल कहानी-सी
वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती सी पहचानी सी।[1]

यहां मर्मवेदना की तुलना करुण विकल कहानी से की गई है। दोनों अमूर्त हैं। इस प्रकार की उपमान योजना में भी बिम्ब निर्मित नहीं हो सकता क्योंकि मूर्तता रूप रस गंध आदि की अनुभूति का इसमें अभाव है और मूर्तता के अभाव में बिम्ब की स्थिति असम्भव है। यह पहले ही बताया जा चुका है। इस प्रकार के उपमान श्रेष्ठ अप्रस्तुत होने पर भी बिम्ब की दृष्टि से महत्त्व-हीन होते हैं, यहां भी किन्हीं क्रियाओं विशेषणों के द्वारा अमूर्त को मूर्तित करने का प्रयास कर सकते हैं, परन्तु समग्रता के अभाव के कारण बिम्ब विशृंखलित ही रहता है।

(५) मूर्तामूर्त रूप उपमान—यहां एक ही वस्तु के लिए कई प्रकार के मूर्त अथवा अमूर्त उपमानों की योजना की जाती है। इस प्रकार की उपमान योजना मालोपमा या उत्प्रेक्षाओं आदि में जहां कवि एक ही रूप के लिए विभिन्न प्रकार के चित्र लाता है—पायी जाती है। इन स्थलों पर कुछ उपमान अमूर्त होते हैं और कुछ मूर्त। उदाहरण के लिये —

वह इष्ट देव के मन्दिर की पूजा सी
वह दीप शिखा सी शान्त भाव में लीन।
वह क्रूर काल ताण्डव की स्मृति रेखा सी
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की ही विधवा है।[2]

यहां दलित भारत की विधवा मूर्त प्रस्तुत के लिए मंदिर की पूजा काल की स्मृति रेखा—दो अमूर्त और दीप शिखा व लता—दो मूर्त उपमान दिये गये हैं। यहां एक तो रूप की समग्रता सामने नहीं आती दूसरे अमूर्त उपमानों के बीच बीच में आने से बिम्ब विशृंखलित हो जाता है। कवि की कल्पना से उत्पन्न इन रूप चित्रों में मूर्त उपमान तो बिम्ब विधान करते ही हैं। अमूर्त उपमान का भी मानस साक्षात्कार पाठक कर सकते हैं। अधिकांशतः ऐसे वर्णनों में बिम्ब विशृंखलित-सा हो जाता है। कवि कभी-कभी ऐसी उपमान योजना के रूप में भी अप्रस्तुत को रखता है जो समग्रता और भावोद्दीपन में सहायता नहीं करती अतः वहां बिम्ब सम्पूर्ण नहीं

१ कामायनी प्रसाद पृ ८
२ परिमल निराला,

होता। अमूर्त और मूर्त बिम्बों के बीच-बीच में आ जाने से चित्र की समग्रता में व्याघात पहुँचता है।

समष्टि में कहा जा सकता है कि बिम्ब रूप में उपमान के प्रयुक्त होने के लिए उसमें मूर्तता होना आवश्यक है। इसी कारण मूर्त उपमानों में सबल उत्कृष्ट बिम्ब योजना निहित रहती है और अमूर्त उपमानों में प्रत्यक्षता के अभाव के कारण एक अस्पष्टता एक भ्रम-सा बना रहता है। हम उसका पूर्ण मानस साक्षात्कार करने में असमर्थ ही रहते हैं। अंत में कहा जा सकता है कि मूर्तता बिम्ब की विशेषता है अतः जहां उपमान मूर्त रूप में प्रस्तुत होता है वहां उत्कृष्ट बिम्बों की योजना होती है।

अलंकारों का आधार साम्य है। किसी भी अलंकार के लिए गुण धर्म प्रभाव आदि किसी न किसी प्रकार का साम्य आवश्यक होता है। शुक्ल जी ने अलंकारों का विवेचन करते हुए लिखा है— अधिकतर अलंकारों का विधान सादृश्य के आधार पर होता है। सादृश्य की योजना दो दृष्टियों से की जाती है। स्वरूप बोध के लिए और भाव तीव्र करने के लिए। कवि लोग सदृश वस्तुएं भाव तीव्र करने के लिए ही अधिकतर लाया करते हैं पर बाह्य कारणों से अगोचर तथ्यों के स्पष्टीकरण के लिए जहां सादृश्य लाया जाता है वहां कवि का लक्ष्य स्वरूप बोध भी रहता है।[1] कवि सादृश्य की योजना अप्रस्तुत के रूप गुण या प्रभाव को दिखाकर प्रस्तुत को अधिक भाव पूरित और आकर्षक बनाने के लिए किया करता है। सादृश्य में धर्म प्रभाव आदि की समानता का भी समाहार हो जाता है।

साम्य को दो स्थूल विभागों में विभक्त किया जा सकता है—

(अ) रूप साम्य अर्थात् बाह्य साम्य।

(आ) गुण धर्म व प्रभाव साम्य अर्थात् आंतरिक साम्य।

(अ) रूप साम्य – रूप साम्य का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। प्राचीन कविता से लेकर आधुनिक युग की कविता के आने से अधिक उपमान सम्भवतः रूप साम्य के आधार पर ही निर्मित हुए हैं। रूप साम्य के अन्तर्गत ही वर्ण-साम्य आता है। अधिकांश में कवियों ने अप्रस्तुत के द्वारा वस्तु के रूप और रंग को स्पष्ट किया है। अभ्रु-पूरित नेत्रों के लिये जायसी ने समग्र पद्मावत में केवल दो ही उपमान दिये हैं जिनकी बार बार आवृत्ति हुई है यह है—

१—रानी सुनत मुरुा सब गयऊ × × × ।

पहुने नहीं नोन के करा, आंसु पगम अनु मआनगहु भरा।

२—नैन सीप आंसुहि तस भरे मानहु मोतिहु गिरहिं सब ढरे।

यह दोनों ही बिम्ब रूप साम्य पर आधारित हैं। प्रथम में रंग (वर्ण) साम्य प्रधान है और द्वितीय में रूप और आकार का साम्य नेत्रों के लिए लाया गया है।

---

१ जायसी का पद्मावत—रामचन्द्र शुक्ल पृ० १३८

नक्षत्रों भरा गगन नेत्रों के आकार को प्रकट नहीं करता वरन् रंगों को प्रकट करता है। पद्मावती के नेत्र नील वर्ण के थे जिसमें नक्षत्रों की भाँति सफेद-सफेद असंख्य श्रम बिन्दु भरे हुए थे। द्वितीय साम्य मोती भरी सीपी का दिया गया है जिसमें वर्ण अप्रधान है आकार प्रधान है। पद्मावती के नेत्र सीपियों के आकार के थे और उसमें भरे श्रम बिन्दु मोती की भाँति प्रतीत होते थे। इस प्रकार यह दोनों उपमान पद्मावती के नेत्रों का रूप प्रस्तुत करते हैं। रूप साम्य के साथ-साथ इसमें सुन्दर बिम्ब विधान भी – रूप और रंग के उल्लेख के कारण—स्वतः ही हो गया है। जायसी के अधिकांश उपमान रूप साम्य पर ही आधारित हैं। एक स्थल और द्रष्टव्य है—

दसन स्याम पानहु रंग पाके, बिहँसत कवल भंवर अस ताके।
चमतकार मुख भीतर होई, जस दारिउ औ स्याम मकोई।
चमकै चौंकि बिहँसि जो नारी, बीजु चमक जस निसि अंधियारी।

इसमें सभी उपमान वर्ण साम्य पर आधारित हैं। दाड़िम के उपमान में दाँतों का रूप कुछ आ जाता है परन्तु उसके साथ कवि ने स्याम मकोई का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि रंग साम्य ही उसे अभीष्ट रहा होगा। अन्य उपमान 'कंवल और भ्रमर' व रात के अंधेरे में चमकती बिजली भी वर्ण साम्य को ही प्रकट करते हैं। इस प्रकार की रूप या रंग पर आधारित उपमान योजना यद्यपि भाव का विशेष उपकार नहीं करती परन्तु यह स्वरूप-बोध के द्वारा वस्तु को और अधिक आकर्षक बना देती है। रूप व रंग के उल्लेख से इसमें सुन्दर बिम्ब निर्मित होता है। स्वरूप की स्पष्टता और सौन्दर्य सर्जन इसका प्रमुख गुण है। भाव का उत्कर्ष इसमें कम ही होता है। परन्तु भाव की उपेक्षा करके ऐसे उपमान सफल नहीं हो सकते। औचित्य का विचार सर्वत्र आवश्यक है। भाव की नितान्त उपेक्षा कर केवल रूप रंग के आधार पर प्रस्तुत पर कोई आरोपण करना हास्यास्पद ही होता है। जैसे सूर ने राधा की गति के आधार पर गजगामिनी कहा है वहाँ तक गति की सम्यक मादकता का आभास मिलता है यह उपमान उचित है। पर कवि ने और आगे बढ़कर उसके समस्त अंगों पर गज के अंगों का आरोप किया है जो कभी भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। भाव का अपकार करने से यह उपमान काव्य का अपकार भी करते हैं इसी प्रकार केशव ने सूर्य को लालिमा के आधार पर 'शोणित कलित कपाल' कह दिया है। ऐसे रूप साम्य काव्य की उत्कृष्टता में व्याघात डालते हैं। बिम्ब की दृष्टि से भी यह वर्णन भाव का उपकार न करने के कारण सफल नहीं कहे जा सकते।

रूप साम्य और बिम्ब का सम्बन्ध बड़ा निकट का है। रूप देने में कवि सदैव भाव को मूर्तित करता है और इसमें बिम्ब की सृष्टि सदा होती है। परन्तु जहाँ रूप साम्य पर आये उपमान परम्परागस्त होते हैं वहाँ नवीनता और ताजगी के अभाव के कारण उपमानों की उत्तेजना प्रदान करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अतः ऐसे

स्थलों पर भी सफल बिम्ब निर्माण नहीं होता। जैसे इन पदों में—

हंस गामिनी कोकिल बैनी आदि

रूप या ध्वनि की कोई मार्मिक अनुभूति नहीं होती। वह इतने प्राचीन हो चुके हैं कि अब किसी नवीन कल्पना के अभाव में हमारे मानस को आन्दोलित करने में असमर्थ रहते हैं और काव्य में विशिष्ट महत्व के अधिकारी नहीं बन पाते।

उपमान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना भी बिम्ब ग्रहण के लिए आवश्यक है। प्राचीन उपमानों को यदि नये रूप विधान में समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाय तो वे भी बिम्ब निर्माण में सफल होते हैं। उदाहरण के लिए—

नैन चतुर व रूप चितेरे
कंवल पत्र पर मधुकर फेरे।

यहाँ नेत्रों के लिये बहु प्रचलित उपमान कमल व भ्रमर लाए गए हैं। पद्मावती के नेत्र कमल पत्रों के सदृश हैं जिन पर भ्रमर रूपी तारे बैठे हुए हैं। यहाँ आकार और रूप दोनों का साम्य है और प्राचीन उपमानों का एक नए परिवेश के साथ प्रस्तुत किया है जो बिम्ब विधान करने में पूर्ण सफल हुए हैं। बिम्ब विधान में रूप साम्य के आधार पर निर्मित उपमानों में भाव की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। ऐसा होने पर बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते। जायसी ने एक दो स्थलों पर ऐसे वर्णन किये हैं। एक तो तोता का वर्णन करते हुए उन्हें नारी कह कर उन पर नारी के अंग प्रत्यंगों का आरोपण करके शृंगार को वीर रस के साथ समेटने का प्रयत्न किया गया है और दूसरे स्थल पर बादल की पत्नी के शृंगार पर वीर का आरोपण हुआ है उसके अंग प्रत्यंगों को युद्ध के उपकरणों से मिलाया गया है। ऐसे स्थलों पर संदर्भ और भाव की उपेक्षा हुई है। इस कारण यह बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते। रूप साम्य यद्यपि बिम्ब विधान का एक बड़ा साधन है फिर भी नवीनता औचित्य और उपमान को समग्रता के साथ प्रस्तुत करना बिम्ब ग्रहण के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में उपमानों में रूप अथवा रंग का साम्य होते हुए भी बिम्ब ग्रहण न हो सकेगा।

(आ) गुण धर्म और प्रभाव साम्य (आंतरिक साम्य)—रूप साम्य के अतिरिक्त प्रभाव गुण और धर्म साम्य के आधार पर भी अप्रस्तुत का नियोजन होता है। धर्म और प्रभाव के साम्य पर आधारित उपमानों का काव्य में विशेष महत्व है क्योंकि इनमें यदि औचित्य का ध्यान रखा जाय तो सदैव भाव का उत्कर्ष होता है अपकर्ष नहीं। इनमें भाव व्यंजना की अपूर्व सामर्थ्य रहती है। प्रभाव साम्य यदि अरूप होता है तब बिम्ब की अनुभूति अस्पष्ट होती है पर जब प्रभाव साम्य भाव की रक्षा करते हुए ऐन्द्रियगम्य रूपों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तब वहाँ श्रेष्ठ बिम्बों का निर्माण होता है। उपमान भाव की रक्षा करते हुए वस्तु या भाव को ऐन्द्रियगम्य बनाता है। इसी प्रकार धर्म साम्य काव्य में विशेष महत्व रखता है। भावों का

नखतों भरा गगन केशों के आकार को प्रकट नहीं करता वरन् रंगों को प्रकट करता है। पद्मावती के केश नील वर्ण के थे जिसमें नखतों की भांति सफेद-सफेद असंख्य जल बिन्दु भरे हुए थे। द्वितीय साम्य मोती भरी सीपी का दिया गया है जिसमें वर्ण अप्रधान है आकार प्रधान है। पद्मावती के केश सीपियों के आकार के थे और उसमें भरे जल बिन्दु मोती की भांति प्रतीत होते थे। इस प्रकार यह दोनों उपमान पद्मावती के केशों का रूप प्रस्तुत करते हैं। रूप साम्य के साथ-साथ इसमें सुन्दर बिम्ब विधान भी – रूप और रंग के उल्लेख के कारण—स्वतः ही हो गया है। जायसी के अधिकांश उपमान रूप साम्य पर ही आधारित हैं। एक स्थल और द्रष्टव्य है—

दसन स्याम पानहु रंग पाके। बिहँसत कँवल भँवर जस ताके।
चमतकार मुख भीतर होई। जस दारिउँ औ स्याम मकोई।
चमकै चौंकि बिहँसि जो नारी। बीजु चमक जस निसि अंधियारी।

इसमें सभी उपमान वर्ण साम्य पर आधारित हैं। दाड़िम के उपमान में दाँतों का रूप कुछ आ जाता है परन्तु उसके साथ कवि ने श्याम मकोई का प्रयोग किया है जिससे प्रतीत होता है कि रंग साम्य ही उसे अभीष्ट रहा होगा। अन्य उपमान 'कँवल और भ्रमर' व रात के अंधेरे में चमकती बिजली भी वर्ण साम्य को ही प्रकट करते हैं। इस प्रकार की रूप या रंग पर आधारित उपमान योजना यद्यपि भाव का विशेष उपकार नहीं करती परन्तु यह स्वरूप-बोध के द्वारा वस्तु को और अधिक आकर्षक बना देती है। रूप व रंग के उल्लेख से इसमें सुन्दर बिम्ब निर्माण होता है। स्वरूप की स्पष्टता और सौन्दर्य वर्णन इसका प्रमुख गुण है। भाव का उत्कर्ष इसमें कम ही होता है। परन्तु भाव की उपेक्षा करके ऐसे उपमान सफल नहीं हो सकते। औचित्य का विचार सर्वत्र आवश्यक है। भाव की नितान्त उपेक्षा कर केवल रूप रंग के आधार पर प्रस्तुत पर कोई आरोपण करना हास्यास्पद ही होता है। जैसे सूर ने राधा को गति के आधार पर गजगामिनी कहा है वहाँ तक गति की सम्यक मादकता का आभास मिलता है, यह उपमान उचित है। पर कवि ने और आगे बढ़कर उसके समस्त अंगों पर गज के अंगों का आरोप किया है जो कभी भी प्रशंसनीय नहीं कहा जा सकता। भाव का अपकार करने से यह उपमान काव्य का अपकार भी करते हैं इसी प्रकार केशव ने सूर्य की लालिमा के आधार पर 'शोणित कलित कपाल' कह दिया है। ऐसे रूप साम्य काव्य की उत्कृष्टता में व्याघात डालते हैं। बिम्ब की दृष्टि से भी यह वर्णन भाव का उपकार न करने के कारण सफल नहीं कहे जा सकते।

रूप साम्य और बिम्ब का सम्बन्ध बड़ा निकट का है। रूप देने में कवि सदैव भाव को मूर्तित करता है और इसमें बिम्ब की सृष्टि सदा होती है। परन्तु जहाँ रूप साम्य पर आये उपमान परम्पराग्रस्त होते हैं वहाँ नवीनता और ताजगी के अभाव के कारण उपमानों की उत्तेजना प्रदान करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। अतः ऐसे

स्थलों पर भी सफल बिम्ब निर्माण नहीं होता। जैसे इन पदों में—

हंस गामिनी कोकिल बैनी आदि

रूप या ध्वनि की कोई मार्मिक अनुभूति नहीं होती। यह इतने प्राचीन हो चुके हैं कि अब किसी नवीन कल्पना के अभाव में हमारे मानस को आन्दोलित करने में असमर्थ रहते हैं और काव्य में विशिष्ट महत्व के अधिकारी नहीं बन पाते।

उपमान को समग्र रूप में प्रस्तुत करना भी बिम्ब ग्रहण के लिए आवश्यक है। प्राचीन उपमानों को यदि नये रूप विधान में समग्रता के साथ प्रस्तुत किया जाय तो वे भी बिम्ब निर्माण में सफल होते हैं। उदाहरण के लिए—

नैन चतुर वै रूप चितेरे
कोमल पत्र पर मधुकर घरे।

यहां नेत्रों के लिये बहु प्रचलित उपमान कमल व भ्रमर लाए गए हैं। पद्मावती के नेत्र कमल पत्रों के सदृश हैं जिन पर भ्रमर रूपी तारे बैठे हुए हैं। यहां आकार और रूप दोनों का साम्य है और प्राचीन उपमानों को एक नए परिवेश के साथ प्रस्तुत किया है जो बिम्ब विधान करने में पूर्ण सफल हुए हैं। बिम्ब विधान में रूप साम्य के आधार पर निर्मित उपमानों में भाव की उपेक्षा नहीं होनी चाहिए। ऐसा होने पर बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते। जायसी ने एक दो स्थलों पर ऐसे वर्णन किये हैं। एक तो दोनों का वर्णन करते हुए उन्हें नारी कह कर उस पर नारी के अंग प्रत्यंगों का आरोपण करके शृंगार को वीर रस के साथ समेटने का प्रयत्न किया गया है और दूसरे स्थल पर बादल की पत्नी के शृंगार पर वीर का आरोपण हुआ है उसके अंग प्रत्यंगों को युद्ध के उपकरणों से मिलाया गया है। ऐसे स्थलों पर संदर्भ और भाव की उपेक्षा हुई है। इस कारण यह बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते। रूप साम्य यद्यपि बिम्ब विधान का एक बड़ा साधन है फिर भी नवीनता औचित्य और उपमान को समग्रता के साथ प्रस्तुत करना बिम्ब ग्रहण के लिए आवश्यक है। इसके अभाव में उपमानों में रूप अथवा रंग का साम्य होते हुए भी बिम्ब ग्रहण न हो सकेगा।

(आ) गुण धर्म और प्रभाव साम्य (आंतरिक साम्य)—रूप साम्य के अतिरिक्त प्रभाव गुण और धर्म साम्य के आधार पर भी उपमानों का नियोजन होता है। धर्म और प्रभाव के साम्य पर आधारित उपमानों का काव्य में विशेष महत्व है क्योंकि इनमें यदि औचित्य का ध्यान रखा जाय तो सदैव भाव का उत्कर्ष होता है अपकर्ष नहीं। इनमें भाव व्यंजना की अपूर्व सामर्थ्य रहती है। प्रभाव साम्य यदि सफल होता है तब बिम्ब की अनुभूति अस्पष्ट होती है पर जब प्रभाव साम्य भाव की रक्षा करते हुए ऐन्द्रियगम्य रूपों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है तब वहां श्रेष्ठ बिम्बों का निर्माण होता है। उपमान भाव की रक्षा करते हुए वस्तु या भाव को ऐन्द्रियगम्य बनाता है। इसी प्रकार धर्म साम्य काव्य में विशेष महत्व रखता है। भावों का

उत्कर्ष कराने में यह विशेष रूप से सहायक होता है जैसे इन स्थलों पर—

१—अब धनि दिवस बिरह भा राती जरै बिरह ज्यों दीपक बाती

२—सरवर हिया घटत निति जाई टूकि टूकि होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दँवगरा मेरवहु ऐका।

यहाँ नागमती के विरह दग्ध हृदय को निरन्तर दाहक अग्नि में जलते रहने और भस्म व खंडित हो जाने के कारण दीपक की सदा प्रज्वलित रहने वाली वर्तिका व ग्रीष्म में सूर्यताप से फटे सरोवर के रूप से चित्रित किया गया है। नागमती के हृदय और वर्तिका व सरोवर में रूप का साम्य नहीं है वरन् धर्म का साम्य है। वर्तिका जिस प्रकार निरन्तर तिलतिल कर जलती रहती है उसी प्रकार नागमती का हृदय भी विरह की दाह में जल रहा है, इसमें नागमती की अपार पीड़ा व्यंजित हुई है। और जिस प्रकार सरोवर तीव्र ग्रीष्म में तड़क तड़क कर फट जाता है व जिस प्रकार दँवगरे के पश्चात् सरोवर की मिट्टी चिकनी हो जाती है उसी प्रकार रत्नसेन की दृष्टि—दवगर के बाद नागमती का हृदय स्नेह सिक्त—मृदुल हो जायगा। धर्म साम्य के आधार पर प्रयुक्त यह उपमान बिम्ब रूप में भी सफल है ऐन्द्रियता इनमें पर्याप्त है जिसके कारण पाठक सहज ही नागमती के विरह दग्ध हृदय से मानस साक्षात्कार कर सकता है।

प्रभाव साम्य की चर्चा ऊपर हो चुकी है। अब आतरिक साम्य के तीसरे स्वरूप गुण साम्य का विवेचन किया जायगा। गुण साम्य भी प्रभाव और धर्म साम्य की भांति काव्य में विशेष महत्व रखता है। गुण साम्य में भाव की मूर्तता का प्रश्न बिम्ब ग्रहण के लिए उठता है। यदि गुण साम्य में वस्तु को मूर्तित एव इन्द्रियगम्य बना दिया जाता है तो वहां अवश्य बिम्ब सृष्टि होती है अन्यथा वर्णन बिम्ब हीन रहता है। निम्नांकित वर्णन में वस्तु में गुण साम्य तो है ही वर्णन की प्रणाली भी बिंबात्मक है

कवल कली तू पदुमिनि गै निसि भयउ बिहान।
अबहुँ न संपुट खोलहि जो रे उआ जग भान।

यहां कमल कली के उपमान में पद्मावती की अवस्था (वय) का साम्य तो कुछ मिल जाता है परन्तु रूप साम्य नहीं है। कवि की दृष्टि यहां कमल कली के सूर्य के उदय होने पर संपुट खुल जाने के गुण पर रही है। पद्मावती को भी राजा रत्नसेन रूपी सूर्य के उठ जाने पर संपुट रूपी नेत्र के पलक खोलने के लिये कहा गया है। इस प्रकार यहां गुण साम्य प्रधान है जिसमें इन्द्रियता होने के कारण उपमान बिम्ब प्रस्तुत करने में भी सफल हो सका है। कमल कली का खिलना दृष्टिगम्य व्यापार है जो पद्मावती के नेत्रों के खुलने को चित्र रूप प्रदान कर देता है।

समष्टि में प्रभाव धर्म और गुण सभी प्रकार के आंतरिक साम्यों में स्पष्ट बिंबों का निर्माण होता है। उनका ऐन्द्रिय गम्य होना ही केवल—बिम्ब निर्माण के लिए आवश्यक है। वस्तुतः धर्म गुण और प्रभाव निर्मित उपमान ही अधिक व्यजक

बिम्ब निर्माण करते हैं, केवल रूप रंग पर आधारित नहीं। क्योंकि भाव को तीव्र करने और उसको उत्कर्ष देने का समस्त श्रेय इन्हीं बिंबों को है। रूप रंग से मुक्त उपमान यद्यपि रूप और आकार की अधिक भावात्मक अनुभूति कराने में सहायक होते हैं पर उनमें इतनी गहराई नहीं होती जितनी धर्म गुण व प्रभाव साम्य पर निर्मित उपमानों और बिम्बों में हो सकती है।

(३) काल्पनिक साम्य—उपमानों का एक अन्य आधार काल्पनिक साम्य भी हो सकता है। यहां कवि असम्भव वस्तुओं और असम्भव व्यापारों को जोड़ तोड़ कर एक स्थल पर लाकर रख देता है। पाठक कल्पना से उनके सौन्दर्य की अनुभूति कर पाता है। यहां कवि सम्भव असम्भव की सीमा का अतिक्रमण करके सर्वथा नवीन रूप में उपमान की योजना करता है जो पाठक की कल्पना के लिए एक विचित्र वस्तु होती है। मध्ययुगीन कवियों ने कुछ उपमान इस प्रकार के दिये हैं। जायसी ने बेनी और सिर के आभूषणों आदि के लिए इस प्रकार का काल्पनिक साम्य दिया है।

बेनी कारी पुहुप लै निकसा जमुना आइ
पूजा चंद भुअंग लौं सेंदुर सीस चढ़ाइ।

अर्थात् उसकी बेनी उसमें गूंथे पुष्प काले केश और सेंदुर भरी मांग की सम्मिलित शोभा ऐसी थी मानो बेनी रूपी काली नाग यमुना से फूल लेकर बाहर निकला हो और उसी समय कालिन्दी आ गई हो जिसके सिर पर सेंदुर चढ़ा कर आनन्द से कृष्ण ने पूजा की हो।

यहां सर्प यमुना कृष्ण की पूजा आदि के असम्भव वस्तु और क्रिया व्यापारों को एक स्थल पर एकत्र कर नवीन पर विचित्र कल्पना की गई है जो सहज ग्राह्य नहीं है।

इसी प्रकार का सूरदास का एक पद द्रष्टव्य है—

उपमा एक अभूत भई तब, जब जननी पट पीत उढ़ाए।
नील जलद पर उडुगन निरखत तज सुभाव मनु तड़ित छिपाये।[1]

आभूषण मुक्ता माल इत्यादि से शोभित कृष्ण का श्याम वर्ण शरीर ऐसा प्रतीत होता था मानो बादलों में तारे उदित हो गये हों और चपला अपनी चंचलता को छोड़कर स्थिर हो गई हो। यहां बादल में तारे निकलने और चपला के स्थिर हो जाने के व्यापार कल्पना के लिए असम्भव नहीं तो विचित्र अवश्य है। इनमें सौन्दर्य का चमत्कार पूर्ण बोध होता है पाठक की कल्पना में वस्तु का बिंब आने में व्याघात पड़ता है। ऐसे साम्य में कभी भी बिंब निर्माण नहीं हो सकता। बिंब में चमत्कार का अभाव होता है। यहां कवि की दृष्टि पाठक की सहज कल्पना को जागृत करने की ओर रहती है और यहां पाठक बुद्धि बल से अनुमान कर सौन्दर्य की प्रतीति करता है। अनुमान स्वतः एक बौद्धिक प्रक्रिया है जो बिम्ब ग्रहण में सहायक नहीं हो

[1] सूर सागर दशम स्कंध पद सं १०४५

सकती। इस प्रकार स्पष्ट है काल्पनिक साम्य कभी भी बिम्ब निर्माण नहीं कर सकता।

समष्टि मे कहा जा सकता है कि रूप धर्म गुण और प्रभाव आदि के बाह्य और आतरिक सभी प्रकार के साम्यो में बिंब निर्मित हो सकता है। केवल काल्पनिक साम्य के आधार पर नियोजित उपमान कभी बिंब नही कहे जा सकते। बिंब के लिए केवल मूर्तता ऐन्द्रियता एवं भावव्यंजकता आवश्यक होती है और अधिकांशत: उपमानों में यह तत्व मिल जाते हैं इस कारण किसी भी काव्य मे प्रयुक्त होने वाले आधे से अधिक उपमान बिम्बात्मक होते हैं।

अलंकार और बिम्ब

उपमानों के इस विवेचन के पश्चात् कुछ प्रमुख अलंकारो में बिंब की स्थिति का निरीक्षण करना भी उपयोगी होगा। अलंकारों में यहा हम केवल कुछ प्रमुख अर्थालंकारों को ही लेंगे शब्दालंकारों की चर्चा नही करेंगे क्योंकि शब्दालंकार मुख्यत भाषा से ही सम्बन्धित रहते हैं भाव से नही जैसे वक्रोक्ति यमक अनुप्रास आदि। अत: बिम्ब से इनका कोई सैकट्य प्रतीत नही होता। यहां हम भाव व्यंजना में सहायक होने वाले कुछ प्रमुख अर्थालंकारों का ही विवेचन करेंगे।

(१) उपमा—सादृश्य का विधान करने वाला सर्वप्रमुख अलंकार उपमा है। उपमा में उपमान उपमेय धर्म और वाचक शब्द चार अंग रहते हैं। परन्तु इनमें से एक या दो के अभाव में भी उपमा की सत्ता रह सकती है। तब इसे लुप्तोपमा कहा जाता है। उपमा सबसे सरल और भाषा की सबसे सहज अभिव्यक्ति है जिसका सबसे अधिक व्यवहार होता है। जायसी में भी अनेक उपमाएँ हैं जो बिम्ब रूप में प्रयुक्त हुई हैं। जैसे

कंकनू पंखि जैस सर साजा तस चढ़ तजहि जरा चह राजा।

और

राजै सुनि वियोग तस माना जैस हिये विक्रम पछिताना। आदि आदि

यहाँ कंकनू पक्षी की उपमा में संदर्भ परिस्थिति और भाव का उचित योग है। कंकनू पक्षी की भांति राजा भी जीवन भर विरह की अग्नि सह कर स्वयं जलाई गई अग्नि में भस्म होना चाहता है। यहां कंकनू पक्षी के जलन का पूरा बिंब आ जाता है। यह उपमा बहुत अधिक भाव व्यंजक है अब का स्रोत इसके साथ बहता है जिसके कारण पाठक की कल्पना राजा की अवस्था का मानस साक्षात्कार करने में पूर्ण सफल हो जाती है। द्वितीय उपमा लोक कथाओं से ली गई है। यहां पछताता हुआ राजा विक्रम की अवस्था का रत्नसेन पर आरोपण करता है। राजा विक्रम और उसके जीवन से परिचित पाठक सहज ही इस उपमा से बिंब ग्रहण कर सकता है।

सामान्य रूप से उपमाओं में नवीनता के अभाव के कारण सुन्दर बिम्ब कम निर्मित हो पाते हैं। परन्तु जहां उपमा नवीन व्यंजक और बहुत अधिक अर्थ-सम्पत्ति

से सम्पन्न होती है वहां बिम्ब निर्माण का श्रेष्ठ स्वरूप उपस्थित होता है। अमूर्त उपमाएँ भी बिम्ब निर्मित करने में असमर्थ रहती हैं। यदि वहां उनके साथ कोई विशेषण या कोई क्रिया हो जो बिंब निर्माण में समर्थ हो तब तो वह बिम्बात्मक हो सकती हैं अन्यथा अधिकांश अमूर्त उपमाएँ बिंबहीन होती हैं जैसे पंत की 'छाया' की मालोपमाएँ।

(२) रूपक—जहां रूप का आरोप होता है वहां रूपक अलंकार होता है। साहित्य दर्पणकार ने इसके तीन भेद किये हैं—*परम्परित सांग और निरंग।*[1] सांग रूपक बिंब की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। समस्त अंगों का रूपण होने के कारण समग्रता का समावेश इसमें सहज ही हो जाता है जो बिंब के लिए एक आवश्यकता है। सांग रूपक के दो भेद और भी हो सकते हैं—एक जहां समस्त आरोप शब्द से बोधित हों, दूसरा जहां जहां सब आरोप्यमाणों में से कोई अर्थ बल से गम्य हो उसका कथन शब्दों के द्वारा न हो। प्रथम समस्त वस्तु विषयक द्वितीय एकदेश विवर्ति कहलाता है।[2] दोनों ही बिंब के लिए उपयुक्त होते हैं। जायसी के सांग रूपकों में पर्याप्त बिंब मिल जाते हैं

१—हाड़ भये भुरि कींगरी नसैं भईं सब तांति।
रोंव रोंव तन धुनि उठ कहेउ बिथा केहि भांति।
२—यह मन कौतुक जस मरन रहट घरी की रीति
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।

किसी वाद्य यंत्र और रहंट की घरिया के ये सांग रूपक भाव की पूर्णता के साथ प्रस्तुत करते हैं साथ ही ऐन्द्रियता के कारण बिंब भी प्रस्तुत करते हैं।

इन समस्त वस्तु विषयक रूपकों के अतिरिक्त एक देश विवर्तित रूपक भी जायसी ने प्रयुक्त किये हैं। ये रूपक बिंब की दृष्टि से सफल हैं।

राजपाट दर परम्ह सब तुम्ह सौं उजियार।
बैठ भोम रस मानहु कै न करहु अँधियार।

इसमें राजा की तुलना सूर्य के साथ की गई है जो गम्य है। केवल सूर्य से होने वाले चमत्कार और प्रकाश का उल्लेख है। परन्तु इसमें अपूर्णता नहीं आई है। पाठक रत्नसेन के सूर्य रूप को सहज ही समझ जाता है। यहां प्रस्तुत किया गया उपमान (अप्रस्तुत) पूर्णतः रूपात्मक है जिससे बिम्ब निर्मित हो जाता है। परन्तु जब अप्रस्तुत प्रत्यक्ष अर्थात् इन्द्रियगम्य नहीं होता अथवा बौद्धिक प्रक्रिया द्वारा ग्राह्य होता है तब बिंब का ग्रहण नहीं होता है। जैसे केशव आदि में बुद्धि बल से लाये गये रूपक।

---

१ रूपकं रूपितारोपो विषये निरपह्नवे।
तत्परम्परितं साङ्गं निरङ्गमिति च त्रिधा ॥१॥ —साहित्य दर्पण पृ० ०

२. समस्तवस्तुविषयं श्रौता आरोपिता यदा।
श्रौता आर्थाश्च यस्मिन्नेकदेशविवर्ति तत् ॥ —साहित्यदर्पण पृ० ११

सकती। इस प्रकार स्पष्ट है काल्पनिक साम्य कभी भी बिम्ब निर्माण नहीं कर सकता।

समष्टि में कहा जा सकता है कि रूप धर्म गुण और प्रभाव आदि के बाह्य और आंतरिक सभी प्रकार के साम्यों में बिंब निर्मित हो सकता है। केवल काल्पनिक साम्य के आधार पर नियोजित उपमान कभी बिंब नहीं कहे जा सकते। बिंब के लिए केवल मूर्तता ऐन्द्रियता एवं भावधर्मजकता आवश्यक होती है और अधिकांशतः उपमानों में यह तत्व मिल जाते हैं इस कारण किसी भी काव्य मे प्रयुक्त होने वाले आधे से अधिक उपमान बिम्बात्मक होते हैं।

अलंकार और बिम्ब

उपमानों के इस विवेचन के पश्चात् कुछ प्रमुख अलंकारों में बिंब की स्थिति का निरीक्षण करना भी उपयोगी होगा। अलंकारों में यहाँ हम केवल कुछ प्रमुख अर्थालंकारों को ही लेंगे शब्दालंकारों की चर्चा नहीं करेंगे क्योंकि शब्दालंकार मुख्यतः भाषा से ही सम्बन्धित रहते हैं भाव से नहीं जैसे वक्रोक्ति यमक अनुप्रास आदि। अतः बिम्ब से इनका कोई सैन्द्र्य प्रतीत नहीं होता। यहाँ हम भाव व्यंजना में सहायक होने वाले कुछ प्रमुख अर्थालंकारों का ही विवेचन करेंगे।

(१) उपमा—सादृश्य का विधान करने वाला सर्वप्रमुख अलंकार उपमा है। उपमा में उपमान उपमेय धर्म और वाचक शब्द चार अंग रहते हैं। परन्तु इनमे से एक या दो के अभाव में भी उपमा की सत्ता रह सकती है। तब इसे लुप्तोपमा कहा जाता है। उपमा सबसे सरल और भाषा की सबसे सहज अभिव्यक्ति है जिसका सबसे अधिक व्यवहार होता है। जायसी में भी अनेक उपमाएँ हैं जो बिम्ब रूप में प्रयुक्त हुई हैं। जैसे

कंकनू पंखि जैस सर साजा सर चढ़ तबहि जरा चह राजा।

और

राजै सुनि बियोग तस माना जैस हिये बिक्रम पछिताना। आदि आदि

यहाँ कंकनू पक्षी की उपमा में संदर्भ परिस्थिति और भाव का उचित योग है। कंकनू पक्षी की भांति राजा भी जीवन भर विरह की अग्नि सह कर स्वयं जलाई गई अग्नि में भस्म होना चाहता है। यहाँ कंकनू पक्षी के जलने का पूरा बिंब आ जाता है। यह उपमा बहुत अधिक भाव व्यंजक है अर्थ का स्रोत इसके साथ बहता है जिसके कारण पाठक की कल्पना राजा की अवस्था का मानस साक्षात्कार करने में पूर्ण सफल हो जाती है। द्वितीय उपमा लोक कथाओं से ली गई है। यहाँ पछताना शब्द राजा बिक्रम की अवस्था का सम्पूर्ण पर आरोपण करता है। राजा बिक्रम और उसके जीवन से परिचित पाठक सहज ही इस उपमा से बिंब ग्रहण कर सकता है।

सामान्य रूप से उपमाओं में नवीनता के अभाव के कारण सुन्दर बिम्ब कम निर्मित हो पाते हैं। परन्तु जहां उपमा नवीन व्यंजक और बहुत अधिक भाव-सम्पत्ति

से सम्पन्न होती है वहां बिम्ब निर्माण का श्रेष्ठ स्वरूप उपस्थित होता है। अमूर्त उपमाएँ भी बिम्ब निर्मित करने में असमर्थ रहती हैं। यदि वहां उनके साथ कोई विशेषण या कोई क्रिया हो जो बिंब निर्माण में समर्थ हो तब तो वह बिम्बात्मक हो सकती हैं अन्यथा अधिकांश अमूर्त उपमाएं बिंबहीन होती हैं जैसे पंत की 'छाया' की मालोपमाएं।

(२) रूपक—जहां रूप का आरोप होता है वहां रूपक अलंकार होता है। साहित्य दर्पण कार ने इसके तीन भेद किये हैं—परम्परित सांग और निरंग।[1] सांग रूपक बिंब की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। समस्त अंगों का रूपक होने के कारण समग्रता का समावेश इसमें सहज ही हो जाता है जो बिंब के लिए एक आवश्यकता है। सांग रूपक के दो भेद और भी हो सकते हैं—एक वहां समस्त आरोप शब्द से बोधित हों दूसरा वहां जहां सब आरोप्यमाणों में से कोई अर्थ बल से लभ्य हो सबका कथन शब्दों के द्वारा न हो। प्रथम समस्त वस्तु विषयक द्वितीय एकदेश विवर्ति कहलाता है।[2] दोनों ही बिंब के लिए उपयुक्त होते हैं। जायसी के सांग रूपकों में पर्याप्त बिंब मिल जाते हैं

१—हाड़ भये सब किंगरी नसैं भईं सब तांति।
रोंव रोंव तन धुनि उठे कहेसु बिथा केहि भांति।

२—मुहम्मद जीवन जल भरन रहट घरी की रीति
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।

किंगरी वाद्य यंत्र और रहट की घरिया के ये सांग रूपक भाव को [illegible] के साथ प्रस्तुत करते हैं साथ ही ऐन्द्रियता के कारण बिंब भी प्रस्तुत करते हैं।

इन समस्त वस्तु विषयक रूपकों के अतिरिक्त एक [illegible] विवर्ति [illegible] भी जायसी ने प्रयुक्त किये हैं। ये रूपक बिंब की दृष्टि से सक्षम हैं।

राजपाट दर गरगह सब तुम्ह सौं उजियार।
बैठ भौम रस मानहु कै न करहु [illegible]।

इसमें राजा की तुलना सूर्य के भाव की गई है जो [illegible] [illegible] वाले अन्धकार और प्रकाश का उल्लेख है। परन्तु [illegible] रत्नसेन के सूर्य रूप को सहज ही समझ जाता है। [illegible] (अप्रस्तुत) पूर्णतः रूपात्मक है जिसमें बिम्ब [illegible] स्तुत अन्यत्र अर्थात इन्द्रियगम्य नहीं [illegible] तब बिंब का ग्रहण नहीं होता है। [illegible]

---

1. रूपकं रूपितारोपाद् विषये निरपह्नवे। तत्परम्परितं साङ्गं निरङ्गमिति च त्रिधा। [illegible]
2. अङ्गिनो यदि साङ्गस्य रूपणं साङ्गमेव तत्। समस्तवस्तुविषयमेकदेशविवर्ति च। [illegible]

जायसी में भी षटऋतु बारहमासा आदि के कई रूपक ऐसे ही हैं। यह भाव व्यंजना में सहायक नहीं होते साथ ही कवि के हृदय से सहज रूप से निसृत नहीं हुए हैं वरन् कवि ने ठोक पीट कर अप्रस्तुत को प्रस्तुत के ऊपर घटाया है। इन्हीं दोषों के कारण ऐसे वर्णनों में सांग रूपक होते हुए भी बिंब विधान नहीं हो सकता।

(१) उत्प्रेक्षा—उत्प्रेक्षा में कवि प्रस्तुत विषय के लिए अप्रस्तुत विषयन् की कल्पना करता है। यहां विषय से अधिक बल विषयन् अर्थात् उपमान पर होता है। और उसे वाच्य अथवा प्रतीयमान दोनों रीतियों से प्रस्तुत किया जा सकता है। उत्प्रेक्षा के कई रूप होते हैं जैसे फलोत्प्रेक्षा वस्तूत्प्रेक्षा हेतूत्प्रेक्षा आदि। उत्प्रेक्षा में प्राय सुन्दर बिंब प्रस्तुत होते हैं। सभी कवियों ने उत्प्रेक्षा के रूप में सुन्दर बिंब प्रस्तुत किये हैं। जायसी में उत्प्रेक्षाओं का बहुलता से प्रयोग हुआ है और उनमें प्राय बिंब निर्माण हुआ है। यथा

मलय गिरि कै पीठि संवारी बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।
लहरैं देत पीठि जनु चढ़ा चीर ओढ़ाना केंचुरि मढ़ा।

यहां रानी पद्मावती की वेणी के लिए जायसी ने नागिन का बिंब दिया है जब उसकी वेणी चुनरी की ओट में हो जाती है तब कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो नागिन केंचुली से मढ़ गई हो। यह रूप सादृश्य वेणी के लिये एकदम दृश्यात्मक बिंब प्रस्तुत कर देता है। हेतूत्प्रेक्षा आदि में सदैव सुन्दर बिंब—विधान होता है। परन्तु कभी कभी अदृश्य हेतुओं के अदृश्य रूपों के कारण बिंब का अभाव रहता है। कहीं कहीं जहां प्रस्तुत वर्णन के लिये काल्पनिक कारण या हेतु दिया जाता है और वर्णन अरूप रहता है तब बिंब निर्माण नहीं हो सकता जैसे इस वर्णन में

तू जागसि अस चुवै पहारु सो रोवै मन सवरि संसारु।
सोतहि सोत भैस गइ रोवा कस होइहि जो होइहि ओवा।
संवरि पहार जो धारे आंसू प तोहि सूझ न आपन नासू।

परन्तु जहां वर्णन दृश्य होते हैं वहां हेतूत्प्रेक्षा में सुन्दर बिंब निर्मित होते हैं। जैसे

महुम्मद बिरिध जो नइ चलै काह चलै भुइं टोइ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती महं होइ।

वृद्ध व्यक्ति झुक कर चलते हैं जायसी उत्प्रेक्षा करते हैं सम्भवत वह अपने यौवन रूपी रत्न को खोजते चलते हैं जो उनके हाथ से गिर गया है शायद वह भूमि में ही हो। यहां वर्णन की दृश्यात्मकता के कारण बिंब निर्माण हो जाता है। हेतूत्प्रेक्षा में यदि प्रस्तुत विषय जिसके हेतु की कवि कल्पना करता है स्वयं में बिंब के गुणों से युक्त होता है तब अवश्य ही बिंब निर्माण हो जाता है।

४—अतिशयोक्ति—अतिशयोक्ति में कवि प्रस्तुत को बढ़ा चढ़ा कर व्यक्त करता है, उसका प्रमाण रूप आदि अभिव्यक्ति करने के लिए जो प्रायः सम्भाव्य की सीमा को भी पार कर जाता है। अतिशयोक्ति सदा से कवियों का प्रिय अलंकार रहा है जायसी ने भी बहुतायत से इसका प्रयोग किया है। एक वर्णन उद्धरणीय होगा

कोटिन्ह वारि हस्ति पैहराए मेघ घटा जस गरजत आए।
मेघन्ह चाहि अधिक वै कारे, भयऊ असूझ देखि अँधियारे
जनु भादौं निसि आई डीठी सरग जाइ हिरगन लिए पीठी
सवा लाख हस्ति जब चला परबत सरिस चालत जग हला।
चलित पर्वत माटी ढप चावहि भागहि हस्ति मद चाहु पावहि।
अम्बर जाइ गगन तब बसा धौ धरती सरगहि धसमसा।
भा भुइचाल चलत गजगामी, जहाँ पौ धरहि उठै तहँ पानी।

यहाँ जहाँ तक कवि उत्प्रेक्षा आदि के द्वारा सादृश्य विधान करता है वहाँ तक बिम्ब निर्मित होता है परन्तु जहाँ कवि वर्णन को अतिशय में प्रकट करता है वहाँ बिम्ब विशृंखलित हो जाता है भूमि के धँसने, आकाश के गिरने हाथियों के पैर रखते ही पानी निकल आने से कोई चित्र सामने नहीं आता। असम्भव वस्तुओं और व्यापार के कारण बिम्ब में व्यवधान पड़ता है। इसी प्रकार नखशिख वर्णन में कवि के नेत्रों बरुनियों आदि के विषय में भी अतिशयोक्तिपूर्ण कथन कहे हैं, जो असम्भव होने के कारण मात्र चमत्कार का ही व्यंजन कर सके हैं। इन समस्त स्थलों पर चमत्कार की प्रधानता से कहीं भी बिम्ब विधान नहीं हुआ है।

अन्य अलंकारों मुख्यतः भ्रान्तिमान दृष्टांत निदर्शना आदि में भी सुन्दर बिम्ब योजना मिल जाती है। वस्तुतः केवल चमत्कार के सृजनकर्ता अलंकारों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के अलंकारों में बिम्ब निर्मित हो जाता है। बिम्ब मुख्यतः दृश्यता और ऐन्द्रियता के आधार पर निर्मित होता है, जो अनेक अलंकारों में प्रायः प्राप्य होती है। इस प्रकार स्पष्ट है कि बिम्ब और अलंकारों में पर्याप्त नैकट्य है यद्यपि सभी अलंकार बिम्ब नहीं होते और न ही बिम्बों का सारा क्षेत्र अलंकारों का क्षेत्र है फिर भी दोनों में पर्याप्त नैकट्य है।

समष्टि में कल्पना के साथ और उसके अन्य रूपों प्रतीक उपमान अलंकार आदि से बिम्ब का निकट का सम्बन्ध है। कल्पना के स्वरूप उपयोग भेद और उसके काम काव्य में विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। कल्पना के काव्य में कई रूप हो सकते हैं—प्रतीक बिम्ब उपमान आदि। प्रतीक काव्य में विशिष्ट महत्त्व रखते हैं। प्रतीक कल्पना का ही एक रूप है परन्तु बिम्ब से वह भिन्न है उनमें अनेक समानताएँ हैं परन्तु उन का उद्गम प्रयोग और उद्देश्य भिन्न भिन्न है जिसके कारण वह काव्य में स्वतन्त्र अस्तित्व रखते हैं। उपमान अथवा अलंकार भी कवि की कल्पना के एक रूप हैं इन

का मूल सादृश्य है अतः बिम्ब विधान इनमें प्रायः सम्भव होता है परन्तु दोनों में पर्याप्त अन्तर है। दोनों का क्षेत्र और दोनों के उद्देश्य भिन्न हैं। बिम्ब का उद्देश्य ऐन्द्रियसम्पन्नता और पृथकता है अलंकार अथवा उपमान का केवल सादृश्यता। इस प्रकार स्पष्ट है कि कल्पना और उसके प्रतीक रूपों में अनेक साम्य एवं वैभिन्न्य हैं। बिम्ब कल्पना के इन सभी रूपों में प्रमुख स्थान रखता है। स्वयं कल्पना का ही अर्थ है मूर्ति निर्माण। प्रतीक मूल रूप में बिम्ब है और उपमानों या सादृश्य विधान का उत्कृष्ट रूप भी बिम्बपूर्ण ही होता है।

अध्याय ४

बिम्ब, भाव और भाषा

बिम्ब भाव को अभिव्यक्त करता है और भाषा में अभिव्यक्त होता है। इस रूप में भाव और भाषा बिम्ब के दो किनारे हैं। भाव और भाषा के बीच की कवि की कल्पना की अवस्था बिम्ब है। भाव से अभिभूत होकर कवि उसकी अमूर्तता को रूपायित करके भाषा में प्रस्तुत करता है। अमूर्त भावों का मूर्तीकरण जो भाषा में प्रकट होता है, बिम्ब का ही क्षेत्र है। भाव एवं भाषा दोनों के योग से बिम्ब का निर्माण होता है। इस कारण बिम्ब के अध्ययन में बिम्बगत भाव और भाषा का परीक्षण करना आवश्यक है। बिम्ब मात्र शब्द या काव्य का बाह्य रूप ही नहीं है। भाव से भी उसका गहरा सम्बन्ध है। इसलिये अब बिम्ब के सन्दर्भ में भाव भाषा आदि का अध्ययन करने का प्रयत्न किया जायेगा।

भाव

(१) भाव की अनिवार्यता

काव्यगत कल्पना एवं बिम्ब विधान में स्मृति भाव एवं विचारों का प्रमुख महत्व है इनमें भाव एवं विचार सर्वप्रधान हैं वस्तुतः काव्य में ही भाव अथवा विचार की स्थिति काव्य की प्रथम अनिवार्यता है। भावों के अभाव में कवि कर्म की कल्पना ही असम्भव है। काव्य का लक्ष्य ही भावों के उपयुक्त विषयों को सामने रखकर सृष्टि के नाना रूपों के साथ मानव हृदय का सामंजस्य स्थापित कराना है[1]। भाव की अनुभूति से ही कवि कर्म का प्रारम्भ होता है और उसी भाव की अनुभूति पाठक या श्रोता में जाग्रत कर देना कवि का अन्तिम लक्ष्य है। इस रूप में भाव ही काव्य का अथ और इति है।[2] काव्य सदा भाव का पोषक रहा है। भावहीन वर्णन किसी रूप में काव्य के अधिकारी नहीं हो सकते चाहे उनमें बाह्य सौन्दर्य और चमत्कार की कितनी ही मात्रा क्यों न विद्यमान हो। भाव की स्थिति की शून्यता के कारण ही प्राचीन आचार्यों ने वार्ता, चित्रकाव्य आदि को अकाव्य कह दिया था।

---

१ रस मीमांसा—आचार्य शुक्ल पृ. ९६

२ emotion is the begining and the end of the poetry in a sense unknown to prose.

R. H. Fogle in the Imagery of Keats & Shelley p. 17

बिम्ब में भी भाव अनिवार्य है। केवल ऐन्द्रियता के आधार पर ही किसी वर्णन को बिम्ब नहीं कहा जा सकता उसमें भाव की सत्ता अत्यन्त आवश्यक है। इसी कारण वार्ताओं समाचार पत्रों के वर्णनों को जिनमें ऐन्द्रियसम्पन्नता के साथ साथ ब्योरेवार घटना क्रम भी रहता है बिम्ब की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। बिम्ब का भाव व्यंजक होना आवश्यक है इसी रूप में काव्य में उसकी उपयोगिता है। बिंब में भाव की सत्ता को एकमत से स्वीकार किया जा सकता है। बिम्ब के अन्तर्गत तीन तत्वों—अनुभूति भाव एवं आवेग—में भाव भी एक है। जिनका उल्लेख द्वितीय अध्याय में हो चुका है। इसमें भाव की आवश्यकता अनिवार्य है। बिंबवाद के प्रवर्तक कवि और नेता एजरा पाउण्ड ने बिम्ब को बौद्धिक एवं भावात्मक बनाने की ओर बल दिया था। बौद्धिकता एवं भावात्मकता दोनों ही बिम्ब में आवश्यक हैं।[1] बौद्धिक विचार भी किन्हीं अर्थों में भावात्मकता का प्रतिपादन करते हैं और भाव किसी न किसी रूप में बुद्धि का समाधान प्रस्तुत करते हैं। वस्तुतः दोनों ही शब्द भावात्मक एवं बौद्धिक एक ही वस्तु को दो भिन्न दृष्टियों से दिये गये नाम हैं। सुविधा के लिये यहाँ भाव शब्द में ही हम दोनों को समाहित कर रहे हैं। यह भाव रस के अन्तर्गत आने वाले भाव से भिन्न इस रूप में लिया गया है जिस रूप में यह सामान्यतः काव्य चर्चा में प्रयुक्त होता है।

बिम्ब में भाव की अनिवार्यता के साथ उसकी बिम्ब में निहित स्थिति और स्वरूप को देखना भी आवश्यक है। प्रत्येक बिंब में भाव अनिवार्य रूप से विद्यमान रहता है पर वह बिम्ब द्वारा शब्दों में प्रकट न होकर उससे व्यंजित होता है। भाव की अनिवार्यता एवं स्थिति को समझने के लिए कविवर मैथिलीशरण गुप्त का एक बिंब देखिये

दोनों ओर प्रेम पलता है।
सखि पतंग भी जलता है
और दीपक भी जलता है।[2]

यहाँ दुःखात्मक—वियोग के प्रसंग में कवि ने संवेदनात्मक प्रतिमा का निर्माण किया है। उर्मिला की विरहाग्नि में तपने को दीपक के बिंब से व्यंजित किया है दीपक के प्रज्वलित रहने के धर्म का उल्लेख है जिससे विरह की अनवरत पीड़ा की व्यंजना हुई है। पतंग के भी जलकर मर जाने के धर्म का कथन है जिससे पीड़ा का आभास तो होता है साथ ही पूर्णानुराग की व्यंजना भी हो जाती है। उर्मिला दुखिनी है इस कारण दीपक और पतंग के किन्हीं और धर्म-आलोक गमन आदि—पर उसकी दृष्टि नहीं जाती वरन् उसके (दीपक के) प्रज्वलित रहने और पतंग के उस अग्नि में पूर्णतः दग्ध हो जाने का धर्म ही उसे आकृष्ट करता है। इस बिंब से पाठक पर इस

१ Make it New—by Ezra Pound p. 336
२ साकेत, नवम सर्ग।

उर्मिला की व्यथा का अभीष्ट प्रभाव पड़ता है। दीपक का जलना और पतंग का जलना—दोनों ही उर्मिला और लक्ष्मण के विरह के दो व्यक्त रूप हैं। पुल्कानुराग और प्रेम में विरह—पीड़ा की अनुभूति की व्यंजना यहां कवि का ध्येय रहा है। भाव की इस समृद्धि के कारण यह बिंब अत्यन्त व्यंजक एवं सफल है। प्रसाद पंत आदि के संवेदनात्मक अथवा भावाश्रित बिम्बों में भाव व्यंजकता की ऐसी ही सामर्थ्य विद्यमान है।

संवेदनात्मक अथवा उदात्त बिंबों में तो भाव की सफल अभिव्यक्ति होती ही है क्योंकि उनमें व्यंजना की मात्रा अधिक रहती है अलंकरणात्मक बिंबों में भी भाव की सत्ता अवश्य ही विद्यमान रहती है। अलंकारण प्रधान बिंब भी पाठक की भावात्मक अनुभूति को तीव्रतर करता है और उसमें सौन्दर्य का सृजन भी करता है। अलंकरणात्मक बिंब अलंकरण प्रधान होते हुए भी केवल चमत्कार पर आश्रित नहीं रहते क्योंकि वह केवल अलंकरण के ही लिये नहीं आते उनके माध्यम से भाव व्यंजना ही कवि को अभीष्ट रहती है। उदाहरण के लिए जायसी का एक अलंकरण प्रधान बिंब लीजिये

हाड़ भये सब किंगरी नसें भईं सब तांति।
रोंव रोंव तन धुनि उठै कहेसु बिथा ऐहि भांति।

यहां यद्यपि काव्य की ऊहात्मक पद्धति का आभास होता है, परन्तु केवल चमत्कार ही इस बिंब का प्राण नहीं है। यहां कवि विरह जन्य कृशता का रूप देना एवं निरन्तर प्रिय के नाम को रट कर अनन्य लगन की व्यंजना करना चाहता है इस के लिये वह वाद्य यंत्र का रूपक देता है। स्पष्टतः अतिशयोक्ति का अंकुश अवलम्ब लेने पर भी कवि ने भावोत्पादक बिंब निर्मित किया है। विरह की कृशता एवं अनन्यता की व्यंजना यहां कवि को अभीष्ट है जिसकी बिंब द्वारा सफल अभिव्यक्ति हुई है। किसी भी रूप में क्यों न हो बिंब सर्वथा भाव की उत्कृष्ट अभिव्यंजना में योगदान देता है। यही बिंब का लक्ष्य है[1] इसीलिये भाव की सहज और उत्कृष्ट अभिव्यक्ति का यह एक प्रमुख साधन कहा जा सकता है।

(२) भाव की प्रकृति

भाव का विवेचन करते हुए आचार्य शुक्ल ने उसे चित्त की चेतन दशा विशेष[2] कहा है। चित्त की यह विशिष्ट चेतन दशा ही काव्याभिव्यक्ति में प्रधान है परन्तु यह विशिष्ट चेतन दशा अर्थात भाव अपने मूल रूप में अरूप है। काव्य भाव की इस अरूपता को ही रूपायित करने का प्रयत्न है। भाव की अरूपता काव्य में संवेदनीय रूप में प्रस्तुत नहीं हो सकती न ही वह पाठक में रस सृष्टि करने में समर्थ हो सकती

१ ...that the method, ... of poetry is to convey emotion to reader
—Poetic Image by Lewis p 20.

२ चिन्तामणि—आचार्य शुक्ल

है, इसीलिये काव्य में भाव की अमूर्तता को शब्दों के द्वारा मूर्तित किया जाता है। शब्दों के द्वारा मूर्तित किये गये भाव बिंब ही हैं। इसी रूप में भाव संवेदनीय बनकर रस सृष्टि करने में समर्थ हो सकता है। भाव की सत्ता काव्य में आवश्यक मान लेने पर उसकी अभिव्यक्ति के रूप का प्रश्न सहज ही उठता है। भाव की अरूपता के कारण अभिव्यक्ति का कोई मूर्त साधन अवश्य ही चाहिये बिंब ही इस आवश्यकता की पूर्ति करता है। वास्तव अरूपता के कारण बिंब ही भाव की अभिव्यक्ति का प्रथम साधन प्रतीत होता है भाव की अमूर्तता को वह दृश्य बनाने द्वारा मूर्त बनाकर प्रस्तुत करता है। वस्तुतः भाव की सत्ता काव्य में कहीं कथन से प्रकट नहीं हो सकती उसे कहा नहीं जा सकता वरन् व्यंजित किया जा सकता है और उसकी यह व्यंजना बिंब के रूप में ही हो सकती है। उदाहरण के लिये रति भाव को लीजिये। भाव रूप में यह हृदय की एक विशिष्ट अनुभूति अथवा विशिष्ट अवस्था है जो काव्य में केवल शब्दों के माध्यम से प्रस्तुत नहीं की जा सकती है। कवि उसको विभाव अनुभाव आदि के वर्णनों द्वारा व्यंजित करते हैं। रति भाव की व्यंजना बिहारी इस प्रकार करते हैं

कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात ।
भरे भौन में करत हैं नैनन ही सों बात ।।[1]

यहां कहीं भी 'रतिभाव है' ऐसा उल्लेख नहीं है हमें अनुभावों अर्थात् उनके क्रिया-कलापों के वर्णन के द्वारा रतिभाव की प्रतीति होती है कहना रीझना खिझना मिलना आदि व्यापार हैं जो उनकी पारस्परिक रति को प्रकट करते हैं। यह सभी शब्द अपने आप में एक चित्र है, जिससे भाव दृश्य बनकर हमारे सम्मुख आता है और हम रति भाव की अनुभूति कर सकते हैं। अनुभवगम्यता की समता के कारण यह शब्द चित्र बिम्ब की श्रेणी में आते हैं। स्पष्ट है कि बिंब का अवलम्ब लेकर ही भाव अपनी समुचित अभिव्यक्ति प्राप्त करता है।

भाव कहीं भी शब्द रूप में प्रकट नहीं होता। स्वशब्द वाच्यत्व दोष तो काव्य शास्त्र में एक बड़ा दोष माना गया है शुक्लजी ने भावों का विवेचन करते हुए स्पष्ट लिखा है कि जब तक कवि भावों को अनुभावों के रूप में वर्णित नहीं करता उनकी अनुभूति हो ही नहीं सकती। क्रोध है कहने से क्रोध भाव की अनुभूति हो यह कभी सम्भव नहीं है उसके लिये अनुभावों अर्थात् बिम्बों का माध्यम ही उचित है।[2] इस प्रकार भाव की अरूपता बिंब की आवश्यकता को प्रकट करती है।

भाव भी मूलतः अरूप नहीं होते उनके कारण अर्थात् उद्गम स्थल अवश्य ही मूर्त होते हैं। करुण भाव की उत्पत्ति करुण दृश्य के बिना नहीं हो सकती उसके लिये किसी दीन हीन प्राणी का चित्र और उसकी विवशताओं का रूप सामने आना

१ बिहारी [illegible]
२ चिन्तामणि : प्रथम भाग

आवश्यक होगा। इसी प्रकार हर्ष की उत्पत्ति आनन्द की अनुभवगम्य अवस्था के अभाव में नहीं हो सकती। सारांश यह है कि भाव का जन्म मूल में मूर्त एवं गोचररूपों में ही होता है। इस कारण भाव की अभिव्यक्ति के लिये मूर्त एवं गोचर माध्यम अपेक्षित हैं जिनके द्वारा भाव का ग्रहण किया जा सके। शुक्ल जी ने रस मीमांसा में लिखा है—'काव्य के लिये अनेक स्थलों पर हमें भावों के मूल और आदिम रूपों तक जाना होगा जो मूर्त और गोचर होंगे। जब तक भावों से सीधा लगाव न रखने वाले मूर्त अथवा गोचर रूप न मिलेंगे तब तक काव्य का वास्तव रूप खड़ा नहीं हो सकता। भावों के अमूर्त विषयों के आधार भी मूल में मूर्त और गोचर मिलेंगे जैसे यशोलिप्सा में कुछ दूर चलकर उस आनन्द के उपभोग की प्रवृत्ति छिपी हुई पाई जायेगी जो अपनी तारीफ कान में पड़ने से हुआ करता है।'[1] स्पष्ट है कि भाव का जन्म मूलतः मूर्त अथवा गोचर रूपों से हुआ है इस कारण काव्य में भावों की अभिव्यक्ति के लिए मूर्त एवं गोचर वर्णनों की आवश्यकता प्रतीत होती है। परन्तु भाव की इस मूल मूर्त गोचरता का क्षेत्र काव्य से बाहर का है। काव्य में स्थित भाव को तो अमूर्त और अगोचर ही कहा जा सकता है। और उसको कथन से नहीं वरन् केवल वर्णन द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। इस रूप में बिम्ब को ही भाव की अमूर्तता को मूर्तित करने का श्रेय है।

(२) भाव की अखंडता

भाव एक अखंड सत्ता है, खंडशः भाव की अनुभूति नहीं हो सकती और न खंड रूप में उसकी अभिव्यक्ति ही संभव है, साहित्यशास्त्रियों ने भाव को अखंड माना था। भाव के विस्तार की कोई निश्चित परिधि भी उन्होंने निर्धारित नहीं की थी उन्होंने भावों के विभिन्न खंड अथवा विभाग बनाए उनमें केवल उपयोगिता और अध्ययन की सरलता की दृष्टि ही रही। बाबू श्यामसुन्दरदास की मान्यता को जान लेना यहां उपादेय होगा। उन्होंने लिखा है 'भावों के विस्तार की कोई सीमा न होने के कारण उनके सम्बन्ध में कोई नियम निर्धारण भी नहीं किया गया। यद्यपि हमारे भावों की कोई परिधि नहीं है तथापि धर्माचार्यों और दार्शनिकों ने संसार के हित की दृष्टि से और आत्मा के विकास का लक्ष्य करके प्रायः सभी समयों में अपने अपने मत प्रकट किये हैं और वे मत संसार में मान्य भी हुए हैं।'[2] भाव की अखंडता और उसके अनन्त विस्तार से काव्य के अन्तर्गत यह तात्पर्य लिया जा सकता है कि भाव की पूर्ण अभिव्यक्ति खंड रूप में नहीं हो सकती उसके लिये सम्पूर्णता अथवा समग्रता की आवश्यकता है। भाव की अखंडता की रक्षा तो काव्य में शब्दों की खंडता (पृथकता) के कारण नहीं हो सकती पर समग्रता की रक्षा अवश्य हो सकती है। चेतना की अभिव्यक्ति सम्पूर्णता चाहती है यह आवश्यकता बिम्ब द्वारा पूरी हो जाती

१ रसमीमांसा : आचार्य शुक्ल पृ० ११०
२ साहित्यालोचन : श्यामसुन्दरदास पृ० ६६

है। भाव की समग्र रूप में अभिव्यक्ति बिंब द्वारा ही हो सकती है। खंड रूप से भाव के वर्णन में रसात्मकता नहीं आती इसीलिए साहित्याचार्यों ने ऐसे स्थलों में जहाँ भाव का संचार उत्पन्न हो अर्थात् जहाँ केवल स्थायीभाव रहता या रसाभास की अभिव्यक्ति रही है, उसे स्पष्ट ही काव्य की उत्कृष्टता नहीं कहा जा सकता। भाव को समग्रता के साथ प्रस्तुत करना ही काव्य की उत्कृष्टता का द्योतक है। रूपक अथवा बिंब इस समग्रता को सफलता के साथ प्रस्तुत कर सकता है।[1] इसीलिये भावों के उत्कृष्ट और रमणीय कथन में यह सहज प्राप्त होता है। भाव की समग्रता को यह ज्यों का त्यों प्रस्तुत करने में समर्थ है। उदाहरण के लिए कोई भी रूपक या बिंबात्मक वर्णन लिया जा सकता है। भाव को जिस रसमयता एवं समग्रता के साथ यह प्रस्तुत करने में समर्थ हो सकता है उतना अभिव्यक्ति का अन्य माध्यम नहीं हो सकता। पाउण्ड ह्यूर्स स्पर्जियन आदि पश्चिमी विद्वानों ने बिंब की चर्चा करते हुए उसकी समग्रता (होलनेस) पर बल दिया है। ह्यूम ने बिंब के साथ जिस सन्दर्भ परिस्थिति एवं वातावरण की आवश्यकता समझी है वह कुछ और नहीं वरन भाव को ही सम्पूर्णता के साथ प्रस्तुत करने की बिम्ब की सामर्थ्य का स्पष्टीकरण है। ह्यूस का कथन है कि बिंब का एक आवश्यक गुण सन्दर्भ है। बिंब किसी वस्तु मात्र को ही प्रस्तुत नहीं करता वरन् वस्तु को अनुभूति के सन्दर्भ में प्रस्तुत करता है।[2] इससे भाव के साथ उसके सम्बन्ध का ज्ञान होता है और समग्रता की विशदता भी आ जाती है। प्रतीक आदि में यह समग्रता की स्थिति नहीं रहती। प्रतीक यद्यपि उत्तेजक अधिक हो सकते हैं पर भाव की समग्रता को वह सुरक्षित नहीं रख सकते। प्रतीकों में जो समग्रता का गुण होता भी है वह भी उनकी मूलभूत बिंबात्मकता के कारण ही होता है। प्रसाद के आँसू के एक उद्धरण से यह तथ्य भलीभाँति स्पष्ट हो सकता है। यहाँ प्रतीक और बिंब दोनों ही प्रकार की अभिव्यक्ति की प्रणालियाँ हैं

झंझा झकोर गर्जन था बिजली थी नीरद माला
पाकर इस शून्य हृदय को, सबने आ डेरा डाला।[1]

यहाँ कवि पीड़ा और व्यथा के अकस्मात और एक छत्र साम्राज्य के भाव को व्यंजित कर रहा है। प्रथम दो पंक्तियों में प्रस्तुत शब्द—झंझा झकोर, गर्जन बिजली और नीरदमाला प्रतीकात्मक अर्थ रखते हैं। यह पुन पीड़ा व्यथा अन्तर्द्वन्द्व आदि के प्रतीक रूप में प्रयुक्त हुये हैं। अन्तिम दो पंक्तियों में कवि के मानस के बिंब का आभास

[1] Metaphor is complex because it renders the complexity of reality ... —Poetic Process by George Whalley p 143

[2] Every image recreates not merely an object but an object in the context of an experience and thus an object as part of a relationship—Relationship being in the very nature of metaphor —Poetic Image by C Day Lewis, p. 20

[1] पंत, पल्लव, पृ. १५

मिलता है। पीड़ा और दुःख का यहाँ मानवीकरण है। शून्य हृदय में डेरा डालना उन्हें ऐसे व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं जिसने शून्य स्थल को देखकर अनिश्चित काल तक साधिकार पड़ाव जमा लिया हो। इससे पीड़ा और व्यथा के अकस्मात् और अनिश्चित काल तक के अधिकार कर लेने की व्यंजना हुई है। यही कवि का मूल भाव था। यहाँ यद्यपि झंझा झकोर आदि समस्त प्रतीक हैं उद्बोधक भी हैं, पर कवि के भाव की समग्र व्यंजना करने में वह समर्थ नहीं हैं। अनन्त समय तक के लिये पीड़ा और व्यथा के अचानक आ जाने की जो व्यंजना बिंब करता है, प्रतीक उसमें तनिक भी सहायक नहीं है वह तो पीड़ा और व्यथा के नाना रूपों को गिना भर देता है। इस प्रकार कवि अपना मुख्य भाव प्रतीक द्वारा नहीं वरन् बिंब द्वारा स्पष्ट कर सका है। यहाँ झंझा झकोर गर्जन को प्रतीक रूप में न लिया जाकर उपमा के द्वारा भी उल्लिखित किया जाता तब भी भाव की समग्र व्यंजना हो जाती पर प्रतीक होने पर भी बिंब के अभाव में भाव व्यंजना असम्भव ही थी। इन पंक्तियों का समस्त सौन्दर्य पीड़ा व्यथा आदि के प्रतीकात्मक उल्लेख में नहीं वरन् पीड़ा की अनन्तता और आकस्मिकता के व्यंजक बिंब में है। यहाँ भाव की समग्रता का बिंब ही सफलता के साथ प्रस्तुत कर सका है।

इस समग्रता अर्थात् मिश्रित अनुभूति को व्यक्त करने की क्षमता के कारण सम्भवतः अभिव्यक्ति का सर्वप्रथम माध्यम रूपक अथवा बिंब को बनाया गया था। आदिम काल में जब व्यक्ति के भाव उलझे और अनुभूतियाँ मिश्रित थीं बिंब या रूपक ही अभिव्यक्ति का साधन स्वीकृत हुआ था। रूपक इस प्रकार अभिव्यक्ति का प्राचीनतम माध्यम प्रतीत होता है।[1] डा० ह्यूज ब्लेयर ने अपनी पुस्तक Lectures on Rhetorics में लिखा है कि सम्भवतः आदिम काल में मनुष्य की भाषा भावात्मक वर्णनात्मक उपकरणों से पूर्ण होगी और इस रूप में अवश्य ही रूपकात्मक रही होगी।[2] बिंब की समग्र को अभिव्यक्ति देने की शक्ति ने ही उसे इतना सफल और अभिव्यक्ति का प्रथम साधन बनाया है।

(४) भाव की प्रेषणीयता

भाव हृदय की एक मिश्रित एवं जटिल अवस्था है, उसको अभिव्यक्ति द्वारा पाठक और श्रोताओं में प्रेषणीय बनाना ही कवि कर्म है। भाव की महत्ता और

1 Primitive experience and expressions are not simple but complicated. And Metaphor—like many other features of the poetic mentality—is primal and primitive—Poetic Process by G. Whalley p. 142.

2 Hence the early language of men being entirely made up of words descriptive of sensible objects it became, of necessity extremely metaphorical.—Dr. Hugh Blair quoted by Owen Barfield in Poetic Diction p. 72.

गूढ़ता साधारण शब्दों द्वारा प्रकट नहीं हो सकती और न ही उस रूप में वह श्रोता या पाठकों द्वारा ग्राह्य ही हो सकती है। कवि भाव की प्रेषणीयता के लिये बिम्बों एवं रूपकों का माध्यम ग्रहण करता है। अपने सहज भावों को भी वह उस रूप में प्रकट नहीं कर सकता वरन् बिम्ब के माध्यम से प्रकट करता है तभी वह अनुभूति के योग्य हो पाते हैं। उदाहरण के लिए जायसी का एक बिम्ब लीजिये—

> उग्रत सूर जस देखिय चाँद छपै तेहि धूप।
> ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति के रूप।

यहाँ कवि पद्मावती के रूप की श्रेष्ठता को व्यंजित करना चाहता है पद्मावती के लिये जायसी के हृदय में एक अपूर्वता लोकोत्तरता का भाव है। वह अपूर्व सुन्दरी है और उसके समक्ष संसार के अन्य सौन्दर्य उसी प्रकार फीके पड़ जाते हैं जिस प्रकार उदित होते सूर्य के समक्ष चाँद का सौन्दर्य। इस भाव को कवि अपूर्व सुन्दरी है कहकर केवल शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता था क्योंकि ऐसा करने पर वह काव्य नहीं वरन् अकाव्य हो जाता। इस कारण उसके सौन्दर्य की व्यंजना के लिए कवि कल्पना के द्वारा सुन्दर से सुन्दर रूपों को सम्मुख रखता है और उसके सौन्दर्य को प्रेषणीय अथवा सहज ग्राह्य बनाने का प्रयत्न करता है। यहाँ उदित होते सूर्य के समक्ष चाँद के छिप जाने के बिम्ब द्वारा पाठक पद्मावती के सौन्दर्य की प्रतीति कर सकता है और अन्य रानियों के क्षीण सौन्दर्य की अनुभूति भी कर सकता है। सहज भाव की यह अभिव्यक्ति बिम्ब के माध्यम से ही सहज ग्राह्य बनी है।

रत्नाकर की कविता से एक अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य है। कृष्ण [redacted] प्रवास के बाद गोपियों के प्रेम की गहराई की अधिकता व्यक्त करने के लिये कवि ने बिम्ब का प्रयोग किया है

> ज्यों ज्यों बसे जात दूरि-दूरि प्रिय प्रान मूरि,
> त्यों त्यों धसे जात मन मुकुर हमारे मैं।[1]

अर्थात् ज्यों ज्यों कृष्ण हमसे दूर होते जाते हैं त्यों-त्यों दर्पण में पड़ने वाले प्रतिबिम्ब की भाँति अन्दर में पैठते हुए प्रतीत होते हैं। विज्ञान के क्षेत्र से गृहीत इस बिम्ब में अपूर्व भाव व्यंजकता है। निकट होने पर व्यक्ति का प्रतिबिम्ब दर्पण की ऊपरी सतह पर पड़ता हुआ प्रतीत होता है पर जैसे-जैसे दूरी बढ़ती जाती है प्रतिबिम्ब दर्पण के अन्दर धँसा हुआ प्रतीत होता है। कृष्ण भी दूर होकर गोपियों के हृदय में और अन्दर तक पैठ गये हैं। *यही कवि की व्यंजना है जो केवल शब्दों में प्रकट होकर* अनुभव गम्य नहीं हो सकती थी परन्तु भावव्यंजना बिम्ब द्वारा प्रस्तुत होकर सहज ग्राह्य हो गई है।

भावों के अतिरिक्त काव्य में विचारों का भी प्रमुख स्थान रहता है। विचार बुद्धि के क्षेत्र में संबंधित होने के कारण अधिक गूढ़ और जटिल होते हैं और उन

---

१ उद्धव शतक, रत्नाकर [illegible]

साधारण भी उन्हें सहज ही नहीं समझ पाता। इसी कारण दार्शनिकों और धर्म शास्त्रियों की भाषा सदैव रूपकात्मक होती है। ज्ञान सदैव बिम्बों के द्वारा प्रेषणीय बनता है। साहित्य के अंतर्गत भी जहां गूढ़ और जटिल विचारों का समावेश होता है, वहां कवि बिंब द्वारा उसे प्रेषणीय बनाता है। जीवन की क्षणभंगुरता निस्सारता अथवा अनित्यता आदि ऐसे गूढ़ विचार हैं जिन्हें शब्द रूप में पाठक ग्रहण नहीं कर सकता। क्षणिकता निस्सारता आदि का तात्पर्य बिंब की सहायता के बिना वह कभी नहीं समझ सकता। उसकी बुद्धि इतनी उन्नत नहीं होती कि वह विचार को अमूर्त रूप में समझ सके। वह जटिल विचार को तभी ग्रहण कर पाता है जब जीवन और जगत् से संबंधित उसका कोई अपना अनुभव उपमान के रूप में उसके सम्मुख प्रस्तुत किया जाय। जायसी ने इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति के लिये लोक जीवन का एक अत्यन्त परिचित बिंब प्रस्तुत किया है—

मुहम्मद जीवन जल भरन रहंट घरी कै रीति।
घरी सो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।

यहां जीवन की अमूर्त निस्सारता एवं क्षणिकता रहंट की क्षण-क्षण भरने और खाली होने वाली घरिया के रूप में मूर्तित हो गई है। उसका क्षण क्षण भरना और खाली होना जीवन का प्रारम्भ होना और समाप्त होना है। जीवन का अस्तित्व उतना ही अस्थाई व क्षणिक है जितना रहंट की घरिया में भरे पानी का। इस प्रकार रहंट की घरिया का बिम्ब जीवन के क्षणिक अस्तित्व और असारता को प्रेषणीय बना देती है। साधारण से साधारण स्तर का पाठक भी अब जीवन की नश्वरता की अनुभूति कर सकता है। कबीर ने इस भाव अथवा विचार की अभिव्यक्ति के लिये एक अन्य बिंब को प्रस्तुत किया है—

पानी केरा बुदबुदा अस मानुस की जात।
देखत ही छिप जायगा ज्यों तारा परभात।[1]

यहां पानी का बुलबुला और प्रभात का तारा निस्सारता के गूढ़ भाव को सहज ही प्रेषणीय बना देते हैं। बुलबुले और प्रभात के तारे का क्षणिक अस्तित्व सबका परिचित है इसके माध्यम से गूढ़ भाव भी ग्राह्य हो सकते हैं। क्योंकि यह विचार को मूर्तित कर देते हैं। इन बिम्बों के अभाव में इस प्रकार के जटिल भाव कभी ग्राह्य नहीं बन सकते थे।

योगियों सिद्धों और नाथों आदि के योगपरक विचार भी अमूर्त विचार हैं। इनको प्रेषणीय बनाने के लिए कवियों ने रूपकों द्वारा व्यक्त किया है। जटिलता के कारण ये सिद्धान्त एवं विचार बुद्धि ग्राह्य नहीं हो सकते थे। इस कारण रूपकों का आश्रय लिया गया। कबीर तथा अन्य सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय के संत कवियों में ऐसे रूपक बहुधा मिल जाते हैं। जायसी ने भी योग के सिद्धान्तों को रूपक के रूप में

१ कबीर ग्रन्थावली : सं० श्यामसुन्दरदास

प्रस्तुत किया है—[1]

गढ़ तस बाँक जैस तोरि काया पुरिख देखु सो ओहि की छाया।
पाइय नाहिं जूझि हठि कीन्हें जेइँ पावा तेइँ आपुहि चीन्हें।
नौ पौरी तेहि गढ़ मझियारा औ तेहि फिरहिं पाँच कोटवारा।
दसँव दुआर गुपुत एक नाकी अगम चढ़ाव बाट सुठि बाँकी।
भेदै जाइ कोइ ओहि घाटी जौ लै भेद चढ़ै होइ चाँटी।

यहाँ योग के साधनों और शरीर की अवस्थाओं को गढ़ के रूपक द्वारा प्रस्तुत किया है। यद्यपि ऐसे स्थलों पर भाव और रसनीयता के अभाव में बिम्बात्मक रूप में सफल और उत्कृष्ट नहीं कहे जा सकते परन्तु स्वरूप को स्थापित करने के बिम्ब के गुण का अच्छा प्रकाशन करते हैं। समष्टि में प्रेषणीयता के लिए बिम्ब की उपयोगिता को एकमत से स्वीकार किया जा सकता है।

(५) भावात्मक तन्मयता

अब तक हमने भाव की सघनता, सजीवता आदि के साथ बिम्ब के सम्बन्ध और उसकी आवश्यकता को देखा। अब हम भाव की उस स्थिति को देखेंगे जहाँ बिंब का जन्म होता है। वह स्थिति भावात्मक तन्मयता की है। भाव की तन्मयता की स्थिति एक ऐसी दशा है जहाँ बिंब की उद्भावना अवश्य होती है। कवि जहाँ भाव विभोर होता है वहाँ अपनी अनुभूति का सजीव बिम्ब के माध्यम से प्रकट करता है। बिम्ब अपनी सघनता और व्यंजकता के द्वारा भावों के विस्तार को भी अत्यन्त सफल रूप में प्रतिपादित करने की क्षमता रखता है। आचार्य शुक्ल ने कवि की श्रेष्ठता की चर्चा करते हुए कहा था कि रसात्मक स्थलों की पहचान जिस कवि को जितनी अधिक होगी वह उतना ही श्रेष्ठ कहा जायगा। बिंब भी ऐसे स्थलों पर अपनी श्रेष्ठता का प्रमाण देते हैं। रसात्मक स्थलों पर जहाँ कवि तन्मय होकर भाव वर्णन रूप वर्णन या वस्तु वर्णन करता है वहाँ अवश्य ही श्रेष्ठ बिम्बों का निर्माण होता है।

तन्मयता की इस स्थिति को गीतिकाव्य में इतनी स्पष्टता से नहीं देखा जा सकता जितनी स्पष्टता से महाकाव्य में। गीति में एक ही भाव एक ही रूप की आवृत्ति बार-बार होती है पर महाकाव्य में घटनाओं के सदर्भ में अनेक भाव आते रहते हैं। इन अनेक रूपों अथवा अनेक घटनाओं में जहाँ का वर्णन वह तन्मय होकर करता है वहीं वह श्रेष्ठ बिंबों का सर्जन करने में भी समर्थ होता है। प्रत्येक स्थल और प्रत्येक घटना पर कवि उत्कृष्ट बिम्ब विधान नहीं कर सकता। कुछ भाव और कुछ स्थल ही सामान्यतः ऐसे होते हैं जहाँ कवि तन्मयता का अनुभव करता है और उसकी प्रतिभा उत्कृष्ट बिम्ब-योजना में समर्थ होती है। तुलसी और केशव का काव्य यद्यपि कथानक चरित्र आदि की दृष्टि से समान है पर उनका अन्तर भी स्पष्ट देखा

१ पदमावत—रामचन्द्र शुक्ल [illegible] ११४

आ सकता है। जिन स्थलों पर तुलसी की दृष्टि अन्तर्दर्शिनी कलात्मक सद्भावनाओं और सुन्दर काल्पनिक बिम्बों का चित्रण करने में समर्थ हो सकी है वहीं केशव का कवि हृदय भाव विभोर न हो सकने के कारण केवल अलंकारों का पोषण या चमत्कार का सर्जन करने के लिए प्रतिभा का कुछ असम ढंग से व्यय करता है पर बिम्बों का सर्जन करने में असमर्थ है। यह कवि की मनःस्थिति का अन्तर है जिसने उसके काव्य को इतना भिन्न रूप प्रदान किया है। राज्याभिषेक वनगमन कपट प्रसंग आदि अनेक स्थलों पर जहाँ तुलसी सुन्दर उपमानों और रूपकों की योजना करते हैं वहाँ तन्मयता न होने के कारण केशव अधिकतर शब्दालंकारों और अन्य चमत्कार प्रधान उक्तियों में ही वर्णन की हानि कर देते हैं। गोदावरी नदी का वर्णन—

विषमय यह गोदावरी अमृतन को फल देति।
केशव जीवन हार को दुख अशेष हर लेत।[1]

चमत्कार विरोध के प्रदर्शन में या पोषक होने के कारण तन्मयता की न्यूनता का परिचायक है। कवि गोदावरी का दुख नाशिनी और पुण्य स्थली कहता है पर उस भक्ति भाव के प्रति तन्मयता न होने के कारण कोई बिम्ब प्रस्तुत नहीं कर सकता। इन्हीं भावों की अभिव्यक्ति तुलसी ने मंदाकिनी को देखकर की है। मंदाकिनी भी दुखनाशिनी और पुण्य स्थली है, कवि उसके लिये कहता है—

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू।
लखन दीख पय उतर करारा, चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा।
नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना।
चित्रकूट जनु अचल अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी।[2]

यहाँ दोनों उद्धरणों में यद्यपि भाव एक ही है पर अभिव्यक्ति में अन्तर है। तुलसी बिम्ब के माध्यम से भाव प्रकट करते हैं जिससे उनकी भक्ति भाव की तन्मयता का स्पष्टीकरण होता है इसके विपरीत केशव कोई रूप प्रस्तुत नहीं कर पाते वरन् शब्दों के विरोध में उलझे रहते हैं। यह एक ओर तो भक्ति भाव में उनकी तन्मयता का अभाव सूचित करता है और दूसरी ओर उनकी चमत्कार प्रियता का निर्देश भी करता है। इसी रामकथा का एक अन्य रूप गुप्त जी के साकेत में मिलता है। कैकेयी और उर्मिला के जितने चित्र गुप्त जी दे सके हैं उतने न केशव दे सके हैं न तुलसी। विधवा रानी के लिए (कैकयी के लिए) गुप्त जी 'गुपारागुप्ता विधुलेखा'[3] का चित्र देते हैं जो उसके निराश स्वरूप को व्यंजित करता है। पर तुलसी ने कैकेयी के लिये इस प्रकार का एक भी चित्र नहीं दिया है उन्हें तो वह केवल नागिन[4] और तलवार[5]

1 रामचन्द्रिका : प्रकाश १०-२५
2 रामचरितमानस तुलसी अयोध्याकांड
3 साकेत मैथिलीशरण गुप्त
4 रामचरितमानस अयोध्याकांड
5 रामचरितमानस, अयोध्याकांड

के सदृश ही प्रतीत हुई है। कारण है कि तुलसी की सहानुभूति उसकी ओर तनिक भी नहीं है जबकि मुग्धा उर्मिला की पीड़ा और विरह व कैकेयी की पश्चात्ताप और आत्मग्लानि के प्रति पूर्ण तन्मय हैं। भावात्मक तन्मयता के कारण चरित्रों के रूपों एवं वस्तु या भाव वर्णनों में सहज ही अन्तर आ जाता है।

पद्मावत में भी जहां कवि तन्मय है वहां वह सुन्दर प्रतिमाओं का सर्जन कर सका है अन्यथा वस्तु का उल्लेख भर कर दिया है। जायसी की तन्मयता शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग एवं वियोग—पर प्रकट होती है। वहां अनेक उत्कृष्ट बिम्ब जायसी की कल्पना दृष्टि की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हैं परन्तु अन्य स्थलों पर कवि तन्मय नहीं है अतः बिम्बों में भी न्यूनता आ गई है। रत्नसेन भी अपने देश से विदा हुआ है और तुलसी के राम भी यद्यपि परिस्थितिगत वैषम्य है पर मूलतः भावात्मक स्थिति की तन्मयता में अन्तर होने के कारण रत्नसेन के वियोग में करुणा का वैसा प्रसार नहीं जैसा तुलसी के घोड़ों के मुड़ मुड़ कर देखने के वर्णन में।[1] जायसी का मोह प्रकृति के आलम्बन रूप की ओर भी अपेक्षाकृत कम है। प्रकृति का सहज प्रफुल्लित रूप देखकर भी कवि अधिक भाव विभोर नहीं होता। इसीलिये समुद्र नदी बाग बगीचे—सबका पद्मावत में उल्लेख होते हुए भी प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्र बहुत कम आये हैं। इस प्रसंग में वाल्मीकि और कालिदास का स्मरण सहज ही हो जाता है जो प्रकृति के प्रति पूर्ण भावात्मक तन्मयता की अनुभूति करते हैं और इसी कारण रामायण मेघदूत रघुवंश और कुमार संभव आदि में अनेक सुन्दर चित्र दे सके हैं। कामायनी में अन्त में रहस्य सर्ग में हिमालय का वर्णन है। पर बिम्ब की दृष्टि से वह उतना समृद्ध नहीं है जितना श्रद्धा का रूप वर्णन या मेघदूत में कालिदास का हिमालय वर्णन। प्रसाद का हिमालय वर्णन यद्यपि सुन्दर है जैसे—

मोचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुर धनु माला पहने
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने।
हरियाली जिनकी उभरी वे
समतल चित्रपटी से लगते।
प्रतिकृतियों की बाह्य रेखा से
स्थिर नद जो प्रति[2]

पर वह अनेक रूपता इसमें नहीं है जो न स्थलों पर मुग्धता श्रद्धा बुद्धि और मन के रूप विभोर के रहस्य आदि के वर्णन में उपलब्ध रहता।

---

१ रामचरितमानस : अयोध्याकांड
२. कामायनी : जयशंकर प्रसाद पृ० २६८

देखने का अवकाश ही उसे कम मिला है। यहाँ हिमालय की प्राकृतिक सुषमा के प्रति कवि पूर्ण तन्मय नहीं है पर्वत के ऊपर घिरे बादलों नीचे बहती नदियों और कन्दराओं आदि को वह बड़ी जल्दी में देख पाया है। कवि पंत ने इन्हीं प्राकृतिक उपकरणों को पूर्ण तन्मयता के साथ देखा है इसी से बादल नौका विहार, पर्वत प्रदेश में पावस आदि में सुन्दर बिम्बात्मक वर्णन कर सके हैं। स्पष्ट है कि भावात्मक तन्मयता के साथ बिम्ब का कितना निकट सम्बन्ध है। बिम्ब की समृद्धि और स्पष्टता कवि की भावात्मक तन्मयता को द्योतक है।

(६) प्रकृतिस्थ भाव—

काव्य रचना में प्रत्येक कवि प्रत्येक भाव में तन्मय नहीं हो पाता। कोई कवि किसी भाव में विभोर होता है और कोई कवि किसी भाव में। भवभूति ने करुणा को सर्वोपरि कहा तो कुछ ने शृंगार को रसराज माना साथ ही वात्सल्य को प्रमुखता देने वालों की भी कमी न रही। काव्य म यह अन्तर बड़ी स्पष्टता से देखा जा सकता है। कोई विरला कवि ही सभी भावों में पारंगत या भावविभोर हो सकता है। (तुलसी के लिये ऐसा कहा जा सकता है पर उनमें भी भक्ति का रंग सबसे गहरा है।) अधिकांश कवि एक दो या इससे कुछ अधिक भावों में ही भावविभोर होते हैं। सूरदास में रति और वात्सल्य भावों की प्रधानता है। इन्हीं स्थलों पर उनकी कल्पना दृष्टि उत्कृष्ठ निर्माण कर सकी है। भक्ति की भावना उनमें अपेक्षाकृत कम है। परन्तु शृंगार और वात्सल्य के स्थलों पर उन्होंने सुन्दर बिंब प्रस्तुत किये हैं। यथा

हरि अपने आंगन कछु गावत
तनक तनक चरननि सों नाचत मनहिं मनहिं रिझावत।
माखन तनक आपने कर लै, तनक बदन में नावत।
कबहुं चितै प्रतिबिम्ब खंभ में लोनी लिये खवावत।[1]
मेरे हिये लागी मनमोहन के नये री चित चोरि।
अबहिं इह मारग से निकसे, छबि निरखत तृन तोरि।
मोर मुकुट मकराकृत मनि कुंडल उर बनमाल विभोरी।
दसन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगोरि।[2]

प्रथम उद्धरण में कृष्ण की बाल लीलाओं को क्रियाओं द्वारा मूर्तित किया गया है और द्वितीय में रंग-रूप के उल्लेख द्वारा कृष्ण के स्वरूप को दृश्य बनाया गया है। सूरदास में रति और वात्सल्य भाव प्रधान है उनके सबसे अधिक और उत्कृष्ट बिंब इन्हीं भावों में मिल जाते हैं। तुलसी ने सभी भावों की प्रधानता दी है। उन्होंने संयोग वियोग करुणा-क्रोध—सभी स्थलों पर उत्कृष्ट बिंब योजना की है जो उनके सभी भावों पर समानाधिकार अथवा व्यापक रागात्मकता का परिचय देती है। परन्तु

१ संक्षिप्त सूरसागर, संख्या १११, पृ० १ ०
२ सूरसागर, दशम स्कंध १ १११ सं० १०१४

के सदृश्य ही प्रतीत हुई है। कारण है कि तुलसी की सहानुभूति उसकी ओर तनिक भी नहीं है जबकि गुप्तजी उर्मिला की पीड़ा और विरह व कैकेयी की पश्चाताप और आत्मग्लानि के प्रति पूर्ण तन्मय हैं। भावात्मक तन्मयता के कारण चरित्रों के वर्णन एवं वस्तु या भाव वर्णनों में सहज ही अन्तर आ जाता है।

पद्मावत में भी जहाँ कवि तन्मय है वहाँ वह सुन्दर प्रतिमाओं का सर्जन कर सका है अन्यथा वस्तु का उल्लेख भर कर दिया है। जायसी की तन्मयता शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग एवं वियोग—पर प्रकट होती है। वहाँ अनेक उत्कृष्ट बिम्ब जायसी की कल्पना दृष्टि की उत्कृष्टता का प्रतिपादन करते हैं परन्तु अन्य स्थलों पर कवि तन्मय नहीं है अतः बिम्बों में भी न्यूनता आ गई है। रत्नसेन भी अपने देश से बिदा हुआ है और तुलसी के राम भी यद्यपि परिस्थितिगत वैषम्य है पर मूलतः भावात्मक स्थिति की तन्मयता में अन्तर होने के कारण रत्नसेन के वियोग में करुणा का वैसा प्रसार नहीं जैसा तुलसी के घोड़ों के मुड़ मुड़ कर देखने के वर्णन में।[1] जायसी का मोह प्रकृति के आलम्बन रूप की ओर भी अपेक्षाकृत कम है। प्रकृति का सहज प्रफुल्लित रूप देखकर भी कवि अधिक भाव विभोर नहीं होता। इसीलिये समुद्र नदी बाग बगीचे—सबका पद्मावत में उल्लेख होते हुए भी प्रकृति के आलम्बन रूप के चित्र बहुत कम आये हैं। इस प्रसंग में वाल्मीकि और कालिदास का स्मरण सहज ही हो आता है जो प्रकृति के प्रति पूर्ण भावात्मक तन्मयता की अनुभूति करते हैं और इसी कारण रामायण मेघदूत रघुवंश और कुमार संभव आदि में अनेक सुन्दर चित्र दे सके हैं। कामायनी में अन्त में रहस्य सर्ग में हिमालय का वर्णन है। पर बिम्ब की दृष्टि से वह उतना समृद्ध नहीं है जितना अयोध्या का रूप वर्णन या मेघदूत में कालिदास का हिमालय वर्णन। प्रसाद का हिमालय वर्णन यद्यपि सुन्दर है जैसे—

नीचे जलधर दौड़ रहे थे
सुन्दर सुर धनु माला पहने
कुंजर कलभ सदृश इठलाते
चमकाते चपला के गहने।
हरियाली जिनकी उभरी वे
समतल चित्रपटी से लगते।
प्रतिकृतियों की बाह्य रेख से
स्थिर नद जो प्रतिपल भगते।[2]

पर वह अनेक रूपता इसमें नहीं है जो कालिदास के मेघदूत में है। कवि इन स्थलों पर मुख्यतः श्रद्धा बुद्धि और मन के रहस्यों एवं समस्याओं की गुत्थियों त्रिलोक के रहस्य आदि के वर्णन में उलझा रहता है प्रकृति को भाव विभोर होकर

१ रामचरितमानस अयोध्याकांड
२ कामायनी : जयशंकर प्रसाद पृ० २५८

देखने का अवकाश ही उसे कम मिला है। यहां हिमालय की प्राकृतिक सुषमा के प्रति कवि पूर्ण तन्मय नहीं है पर्वत के ऊपर घिरे बादलों नीचे बहती नदियों और कन्दराओं आदि को वह बड़ी जल्दी में देख पाया है। कवि पंत ने इन्हीं प्राकृतिक उपकरणों को पूर्ण तन्मयता के साथ देखा है, इसी से बादल नौका विहार पर्वत प्रदेश में पावस आदि में सुन्दर बिम्बात्मक वर्णन कर सके हैं। स्पष्ट है कि भावात्मक तन्मयता के साथ बिम्ब का कितना निकट सम्बन्ध है। बिम्ब की समृद्धि और उत्कृष्टता कवि की भावात्मक तन्मयता की द्योतक है।

(६) प्रकृतिस्थ भाव—

काव्य रचना में प्रत्येक कवि प्रत्येक भाव में तन्मय नहीं हो पाता। कोई कवि किसी भाव में विभोर होता है और कोई कवि किसी भाव में। भवभूति ने करुणा को सर्वोपरि कहा तो कुछ ने शृंगार को रसराज माना साथ ही वात्सल्य को प्रमुखता देने वालों की भी कमी न रही। काव्य में यह अन्तर बड़ी स्पष्टता से देखा जा सकता है। कोई विरला कवि ही सभी भावों में पारंगत या भावविभोर हो सकता है। (तुलसी के लिये ऐसा कहा जा सकता है पर उनमें भी भक्ति का रंग सबसे गहरा है।) अधिकांश कवि एक दो या इससे कुछ अधिक भावों में ही भावविभोर होते हैं। सूरदास में रति और वात्सल्य भावों की प्रधानता है। इन्हीं स्थलों पर उनकी कल्पना दृष्टि उत्कृष्ट निर्माण कर सकी है। भक्ति की भावना उनमें अपेक्षाकृत कम है। परन्तु शृंगार और वात्सल्य के स्थलों पर उन्होंने सुन्दर बिंब प्रस्तुत किये हैं। यथा

हरि अपने आंगन कछु गावत
तनक तनक चरननि सों नाचत, मनहिं मनहिं रिझावत।
भाजन तनक आपने कर लै, तनक वदन में नावत।
कबहुं चितै प्रतिबिम्ब खंभ में लोनी लिये खवावत।[1]
मेरे हिये लागे मनमोहन, लै गये री चित चोरि।
अबहिं इह मारग है निकसे छबि निरखत तृन तोरि।
मोर मुकुट स्रवननि मनि कुंडल उर बनमाल पिछौरी।
दसन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगौरी।[2]

प्रथम उद्धरण में कृष्ण की बाल लीलाओं को क्रियाओं द्वारा मूर्तित किया गया है और द्वितीय में रंग-रूप के उल्लेख द्वारा कृष्ण के स्वरूप को दृश्य बनाया गया है। सूरदास में रति और वात्सल्य भाव प्रधान हैं उनके सबसे अधिक और उत्कृष्ट बिंब इन्हीं भावों में मिल जाते हैं। तुलसी ने सभी भावों की प्रधानता की है। उन्होंने संयोग वियोग करुणा-क्रोध—सभी स्थलों पर उत्कृष्ट बिंब योजना की है जो उनके सभी भावों पर समानाधिकार अथवा व्यापक रागात्मकता का परिचय देती है। परन्तु

1. संक्षिप्त सूरसागर, संख्या २२५, पृ० १००
2. सूरसागर, दशम स्कं०, पृ० ६३२ सं० १०१८

में वह बीभत्स वस्तुओं को सामने लाता है। रक्त से भीगी हथेलियाँ या हृदय निकाल लेने वाले हाथ और रक्त से सनी उँगलियाँ कोई सुन्दर चित्र प्रस्तुत नहीं करतीं वरन् भाव व्यंजना में सहायक बनने के विपरीत उसका अपकार करने के कारण काव्य की उत्कृष्टता में भी विघ्न डालती हैं।

जहाँ भाव और बिम्ब में अन्योन्याश्रित संबंध नहीं होता और दोनों अपनी पृथक पृथक सत्ता बनाये रखते हैं वह स्थल भी काव्य की दृष्टि से श्रेष्ठ नहीं कहे जा सकते। प्रस्तुत और अप्रस्तुत का सामंजस्य बिम्ब के लिए आवश्यक है। साकेत में सूर्योदय वर्णन में गुप्त जी इस औचित्य को विस्मृत कर गये हैं—

सखि नील नभस्सर से उतरा
यह हंस अहा! तरता तरता।
अब तारक मौक्तिक शेष नहीं
निकला जिनको चरता चरता।
अपने हिम बिंदु बचे तब भी
चलता उनको धरता धरता।
गड़ जाय न कंटक भूतल के
कर डाल रहा डरता डरता।[1]

यहाँ कवि प्रस्तुत को पूरा करने के लिए अप्रस्तुत हंस को न जाने किस नवीन रूप में कल्पित कर लेता है। 'चरता' 'कर' आदि शब्द बिम्ब के निर्माण में व्याघात डालते हैं। अनौचित्य के कारण यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत एकदम भिन्न प्रतीत होते हैं जिससे बिम्ब की असफलता सिद्ध होती है।

बिम्ब योजना की श्रेष्ठता वहीं प्रकट होती है जहाँ भाव और बिम्ब प्रस्तुत और अप्रस्तुत इस तरह घुले मिले होते हैं कि उनके पृथक अस्तित्व की कल्पना ही नहीं हो सकती। जायसी के बिम्ब यहाँ द्रष्टव्य हैं

(१) सरवर हिया घटत नित जाई टूकि टूकि होय होय बिहराई
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दवंगरा मेरहु ऐका।
(२) तारा मंडर पहिरि भल चोला पहिरे ससि जस नखत अमोला।

यहाँ प्रथम में विरह की पीड़ा और भग्न हृदय को रूप देने के लिए कवि ग्रीष्मकालीन सरोवर के फटते हुए तल को सामने लाता है। भावी सुख के रूप को 'दवंगरा'—अषाढ़ की प्रथम वर्षा से प्रकट किया है। द्वितीय में सज्जित रूप सौन्दर्य को तारों से घिरे चाँद का रूप देकर द्रष्टव्य बनाया गया है। इन वर्णनों में भाव और बिम्ब एक साथ मिल कर प्रस्तुत हुए हैं। बिम्ब (उपमान) का प्रत्येक पक्ष प्रस्तुत पर भी ज्यों का त्यों घटित हो जाता है। नागमती के विरह दाह से दग्ध हृदय के लिए 'टूकि टूकि' होता सरोवर अत्यन्त सार्थक उपमान है। प्रिय आगमन पर उसका सुख

१ साकेत नवम सर्ग—मैथिलीशरण गुप्त

दूसरे के समान है। इस प्रकार की बिम्ब योजना जिसमें भाव और बिम्ब की सत्ता पृथक नहीं रहती और भाव की अभिव्यक्ति का कोई अन्य रूप कल्पना में नहीं आता। काव्य की उत्कृष्टता की परिचायक है। समष्टि में काव्य में बिम्ब एवं भाव का अन्योन्याश्रित अथवा अंग-अंगी संबंध अपेक्षित है। इसके अभाव में बिम्ब की सफलता असंभव है।

इस विवेचन से स्पष्ट है कि बिम्ब में भाव की सत्ता अनिवार्य है। भाव का पोषक तत्त्व बिम्ब ही सिद्ध कहला सकता है। भाव के प्रतीकीकरण का माध्यम भी बिम्ब ही है। फलतः सर्वोत्तम प्राप्ति के कारण बिम्ब और भाव एक दूसरे के पूरक रूप में अपेक्षित हैं।

रस सिद्धान्त

बिम्ब के अन्तर्गत भाव की अनिवार्यता, आवश्यकता और स्वरूप को देखने के पश्चात् भाव पर सर्वाधिक बल देने वाले और स्थाई भाव को काव्य का मूल तत्त्व मानने वाले रस सिद्धान्त को भी बिम्ब के माध्यम से परखना अपेक्षित होगा।

रस सिद्धान्त भारतीय काव्यशास्त्र का सबसे अधिक प्राचीन और संभवतः सर्वाधिक मान्य सिद्धान्त है। काव्यानंद को रस के माध्यम से समझने का सर्वप्रथम प्रयास भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में किया। दृश्य काव्य के प्रसंग में उन्होंने रस तत्त्व की अवतारणा की। परन्तु यह रसात्मकता की स्थिति केवल दृश्य काव्य में ही सीमित नहीं रही वरन् श्रव्य काव्य में भी रस को काव्य के चरमोत्कर्ष सर्वाधिक आवश्यक तत्त्व की मान्यता दी गई। आज भी यह मान्यता अक्षुण्ण है। स्पष्ट है कि सिद्धान्त रूप से रस की चर्चा सर्वप्रथम भरत ने अपने नाट्यशास्त्र में की दृश्य काव्य के विवेचन में, परन्तु रस का प्रभाव वाल्मीकि के भावों की श्लोकमयी परिणति—'मा निषाद' के रूप में श्रव्य काव्य में पहले ही हो चुका था। इस दृष्टि से रस के प्रथम विवेचक भरत और प्रथम प्रयोक्ता वाल्मीकि प्रतीत होते हैं। परन्तु सहज स्वाभाविक प्रश्न यह उठ सकता है कि भरत द्वारा दृश्य काव्य में स्वीकृत रस श्रव्य काव्य के अन्तर्गत मान्यता क्यों और कैसे पा सका? श्रव्य काव्य में रस की व्याप्ति किस प्रकार संभव हो सकी? डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने अपने शोध प्रबन्ध में इस पर प्रकाश डालते हुए लिखा कि दृश्य काव्य की रसात्मकता के पक्ष में दो तर्क दिये जा सकते हैं। (१) रस की कल्पना प्रथम नाट्य के विषय में हुई है। (२) विषयवस्तु और अभिनय होने के कारण दृश्य काव्य का प्रभाव अधिक स्थायी और गहरा हो सकता है। ऐसी दशा में सहृदय की तल्लीनता [illegible] अनुभूति को रसमय बना देती है। इस प्रकार वामन ने विचित्रता के कारण दृश्य काव्य को श्रेष्ठ बताया है और अभिनव गुप्त ने अलग देश प्रकृति तथा प्रत्यक्षता के कारण दृश्य का अविलम्ब तथा मार्मिक प्रभाव स्वीकार किया है तथापि इससे श्रव्य काव्य में उसकी योजना का

प्रभाव प्रमाणित नहीं होता और यह कहा जा सकता है कि नाट्य के अतिरिक्त काव्यों में भी बिम्बता उपस्थित हो जाने पर हम उन्हें रसमय मान सकते हैं।[1]

इस प्रकार यह बात निर्विवाद स्वीकार की जा सकती है कि श्रव्य काव्य की बिम्बात्मकता ही रसानुभूति में सहायक है और इसी के कारण रस को श्रव्य काव्य का भी प्रमुख तत्व माना गया है। दृश्य काव्य में हम वस्तु का अपनी स्थूल इन्द्रियों से प्रत्यक्ष अनुभूत करते हैं। अर्थात् आंख कान नाक आदि से देखते सुनते और सूंघते हैं। परन्तु श्रव्य काव्य में यह प्रत्यक्षीकरण स्थूल इन्द्रियों से न होकर सूक्ष्म इन्द्रियों से होता है जिनकी स्थिति पाठक या श्रोता के मन में रहती है। कविता में वस्तु का साक्षात्कार जो श्रव्य काव्य के अन्तर्गत रसात्मकता की अनुभूति कराने में सहायक होता है बिम्ब ही है।[2] यद्यपि रसानुभूति में बिम्ब शब्द का कहीं उल्लेख नहीं है परन्तु बिम्बता प्रत्यक्षीकरण आदि की आवश्यकता को साहित्याचार्यों ने अनुभव अवश्य किया है। अभिनव गुप्त ने रसानुभूति को स्पष्ट करते हुए लिखा कि यदि सहृदय काव्य का अभ्यास किये हुए है उसके कुछ मानस संस्कार हैं तो परिमित भावादि के उन्मीलन के द्वारा काव्य के विषय का साक्षात्कार किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में सहृदय पूर्वापर सम्बन्ध को समझ कर अमुक स्थान पर अमुक के सम्बन्ध में अमुक बात कही गई है या अमुक इसका वक्ता है अथवा अमुक दृश्य उपस्थित किया गया है आदि प्रसंगों की कल्पना करके रसास्वादन कर सकता है।[3] गम्भीरतापूर्वक देखा जाय तो अभिनव गुप्त का सारा वक्तव्य काव्य का मानस साक्षात्कार करने से ही सम्बन्ध रखता है। अमूर्त का यह मानस साक्षात्कार बिंब का ही व्यापार है। बिम्ब रूप में आये भावों को ही हम कल्पना से अनुभूत एवं प्रत्यक्ष कर सकते हैं। कवि के बिम्बवत अथवा बिम्बात्मक वर्णन से ही सहृदय श्रोता या पाठक रसानुभूति कर सकता है। स्पष्ट है कि रस की अभिव्यक्ति का प्रथम व सहज साधन बिम्ब है। बिम्बहीन वर्णन प्रत्यक्षता और अनुभव सम्पत्ता की समता के अभाव के कारण ही नीरस कहे जाते हैं।

रस की अभिव्यक्ति का प्रथम साधन बिंब है, इसका एक बड़ा पुष्ट कारण और भी है। और वह है रस की अरूपता और अगोचरता। काव्य में भाव या रस की सत्ता आवश्यक है परन्तु रस को शब्दों में कहना दोष है। स्वशब्दवाच्यत्व दोष यही है। अब यदि रस या भाव को स्पष्ट रूप से वाचक शब्दों से कहना दोष है तब भाव की अभिव्यक्ति का साधन क्या रह जाता है? स्पष्ट ही तब भाव की अभिव्यक्ति का एकमात्र साधन बिम्ब अथवा बिंब ही रह जाता है। रूप बिंब में वर्णित होने पर ही

---

१ रस-सिद्धान्त : स्वरूप-विश्लेषण—डा० आनन्द प्र० दीक्षित पृ० ११

२ use of the term image is for a purely mental idea which is taken to being observed by the eye of mind.
—Encyclopaeda Britanica, v 14 p. 328.

३ अभिनवगुप्त डा० दीक्षित द्वारा उद्धृत रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण, पृ० १३

वर्णन रसात्मक हो सकता है अन्यथा नहीं। इस पर शुक्लजी ने चिन्तामणि में बड़े विस्तार से विचार किया है।[1] क्रोध आ रहा है कहने मात्र से क्रोध की अभिव्यक्ति नहीं हो सकती उसके लिए बड़बड़ाना दांत पीसना आंखें लाल होना आदि अनुभावों को लाना होगा जो बिंब के ही रूप हैं। इनके द्वारा शब्द (वाचक के अभाव में भी क्रोध भाव को सुव्यस्थ किया जा सकता है। अर्थात् क्रोध भाव जब शब्द रूप में न आकर शब्द चित्रों के रूप में आये तभी वह अनुभवगम्य हो सकता है। इस प्रकार भी भाव एवं रस के लिए अभिव्यक्ति का साधन बिम्ब ही प्रतीत होता है।

रसानुभूति में बिंब की इस अनिवार्यता को सभी जागरूक आलोचकों ने स्वीकार किया है। स्पष्ट स्वीकारोक्ति तो नहीं है पर उनका अनुभव ऐसा था यह प्रकट हो जाता है। संस्कृत भाषा के कवियों ने चित्रों अथवा बिंबों के प्रयोग बहुलता से किये और कालिदास वाल्मीकि बाण आदि ने सुन्दर और श्रेष्ठ चित्र प्रस्तुत किये परन्तु प्रयोग में आने पर भी आलोचना के क्षेत्र में बिम्ब अथवा चित्रमय भाषा की विवेचना का अभाव ही रहा। कुछ ही व्यक्तियों ने इसे उल्लिखित किया। अभिनवगुप्त के आचार्य भट्टतौत ने श्रव्य काव्य में प्रत्यक्षवत्ता के गुण को बड़ा आवश्यक माना और बड़े स्पष्ट शब्दों में उसे उपस्थित किया। उन्होंने कहा कि कुशल कवि अपने वर्णन के माध्यम से सहृदय के सम्मुख मानो चित्र ही उपस्थित करता है। अतएव नाट्य की भी चित्रमयता होने पर काव्य में रसोद्बोध कभी सम्भव नहीं हो सकता।[2] इस प्रकार उन्होंने रस के संदर्भ में चित्रों एवं बिम्बों की महत्ता को स्वीकार किया है।

आधुनिक आलोचकों ने भी चित्र धर्म को भाषा का प्रमुख धर्म स्वीकार किया है। आचार्य शुक्ल की मान्यताएं इस विषय में बड़ी स्पष्ट हैं। उन्होंने कहा : 'काव्य में अर्थ ग्रहण मात्र से काम नहीं चलता बिम्ब ग्रहण अपेक्षित होता है। यह बिंब ग्रहण निर्दिष्ट गोचर और मूर्त विषय का ही हो सकता है।[3] शुक्लजी बिम्बात्मक वर्णन के बड़े समर्थक हैं। यही नहीं बिम्बात्मक आलंबन के रूप में वह कवि कर्म की श्रेष्ठ इति भी मान लेते हैं। यदि कवि ने ऐसी वस्तुओं या व्यापारों का अपने शब्द चित्र द्वारा सामने रख दिया जिनसे श्रोता या पाठक के भाव जाग्रत होते हैं तो वह एक प्रकार से अपना काम कर चुका'[4] शुक्लजी की मान्यता है। एक अन्य स्थल पर उन्होंने फिर कहा है कि 'जो वस्तु मनुष्यों का आलम्बन या विषय होती है उसका शब्द चित्र यदि किसी कवि ने खींच दिया तो वह एक प्रकार से अपना काम कर चुका।[5] यही नहीं

१ चिन्तामणि—आचार्य शुक्ल
प्रत्यक्ष कल्पनवे काव्ये आस्वाद सम्भवः। एवं च ... आनन्द प्रकाश दीक्षित, रस सिद्धान्त—स्वरूप विश्लेषण पृ० २६७
३ रस मीमांसा—आचार्य शुक्ल पृ० १६७
४ वही, पृ० १५६
५ वही, पृ० १६१

शुक्लजी ने उन कवियों की कटु आलोचना भी की है जिन्होंने अपनी प्रतिभा अथवा सर्जन शक्ति को बिम्ब ग्रहण के लिये उपयोग न करके मात्र अर्थ ग्रहण के लिये उपयोग किया है और जिस कल्पना का उपयोग मुख्यतः पदार्थों का रूप संघटित करने प्राकृतिक व्यापारों को प्रत्यक्ष करने और इस प्रकार से किसी दृश्य चित्र के ब्योरे पूरे करने में होना चाहिये था उसका प्रयोग उपमा उत्प्रेक्षा दृष्टान्त आदि की उद्भावना करने में ही किया है।[1] शुक्ल जी ने तो रस शीर्षक में ही प्रस्तुत अप्रस्तुत और कल्पित रूप विधानों की चर्चा की है[2] क्योंकि रसात्मक बोध के लिये रूपों अथवा बिम्बों की एकांत आवश्यकता होती है। इनमें प्रथम दो का क्षेत्र तो काव्य से बाहर का है पर कल्पित रूप विधान बिंब का ही एक रूप है प्रत्यक्ष जीवन में यह रसात्मक बोध प्रत्यक्ष इन्द्रिय गम्य बिम्बों रूपों एवं दृश्यों के द्वारा होता है काव्य में वही रसात्मक बोध दृश्य चित्रों अथवा दृश्यों के द्वारा होता है जो कवि की कल्पना से पाठक के सम्मुख आते हैं। इसी से शुक्लजी ने इसे कल्पित रूप विधान का नाम दिया है। कल्पित रूप विधान का तात्पर्य बिम्ब ही है और यह पूर्णतः काव्य का क्षेत्र है।

स्पष्ट है कि रसानुभूति करने में बिम्ब का एक महत्वपूर्ण स्थान है। रस के पूर्ण परिपाक का कोई स्थल बिम्ब से रहित हो ही नहीं सकता। वाल्मीकि और कालिदास से लेकर आधुनिक कवियों तक के काव्य के किसी भी पूर्ण रसात्मक स्थल—जहाँ भाव अनुभाव एवं संचारी भावों के योग से रस निष्पत्ति हुई हो को लीजिये बिम्ब वहाँ किसी न किसी न रूप में अवश्य विद्यमान रहेगा। रूपाकार वर्ण गन्ध स्पर्श मुद्रा (स्थिति) क्रिया संवेदना आदि के रूप में बिम्ब वहाँ अवश्य प्रस्तुत होगा। उदाहरण के लिए साकेत का एक पूर्ण रसात्मक स्थल लीजिये जहाँ रस की पूर्ण सामग्री विद्यमान है।

मैं निज अलिन्द में खड़ी थी सखी एक रात
रिमझिम बूँदें पड़ती थीं घटा छाई थी।
गमक रहा था केतकी का गन्ध चारों ओर
झिल्ली झनकार यही मेरे मन भाई थी।
करने लगी मैं अनुकरण स्वनूपुरों से
चंचला थी चमकी घनाली घहराई थी।
चौंक देखा मैंने चुप कोने में खड़े थे प्रिय
माई! मुख लज्जा उसी छाती में छिपाई थी।[3]

यहाँ प्रिय लक्ष्मण आश्रय उर्मिला आलम्बन रिमझिम बूँदें केतकी का गन्ध झिल्ली झनकार, चंचला का चमकना आदि उद्दीपन स्वनूपुरों से अनुकरण चौंकना

१ रस मीमांसा—शुक्ल पृ० १२०
२ वही पृ० ६७-८०
३ साकेत—मैथिलीशरण गुप्त, नवम सर्ग पृ० २६६

मलाना, आदि अनुभाव हैं। लज्जा, हर्ष और पुलक संचारी के रूप में आए हैं। वियोग पक्ष में स्मृति के रूप में उल्लिखित होने से यहाँ विप्रलंभ की व्यंजना होती है। रस की दृष्टि से यहाँ शृंगार के सभी उपकरण हैं जो रति भाव को पूर्ण रसात्मकता की स्थिति तक पहुँचा देते हैं। अब बिंब की दृष्टि से भी इस रसात्मक स्थल का परीक्षण होना चाहिये जिससे रसात्मकता में बिम्ब की स्थिति पर प्रकाश पड़ सके। यहाँ आश्रय और आलम्बन का उल्लेख भर है, उनका पूर्ण चित्र नहीं है उनके आकार, वस्त्र आभूषण, वस्त्र रूप सौन्दर्य आदि का वर्णन नहीं है। परन्तु बिम्ब की दृष्टि से इसके उद्दीपन बड़े महत्वपूर्ण हैं। यह प्रकृति वर्णन पूर्णतः बिम्बात्मक है। रिमझिम शब्द ध्वन्यात्मक है जो बूँदों के गिरने को अनुभूत करा देता है। केतकी के गंध की गमक घ्राण भाव परक बिम्ब है। झनकार भी स्वरों को सूचित करने वाला शब्द है चमक आदि दृष्टि परक बिंब हैं। स्पष्टतः यहाँ उद्दीपन के उपकरण गमक झनकार रिम झिम बूँदें चमक सस्वर शब्द भाव को सूचित करते हैं। अंतिम दो पंक्तियों में अनु भाव योजना भी क्रिया बिम्ब के रूप में है। गति और मुद्रा का उसमें उल्लेख है जो बिंबात्मक है। इस प्रकार जहाँ रस की दृष्टि से यह वर्णन उत्कृष्ट कहा जा सकता है वहाँ बिंब की दृष्टि से भी यह सफल है। वस्तुतः रस और बिम्ब दोनों अन्योन्याश्रित हैं। वर्णन की बिम्बात्मकता ही रस की अनुभूति कराने में सहायक हुई है।

इसी संदर्भ में जायसी का भी एक पूर्ण रस परिपाक का स्थल द्रष्टव्य होगा—

रितु पावस बरिसै पिउ पावा। सावन भादौं अधिक सुहावा।
कोकिल बैन पाँति बग छूटी। धनि निसरी जनु बीर बहूटी।
चमकै बीजु बरसि जल सोना। दादुर मोर सबद सुठि लोना।
रंग राती पिय संग निसि जागी। गरजै गगन चौंकि गर लागी।

यहाँ पद्मावती और रत्नसेन संयोग शृंगार के आलम्बन और आश्रय हैं प्रकृति का समस्त वातावरण—पावस रितु कोकिल बैन बग पंक्ति, मोर का स्वर, बिजली की चमक, शीतल बूँदें उद्दीपन के रूप में प्रस्तुत किया गया है। साथ ही बिम्ब की दृष्टि से भी यह स्थल सफल है इसमें दृश्य हरियर सब देखिऊ संसारा बरसि जल सोना—स्पर्श शीतल बूँद और बौछारा—श्रव्यदादुर मोर सबद सुठि लोना आदि सभी प्रकार के संवेदनात्मक बिम्ब हैं। इन्द्रिय स्पर्श के कारण यह उद्दीपन रूप से वातावरण का वर्णन बड़ा जीवन्त हो गया है। भूमि की हरियाली से समस्त संसार का हरा हरा दिखना बिजली की चमक के प्रकाश के प्रतिबिम्ब से जल का सोना जैसा दिखाई देना—कवि की उत्कृष्ट कल्पना का परिचायक है। यहाँ प्रस्तुत अनुभाव योजना भी बिम्बा-त्मकता में वृद्धि करती है। चौंकना गले लगना आदि व्यापार बिंब में ही हमारे सम्मुख आते हैं। अन्य कवियों में रसात्मक स्थलों की उत्कृष्ट बिंब योजना को सर्वत्र देखा जा सकता है।

रसात्मक वर्णन में बिम्ब की उपयोगिता और स्थिति के पश्चात रस सामग्री विभावानुभाव व्यभिचारीभाव—में भी बिम्ब की स्थिति को परख लेना उपयोगी होगा। इससे रस एवं बिम्ब के सम्बन्ध की निकटता पर और अधिक प्रकाश पड़ेगा।

(१) विभाव

काव्य में रस का संयोजन करने वाले तत्व विभाव है। शास्त्र में वाचिक, आंगिक तथा सात्विक अभिनय के सहारे चित्त वृत्तियों का विशेष रूप से विभावन अर्थात् ज्ञापन कराने वाले हेतु, कारण अथवा निमित्त को विभाव कहते हैं। विभावन का अर्थ है विशिष्ट ज्ञान।[1] रस को विशेष रूप से ज्ञापित कराने के कारण ही इन्हें विभाव कहा जाता है। विभाव—आलम्बन और उद्दीपन दोनों ही बिम्बात्मकता के बहुत निकट है। शुक्ल जी ने विभावों की चित्रात्मकता के विषय में कहा है

'रस के संयोजक जो विभाव आदि है। वे ही कल्पना के प्रधान क्षेत्र है। विभाव वस्तु चित्रमय होती है। अतः जहाँ वस्तु श्रोता या पाठकों के भावों का आलम्बन होती है वहाँ अकेला उसका पूर्ण चित्रण ही काव्य कहलाने में समर्थ हो सकता है।[2] विभाव का मुख्य प्रयोजन विशिष्ट ज्ञान कराना है। वह सामान्य वस्तु को विशेष बनाकर पाठक या श्रोता के भावों का आलम्बन बनाता है जिससे रस परिपाक में सहायता मिलती है। सामान्य का यह विशिष्टत्व बिम्ब द्वारा ही प्रतिपादित होता है। बिंब रूप मे प्रस्तुत वस्तु सामान्य से अधिक विशेष हो जाती है। स्वयं शुक्लजी कहते हैं बिंब सदा विशेष का ही आता है सामान्य का नहीं।[3] इस रूप में विभाव बिंब के बहुत समीप प्रतीत होते हैं। विभाव का पूर्ण और सांगोपांग वर्णन जिस पर शुक्ल जी ने काफी बल दिया है अकेला ही काव्य का अधिकारी हो सकता है। कालिदास वाल्मीकि तुलसी आदि के प्रकृति वर्णन इसी रूप मे हुए हैं। वहाँ वस्तु की चित्रात्मकता ही सर्वोपरि है वही वस्तु वर्णन को समग्र और ब्योरेवार बनाती है। विभाव की चित्रात्मकता ही सांगोपांग रूप में आकर रसात्मक बन सकती है अन्यथा संवेदनीयता के अभाव में ऐसे स्थल कभी रसनीय नहीं बन सकते। चाहे विभाव प्रकृति हो या प्रकृतीतर जीवन चित्रात्मक रूप में आने पर ही काव्य कहला सकता है। समग्रता का गुण बिम्ब की ही विशेषता है।

विभाव को दो भागों में विभाजित किया गया है प्रथम आलम्बन द्वितीय उद्दीपन।

आलम्बन विभाव जहाँ अकेला ही काव्य रचना का अधिकारी होगा अवश्य ही बिम्ब रूप में प्रस्तुत होगा। उद्दीपन विभाव भी अधिकांशतः बिम्बात्मक होते हैं

---

१ बहवोऽर्था विभाव्यन्ते वागंगाभिनयाश्रयाः।
अनेन यस्मात् तेनायं विभाव इति संज्ञितः। —नाट्यशास्त्र ७।४

२ रस मीमांसा—आचार्य शुक्ल पृ० १२५

३ चिन्तामणि—आचार्य शुक्ल,

परन्तु काव्य में रस की दृष्टि से उनकी अवस्था प्रधान न रहकर गौण है। काव्य में आलम्बन ही प्रधान है। केवल आलम्बन का वर्णन काव्य का अधिकारी हो सकता है पर केवल उद्दीपन का वर्णन काव्य का अधिकार नहीं पा सकता। उद्दीपन के लिए आलम्बन की स्थिति अनिवार्य है। जहाँ कवि केवल आलम्बन का वर्णन करते हैं वहाँ बिम्ब अवश्य विद्यमान रहता है। कोई रूपक कोई उपमान कोई विशेषण वहाँ ऐसा अवश्य रहता है जो वस्तु को चित्रवत प्रत्यक्ष कर देता है। कामायनी से प्रसाद की श्रद्धा का वर्णन देखिए

नील परिधान बीच सुकुमार
खुल रहा मृदुल अधखुला अंग
खिला हो ज्यों बिजली का फूल,
मेघ बन बीच गुलाबी रंग।
आह! वह मुख पश्चिम के व्योम—
बीच जब घिरते हों घनश्याम
अरुण रवि मंडल उनको भेद
दिखाई देता हो छविधाम।[1]

कहने की आवश्यकता नहीं कि यहाँ आलम्बन का रूप वर्णन पूर्णतः बिम्ब का भागी है। बिम्बात्मक पद्धति से प्रस्तुत होने पर ही श्रद्धा का रूप दृश्य बन सका है। ऊपर प्रस्तुत दोनों ही बिम्ब दृष्टि परक हैं। जो आकार से अधिक वर्ण को स्पष्ट करते हैं। रूप इनमें इतना प्रधान नहीं है जितना रंग का उल्लेख प्रधान हो गया है। ये बिम्ब श्रद्धा के सौन्दर्य को मूर्तित कर देते हैं। नील रोम के चर्म से झाँकता उसके अंग का ताम्रवर्ण हमारे सम्मुख चित्रित हो जाता है।

प्रकृति का आलम्बन रूप में वर्णन भी सदैव बिम्ब रूप में होता है। यहाँ प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों ही रूपों में बिम्ब रह सकता है। अप्रस्तुत रूप में आलम्बन का बिम्बात्मक वर्णन जायसी की इन पंक्तियों में देखा जा सकता है

ताल तलावरि बरनि न जाहीं, सूझै वार पार तेहि नाहीं।
फूले कुमुद सेत उजियारे, मानहुँ उए गगन महँ तारे।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लै पानी, चमकहिं मच्छ बीजु कै बानी।

यहाँ पुष्पों से भरे तालाब पर तारों भरे आकाश का रूप आरोपित है। मेघ और चमक के कारण मछली का बिजली से सादृश्य भी सहज ही हो जाता है। ताल का श्याम वर्ण उस आकाश की नीलिमा की पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। प्रकृति का प्रस्तुत रूप में वर्णन हिन्दी साहित्य में बहुत कम हुआ है। छायावादी काव्य में भी इसका अभाव है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में यह पद्धति बहुप्रयुक्त है। वाल्मीकि और

१ कामायनी : जयशंकर प्रसाद पृ ४६

कालिदास का प्रकृति वर्णन प्रायः इसी रूप में हुआ है। वाल्मीकि प्रकृति का वर्णन इस प्रकार करते हैं

मुक्तासकाशं सलिलं पतद्वै सुनिर्मलं पत्रपुटेषु लग्नम्।
हृष्टा विवर्णच्छदना विहङ्गाः सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति।

यहाँ पानी की बूँदों का गिरना गिर कर पत्तों की नोकों पर लग जाना चिड़ियों का पंखों को फैलाना और पत्तों की नोंक पर लगे हुए पानी को पीना सब व्यापार एक सूत्र में निबद्ध हैं। और एक पूरा चित्र हमारे समक्ष आ जाते हैं। कालिदास का प्रकृति वर्णन भी द्रष्टव्य है। नदी तट के वातावरण को वह इस रूप में चित्रित करते हैं

भागीरथीनिर्झरसीकराणां वोढा मुहुः कम्पितदेवदारुः
यद्वायुरन्विष्टमृगैः किरातैरासेव्यते भिन्नशिखण्डिबर्हः ।[2]

यहाँ कवि हिमालय के पवन के साथ नदी की लहरों के छितराने, जलकणों के फैलने, देवदारु के कम्पित होने, मोर के पूँछ को छितराने, किरातों की मृगचर्या और वायु सेवन—सबको एक सूत्र में प्रस्तुत करता है जिससे वातावरण का पूरा रूप नेत्रों के सम्मुख आ जाता है। ऐसे ब्योरेवार और समग्र वर्णन वस्तु को पूर्णतः प्रत्यक्ष बना देने की सामर्थ्य रखते हैं। यहाँ दोनों उदाहरणों में प्रकृति का वर्णन बिना किसी आरोपण के अर्थात् अप्रस्तुत रूप में न होने पर भी संवेदनीयता एवं समग्रता के कारण बिम्ब की श्रेणी में ही आता है। स्पष्ट है कि प्रकृति का आलम्बन वर्णन या प्रकृतीतर जीवन का आलम्बन वर्णन बिम्ब रूप में न होने से कभी काव्य का अधिकारी नहीं हो सकता। आलम्बन के वर्णन के लिये बिम्ब नितान्त आवश्यक है।

उद्दीपन विभाव का भी रस में महत्वपूर्ण स्थान है यद्यपि वह काव्य में प्रधान नहीं है परन्तु रस परिपाक में उसका महत्वपूर्ण योगदान असंदिग्ध है। उद्दीपन का अर्थ है निमित्त रूप सामग्री जिससे जाग्रत भाव अभिकाधिक उद्दीप्त होता है।[3] इस रूप में अर्थात् भावोद्रेक के निमित्त रूप में आनेवाले उद्दीपन असंख्य होते हैं। हमारे साहित्य में मुख्यतः प्रकृति ने ही उद्दीपनों का कार्य किया है। उद्दीपन के अन्तर्गत मुख्यतः देश काल व आलम्बन की चेष्टाएँ ही आती हैं। इसके चार भेद हैं। (१) आलम्बन के गुण (२) उसकी चेष्टाएँ (३) उसका अलंकरण (४) तटस्थ।[4] इनमें प्रथम तीन में आलम्बन का रूप यौवन हाव-भाव आदि आते हैं जो मूलतः आलम्बन से सम्पृक्त हैं। आलम्बन के वर्णन में ही उनका वर्णन हो जाता है वस्तुतः अंतिम रूप

१ आ० शुक्ल द्वारा उद्धृत रस मीमांसा से पृ० २१५
२ वही पृ० २१६
३. [illegible] या विभव सु तस्या आलम्बनम् । निमित्तानि न उद्दीपक इति यदि बोध्यम् ।
—रसार्णवसु०, डा० दीक्षित द्वारा उद्धृत—रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृ० १८
४ रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण डा० दीक्षित पृ० २१

तटस्थ, जिसके अन्तर्गत परिस्थिति प्रकृति आदि आती है, ही उद्दीपन का यथार्थ रूप है। उद्दीपन वर्णन अधिकांश में बिम्बात्मक होता है। उसके अन्तर्गत रूप रस गंध आदि के अनेक सुन्दर उद्दीपन चित्र उपस्थित रहते हैं जो भावोत्कर्ष करने वाले तो होते ही हैं चित्र धर्म से भी युक्त रहते हैं। उदाहरण के लिए जायसी की यह पंक्तियां द्रष्टव्य हैं

नैन चुवहिं जस माहुट नीरू, तेहि जल अंग लाग सर चीरू।
टूटहिं बुंद परहिं जस ओला, बिरह पवन होइ मारै झोला।
केहिक सिंगार को पहिरि पटोरा, गियं नहिं हार रही होइ डोरा।
तुम्ह बिनु कंता धनि हरुई तन तिनुवर भा डोल।
तेहि पर बिरह जराई कै, चहै उड़ावा झोल।

यहां उद्दीपन रूप में प्रयुक्त प्रकृति का प्रत्येक व्यापार बिम्ब रूप में प्रस्तुत हुआ है। जायसी ने प्रकृति का प्रयोग अधिकतर विप्रलम्भ के उद्दीपन रूप में किया है जो सदैव बिम्बात्मक है। यहां नयनों का माहुट की भांति टपकना बूंदों का गिरना—ओलों के सदृश लगना पवन को विरह पवन का रूप देना सभी बिम्बात्मक है। जायसी में ही 'चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा' आदि उद्दीपन रूप में प्रस्तुत बिम्ब योजना के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। बिहारी घनानन्द आदि में भी प्रकृति उद्दीपन रूप में आई है। वहां वह भाव व्यंजना में सहायक है व चमत्कार का सर्जन नहीं करती वहां अधिकांशतः उसका रूप बिम्ब प्रधान ही है।

(२) अनुभाव

रस के अन्तर्गत विभाव के पश्चात् दूसरा प्रमुख तत्त्व अनुभाव है। अनुभाव अन्तर्गत अभिनय रूप ऐसी विशेष आंगिक तथा सात्त्विक चेष्टाओं का समावेश मिलता है जो 'आश्रय के हृदयस्थ भावों के व्यंजक बाह्य रूप होती हैं। और सहृदय को उस भाव विषय का भावन कराती हैं।'[1] स्पष्टतः अनुभाव अमूर्त भावों के मूर्त व्यक्त स्वरूप हैं। बिम्ब भी अमूर्त भावों के व्यक्त मूर्त स्वरूप हैं इस रूप में अनुभाव सदैव बिम्बात्मक होते हैं। भाव विषय के भावन कराने का तात्पर्य है साक्षात्कार कराना अथवा अनुभव गोचर कराना।[2] साक्षात्कार कराना एवं अनुभव गम्य कराना—यह दोनों ही व्यापार बिम्ब संपादित करता है। अनुभाव के अन्तर्गत आने वाले क्रिया एवं मुद्रा चित्रण सदैव बिम्बात्मक होते हैं। अनुभाव के उदाहरणों से इस तथ्य को अधिक स्पष्टता से देखा जा सकता है

---

१ [illegible] बिम्ब [illegible] अनुभाव [illegible]
२ [illegible]
[illegible] १९

(१) बहुरि बदन बिधु अंचल ढाँकी पिय तन चितै भौंह करि बाँकी।
  खंजन मंजु तिरीछे नैनन निज पति कहेउ तिन्हहिं सिय सैनन।[1]

(२) कहत नटत रीझत खिझत मिलत खिलत लजियात
  भरे भौन में करत हैं नैन हीं सों बात।[2]

(३) देखि दूर ही तैं दौरि पौरि लगि भेंट ल्याइ
  आसन दै साँसनि समेटि सकुचाने तैं,
 कहै रतनाकर यौं गुनन गोबिंद लागे
  जौ लौं कछु भूले से भ्रमे से अकुलाने तैं।
 कहा कहैं ऊधौ सो कहैं हूँ तो कहाँ लौं कहैं
  कैसे कहैं कहैं पुनि कौन सी उठान तैं।
 तौ लौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
  नीर ह्वै बहन लागि बात अँखियान तैं।[3]

तुलसी की पंक्तियों में सीता के क्रिया कलापों का वर्णन है जो क्रियाओं (अनुभाव) से प्रकट होता है। यह पूरा वर्णन बिंब का श्रेष्ठ उदाहरण है। मुख पर अंचल डालना बाँकी भवों से ताकना और संकेत से 'पति है, ऐसा बताना—सभी क्रियाएं चित्र रूप में हमारे समक्ष आ जाती हैं। इससे सीता के सौन्दर्य की रमणीयता और चित्ताकर्षकता में तो वृद्धि हुई ही है, साथ साथ उसकी हृदयस्थ भावनाओं की श्रेष्ठ व्यंजना हुई है। यह सब भाषा के बिंब धर्म के कारण ही है। दूसरा उदाहरण बिहारी का है। जो अनुभाव योजना की बिंबात्मकता का स्पष्ट प्रमाण है। कहत नटत रीझत खिझत आदि प्रत्येक शब्द अपने आप में एक बिंब है, सभी शब्द सस्वर हैं जो नायक नायिका के प्रेमपूर्ण क्रिया—कलापों को नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष कर देते हैं। तीसरा उदाहरण अनुभाव योजना की उत्कृष्टता के लिये प्रसिद्ध कवि रत्नाकर का है। यहाँ पूरे पद में कृष्ण की आकुलता व्यंजित है। इस आकुलता को कवि ने भूले से भ्रम से सकुचाने कंठ भिंचने आदि के अनुभाव चित्रों द्वारा स्पष्ट किया है। पूरा पद एक गत्यात्मक बिंब (भावनात्मक प्रमेय) का सफल अंकन करता है। अंत में स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि रसात्मक अनुभाव योजना सर्वत्र भाषा में बिंब के माध्यम से प्रकट होती है।

(३) व्याभिचारी भाव

व्यभिचारी भाव संचारी भावों का ही एक नाम है। 'बाक' भय तथा सत्वादि विविध प्रकार के रसानुकूल संचरण करने वाले भावों को व्यभिचारी एवं संचारी भाव

---

१ रामचरितमानस अयोध्याकांड
२ बिहारी रत्नाकर, पृ० २८
३ उद्धव शतक : रत्नाकर

रहते हैं।'[1] ये स्थायी भाव के सहकारी होते हैं। प्रत्यक्षता इनका एक विशेष लक्षण है। रसानुभूति के समय ये प्रेक्षक के अभिमुख—सम्मुख हो जाते हैं। अर्थात् रसानुभूति के समय प्रेक्षक का इनसे प्रत्यक्ष होता है।[2] इस कथन से स्पष्ट है कि भाव के उत्कर्ष विधायक यह तत्व भी प्रत्यक्ष अथवा दृश्य रूप में पाठक के संमुख आते हैं। संचारी भाव अधिकांशतः चित्र के रूप में ही पाठकों को प्रत्यक्ष होते हैं। बिंब अमूर्त भावों के वर्णन की एक पद्धति है। जहाँ भाव संवेदनीय बन कर प्रत्यक्ष रूप में हमारे सम्मुख आ जाते हैं वहीं बिंब की सृष्टि हो जाती है। इस रूप में संचारी भावों का प्रकटीकरण भी बिंब द्वारा सहज ही हो जाता है। उदाहरण के लिये कुछ वर्णन लीजिये जिनमें संचारी भावों का उत्कृष्ट प्रकाशन हुआ है

> दूलह श्री रघुनाथ बने दुलही सिय सुन्दर मन्दिर माहीं।
> गावत गीत सबै मिलि सुन्दरि बेद जुवा जुरि बिप्र पढ़ाहीं।
> राम को रूप निहारति जानकी कंकन के नग की परछाहीं।
> याते सबै सुधि भूलि गई कर टेक रही पल टारत नाहीं।[3]

डा० दीक्षित ने इसमें 'पल टारत नाहीं' और 'सुधि भूल गई' पदों में क्रमशः जड़ता और मोह संचारी भावों का प्रकटीकरण कहा है। ध्यान देने की बात है कि यह शब्दों ही पर सीता की अवस्था को मूर्तित करने में सहायक हुए हैं। इन्हीं पदों में उनकी मुद्रा का चित्रण है। इस प्रकार अन्य स्थलों पर भी बिंबात्मक भाषा में संचारी भावों के प्रकटीकरण को देखा जा सकता है। स्पष्टतः संचारी भाव अधिकतर अभिव्यक्ति के लिये बिंब भाषा का माध्यम चुनते हैं। और जहाँ संचारी भाव हाव भाव एवं अनुभावों में घुल मिल जाते हैं वहाँ भी बिंब की सृष्टि अवश्य होती है। जैसे हर्ष संचारी के रोमांच और पुलक को अनुभाव के रूप में देखा जाय तो।

निष्कर्ष

वस्तुतः बिंब अमूर्त भावों के वर्णन की एक प्रणाली है परन्तु बहुत से अलंकारों की भांति ऊपर से ओढ़ी जाने वाली मीनाकारी या नक्काशी नहीं वरन् वह कुसुम के साथ स्वयं उत्पन्न होने वाले रूप रंग और गंध की भांति भाव के साथ स्वतः उद्भूत होने वाला तत्व है। बिंब का जन्म भाव से ही होता है इस कारण रस सिद्धान्त से यह इतना निकट है। शुक्ल जी ने स्वयं बिंब को रस सामग्री में अनुभव किया था। इसी से उन्होंने स्पष्ट लिखा है : विभाव और अनुभाव दोनों में रूप विधान होता है, जिनका उसी प्रकार कल्पना द्वारा स्पष्ट ग्रहण वांछित होता है जिस प्रकार मन द्वारा चित्र का।[4] भाव मूलतः अमूर्त और अप्रत्यक्ष वस्तु है उसकी अभिव्यक्ति रूप में

---

१ [illegible] विविधमभिमुख्येन रसेषु चरन्ति व्यभिचारिणः [illegible]
२. रस सिद्धान्त : स्वरूप विश्लेषण डा० दीक्षित पृ० ३३
३ कवितावली तुलसी, पृ० ११८
४ रस मीमांसा : शुक्ल पृ० ३११

अमूर्त और अगोचर होता है। उसको आस्वादनीय अर्थात् संवेदनीय और अनुभव गम्य बनाने के लिए बिम्ब का माध्यम सहज और सर्वप्रथम है। भाव या रस की व्यञ्जना बिम्ब द्वारा मूर्त होकर पाठक या श्रोता के लिये आस्वादनीय या प्रत्यक्ष बनती है। अनुभाव विभाव आदि का वर्णन वस्तुतः स्वरूप का ही वर्णन है। भाव स्थाई, अनुभाव संचारी—सभी के लिए बिम्ब नितान्त आवश्यक है। हमारे साहित्य की वर्णन प्रणाली या शैली जो रस की पोषक व प्रयोक्ता है का एक बड़ा भाग बिम्ब का ही ऋणी है। बिम्ब सत्काव्य की एक बहुत बड़ी विशेषता है। बिम्ब की व्यापकता बहुत अधिक है। बौद्धिकता प्रधान साहित्य में रस भले ही क्षीण हो जाय पर बिम्ब बना रहता है। वाल्मीकि कालिदास सूर तुलसी जायसी बिहारी देव और आधुनिक श्रेष्ठ कवियों की कविता बिम्ब के समर्थन में एक स्वीकारोक्ति ही है यह रस सिद्धांत की भी पोषक है और बिम्ब विधान की प्रणाली की भी। समष्टि में यद्यपि रस सिद्धान्त के विवेचन में चित्रात्मक या बिम्ब पूर्ण वर्णन का कहीं स्पष्ट और सशक्त उल्लेख नहीं है तथापि रस सिद्धान्त के मूल में ही बिम्ब की सम्भावनाएं निहित हैं यह निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है।

यह पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है कि बिम्ब भाव को भाषा में प्रस्तुत करने की एक विधा है। इस विवेचन में हमने भाव और रस के सन्दर्भ में बिम्ब का अध्ययन किया अब भाषा के सन्दर्भ में बिम्ब का अध्ययन किया जायगा। बिम्ब वस्तुतः भाषा का ही एक रूप है।

भाषा

मानव मन की अभिव्यक्ति को कलात्मक रूप में साहित्य के अन्तर्गत प्रस्तुत करने का श्रेय भाषा को ही है। अन्य कलाओं में अभिव्यक्ति के साधन स्वर, वर्ण रंग आदि रहते हैं। परन्तु साहित्यिक अभिव्यक्ति में भाषा का ही प्रयोग होता है। मानव मन की दो मूल प्रवृत्तियां हैं एक अनुकरण या सहानुभूति दूसरी अभिव्यंजना।[1] पहली मानव मन में भावों एवं विचारों की अनुभूति कराती है दूसरी उनको अभिव्यक्त करती है। इसी अभिव्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति के लिए समाज में भाषा की स्थापना हुई। काव्य भी व्यक्ति की सात्त्विक अभिव्यक्ति का नाम है।[2] काव्य भाषा से निर्मित होता है और भाषा स्वयं व्यक्तियों की व्यक्तिगत अनुभूति की देन है स्वयं भाषा ही उन अनुभूतियों के स्वरूप को बदलती रहती है। भाषा के बिना व्यक्ति की अनुभूतियाँ नहीं हो सकती और न अनुभूतियों के बिना भाषा ही बन सकती है।[3] भाषा में व्यक्त होकर ही अनुभूति को अनुभूति की संज्ञा मिलती है और भाव एवं विचारों को भाव और विचार कहा जाता है। अन्यथा अव्यक्त अनुभूतियों भावों

---

१ काव्य में अप्रस्तुत योजना : रामदहिन मिश्र, पृ. ३

२ शब्दार्थौ सहितौ काव्यम् : विश्वनाथ

३ छायावाद युग : डा० शम्भुनाथ सिंह, पृ. १८६

एवं विचारों का तो एक बड़ा कोष ही हमारे मानस में है पर उसे हम इन संभारों से विभूषित नहीं कर सकते। अभिव्यक्ति पाने पर ही अनुभूति 'अनुभूति', भाव 'भाव' और विचार 'विचार' है।[1] इस रूप में अनुभूति भावादि भाषा से अपृथक् हैं। भाषा [illegible] की भाँति केवल ऊपरी सजावट या सतही सौन्दर्य जैसी वस्तु नहीं है वह उस आंतरिक सौन्दर्य का व्यक्त बाह्य रूप है जो उसको अनुप्राणित करता है। मूलतः दोनों एक ही हैं।[2] इसी कारण काव्य की परिभाषा में 'साहित्य' शब्द का व्यवहार किया गया है।

बिम्ब भी भाषा का एक रूप है वह अनुभूतियों का व्यक्त स्वरूप है परन्तु इस रूप में वह भाव से पृथक् नहीं है, वरन् उसकी अरूपता को रूपायित कर प्रेषणीय बना देने का एक साधन है। बिम्ब के इस व्यक्त रूप के अभाव में भाव और अनुभूति की सत्ता नहीं रह सकती। दोनों ही बिम्बगत भाव व बिम्बगत भाषा—एक दूसरे के अन्योन्याश्रित हैं। कवि को भावात्मक अभिव्यक्ति का बिम्ब के अतिरिक्त अन्य कोई माध्यम खोजना ही व्यर्थ है। इस प्रसंग में सहज ही अभिव्यंजना के समर्थक क्रोचे की मान्यता का स्मरण हो आता है जिसमें व्यंजक उक्ति और व्यंग्य भाव में कोई भेद नहीं माना था। अभिव्यंजना का एक ही अविभाज्य रूप माना गया था वही भाव था और वही भाषा। बिम्ब अभिव्यंजना का ऐसा ही रूप है। उसमें बिम्बगत भाव और बिम्बगत भाषा की सत्ता अपृथक् है। भाषा में प्रकट होने वाला बिम्ब भाव का दृश्य स्वरूप है। इस रूप में बिम्ब के अन्तर्गत भाव और भाषा दो पृथक् सत्ताएँ नहीं हैं वरन् एक ही वस्तु के दो धरातल हैं।

भाषा में वैयक्तिकता का प्राधान्य रहता है। प्रत्येक व्यक्ति और प्रत्येक वर्ग या जाति की भाषा भिन्न होती है। काव्य के अन्तर्गत यह वैयक्तिकता शैली (स्टाइल) कहलाती है। भाषा के निर्माण ग्रहण प्रसार और विकास में मनुष्य के मस्तिष्क की सभी प्रक्रिया काम करती है। क्योंकि विभिन्न व्यक्तियों की इन्द्रियों की शक्ति भिन्न भिन्न होती है अतः उनके मस्तिष्क पर वस्तु का जो प्रत्यक्षीकरण होता है वह भी भिन्न होता है। इस प्रकार शारीरिक एवं मानसिक गठन की भिन्नता के कारण बाह्य वस्तुओं की अनुभूति भी जो बिम्ब कल्पना स्मृति, भावना आदि के रूप में अभिव्यक्त होती है भिन्न ही रहती है।[3] भाषा की वैयक्तिक भिन्नता के रूप में देखा जाय तो हम बिम्ब विधान को कवि की विशिष्ट शैली कह सकते हैं। परन्तु शैली की भाषा से भिन्न कोई पृथक् सत्ता नहीं है। विशिष्टता से संयुक्त होने पर भाषा ही शैली बन जाती है। बिम्ब भी कवि की शैली है। कवि या कलाकार के लिए बिम्ब उतना आवश्यक नहीं जितनी भाषा क्योंकि कवि की अभिव्यक्ति चित्रकाव्य में भी हो

१ [illegible] के रूप में अभिव्यंजना विधान : डा० [illegible] गुप्त, पृ० ७०
२ गिरा अरथ जल बीचि सम कहियत भिन्न न भिन्न —तुलसी
३ [illegible] : डा० रामलाल सिंह, पृ० १६०

सकती है यमक और अनुप्रास की नीरस तुकबंदियों में भी हो सकती है और जटिल और गूढ़ दर्शन या रहस्य की अशक्त अभिव्यक्तियों में भी। परन्तु इसे श्रेष्ठ काव्य की संज्ञा नहीं दी जा सकती। बिंब रूप में प्रकट होने पर ही भाव और भाषा का सफल स्वरूप सामने आता है। शैली की दृष्टि से बिम्ब व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रकाशक माना जा सकता है। भिन्न भिन्न रुचियाँ जिस प्रकार भिन्न शैलियों का निर्माण करती हैं उसी प्रकार रुचि की विभिन्नता भिन्न भिन्न बिम्बों का ग्रहण कराती है। बिंब विधान स्पष्टतः शैली का एक रूप है। हिन्दी के सभी श्रेष्ठ कवियों में बिम्ब की शैली अनेक विविधताओं में पाई जाती है।

बिम्ब भाषा का एक विशिष्ट प्रयोग है और काव्य में भाषा भाव की समानाधिकारिणी है। बिंब भाषा और भाव दोनों को सम्यक रूप से प्रस्तुत करने के कारण काव्य में विशेष महत्व का स्थान रखता है। बिम्ब भाषा का एक प्रकार है यह तो स्पष्ट है ही परन्तु बिंबात्मक भाषा को क्या काव्य की साधारण भाषा (अभिधात्मक प्रतीकात्मक या भाव अलंकार प्रधान) से पृथक किया जा सकता है? बिम्ब भाषा के प्रयोग में क्या सहयोग देता है? या बिम्ब आने पर भाषा का रूप कहां तक परिवर्तित हो जाता है?—ये कुछ मूल सूत्र प्रश्न हैं जो बिम्ब और भाषा के संबंध में विवेचन करने पर सहज ही हमारे सामने आ जाते हैं। आगे इन्हीं प्रश्नों के समाधान का कुछ प्रयास किया जायगा। बिंबात्मक भाषा और काव्यगत भाषा की समानता भिन्नता और उसके अन्य रूपों—अलंकारात्मक व प्रतीकात्मक का अध्ययन पहले ही 'प्रतीक' और 'उपमान' के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहां क्रमशः बिंब से भाषा के रूप भाषा की विशिष्टता और भाषा में योगदान को देखा जायगा।

(१) रूपकात्मकता

बिम्ब के द्वारा भाषा के स्वरूप में सबसे बड़ा परिवर्तन यही होता है वह साधारण अभिधा प्रधान भाषा न रहकर रूपक प्रधान भाषा हो जाती है। इसमें सादृश्य या साधर्म्य आदि गुण व्यक्त या अव्यक्त रूप से प्रकट होते रहते हैं। लुईस ने इसी कारण बिम्ब की परिभाषा में रूपक पर बल दिया है।[1] वह कहता है कि हर साहित्यिक बिम्ब कुछ न कुछ अर्थों में अवश्य रूपकात्मक होता है।[2] रूपकात्मक होने का सबसे बड़ा कारण बिम्ब में भाव को कम से कम शब्दों में प्रकट करने का प्रयास है। जहां संक्षिप्त होने का प्रयत्न किया जाता है वहां रूपक का आश्रय अवश्य ही लेना पड़ता है।[3] बिम्ब में संक्षिप्तता के कारण—भावों को कम से कम शब्दों में

१ पोयटिक इमेज : सी डे लेविस पृ २२

२ Every poetic image, therefore is to some degree metaphorical —Poetic Image, p. 18

२ Try to be precise and you are bound to be metaphorical. Middleton Murry—quoted in Poetic Image p. 23

प्रकट करने के कारण रूपकात्मकता स्वतः ही आ जाती है। भाषा के रूपकात्मक होने का अन्य कारण है आरोपण। आरोपण द्वारा ही अमूर्त्त वस्तु को बिंब रूपायित करता है। इसी से भाषा की रूपकात्मकता बिंब का आवश्यक तत्त्व प्रतीत होती है। मानवीकरण जो बिंब का एक अष्ठ स्वरूप माना जाता है, को लीजिए वह अवश्य ही रूपक पर आश्रित रहता है। प्रसाद निराला पंत की कितनी सुन्दर और बिंब पूर्ण कविताएँ इसी का समर्थन करती प्रतीत होती हैं। जूही की कली नौका विहार, छाया एक तारा बीती विभावरी सन्ध्या आदि अनेक छायावादी मानवीकरण प्रधान कविताएं रूपकात्मकता का ही पोषण करती हैं। मूल में उनके वही सादृश्य या साधर्म्य अथवा आरोपण वृत्ति रहती है जो रूपक का आधार है। आधुनिक प्रयोगवादी कवि अज्ञेय की कविता यहां द्रष्टव्य है

(१) धूप धूप भर
धूप कलक
यह चूने नभ में गई बिखर
चौंधाया
बीन रहा है
उसे अकेला एक कुरर।[1]

(२) 'पति सेवा रत सांझ
उचकता देख पराया चाँद
लजा कर ओट हो गई।[2]

यहां सूर्य और सांझ का मानवीकरण किया गया है। सूर्य कलक बीनने वाला एक कुरर है और सांझ पति सेवा रत लज्जाशीला रमणी के रूप में हमारे सामने आती है। बल्कि दोनों ही कविताओं में मानवी के रूप ही अधिक दृष्टिगोचर होते हैं। प्राकृतिक दृश्य दब से गये हैं। मानवीकरण में अप्रस्तुत ही प्रधान हो जाता है। यहां मानवीकरण पूर्णतः रूपक पर आश्रित है यहां मानवीय स्वरूपों को प्राकृतिक दृश्यों पर आरोपित किया गया है। बिम्ब की दृष्टि से इसमें पूर्ण दृश्यात्मक संवेदना है और रूपक भी है। यहां बिंब की रूपकात्मकता का पूर्ण प्रत्यक्षीकरण हो जाता है।

बिंब के सिद्धान्त पक्ष से परिचित इन आधुनिक कवियों को छोड़कर प्राचीन कवियों के बिंबों का परीक्षण किया जाय तो उनमें भी रूपकात्मकता है। वरन् रूपकात्मकता वहाँ साम्य की प्रधान वृत्ति के रूप में स्थित है और अनेक रूपक बिंब निर्माण में सहयोग देते हैं। रूपक अलंकार न भी हो तो भी आरोपण वृत्ति प्रधान है। उदाहरण के लिए जायसी का एक रूपकात्मक बिंब लीजिए

---

[1] अरी ओ करुणा प्रभामय अज्ञेय पृ ६४

[2] एलो की माला ? पत्री पृ १०

कामर पुतरी जैस सरीरा, पवन उड़ाइ परा मंत्र मीरा।
पहुंहि झकोरि लहरि अममीजी तबहिं रूप रंग नाही भीजी।

जहाँ उपमा अलंकार में कवि बिंब प्रस्तुत करता है जो रूपक अलंकार सीमा रेखाओं के भीतर न आ पाने के उपरान्त भी मूल में सादृश्य और साधर्म्य प्रधानता के कारण रूपकात्मक कहा जायगा। बह कर आई हुई पद्मावती की निश्च लता 'कामर पुतरी' से मूर्तित हो जाती है। रूप रंग नाही भीजी शब्द उसके प्रेम अनन्यता के व्यंजक हैं। रूप सादृश्य इस बिंब का मूल आधार है जो बिंबगत रूपक त्मकता को प्रमाणित करता है।

उपरोक्त सभी उदाहरणों में रूपकात्मकता बड़ी स्पष्ट है। आरोपित रूप पृ से ही समझा सकता है, क्योंकि काव्य में प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों की स्पष्ट पृथक पृथक सत्ता है। परन्तु जहाँ प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का अंतर इतना स्पष्ट नहीं हो वहाँ भी मूल में रूपक की भावना या आरोपण की प्रवृत्ति रहती है। उदाहरण लिए प्रसाद की कुछ पंक्तियां लीजिये

पवन पी रहा था शब्दों को
  निर्जनता की उखड़ी सांस।
टकराती थी दीन प्रति ध्वनि।
  बनी हिम शिलाओं के पास।[1]
मृत्यु सदृश शीतल निराश ही
  आलिंगन पाती थी दृष्टि
परम व्योम से भौतिक कण सी
  घनी कुहासों की थी वृष्टि।

इस वर्णन में प्रस्तुत अप्रस्तुत का कोई स्पष्ट भेद दृष्टिगोचर नहीं होता पर रूपकात्मकता का आभास यहाँ भी मिला गया है। निर्जनता के वर्णन में शब्दों को पीन सांस उखड़ना आलिंगन पाना व्यापार पवन निर्जनता व दृष्टि के साथ जोड़े हैं जो कि इनका धर्म नहीं है मानवीय धर्म है। मानवीय धर्मों को यहाँ तत्त्वों पर आरोपित कर दिया गया है जिससे बिम्ब की सृष्टि हुई है व बिम्बात्म भाषा की रूपकात्मकता भी प्रतिपादित हुई है। बिंब यद्यपि रूपकात्मकता के अभा में भी हो सकते हैं पर रूपकात्मकता एक सीमा तक बिंब के निर्माण में बड़ा सहयो देती है।

रूपकात्मकता के इस विवेचन में एक बात उल्लेखनीय है कि रूपक और रूप कात्मकता एक ही वस्तु नहीं है। रूपक मात्र एक अलंकार है और रूपकात्मकता आरोपण करने की प्रवृत्ति। साम्य होते हुए भी दोनों में जब भेद है जिसे ऊपर स्पष्ट

---

१ कामायनी : प्रसाद पृ० १६
२ कामायनी प्रसाद, पृ० १

किया जा चुका है। बिम्ब के अन्तर्गत रूपक का अर्थ व्यापक रूप में लिया जाता है रूपक अलंकार के संकुचित अर्थ में नहीं। यहां रूपक का तात्पर्य वही अर्थ है जो अंग्रेजी में मेटाफर का या व्यापक रूप में व्यवहृत 'रूपक' शब्द का। इस प्रकार भी पिछले अध्यायों में विस्तार से प्रकट किया जा चुका है अतः यहां यह चर्चा अनावश्यक होगी।

(२) चमत्कारहीनता

बिम्बगत भाषा का एक प्रमुख लक्षण या गुण है चमत्कार का अभाव। भाषा की चमत्कारिकता और बिम्ब में विरोध है। एक की उपस्थिति पर दूसरे का अस्तित्व संदिग्ध है। जहां कवि बुद्धिबल से पाठक को चमत्कृत करने का प्रयत्न करता है वहां बिम्बों का प्रायः अभाव रहता है। बिम्ब भाव के साथ स्वतः ही हृदय से निसृत होने वाली भाव की सहज अभिव्यक्ति है। अतः जहां कवि बुद्धि से काव्य को बाह्य रूप रंग देकर सुन्दर बनाने का यत्न करता है वहां बिम्ब का अस्तित्व सर्वथा असंभव है। उदाहरण के लिए अतिशयोक्ति प्रधान उक्तियों को लीजिये जहां भाव का उपकारक कथन कम होता है, बुद्धि को चमत्कृत करने का प्रयत्न अधिक होता है अतः बिम्ब का अभाव रहता है। उदाहरणार्थ

आड़े दै आले बसन जाड़े हू की रात।
साहस कै कै नेह बस सखी सबै ढिग जात।[1]
व भूषन भार सँभारिहै क्यों यह तन सुकुमार
सूधे पाय न धर परत सोभा ही के भार।[2]

यहां प्रथम दोहे में विरह की दशा का कोई चित्र सामने नहीं आता न ही विरह व्यथा की समुचित व्यंजना हो पाती है। कवि ने ताप के कारण सखियों का गीले वस्त्र पहनकर जाना प्रकट किया है जो केवल चमत्कार का सृजन करता है काव्य को हास्यास्पद ही बनाता है, कवि की उत्कृष्ट कल्पना का कोई प्रमाण प्रस्तुत नहीं करता। कवि की यह उक्ति भाव से सामंजस्य न कर पाने के कारण सतही सी लगती है। कवि के हृदय से इसका कोई सम्बन्ध नहीं दिखाई देता। कवि ने संभावना से काम लिया है। यहां अतिशयोक्ति जनित चमत्कार के कारण बिम्ब का अभाव है। दूसरे दोहे में व्यंजना से सुकुमारता का कुछ आभास तो हो जाता है पर वह धूमिल ही रहता है। उपमान द्वारा यह सुकुमारता चित्रित हो सकती थी पर कवि का ध्यान इस ओर गया ही नहीं है। वह सौन्दर्य को पत्थर के बोझ की तरह समझकर नायिका के ठीक से पाव भी न रख पाने की चमत्कारिक कल्पना ही कर सका है। जिससे बिम्बगत कल्पना दृष्टि का अभाव प्रकट होता है। यह कवि के बुद्धि वश न होने वाली चमत्कारिकता के प्रभाव का ही परिणाम है।

---

१ बिहारी रत्नाकर दो० १८३

२ वही दो० ३११

अतिशयोक्ति के अतिरिक्त अन्य शब्दालंकारों में जहां कवि युक्ति से दो-दो तीन तीन अर्थ देने का प्रयत्न करता है वहां सदैव ही बिम्ब की हानि होती है। यमक अनुप्रास श्लेष आदि शब्दालंकार है। कवि के हृदयगत भावों से इनका विशेष सम्बन्ध नहीं होता। ऐसे स्थलों पर कवि अपने शब्द कोष के ज्ञान या भाषाधिकार को प्रकट करने के लिये व्यग्र रहता है। इस व्यग्रता में अक्सर वह भाव की हत्या कर देता है। जहां यमक आदि के चमत्कार भाव व्यंजना में सहायता करते हैं वहां भी श्रेष्ठ बिम्बों का निर्माण नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए केशव को लीजिये

विधि के समान हैं बिमानी कृत राजहंस।
बिबिध बिबुध युत मेरु सो अचल है।
दीपति दीपति अति सातों दीप दीपियतु।
दूसरो दिलीप सो सुदक्षिणा को बल है।
सागर उजागर को बहु वाहिनी को पति।
छनदान-प्रिय किधौं सूरज अमल है।
सब विधि समरथ राजै राजा दशरथ।
भागीरथ पथ गामी गंगा कैसो जल है।[1]

वस्तुतः कवि यहां अनुप्रास यमक श्लेष आदि का चमत्कार दिखाने में ही व्यस्त है। इस कारण उपमा उत्प्रेक्षा आदि के होते हुए भी वह रूप रंग से परिपूर्ण कोई बिम्ब नहीं दे पाया है। केशव की चमत्कार प्रियता का यह उदाहरण स्पष्ट कर देता है कि चमत्कार में बिम्ब का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। रीतिकालीन कवियों में ऐसे उदाहरण पर्याप्त देखे जा सकते हैं। चमत्कार का काव्य में एक रूप और है वह है वस्तुओं के नाम परिगणन की शैली मे। इस शैली के मूल में संभवतः कवि की ज्ञान या बुद्धि (नालेज) के प्रकाशन की इच्छा रहती है। पाठकों को वह दिखाना चाहता है कि उसका ज्ञान कितना विस्तृत है पर प्रसंग न होने से ऐसा नहीं कर पाता। विस्तारपूर्वक ज्ञान वर्णन से तो प्रसंग में अंतर आ जायगा इस कारण वह तद्विषयक ज्ञान की एक सूची मात्र दे देता है। अर्थात वस्तुओं का ब्योरेवार वर्णन न करके उनका नाम परिगणन कर देता है। इससे ही संभवतः पाठकों को उसके ज्ञान का कुछ आभास हो सके। ऐसी दशा में कवि भाव और विभोर होकर रचना में प्रवृत्त नहीं होता वह अपने ज्ञान का प्रकाशन कर पाठकों पर अपना प्रभाव डालना चाहता है। ऐसी रचनाओं में भी भाव पक्ष शून्य होने से बिम्ब का अभाव रहता है। जैसे जायसी के भोज वर्णन आदि में है।

यहां कवि का हृदय संवेदनाओं से शून्य है। भोज सामग्री में जायसी की रुचि बिल्कुल नहीं थी क्योंकि उनमें स्वाद प्रतिमाओं का अभाव है पर यहां अपने ज्ञान

१ रामचन्द्रिका केशव, पृ २१

प्रदर्शन के लिए कवि ने बड़े विस्तार से वर्णन किया है। यहाँ पशु-पक्षियों के प्रति कोई विचार कवि के हृदय में नहीं आया है वह केवल अपने ज्ञान का प्रसार प्रदर्शित करने के लिए उनके नाम गिना रहा है। ऐसे स्थलों पर रागात्मक शून्यता के कारण बिम्ब का सर्जन नहीं हो पाता। चमत्कार प्रदर्शन मुख्य लक्ष्य होने के कारण ऐसे वर्णन श्रेष्ठ काव्य की श्रेणी में नहीं आते। चमत्कार का एक और रूप मुद्रालंकार में भी दिखाई देता है। यहाँ तो कवि स्पष्ट रूप से नामों की गणना करता चलता है पर यहाँ वह प्रस्तुत वर्णन के व्याज से वस्तुओं के नामों और उनके नाना भेदों को प्रस्तुत करता है। इसका उदाहरण भी पद्मावत से लीजिए

पनिघट का सुरंग का चूना जेहि तन नेहु दगध तेहि दूना।
हौं तुम्ह नेह पियर भा पानू, पेड़ी हुति सुनि रासि बखानू।
सुनि तुम्हार संसार बड़ौना, जोग लीन्ह तन कीन्ह गड़ौना।
कर अंस कियरी लै बैरागी नेवती भयउ बिरह की आगी।
फेरि फेरि तन कीन्ह भु जौना औटि रकत रंग हिरदै औना।
सूखि सुपारी भा मन मारा, सिर करौत जनु करवत सारा।
हाड़ चून भै बिरह जो दहा सो पै जानि दगधि इमि सहा।

यहाँ प्रस्तुत वर्णन रत्नसेन और पद्मावती की प्रेमपूर्ण वार्ता का है परन्तु कवि 'तुम्ह नेह पियर भा पानू' पद में 'पान' शब्द के आ जाने पर पान विषयक अपने ज्ञान का प्रदर्शित करने का लोभ न छोड़ सका है। यहाँ मुद्रा अलंकार के रूप में उसने अपने ज्ञान का प्रदर्शन कर पाठक को चमत्कृत करने का प्रयत्न किया है। ऐसे स्थल केवल चमत्कार के पोषक होने के कारण बिम्ब नहीं बन पाए हैं।

वस्तुतः बिम्ब वर्णन की एक प्रणाली है। जहाँ कवि अलंकार आदि चमत्कार के किसी माध्यम का आश्रय लेता है, वहाँ भावोद्बोधन की क्षमता न होने के कारण बिम्बात्मक वर्णन नहीं हो पाते हैं। बिम्ब का कोई भी उदाहरण इसको स्पष्ट कर सकता है। बिम्ब अभिव्यक्ति की चमत्कार विहीन पद्धति है, उसका संबंध बुद्धि से कम, हृदय से अधिक है। भाषा की बाह्य सज्जा से कम उसके अन्तर से अधिक है। चमत्कार से बिम्ब का पूर्ण विरोध है। उदाहरण के लिए जायसी का ही एक बिम्ब उद्धृत किया जाता है

नागमती कहुँ अगम जनावा, गै सो तपनि बरखा रितु आवा।
अही जो मई नागिनि जसि तथा पिउ पाई तन मेंहु भै सवा।
तन दुख जनु कैंचुल सा छूटी, भनि निसरी जेहु बीर बहूटी।

यहाँ नागमती की उपमा नागिन से दी गई है। प्रिय के आगमन पर उसका दुख उसी प्रकार विलग हो जाता है जैसे साँप के ऊपर से केंचुल उतर जाती है। और वह बीर बहूटी की भाँति नवीन हो जाती है मानो नया जन्म पाया है। यहाँ नागमती

के लिए नागिन का बिम्ब देने से एक ओर तो उसके रूपक योजना के अनुसार दिए गए अर्थ की व्यंजना हो जाती है, दूसरे केंचुल उतर जाने का पूरा चित्र भी दृश्य बन जाता है। दुख छूट जाने और सुख के आ जाने जैसे अमूर्त भाव भी इस बिम्ब में मूर्तित होकर आए हैं। कवि का यह बिम्ब उसके हृदय से निसृत हुआ है चमत्कार के प्रति कवि का तनिक मोह भी प्रदर्शित हुआ है। यद्यपि यमक अलंकार है पर कवि साध्य अलंकार नहीं वरन बिंब है। अपनी व्यंजकता एवं चमत्कारहीनता के कारण इस बिंब की गणना जायसी के उत्कृष्ट बिम्बों में की जा सकती है।

समष्टि में कहा जा सकता है कि बिम्ब का भाषा को चमत्कारिक न होने देने के रूप में काव्य में एक बड़ा योगदान है। क्योंकि चमत्कार काव्य के निम्न स्तर का लक्षण है बिम्ब भाषा को चमत्कार की प्रवृत्ति से हटाकर सहज और अनुभवगम्य बनाती है।

(३) व्यंजकता (Suggestiveness)

बिम्ब से काव्य भाषा की व्यंजकता की शक्ति में वृद्धि होती है। यद्यपि बिम्ब और व्यंजना एक नहीं हैं परन्तु उनका संबंध बड़ी निकट का है। व्यंजना सदैव बिम्बात्मक नहीं होती परन्तु बिम्ब सदैव व्यंजनात्मक होते हैं। व्यंजना के लिए यद्यपि वस्तु का दृश्य बनकर प्रस्तुत होना आवश्यक नहीं है उसके लिए दृश्यता से अधिक सांकेतिकता आवश्यक है तथापि व्यंजना के लिए बिम्ब के माध्यम का बराबर प्रयोग होता है। जहाँ मुहावरे या लोकोक्ति के रूप में व्यंजना होती है वहाँ अधिकतर वर्णन बिम्ब प्रधान होता है। उदाहरण के लिए जायसी का एक बिम्ब प्रस्तुत है

मैं निसि बनि जस ससि परगसी राजैं देखि पुहुमि फिर बसी।

यहाँ मुहावरे के रूप में प्रयुक्त बिंब अपूर्व व्यंजकता से समन्वित है। 'पुहुमि का बसना' निरंग पद्मावत के पुनः सौन्दर्य युक्त हो जाने को प्रकट करता है। साथ ही राजा की भोगपूर्ण आश्चर्य मिश्रित मनःस्थिति या दृष्टि का प्रकाशन है। इस प्रकार यह बिंब एक साथ ही सौन्दर्य परिस्थिति और चरित्र की व्यंजना करता है और बिंब की व्यंजना का श्रेष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करता है। यह उल्लेखनीय है कि यहाँ व्यंजना का अर्थ शब्द शक्ति से नहीं वरन् व्यंजकता (सजेस्टिवनेस) से लिया गया है। व्यंजना शब्द शक्ति के रूप में बिम्ब से पर्याप्त दूर है पर व्यंजकता बिंब का ही एक गुण है। यद्यपि व्यंजना (शब्द शक्ति) का समस्त क्षेत्र बिंब में नहीं आ सकता पर बिंब भी व्यंजकता का अर्थ लें तो—व्यंजना करने में सहायक होते हैं यह निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है। बिंब व्यंजना के समस्त क्षेत्र का नहीं छूते पर व्यंजना बिंब का एक अनिवार्य गुण है इस कारण व्यंजना बिंब के समस्त क्षेत्र को छूती है। बिम्ब दृश्यता पर आधारित रहता है और व्यंजना सांकेतिकता पर, दोनों के क्षेत्र में पर्याप्त अन्तर है। बिंबहीन व्यंजना हो सकती है जैसे :

रोज करौं गृहकाज दिन बीतत याही भाँय ।
हठि सहौ घन पथ एक निठिमिहारे साँझ ।[1]

अर्थात् दिन तो काम काज में ही निकल जाता है (अवकाश ही नहीं मिलता) कठिनाई से सन्ध्या को थोड़ा अवकाश पा जाती हूँ। (अतः सन्ध्या को आ सकते हो) नायिका इस प्रकार उपपति को संध्या को आने के लिये संकेत करती है। यहाँ 'अस्य संनिधिर्वैरस्योप्स्यानावाष्यमनवा' व्यंजना है परन्तु बिम्बात्मक वर्णन नहीं है। बिम्बों के अनेक उदाहरण इस प्रकार की सांकेतिकता से दूर मिल सकते हैं। जहाँ प्रकृति का आलंबन रूप में बिम्बात्मक वर्णन होता है वहाँ भी इस प्रकार की सांकेतिकता अथवा व्यंजना का अभाव रहता है।

किसी को सोने के सुख साज
मिल गए यदि ऋण भी कुछ आज
चुका लेता दुख कल ही व्याज
काल को नहीं किसी की लाज ।
विपुल मणि रत्नों का छवि जाल
इन्द्रधनु की सी छटा विशाल
विभव की विद्युत ज्वाल,
चमक छिप जाती है तत्काल ।
मोतियों जड़ी ओस की डार
हिला जाता चुपचाप बयार ।[2]

(२) उजरनि बसी है हमारी अँखियान देखो,
सुबस सुदेस जहाँ भावते बसत हौ[3]

प्रथम उद्धरण में संसार की असारता उत्थान और पतन के अनेक बिम्बों द्वारा व्यंजित है। वाचक शब्द यहां कोई नहीं है परन्तु जीवन और जगत के व्यापारों की अस्थिरता संसार की क्षणभंगुरता का सन्देश देती है। जहाँ व्यंजना की दृष्टि से यह उद्धरण श्रेष्ठ है वहाँ बिम्ब दृष्टि से भी यह वर्णन उत्कृष्ट है। रत्नों एवं वर्णों का इसमें सुन्दर समावेश है। सोने के सुख साजों के समाप्त होने मणिरत्नों के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य के बिखर जाने वैभव की विद्युत ज्वाला की क्षणिक चमक होने और ओस भरी डार के अचानक झर जाने के बिम्ब संसार की नश्वरता को व्यंजित करते हैं। मोतियों भरी ओस की डार का बिम्ब जीवन के समृद्ध सौन्दर्य और काल के अचानक निष्ठुर आक्रमण के निमित्त सुन्दर प्रतीक है। पूरा व्यापार दृश्य है और सौन्दर्य समृद्धि और यौवन की अस्थिरता का पूर्ण संकेत भी देता है। यह पूरा वर्णन व्यंजक भी है और बिम्ब पूर्ण भी।

१ [illegible]
२. पल्लव : पंत
३ घनानन्द ग्रन्थावली

द्वितीय उद्धरण घनानंद से है। यहाँ वियोगी हृदय की शून्यता व्यंग्य है, वियोगी का हृदय इतना सूना अथवा उजड़ा हुआ है मानो उजड़न ही आकर बस गई हो। उजड़न के बसने में असंगति है जिसे हम लक्षणा द्वारा पूर्ण करते हैं। यहाँ उजड़न यद्यपि अरूप भाव है पर उसके बसने से चित्रात्मकता आ गई है। प्रसाद के झंझा झकोर गर्जन के बस जाने का सा भाव यहाँ भी आया है। उजड़ने के बसने के बिंब में उदासी और सूनेपन की अनन्यता की अभिव्यक्ति है। यहाँ बिंब के साथ साथ व्यंजना की उत्कृष्टता भी दृष्टव्य है। आधुनिक कवियों में भी उत्कृष्ट बिम्ब योजना और व्यंजना साथ साथ मिलती है। आधुनिक कवि बिम्ब के महत्व से परिचित हैं और बिम्ब के सिद्धान्त पक्ष को भी उन्होंने खूब समझा है। इस कारण वह मध्यकालीन और प्राचीन कवियों से अधिक व्यंजक और बिम्ब की दृष्टि से पूर्ण वर्णन कर सके हैं। उदाहरण के लिए निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं

प्यार अगर थामता न पथ में उँगली इस बीमार उमर की।
हर पीड़ा वेश्या बन जाती हर आँसू आवारा होता।[1]

यहाँ प्रेम की जीवन में प्रधानता को कवि व्यंजित करना चाहता है प्रेम के अभाव में जीवन का अस्तित्व संदिग्ध है और पीड़ित हृदय के लिये तो वही माध्यम है उसके अभाव में जीवन की हर भावना हर विचार धारा व्यर्थ हो जाती है। कवि इस विचार को बिम्ब रूप में प्रस्तुत करता है। प्रथम पंक्ति बिम्ब का श्रेष्ठ उदाहरण है। प्यार का उँगली थामना और बीमार उम्र दोनों पद अमूर्त को मूर्तित कर देते हैं। यहाँ उम्र और प्रेम का मानवीकरण किया गया है। अरूप की यह रूपात्मकता नीरज की उत्कृष्ट कल्पना दृष्टि की परिचायक है। आधुनिक युग के अन्य कवियों ने भी बिम्ब के अपूर्व व्यंजक और सफल प्रयोग किये हैं।

व्यंजना जहाँ क्रियाओं—अनुभावों या हाव भावों के रूप में होती है वहाँ बिम्ब अवश्य ही विद्यमान रहता है। उदाहरण के लिए रत्नाकर का एक उद्धरण द्रष्टव्य है

दीन दसा देखि ब्रज बालिनि की ऊधव कौं,
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने सौ।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने सौ।
सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके,
भूले से भ्रमे से भभरे से भकुवाने सौ।
हौले से हले से हूल हूले से हिये में हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने सौ।[2]

१ नीड़ का संगीत भी : नीरज पृ० १२
२ उद्धव शतक : रत्नाकर, पृ० ११

यहाँ गोपियों के प्रेम की अनन्यता एवं गहराई को देखकर उद्धव की आश्चर्य विजड़ित अवस्था का वर्णन किया गया है। भूले भ्रमित कम्पित उद्वेलित विह्वल चकित आदि के दृश्य चित्रों द्वारा यह आश्चर्य की अनुभूति व्यंजित हुई है। कवि उद्धव की आश्चर्य दशा को शब्दों में न देकर रूप चित्रण द्वारा देता है। ये सब अनुभाव की श्रेणी में आते हैं। यहाँ प्रस्तुत समस्त अनुभाव बिम्बात्मक हैं साथ ही व्यंजना की क्षमता से भी पूर्ण हैं।

इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि व्यंजना और बिम्ब एक ही नहीं हैं परन्तु यह एक दूसरे के बहुत निकट हैं। व्यंजना सर्वत्र बिम्बात्मक हो यह बिलकुल आवश्यक नहीं है, परन्तु बिम्ब सर्वत्र व्यंजना करता है। व्यंजना बिम्ब का एक आवश्यक अंग है। बिम्ब व्यंजना के माध्यम से किसी अन्य भाव या वस्तु का संकेत देते हैं। इस तरह स्पष्ट है कि बिम्ब भाषा की व्यंजकता की क्षमता में वृद्धि करते हैं और काव्य को उत्कृष्ट बनाते हैं।

(४) सरसता

बिम्ब काव्य की सरसता में वृद्धि करता है। भाषा के लिए बिम्ब का यह एक बड़ा योगदान है। भाषा वही ग्राह्य एवं मार्मिक हो सकती है जो जन जीवन में परिचित हो उसमें अन्दर तक रमी हुई हो। कवि की भाषा ऐसी ही होती है। कवि अपने अरूप जटिल तथा अमूर्त भावों के लिए एक स्वरूप की योजना करता है जो उसके पाठकों का परिचित होता है उनके जीवन से ही उद्धृत किया हुआ होता है। बिम्ब का परिचित होना एक बड़ी आवश्यकता है, यह पहले ही—द्वितीय अध्याय में बताया जा चुका है। बिम्ब की परिचितता पाठकों के लिए काव्य को रमणीय बना देती है। पाठक बिम्ब रूप में उन्हीं वस्तुओं को देखता सुनता है जिनसे उसका पहले का रागात्मक संबंध होता है या सहज ही हो जाता है। ऐसे बिम्ब भाषा को सरस बना देते हैं। रागात्मकता के कारण भाषा सरस हो जाती है। उदाहरण के लिए एक बिम्ब प्रस्तुत है

किरी पान रितु आयन आयी जो सिंगार सब आरति साजी।
पंचम करी पदुमावती रानी होइ मालति जानहु बिगसानी।
तारा मँडर पहिरि भल चोला, पहिरे ससि जस नखत अमोला।

यहाँ चाँद और तारों का बिम्ब जो जायसी के सर्वाधिक प्रिय बिम्बों में एक है पद्मावती के अलौकिक रूप को रूपायित करने के लिए आया है। चन्द्र और तारों का हमारे जन्म से ही सम्भवतः हमारे साथ रागात्मक संबंध है मानवता के विकास के समय से ही यह हमारी श्रद्धा और प्रेम भावना के प्रतीक रहे हैं। काव्य में भी मधुरता और सौन्दर्य को प्रकट करने के कारण यह शीघ्र ही हृदयस्थ भावों को उद्दीप्त कर देते हैं और रस के संचार में सहायता देते हैं। परिचितता के कारण यह वर्णन को सरस भी बना देते हैं।

बिम्ब हीन वर्णन नीरस होता है । नाम परिगणन चमत्कार-प्रदर्शन आदि की शैलियाँ बिम्ब के अभाव के कारण कभी काव्य में रस का संचार नहीं कर पाती वस्तु का दृश्य वर्णन ही पाठक की रागात्मक वृत्ति को जाग्रत करता है और काव्य को सरस बनाता है । प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत रूप बिम्बों से कवि काव्य की रसता को रसमयता में परिवर्तित कर देता है । महाकाव्यों के परीक्षण से रूक्ष वर्णन के बीच बिम्बों से उद्भूत सरसता का अच्छा स्पष्टीकरण होता है । जायसी मे रत्नसेन बिदाई खंड देश यात्रा खंड आदि में पर्याप्त नीरसता है बिम्बों का भी नितान्त अभाव है पर वहीं एक दो रूपचित्रों के बाद देशयात्रा खंड मे कुछ बिम्ब ऐसे समर्थ है और काव्य में सरसता का विधान करते हैं इनसे पाठक पिछली नीरसता का प्रक्षालन सहज ही कर लेता है । जैसे राक्षस के रूप चित्रण में

लंका कर राकस अति कारा आवै चला मेघ अंधियारा ।
धरती पाँव सरग सिर जानहु सहसर बाहु ।
चाँद सुरुज नखतन्ह मंह अस दीसा जस राहु ।

यहाँ मेघ एवं राहु से उसका भयंकार सा वर्ण और भयानकता चित्रित हुई है। यह वर्णन नीरसता को दूर कर रस का संचार करते हैं ।

इसके अतिरिक्त ज्ञान धर्म और दर्शन आदि की उक्तियों से काव्य में जो नीरसता आ जाती है उसे भी कवि बिम्बमय वर्णन द्वारा सरस बनाता है । उदाहरण के लिए दार्शनिक तत्वो से परिपूर्ण कामायनी का रहस्य सर्ग देखा जा सकता है । यहाँ प्रसाद ने इच्छा ज्ञान और क्रिया की मीमांसा प्रस्तुत की है जो पूर्णतः दार्शनिकता से ओतप्रोत है परन्तु कवि की वर्णन की बिम्बात्मक शैली के कारण दार्शनिक तथ्यों का विवेचन भी सरस हो गया है । बिम्बो की रमणीयता के कारण ही पाठक रहस्य और दर्शन की जटिल गुत्थियों को समझ सकता है साथ ही रसता के प्रभाव में रस का अनुभव भी कर लेता है । इच्छा आदि का बिम्बात्मक एवं सरस वर्णन द्रष्टव्य है

यह देखो रागारुण है जो ऊषा के कंदुक सा सुन्दर,
छायामय कमनीय कलेवर भावमयी प्रतिमा का मंदिर ।
शब्द स्पर्श रस रूप गंध की पारदर्शिनी सुघड़ पुतलियाँ ।
चारो ओर नृत्य करती ज्यों रूपवती रंगीन तितलियाँ ।
इस कुसुमाकर के कानन के अरुण पराग पटल छाया में
इठलाती सोती जगती ये अपनी भाव भरी माया में ।
वह संगीतात्मक ध्वनि इनकी कोमल अंगड़ाई ही लेती
मादकता की लहर उठा कर अपना अम्बर तर कर देती ।[1]

यहाँ इच्छा लोक की कामनाओं को यद्यपि दर्शन के सदर्भ में प्रस्तुत किया गया है, परन्तु उनका बिम्ब रूप में मानवीकरण होने के कारण सरसता बराबर विद्य

१ कामायनी : प्रसाद पृ २२९-६१

मान रही है। पाठक वस्तु की रूक्षता को वर्णन की सरसता के कारण विस्मृत सा कर देता है। इसी प्रकार लज्जा का वर्णन मनोवैज्ञानिक भी करता है और प्रसाद जी ने किया है पर दोनों में बड़ा अन्तर है। यह अन्तर शैलीगत बिम्बात्मक का ही है बिम्ब की मधुरता के कारण वर्णन रहस्य अथवा बौद्धिक विचारों का तिक्त रस भी पाठक प्रसन्नता से पी जाता है। यहा लज्जा की मूर्तिमत्ता के कारण पाठक सरसता अनुभव करता है और उसमें मुग्ध हो जाता है अन्यथा स्वय भाव के विवेचन में सरसता नही होती। शुक्ल जी के चिन्तामणि में भाव वर्णन और प्रसाद के लज्जा वर्णन से यह अंतर एकदम स्पष्ट हो जाता है। स्पष्ट है कि काव्य में सरसता का सृजन करने में भी बिम्ब का बड़ा योग है। बिंब प्रस्तुत और अप्रस्तुतों की मधुरता से काव्य की विचारगत रूक्षता को कम करके उसको रसनीय बनाने में सहायक होता है। और इस प्रकार काव्य के शृंगार में सहायक होता है।

उपसंहार

इस समस्त विवेचन में स्पष्ट है कि भाव भाषा और बिम्ब वस्तुत पृथक पृथक सत्ताए नहीं है। वरन् एक दूसरे के अन्योन्याश्रित है। एक के अभाव में दूसरे की स्थिति की कल्पना ही नहीं की जा सकती। बिंब के लिए भाव और भाषा का संतुलन परम आवश्यक है संतुलन के न होने पर बिम्ब कभी सफल नहीं हो सकता। भावहीन बिम्ब की कल्पना असम्भव है और भाषा के माध्यम के अभाव म भी बिम्ब की स्थिति संदिग्ध है। वस्तुत बिंब कवि की कल्पना का एक रूप है जो कवि की भावात्मकता से जन्म लेता है और भाषा में प्रकट होता है। बिम्ब भाव और भाषा के मध्य निर्मित होता है उसका संबंध दोनों से समान महत्व का है। इस रूप में तीनों की एकता स्पष्ट है काव्य में भाव भाषा और बिम्ब एक ही सत्ता के तीन पृथक-पृथक दृष्टिकोणों से देखे गये रूप हैं।

अध्याय ५

जायसी की बिम्ब योजना

प्रत्येक कवि की अभिव्यक्ति उसके अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन है और मुख्यतः उसकी उपमाएं, रूपक अप्रस्तुत योजना आदि जो उसके अन्तर्मन को सीमा प्रकाशित न करके उसकी रुचियों सम्बन्धों आदि का संकेत देती हैं। ये उपमाएं उसके आचार—विचार, संस्कार, सिद्धान्त आदि को ही नहीं देती वरन् उसका मानोविश्लेषण (साइकोएनेलेसिस) भी प्रस्तुत करती हैं। जिन परिस्थितियों में कवि जन्मा जिन संस्कारों में वह पला व जिस समाज में वह बड़ा हुआ उस सबका प्रकटीकरण उसके बिम्बों द्वारा हो जाता है और इससे इतर हम उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी बिम्बों द्वारा कर सकते हैं उसकी रुचियों सम्बन्धों संवेदनाओं उसके आकर्षण के केन्द्रस्थल उसके हृदय पर गहरे पड़े प्रभावों उसके हृदय में उत्पन्न मनोमूर्तियों भावों आदि सबको केवल उसके बिम्बों द्वारा ही जाना जा सकता है क्योंकि कवि की कहानी या कवि के कथ्य में कहीं इनका स्थान नहीं होता। कवि एक विशिष्ट मनःस्थिति में विशिष्ट परिस्थिति में विशिष्ट स्थल पर एक साम्य उपमा या रूपक प्रस्तुत करता है यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाए तो यह कवि के तात्कालिक चिन्तन का प्रभाव नहीं होता वरन् यह उसके अन्तर्मन पर जमी पर्तों के पीछे से उसके किसी विशिष्ट सत्य का उद्घाटन होता है यह सत्य जो उसने जीवन में देखा सुना है या अनुभूत किया है। इस प्रकार एक उपमा या रूपक मात्र उपमा या रूपक ही नहीं है बल्कि कवि के व्यक्तित्व के प्रकाशक भी हैं। यही उसके भावों विचारों संस्कारों सिद्धान्तों के परिचायक हैं। उसकी रुचि सम्बन्धों और संवेदनाओं के तो एक मात्र उद्घाटन-कर्त्ता हैं। क्योंकि कवि उन्हीं वस्तुओं के बिम्ब उपमा साम्य आदि को देता है जिनसे वह जीवन में प्रभावित हुआ है। जिन्होंने उसे सामान्य से अधिक आकर्षित किया है या जिन्होंने उसके हृदय पर कोई गहरी छाप डाली है। उन्हें कवि सचेत तो स्मरण नहीं करता क्योंकि वह अपनी कथा कथानक आदि के बन्धनों से जकड़ा होता है फिर भी उसके अन्तर्मन में बैठे ये प्रभाव ये सम्मरण कवि के अनजाने ही अप्रस्तुत के रूप में काव्य में प्रकट हो जाते हैं।

साहित्य सर्जना में बिंब विधान का स्वरूप बहुत कुछ कवि या लेखक के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। रचना की शैली से ही व्यक्ति के विषय में अनुमान नहीं

किया जा सकता उसके बिम्ब विधान से भी किया जा सकता है। बाल्मीकि कालिदास और भवभूति का बिम्ब विधान उत्कृष्ट होते हुए भी विशिष्ट प्रकार का है। कबीर, सूर और तुलसीदास की रचनाओं में भी यही बात मिलती है। प्रसाद पन्त निराला और महादेवी का बिम्ब विधान उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने ढंग का है।[1]

जायसी का बिम्ब विधान भी जायसी के काव्य की भांति विशिष्ट प्रकार का है। जायसी को पूर्णतः समझने के लिए उसके बिम्ब बड़े उपयोगी हैं, वरन् कहा जा सकता है बिम्बों का अध्ययन जायसी के काव्य को समझने के लिए नितान्त आवश्यक है। उसके सिद्धान्त उसके भाव एवं विचार उसकी आस्थाएं, उसके संस्कार उसकी रुचियां—सब उसके बिम्बों से मुखरित हुई हैं। वस्तुतः बिम्ब दर्पण हैं जिनमें उसके हृदय का बुद्धि का उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्व का पूरा पूरा प्रतिबिम्ब पड़ा है।

जनु एहि दरपन मोरा हिया तेहि महं दरस देखावै पिया'

दर्पण के यह अत्यधिक प्रयोग वस्तुतः जायसी की शैली के परिचायक हैं। यह कवि के मन में दर्पण की भांति जगत को काव्य में प्रतिबिम्बित करने की प्रबल इच्छा के द्योतक हैं। वस्तुतः जायसी की वर्णन शैली का एक प्रमुख अंग है—बिंब। जायसी के आलोचकों ने भी इस बात को स्वीकार किया है। शुक्ल जी ने जायसी के कई बिंबों—जिनमें रस अर्थ गंध रूप आदि का सुन्दर प्रयोग है—की खूब प्रशंसा की है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने तो अपनी संजीवनी टीका की 'भूमिका' में जायसी की प्रतिभा की चर्चा करते हुए जायसी के बिंब पूर्ण वचनों का स्पष्ट उल्लेख किया है। डा. अग्रवाल लिखते हैं—

"जायसी अत्यन्त संवेदनशील कवि थे। संस्कृत के महाकवि बाण की भांति वे शब्दों में चित्र लिखने के धनी हैं—चित्र भी ऐसे जिनके पीछे अर्थों का अक्षरस्रोत बहता है। अलंकार, रस भाव आदि की काव्य समृद्धि का तो वहां कोई अन्त ही नहीं मिलता। किन्तु कवि की सहज प्रतिभा बाहरी वचनों में ही परिसमाप्त नहीं हो जाती। वह अलंकार-विधान के माध्यम से रस तक पहुंचने में सफल होती है। जायसी की चित्र ग्राहिणी शक्ति का उल्लेख करते हुए अनायास यद्यपि कवि वर्डसिय का स्मरण हो आता है। वह भी कल्पना कलित चित्र की पूरी रेखाओं को मानस में प्रत्यक्ष करते हुए उनका उतना ही अंश शब्द परिगृहीत करता था जो उसकी दृष्टि में चित्र के लिए न्यूनतम आवश्यक होता। फलतः बीच की कई कड़ियां छूट जाती हैं जिन्हें पाठक को अपनी ओर से स्फुट करना पड़ता है। ऐसे सैकड़ों उदाहरणों से जायसी की कविता भरी हुई है।[2] अन्य आलोचकों ने यद्यपि उनकी चित्रात्मक वर्णन की प्रमुख विशेषता का उल्लेख नहीं किया है पर उनके उपमा और रूपकों की सजीवता के वे प्रशंसक अवश्य हैं।

१ हिन्दी साहित्य कोश पृ० ५१८
२ मूल और संजीवनी टीका। डा. अग्रवाल पृ० ८

जायसी में स्वयं ऐसी उक्तियां कहीं-कहीं मिल जाती हैं जो उनको मूर्तिमय (चित्रमय) या बिम्बमय वर्णन का समर्थक बताती हैं। हीरामन तोते के द्वारा राजा रत्नसेन ने पद्मावती का रूप वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त और चित्रमय भाषा में सुना। उसने कहा

"सुठ सुरंग मूरति वह कही। चित मंह लागि चित्र होइ रही।
(९९ २)

यहां सुरंग मूर्ति (सुन्दर मूर्ति या सु+रंग मूर्ति) शब्द स्पष्टतः हीरामन के चित्रात्मक रूप-वर्णन के लिए ही प्रयुक्त हुए हैं। रूप-वर्णन जब समस्त ऐन्द्रिय विशेषताओं से संयुक्त होकर चित्र रूप में राजा के सम्मुख प्रस्तुत हुआ तभी उसने 'सुरंग मूरति' को राजा के नेत्रों के सम्मुख ला दिया। 'मूरति' शब्द बिम्बपूर्ण वर्णन के लिए प्रयुक्त हुआ है। यदि वर्णन बिम्बात्मक प्रणाली के द्वारा न होकर भाववाचक (ऐबस्ट्रैक्ट) नीरस पद्धति से हुआ होता तब जायसी उसके लिए मूर्ति शब्द का प्रयोग सम्भवतः न करते। तोते द्वारा पद्मावती का यह संक्षिप्त रूप वर्णन वस्तुतः है भी बिम्बात्मक। इन उक्तियों से कवि बिम्बपूर्ण वर्णन का समर्थक प्रतीत होता है। जायसी ने जहां भी रूप वर्णन किया है वहां अन्त में दूसरे पात्र के द्वारा उसका उल्लेख मूर्तिवत वर्णन के रूप में ही करवाया है। राघव चेतन के द्वारा पद्मावती-रूप-वर्णन के पश्चात कवि फिर कहता है

रानी जो बनि बरन सुनाई सुनत साह मुरछा गति आई।
जनु मूरति वह परगट भई दरस देखाइ तबहिं छपि गई॥
(४८९ १२४)

'जनु मूरति वह परगट भई' शब्द स्पष्ट करते हैं कि वर्णन में ऐसी चित्रात्मकता थी कि शाह ने मानो अपनी आंखों से पद्मावती के रूप को देख लिया वह मूर्ति राजा के समक्ष प्रकट हो गई पर जैसे ही चित्रात्मक वर्णन समाप्त हुआ मूर्ति तिरोहित हो गई। स्पष्टतः कवि चित्रात्मक शैली का पोषक और प्रयोक्ता दोनों ही है। यद्यपि उसके काव्य में चित्रात्मक वर्णन की महत्ता का कहीं स्पष्ट उल्लेख नहीं है कारण भी है कि कथा की घटना प्रधानता में इस प्रकार की कोई उक्ति कहना सम्भव ही नहीं था परन्तु उसके वर्णन और अप्रत्यक्ष रूप से कही गई यह सभी उक्तियां उसके समर्थन को प्रतिपादित करती हैं।

जायसी के भाव विचार, उनकी रुचि संवेदनाएं आदि सब उनके बिम्बों के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती हैं। प्रस्तुत अध्याय में हम उनकी रुचियों और संवेदनाओं आदि का बिम्ब द्वारा अध्ययन करेंगे। जायसी के बिम्बों के विषय जायसी की रुचि के परिचायक हैं। उनके रूप रंग गंध आदि के चित्र उनकी संवेदनाओं को स्पष्ट करते हैं।

जायसी में बिम्बों की संख्या बहुत अधिक है क्योंकि जायसी की अभिव्यक्ति प्रणाली का प्रमुख माध्यम बिम्ब ही है। जायसी में कुल ९१२ बिम्ब हैं। जिनमें

१३४ प्रकृति से २०१ मानव जीवन से अप्रस्तुत रूप में गृहीत किए गए हैं इनके अतिरिक्त १७ प्रस्तुत वर्णन १२ मानवीकरण और ११ मुहावरे और लोकोक्तियाँ हैं। इस प्रकार जायसी के काव्य का आधे से अधिक भाग बिम्बों से घिरा हुआ है।

जायसी के बिम्बों का वर्गीकरण

जायसी के बिम्बों को निम्नलिखित आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है

(१) उपादानवस्तु के आधार पर

जायसी के बिम्बों का विवेचन सर्वप्रथम उनके बिम्बों में गृहीत विषयों के आधार पर किया जा सकता है। अर्थात् जायसी जीवन और जगत् के किस-किस क्षेत्र से कितने बिम्ब प्रस्तुत करते हैं किस ओर उनकी रुचि अधिक है और उसमें भी वह वस्तु को कितने पहलुओं से देख पाये हैं। किस आकार किस व्यापार ने उन्हें सर्वाधिक आकृष्ट किया है और यह बिम्ब किस रूप में उनके जीवन और व्यक्तित्व के प्रकाशक हैं। उपादानवस्तुओं को हम मुख्यतः दो भागों में विभाजित कर सकते हैं—(१) प्रकृति और (२) जीवन।

(१) प्रकृति—जायसी में प्रकृति से गृहीत बिम्बों की संख्या सर्वाधिक है वह १३४ है। जायसी के इतने बिम्ब किसी और क्षेत्र से गृहीत नहीं हैं। यह बिम्ब कवि के जीवन में प्रकृति के स्थान उसके महत्व और उसके प्रति प्रेम के द्योतक हैं। जायसी ग्रन्थावली की भूमिका में शुक्ल जी ने जायसी के प्रकृति प्रेम की ओर आक्षेप करते हुए लिखा है "प्राकृतिक दृश्यों के साथ जायसी के हृदय का वैसा मेल नहीं जान पड़ता। मनुष्यों के शारीरिक सुख-दुख से उनके आराम और तकलीफ से उनका जहाँ तक सम्बन्ध होता है वहीं तक उनकी ओर उनका ध्यान जाता है।"[1] परन्तु शुक्ल जी का यह कथन युक्तियुक्त नहीं है। मानव के दुःख दर्द के अतिरिक्त भी प्रकृति के शुद्ध रूप और केवल प्रकृति के रूप के भी जायसी प्रेमी हैं। अगर ऐसा न होता तो सम्भवतः प्रकृति से गृहीत बिम्बों की संख्या जायसी में इतनी अधिक नहीं होती। प्रकृति के प्रस्तुत वर्णन में उन वर्णनों की नीरसता का कारण जायसी के हृदय में प्रकृति प्रेम का अभाव नहीं है वरन् उनकी बाह्य परिस्थितियाँ ही उसका एकमात्र कारण है। संस्कृत साहित्य का उनको कोई ज्ञान नहीं था और उसके पूर्वकालीन काव्य से भी वे नितान्त अनभिज्ञ थे वाल्मीकि और कालिदास के सुन्दर बिम्बों से उनका कोई परिचय नहीं था। उन्हें मुख्यतः उस समय की लोक-कथाओं में प्रचलित प्रेम कहानियाँ ही परम्परा के रूप में प्राप्त हुई थीं या फिर सूफी सन्तों और सिद्धों के विचार और सिद्धान्त जिनमें प्रकृति की रमणीयता भी आकर शुष्क हो गई थी। जायसी पर आते आते इन सबका ही प्रभाव पड़ा फलतः वह प्रस्तुत रूप से प्रकृति का रमणीय वर्णन कम कर सके कुछ उनको अपने प्राकृतिक ज्ञान का परिचय देने का लोभ भी सम्भवतः था जिसके कारण उन्होंने नाम परिगणनात्मक शैली को

1 जायसी ग्रंथावली भूमिका आचार्य शुक्ल पृ. १०७

अपनाया पर यह भी उन्होंने लोक-गाथाओं से विरासत के रूप में ही पायी थी। इसी कारण वह फल-फूल आदि की लम्बी चौड़ी सूची तो दे सके हैं पर उनका सजीव वर्णन कम ही दे सके हैं। संस्कृत साहित्य के ज्ञाता महाकवि तुलसी भी जब प्रकृति का वर्णन यूं करते हैं (वहाँ ऋष्यमूक का वर्णन अपेक्षित था पर कवि उसे नहीं दे पाता है।)

"आगे चले बहुरि रघुराई ऋष्यमूक पर्वत नियराई।

रामगमन पर भी मानसों के भाव का वर्णन है प्रकृति का वर्णन नहीं है जब कि वहां प्रकृति वर्णन के लिए पर्याप्त क्षेत्र था। तब संस्कृत की बिम्बात्मक प्रकृति वर्णन की परम्परा से अनभिज्ञ जायसी पर इस प्रकार का आक्षेप उचित नहीं है। जायसी में प्रकृति का सजीव वर्णन बहुत कम है उससे यह कदापि प्रमाणित नहीं *किया जा सकता कि प्राकृतिक दृश्यों के साथ जायसी के हृदय का मेल नहीं* था। प्रकृति के प्रति उनके प्रेम का वास्तविक परिचय उनके प्रकृति से गृहीत बिम्ब देते हैं। यह बिम्ब वस्तुतः उनके बंधन ग्रस्त महाकाव्यकार के हृदय में छिपे हुए प्रकृति के प्रति अपार प्रेम के परिचायक हैं। इसके अलावा प्रकृति वर्णन का नितान्त अभाव भी जायसी में नहीं है। ताल तालावों उपवनों सरोवरों आदि के उन्होंने सुन्दर वर्णन प्रस्तुत किये हैं। जायसी के यह प्राकृतिक बिम्ब अनेक क्षेत्रों से गृहीत हैं। सुविधा के लिए हम इनको ७ भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) जलीय
(२) प्रकाशीय
(३) वनस्पतीय
(४) पर्वतीय
(५) खनिज
(६) समय और मौसम
(७) जीव जन्तु — पशु पक्षी व जन्तु

(अ) जलीय बिम्ब—जायसी में जलीय बिम्बों की संख्या ५२ है। इनमें जायसी को सर्वाधिक आकृष्ट समुद्र ने किया है। समुद्र की गहराई अथाह जल राशि गम्भीरता उनके मस्तिष्क में बराबर आती रही है समुद्र की भयानक और अपार लहरें, उसके मौत के मुख के सदृश्य भंवर भी उनको बराबर आकर्षित करते रहे हैं।

जायसी ने समुद्र की उपमाएं पूरे पद्मावत में २४ की हैं, कुछ अखरावट में भी हैं। इनमें समुद्र का यह बिम्ब आध्यात्मिक अर्थों की पूर्ति भी कभी-कभी करता है जैसे

कया उदधि चितवौं पिय पाहां, देखो रतन सौं हिरदै माहां
(४०१ १)

यहां समुद्र जीवन और जगत् की अपारता है और रतन आत्मा या परमात्मा

का प्रतीक है इसी प्रकार

नैन कौड़िया हिया समुद्र गुरु सो तेहि महं जोति।
मन मरजिया न होइ परे हाथ न आव मोति॥

(२९१, ८१)

इसमें भी हृदय की अनन्त विस्तार एवं भावराशि के लिए समुद्र प्रयुक्त हुआ है। यही बिम्ब पद्मावत में दो बार आया है।

प्रेम की अनन्तता एवं गम्भीरता के कारण जायसी ने उसके लिए समुद्र का बिम्ब ही लिया है उन्होंने हृदय को प्रेम का अथाह समुद्र माना है जिसमें डूब कर मनुष्य का निस्तार असम्भव है वह क्षण-क्षण उस अथाह जल राशि में डूबता-उतरता रहता है :

भरा सो पेम समुद्र अपारा लहरहिं लहर होइ बिसमारा
बिरह भंवर होइ भंवरि देइ, खिन खिन जीव हिलोरहिं लेई
खिनहिं निसास बूड़ि जिउ जाई खिनहिं उठै निसरै बौराई
खिनहिं पीत मुख खिन होइ सेता खिनहिं चेत खिन होइ अचेता।

(११६, ११)

दुःख की अपार व्यथा ने भी समुद्र का ही रूप लिया है।

तरंगायित यौवन भी कवि को समुद्र की भांति प्रतीत हुआ है। यौवन समुद्र की हिलोरें देख-देख कर युती का हृदय डूब जाता है। प्रेम पीर जागृत होने पर पद्मावती स्वयं उस यौवन समुद्र में डूबने लगती है और उस अथाह समुद्र से पार लगाने वाले की प्रतीक्षा करती है बिल्कुल यही अवस्था विरह विदग्धा नागमती की है। यही बिम्ब कवि ने फिर लिया है

जलथल भरे अपूर सब गगन धरति मिलि एक,
धनि जोबन औगाह मैं दे बूड़त पिउ टेक।

(३४९ ८१)

अथाह जलराशि के अतिरिक्त समुद्र की बड़ी-बड़ी भयानक विनाशकारी तरंगें भी जायसी को आकृष्ट करती हैं। विनाशकारी अमूर्त सत्ता को समुद्र कहना बड़ा ही युक्तियुक्त है, विस्तार भयानकता विनाशकारकता सभी धर्मों की समानता उसमें है

कटक असूझ अलाउदी साही आवत कोइ न संभार ताहि।
उदधि समुद्र जैसे लहरैं देखे नैन देख मुख जाइ न लेखे।

(५२२ १२)

नैनों के लिए समुद्र की उपमा बराबर आई है। कवि ने समुद्री भंवरों का वर्णन भी नैन-तारों के रूप में किया है। नैन समुद्र हैं तारे भंवर जिसमें फंस कर प्रेमी हृदय डूबता ही जाता है

घुमर समुद्र घन गैन गुह मानिक भरे तरंग
आवत तीर जाहि फिरि काल भँवर तेहू संग ।

(१०१ ८ ६)

इस प्रकार समुद्र के उपमान में समुद्र की उदारता असमर्थता अथाहता, गम्भीरता तरंगायितता के धर्मों और उसकी अपार तरंगों और भयानक भंवरों के स्वरूप को लिया है और इसका प्रयोग क्रमशः जगत् हृदय प्रेम और स्नेह यौवन विनाशकारी सेना और नेत्र तारों के लिये किया है ।

सरोवर का रूपक जायसी के सर्वश्रेष्ठ रूपकों में से है। यहां कवि केवल गुणों के साम्य तक ही सीमित नहीं रहा है मूल प्रकृति (नेचर) तक भी कवि की दृष्टि पहुँची है। ग्रीष्म में सरोवर के पानी के सूख जाने पर उसकी मिट्टी चटक-चटक कर फटने का बिम्ब जायसी का अत्यन्त व्यंजनात्मक बिम्ब है। कवि नागमती की व्यथा को मूर्तित करने के लिए कहता है

सरवर हिया घटत नित जाई टूकि-टूकि होइ होइ बेहराई ।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दँवगरा मेरवहु एका ।

(३५४ १७)

'दीठि दवँगरा' 'बिहरत हिया' सचित्र शब्द हैं इतने सुन्दर रूपकात्मक बिम्ब संभवतः हिन्दी साहित्य में भी गिने चुने होंगे। यही बिम्ब पद्मावत में दो बार और आया है पर वहां केवल मग्न हृदय का ही रूप आया है उसका सुखात्मक पक्ष नहीं आया है।

हर्ष और प्रसन्नता भी सरोवर के ही रूप में आये हैं क्योंकि विरह की दीप्ताग्नि से वह सहज ही सूख जाते हैं और सरवर सूखने पर हंस मीन कंवल रूपी प्रसन्नता उल्लास समाप्त हो जाते हैं विरह की कठिन धूप दग्ध करने लगती है। सरोवर में कवि ने उसके ग्रीष्मकालीन रूप सूख-सूख कर मिट्टी के चटके तल और उसके ताप से सूख जाने के धर्म को लिया है और इन्हें विरहिणी रानी के मग्न हृदय और दुःख से सहज ही समाप्त हो जाने वाले हर्ष व प्रसन्नता के लिए प्रस्तुत किया है। सरोवर के यद्यपि सभी रूप इसमें नहीं आये हैं पर जो आये हैं वह समीचीन और बड़े मर्मस्पर्शी हैं। सरोवर से आध्यात्मिक व्यंजना भी हुई है

जस सरवर मँह पंकज देखा हिय म आहि करम सब देखा ।

(५ ४ १८)

जायसी की नदी की उपमाएं विशेष सुन्दर नहीं बन पाई हैं कारण कि इसमें यमुना गंगा सरस्वती आदि का उल्लेख अधिकतर रंग-वर्ण का सादृश्य दिखाने के लिए किया है गुण प्रभाव आदि का साम्य उनमें बिल्कुल नहीं है जहां गुण साम्य आया है वहां यह बिम्ब भी सुन्दर बन गये हैं। वेणी के लिए कवि यमुना की लहरों को देता है।

"लहरैं देइ जानु कालिंदी
फिरि फिरि भँवर भये चित फंदी ।
(४७० ९)

बाढ़ में चढ़ती नदी को जायसी ने कई बार लिया है उसकी उन्मत्त लहरें उसको बहुधा आकृष्ट करती हैं

जोबन भर भादौं जस गंगा
लहरैं देई समाई न अँग ।
(१७० ७)

यही बिंब दो बार फिर प्रयुक्त हुआ है और दोनों बार उन्मुक्त यौवन की सरसता तरंगायितता और उन्मत्तता के लिए आया है। नदी की केवल तरंगायितता और उन्मत्त लहरों के स्वरूप पर ही कवि की दृष्टि गई है उसने उसको नायिका की देही और उन्मत्त यौवन का स्वरूप प्रस्तुत करने के लिए लिया है।

इसके अतिरिक्त जायसी ने पंक जल सीप आदि के बिंब भी लिए हैं जो विशेष सुन्दर नहीं बन पड़े हैं। समष्टि में जलीय बिंबों में जायसी ने केवल समुद्र सरोवर और नदी को ही मुख्य रूप से लिया है। समुद्र और सरोवर के कई धर्मों और कई रूपों को ग्रहण किया है नदी के बिम्बों में विविधता का अभाव सा है।

(आ) आकाशी बिम्ब—जायसी के प्रकृति से गृहीत बिंबों में आकाशीय बिंबों का संख्या २०२) सबसे अधिक है। आकाश के सभी उपकरण सूर्य चन्द्र नक्षत्र बिजली बादल वर्षा पवन—सभी जायसी को प्रिय रहे हैं।

सूर्य का बिंब जायसी का प्रिय बिंब है। उसका तेज, उसका प्रकाश उसकी भव्यता तो आई ही है साथ ही सूर्योदय सूर्यास्त और अन्य व्यापार जैसे पाले का धूप की गर्मी से गलकर बह जाना और सूर्य के उदय होने से शीत का कम हो जाना आदि भी प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ धूप के शीत के कम कर देने के धर्म को कवि अलाउद्दीन की कृपा से राजा के कष्टों के कम हो जाने के लिए प्रस्तुत करता है

"बिनती कीन्ह घालि गिय पागा ऐ जग सूर सीउ मोहि लागा ।
धीमुन भरा कांप यहु जीऊ, जहाँ भान रह तहाँ न सीऊ ॥"
(५६२ १४)

सूर्य का बिम्ब अधिकतर प्रतापी राजा (रत्नसेन व अलाउद्दीन) के लिये आया है उनका प्रताप तेज ऐश्वर्य इससे प्रगट हुआ है। क्रोधित राजा का क्रोध भी धूप की तीव्र धूप है जिधर फैलती है उधर ही जलाती है

सुनि कै रिसि राना सुलतानू जैसे तिपि जेठ कर भानू
सहसों करा रोस तस भरा जेहि दिसि देखै सो दिसि जरा
(४६४४ ५)

जायसी में सूर्योदय और सूर्यास्त के बड़े सुन्दर बिम्ब हैं यह अधिकतर सौन्दर्य का मापदण्ड उत्थान-पतन का प्रतीक या जीवन की आशा-निराशा का स्वरूप प्रकट

करने के लिये आये हैं। सूर्योदय के बिंब अधिकतर पद्मावती के लिए आए हैं, यह उसके सौन्दर्य ऐश्वर्य और तेज के प्रकाशक हैं। जन्म के समय उसे सूर्य किरण कहा गया है। जिसके संसार में आते ही दिन का उजाला फैल गया। उसका सौन्दर्य सखियों के बीच चाँद के बीच सूर्य जैसा था।

पछिम सूर जस देखिअ चाँद छपी ओहि धूप
वैसे सबै जाहिं छपि पद्मावति क रूप।

(१२ ८ १)

अलाउद्दीन राजा का प्रताप भी सूर्य किरणों की भाँति चारों ओर छा गया और अन्धेरी रात समाप्त हो गई

चारो खंड भान अस तपा।
जेहि क दिस्टि रैनि मसि छपा॥

(५११ १)

यह बिम्ब जायसी ने ऐसे ही स्थलों पर बार-बार दिया है। सूर्योदय के बिम्बों में प्रकाश के प्रसार और तेज के फैलने पर कवि की दृष्टि गई है। इन्हें कवि ने सुन्दरी नायिका के रूप और प्रतापी राजा का ऐश्वर्य वर्णन करने के लिए दिया है।

सूर्यास्त के बिम्ब सूर्योदय के बिंब से अधिक हैं। सूर्यास्त अधिकतर नैराश्य पतन दुख आदि को चित्रित करने के लिये आया है। राजा के बन्दी हो जाने पर सूर्य के अस्त हो जाने का उल्लेख है। राजा के मरने पर फिर यही बिंब आया है।

आजु सूर बिन अथवा आजु रैनि ससि बूड़ि
आजु नाचि जिउ दीजियइ आजु आग हम जूड़ि।"

(६४६,८ ६)

राजा के बन्दी होने पर रानी रूपी शशि से ही सिर्फ प्रकाश देने की असमर्थता इसी बिम्ब से प्रगट हुई है

नैन गगन रवि बिनु अंधियारे ससि मुख आँसू टूट जनु तारे,
जग अँधियार गहन दिन परा कस लग ससि बिनु नखत तम्ह मरा।

(५८८ २ १)

सूर्य के अस्त हो जाने वाले अन्धेरे से चित्तौड़ का विनाश भी चित्रित हुआ है

जोगी होइ निसरा सो राजा सून नगर जानहुँ धुन्ध बाजा।

(३११, १)

राज त्याग के समय रत्नसेन की माँ कहती है

राजपाट दर पर। यह सब तुम्ह सो उजियार।
बैठ भोग रस मानहु कै न चलहु अँधियार।

(१२६,८-६)

इस तरह यही बिम्ब कई बार आवृत्त हुआ है। सूर्यास्त में कवि की दृष्टि प्रकाश के अभाव और अन्धकार के साम्राज्य पर गई है जो सहज ही कवि की

ाशा, दुःख, पीड़ा आदि भावनाओं को व्यक्त करने के माध्यम बन गए हैं। इन्हें ायसी ने पीड़ाग्रस्त नगर, छोलापुर रानी और पुत्र वियोग से व्यथित माँ के लिए स्तुत किया है इस प्रकार सूर्य के बिंबों में विविधता के दर्शन होते हैं जिससे कवि के रीक्षण की व्यापकता का ज्ञान होता है उसका तेज प्रकाश अन्धकार को नष्ट करने ा गुण और उसके अभाव में अन्धकार के साम्राज्य हो जाने के स्वरूप-अर्थात् सूर्य के भी सम्भावित रूप जायसी को आकृष्ट करते हैं। कवि ने उनको समुचित रूप से युक्त किया है।

चन्द्र भी जायसी के बिंबों का प्रिय विषय है। उसकी शिथिलता सौन्दर्य ाधुर प्रकाश जायसी को प्रिय है। इसीलिए पद्मावत की नायिका पद्मावती के लिए न्द्र शब्द रूढ़-सा हो गया है। इसमें कहीं-कहीं बड़े सुन्दर बिंब बने हैं। पद्मावती के उज्ज्वल सौन्दर्य का रूप कवि ने शशि के द्वारा दिया है

तू ससि रूप जगत उजियारी मुँह न झाँपु निसि होइ अँधियारी

(१८६ २)

मीन खण्ड में चाँद तारों के स्नान का बिंब भी बड़ा सौन्दर्यपूर्ण है

धरी तीर सब छीपक सारी सरवर महँ पठी सब बारी।
सरवर नहिं समाय संसारा, चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा।
धनि सो नीर ससि तरई ऊईं अब कत दिस्टि कँवल औ कूईं।

(६२, १-७)

चाँद की निष्कलंकता सौन्दर्य बोध के अधिक निकट है। जायसी उसे भी नहीं भूले हैं। पद्मावती के कलंकरहित सौन्दर्य के लिये उन्होंने निष्कलंक चन्द्रमा का बिंब लिया है। गुरु प्रकारक जहाँगीर के लिए भी यह उपमा आई है चाँद प्रकाश और तेज का प्रतीक है पर उसमें कलंक भी है। अपने दोषों को बताते हुए जायसी ने अपनी उपमा कलंकित चन्द्रमा से दी है। जायसी ने शशि के साथ शशि-मण्डल को भी बिम्ब रूप में प्रस्तुत किया है। चाँद यों प्रकाश का प्रतीक है ही परन्तु पूर्णिमा का चन्द्रमा सौन्दर्य और प्रकाश की कुछ अधिक अनुभूति कराता है। इसलिये रानी को यह पूर्णिमा का चन्द्रमा बताते हैं।

पदुमावति पै पूनिउँ कला,
चौदह चाँद उए सिंघला।

(१२८ २)

यही उपमा पद्मावती के लिए दो बार आई है। जायसी चन्द्रमा के सभी रूपों सभी पहलुओं से परिचित हैं। ग्रहणग्रस्त चन्द्र भी उन्होंने कई जगह दिया है, रानी के मलिन सौन्दर्य और निस्तेज रूप की अनुभूति कराने में वह बहुत सफल रहा है

"चाँद जैस धनि बैठ उजारी, सहस करा होई सूरज परासी।
तेहि क भार गहन अस गही, भै निरंग मुख जोति न रही॥"

(१२८, ४५)

चाँद के यही बिंब बाद में रूढ़ हो गए हैं और इनका प्रतीकत्व व्यवहार भी हुआ है

> कैसहु बिरहु न छाड़ै भा ससि गहन गरास।
> नखत चहूँ दिसि रोवहिं, अँधियार धरति अकास।
>
> (२४६ ८ १)

चन्द्र के बिम्ब कवि की दृष्टि की व्यापकता को प्रकट करते हैं। चन्द्र के उज्ज्वल रूप और सौन्दर्य के धर्म को ग्रहण-ग्रस्त कलंकरहित कमल युक्त तारागणों के मध्य और चन्द्र-नक्षत्र के मध्य पूर्णिमा के चन्द्र आदि कई रूपों में लिया है। यह अधिकतर रानी के समृद्ध उज्ज्वल सौन्दर्य मलिनता एवं सखियों की पृष्ठभूमि के मध्य उसके दीप्त सौन्दर्य का रूप प्रकट करने के लिये लिये गए हैं।

जायसी में नक्षत्रों का टूटना उपमान अवसर आया है जो कहीं-कहीं आगामी विनाश का सूचक बन गया है। रत्नसेन की मृत्यु पर यह उपमान आया है। नक्षत्र का टूटना जीवन में भी अमंगलकारी माना जाता है। काव्य में भी उसका यही प्रभाव आया है। सौन्दर्य की दृष्टि से पद्मावती के आभूषणों और चमकदार वस्त्रों के लिए यह बिंब बड़ा सुन्दर बन गया है

> पद्मावति सो झरोखे आई, निहकलंक जस ससि देखराई
> पहिरे ससि नखतन्ह कै मारा धरती सर्ग भयउ उजियारा।
>
> (४२१ १ १)

सौन्दर्य व प्रकाश की भिन्न भिन्न प्रतीति करने के लिये उन्होंने सुदृढ़ता के कारण ध्रुव शरद के संदर्भ में सोहिल तीक्ष्ण चमक के लिये कचपची आदि नक्षत्रों का प्रयोग किया है।

बादलों का प्रयोग भी जायसी ने पर्याप्त मात्रा में किया है। यहाँ उनकी दृष्टि मेघों के आकार उसके रंग या उसकी गर्जन पर रही है। आकार और वर्ण के कारण हाथियों के लिए मेघ का बिंब आया है

> हस्ती सिंघली बाँधे बारा जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा।
> कवनौ सेत पीत रतनारे कवनौ हरे धूम औ कारे।
> बरनहिं बरन गगन जस मेघा औ तिन्ह गगन पीठ जनु ठेगा।
>
> (४८,१ १)

समुद्र यात्रा के बीच नरभक्षी राक्षस के लिए भी काले मेघ की उपमा आई है मेघों की गर्जन की तुलना हाथी घोड़ों की लड़ाई के समय की भयानक आवाजों से की गई है। राजा का क्रोधित स्वर में बोलना भी मेघ गर्जन ही है

> सुनि अस लिखा उठा जरि राजा-जानहुँ देव तड़पि घन गाजा।
>
> (४८६ १)

बादलों में कवि को उसके रंगों और आकार ने आकर्षित किया है। बादलों का भयानक गर्जन भी कवि को आकृष्ट करता है। कवि ने उनका हाथियों घोड़ों

बादल के आकार, वर्ण एवं गर्जन को क्रोधी राजा के क्रोध का उपमान बनाया है। मेघ आध्यात्मिक अर्थों को भी देता है। परमात्मा के कर्ता रूप और जीवन की छायात्मकता की अभिव्यक्ति मेघ और उसकी परछाईं से हुई है।

वै सब किछु करता किछु नाहीं, जैसे चलै मेघ परछाहीं।

(अखरा १)

मेघ अस्थिरता का प्रतीक भी बना है

यह संसार झूठ थिर नाहीं, उठहिं मेघ जस जाइ बिलाहीं।

(अखरा २१)

बादल के साथ-साथ जायसी ने बिजली का उल्लेख भी किया है। पद्मावती के लिये प्रयुक्त यह प्रतीकात्मक बिंब है

आवा रात्रो खेलनि चौरखार के पास,
पर्दे न जाने हिरदै बिजुरी करै प्रकास।

(५१० ८-९)

जायसी ने अखरावट में माया मोह को मेघ और क्रोध को बिजली कहा है। यहाँ तीव्रता और अस्थिरता व विनाशकारिकता का धर्म सादृश्य है।

जस किछु माया मोह, तैसे मेघा पवन जल
बिजुरी जैसे कोह, मुहम्मद तहाँ समाइए।

(अखरा ५०)

रानी की मुस्कान बिजली की भांति है क्षण में तिरोहित हो जाने वाली। मिस्सी से काले दाँतों में यह मुस्कान भादो की काली रात में चमकती बिजली सी प्रतीत होती है यह उपमान बहु प्रयुक्त उपमान है। कवि उसके आभूषणों की भी चमक के कारण बिजली कहता है वह भी क्षणिक ही दृष्टि मार्ग में आते हैं क्योंकि क्षण भर में ही वह उसके आँचल की ओट में हो जाते हैं।

होइ अँधियार बीजु धन लौके जबहि चीर गहि झाँपु
केस जाल होइ मन मैं दैके सर्वरि जिय काँपु

(२५० ८९)

बिजली में कवि ने उसकी चंचलता चकितमयता आदि धर्मों एवं उसके अपूर्व प्रकाश को रानी के चकित कर देने वाले सौन्दर्य और उसकी दन्तपंक्ति की चमक धवलता को मूर्तित करने के लिए प्रयुक्त किया है। बिजली के बिम्ब कवि की सूक्ष्म निरीक्षण में समर्थ दृष्टि के परिचायक हैं। बादल बिजली आदि के साथ मोरों घटा बूँदों आदि को लेकर वर्षा का पूरा बिम्ब भी प्रस्तुत किया गया है। घमासान वृष्टि का बिंब युद्ध क्षेत्रों के लिये सम्भवतः पद्मावत में ही ९ बार लिया गया है। प्रलय-कारी होने के कारण युद्धस्थल के यह बिम्ब प्रभाव साम्य भी प्रस्तुत करते हैं।

बरसहिं बरन उठै घर मासी मुह भर भाई तरन के साथी
चमके बीजु होइ उजियारा जेहि सिर परै होइ दुइ फारा
सेन मेघ जस घुमु दिसि माजे बरन जो बीच बीजु जस साजे
बरिसे सेल बानु होइ काँदो जस बरिसै सावन औ भादों
टूटहिं कुन्त परहिं तरवारी गोला गोला जस भारी।'

(५१८ १५)

जायसी ने अनन्तता व असीमता की अनुभूति के लिए आकाश का बिंब भी कई जगह ग्रहण किया है। समष्टि में जायसी के आकाशी बिम्ब विविधता से परिपूर्ण है। आकाश से गृहीत यह बिंब विभिन्न क्षेत्रों के हैं जो जायसी की उदारता और व्यापक अध्ययन के द्योतक हैं। आकाश के सभी सम्भावित उपकरण सूर्य चन्द्र बिजली बादल वर्षा गृहा आ गये हैं। मात्रा में भी यह बिंब जायसी में सबसे अधिक हैं।

(इ) वनस्पतीय—जायसी ने वन प्रांतों के भी काफी बिंब दिये हैं। जो जायसी के सूक्ष्म प्रकृति निरीक्षण के द्योतक हैं फूल पत्तियों वृक्षों लताओं आदि के विभिन्न व्यापारों और विभिन्न अवस्थाओं के बिंब दिये हैं। वनस्पती के गृहीत बिंबों की संख्या १०६ है।

जायसी ने फूलों के बिंब में विशेष प्रकारों का उल्लेख नहीं किया है या तो वह सिर्फ फूल कह कर रह जाता है या फिर कमल और कुमुदिनी उनके प्रिय पुष्प हैं। जायसी फूलों की प्रफुल्लता कोमलता से अधिक उसकी गंध के प्रशंसक हैं, फूल के सूख जाने पर भी उसमें बनी रहने वाली गंध प्रकार मानव जीवन की अमिट कीर्ति की द्योतक बन गई है। रानी के लिये भी दो बार शरीर के क्षय होने पर भी सौरभ संयुक्त होने का उल्लेख है। फूल की गंध पार्थिव में अपार्थिव की सत्ता की द्योतक है। फूल के सौन्दर्य उसकी स्वच्छता और ताजगी पर केवल एक बार जायसी की दृष्टि गई है जब मलिन पद्मावती में वह प्रफुल्लता और सुरंगता का अभाव देखते हैं तब उन्हें मसला हुआ फूल सहसा स्मरण हो आता है

कुसुम फूल जस मरदिया निरंग दीखु सब अंग
चंपावति मैं बारिनी, चू कि कैस धौ मंग।

(४२७-८-६)

अन्य फूलों में टेसू का फूल भी बड़ा व्यंजक है, उससे योगियों के त्याग के प्रतीक गेरू रंग के वस्त्रों का भान तो होता ही साथ ही आगा का आभास भी हो जाता है। लगता है जैसे ढाक का वन ही आँखों के संमुख आ गया हो

चला कटक जोगिन्ह कै कर गरू आ सब भेसु
कोस बीस चारहु दिसि जानहु फूला टेसु।

(१३४ ८ ६)

फूलों के साथ काँटों को भी जायसी नहीं भूले हैं दुखदायी क्रूर और दुष्ट

मों के लिए जायसी ने कांटे का ही प्रयोग किया है। कवि के साथ दरिद्रता भी है जैसे फूल के साथ कांटा

कविता संग दरिद मति भंगी, कांटइ कुटिल पुहुप सँग संगी

(४४१, ७)

कमल का पुष्प जायसी का सर्वप्रिय पुष्प है। मुख हाथ पांव नैन आदि के लिए कमल की उपमाएँ परम्परागत हैं। जायसी में भी अधिक मात्रा में हैं। पर इन में नवीनता के कारण सौन्दर्य की सृष्टि हुई है। जैसे

कंवल करी तू पदुमिनी म निसि भयऊ बिहान।
अबहि न संपुट खोलहि जो रे उठा जग भान॥

(२५०, ८-९)

यद्यपि रानी को कमल कली और नेत्रों को संपुट कहना परम्परागत ही है पर सूर्य रूपी राजा के संदर्भ से इसमें सौन्दर्य की मात्रा कहीं अधिक बढ़ गई है। कमल पत्र की उपमा भी जायसी ने दी है जो जल में रह कर भी जल से निर्लिप्त रहता है यह बिंब सदा से महान और अनासक्त आत्मा का प्रतीक रहा है पर जायसी ने इसे नए अर्थों में सुख सरोवर में भी तृषित पद्मावती के लिए दिया है

"जैसे कंवल सुरुज के आसा नीर कंठ लहि मेरे पियासा"

(२२६ ४)

कमल की प्रफुल्लता और स्निग्ध सुन्दरता कवि को विशेष प्रिय है। उसके सूर्य के प्रकाश से प्रस्फुटित होने सूर्य के अभाव में सूख जाने आदि के क्रम भी कवि को आकृष्ट करते रहे हैं।

कंवल के साथ कुमुदिनी का बिंब जायसी के काव्य में रूढ़ बन गया है। कमल के साथ कुमुदनी का उल्लेख पृष्ठभूमि के कारण कमल के सौन्दर्य के आधिक्य का स्पष्ट करता है। पद्मावती और उसकी सखियों के लिए जायसी ने बराबर यह बिम्ब दिया है। पत्तों का बिंब जायसी में नहीं है।

पत्तों का भी जायसी उल्लेख न किया है। परन्तु इनका उल्लेख किसी विशेष पक्ष के रूप न होकर सामान्य पक्ष रूप में है। जजर पीले पत्तों न जायसी के हृदय में भय का संचार किया है, वे दुख नैराश्य और मरण की निकटता को सूचित करत है, टूटा हुआ पत्ता तो निसन्देह अपार वेदना और दुख का सूचक है

पाका पौन बिछोव का पात परा बेकरार
अंरिवर तज को चूरि के लार्ग देहि के बार।

(१९९ ८-९)

इसके विपरीत उगते हुये नाम पत्ते सुख के प्रतीक हैं

पियर पात दुख झरे निपाते सुख पाखौं उपते होइ राते

(१८३ ७)

पत्तों के वर्ण उनकी अवस्था को व्यक्त करते हैं। कवि ने मानस में मनुष्य

की अवस्था अथवा दशा से उनका सामंजस्य बैठा हुआ प्रतीत होता है। पत्तों के ये बिम्ब जायसी की अनुभूति प्रवणता को प्रकट करते हैं।

बीज के अंकुरित होने का बिम्ब भी बड़ा उपयुक्त बना है। राजा अलाउद्दीन के हृदय में प्रेम का बीज पद्मावती की सुदृष्टि के बरसने के अभाव में अंकुरित नहीं हो पाता

तपै बीज अस धरती सूख बिरह कै घाम
कब सुदिस्टि कै बिरसै तन तिरवर होइ जाम"

(५६१ ८ ६)

इसी प्रकार भूमि की उपमा भी कवि को सूक्ष्म निरीक्षण की परिचायक है
जस भुइँ दहि असाढ़ अमुहाई परहिं बूँद और सोंध बसाई
ओहि भांति अमुही सुख बारी उठें करिल नव कोंप सवारी।

(४२१ ४ ५)

वृक्षों के बिम्ब भी जायसी ने दिये हैं। वृक्ष में उसके पल्लवित होने और फिर झड़ जाने में उन्हें उत्थान—पतन या लाभ हानि का स्वरूप दिखाई दिया है। सेना के लाखों सैनिकों (पुराने पत्तों) का पतन हो जाने पर उसमें नये सैनिक (नये पल्लव) फिर आ जाते हैं मानो सेना वृक्ष है

लाख जाइ आवहिं दुइ लाखा फरहिं झरहिं उपने नौं साखा

(५२२,५)

इसी भांति यौवन है जो पल्लवित होकर फिर पीले पत्ते की तरह झड़ जाएगा पतंग वृक्ष का जायसी ने अत्यंत उल्लेख किया है। पतंग वृक्ष की सुन्दरता उसकी पत्तियां हैं उसके झड़ जाने पर वह गला जाता भूनता है उसी भांति जिस भांति धन अथवा द्रव्य से रहित व्यक्ति

छोटे रहे सुधीमता मिलहि आगरि भूख
बिनु धन पुरुष पतंग ज्यों ठाढ़े भै सूख।

(४२० ८-९)

जायसी ने बेलों का बिम्ब भी दिया है पानी पाकर बेल का पल्लवित होना जायसी को विशेष आकृष्ट करता है। इसलिए पानी में स्नान करती सखियों के लिये उन्होंने बेल का बिंब दिया है

धरी तीर सब छीपक सारी सरवर मांहु पैठी सब बारी
पाए नीर जानु सब बेली हुलसि करहिं काम कै केली।
नवल बसंत संवारहिं करी होइ प्रकट चाहहिं रसभरी।

(६०, १ २)

नागमती भी विरह में सूखी लता हो गई है जो प्रिय की सुदृष्टि जल से पल्लवित होना चाहती है और जब रत्नसेन लौट कर आता है तो बेल पल्लवित हो जाती है

कंठ लाइ कै नार मनाई जरी जो बेल सींच पलुहाई
फरी सहस साखा होइ दारिउँ दाख जंभीर
सबै पंखि मिलि आई जोहारे, लौटि उभे भै भीर ।

(४२७ ७-८)

अमर बेल ने जायसी को विशेष आकर्षित किया है उसका सदा बढ़ना अकेला रहना अमर रहना जायसी को प्रेम की अमरता अनन्यता और सदा समृद्ध होने का संकेत करता है

केहुसि कस न तुम्ह होहु दुहेली अरुझी प्रेम प्रीति कै बेली
प्रीति बेल जनु अम्मर बोई दिन दिन बाढ़ छीन न होई ।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ि छावा, दूसरि बेलि न पसरे पावा ।

(२४६ १-७)

जायसी ने फुलवारी का रूपक भी प्रस्तुत दिया है जो मुख्यतः रंग बिरंगी सज धज और उत्फुल्लता का रूप प्रस्तुत करता है । सखियाँ भी रंग बिरंगे कपड़ों और उत्फुल्लता के कारण फुलवारियाँ हैं नायिका और बारात भी । यौवन भी खिला हुआ होने के कारण फुलवारी के ही रूप में आया है ।

समष्टि के वनस्थली के यह चित्र कवि के सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक हैं, वनस्थली में उन्हें फूलों पत्तों बेलों आदि के पल्लवित होने और झर जाने के व्यापारों ने विशेष आकर्षित किया है उत्फुल्लता सामग्री कोमलता और सुन्दरता से भी अधिक यह कवि की विशिष्ट सम्पन्न की जीवन के प्रति उसके दृष्टिकोण का प्रकट करते हैं ।

(ई) पर्वतीय—पहाड़ों चोटियों कंदराओं घाटियों पत्थरों आदि की ओर जायसी का ध्यान अधिक नहीं गया है । संभवतः पर्वतीय प्रदेशों की उनकी जानकारी कम थी । पर्वतीय बिम्बों में उन्होंने केवल पहाड़ों का ही वर्णन किया है । पर्वतों के आकार और उसकी ऊँचाई ने जायसी को प्रभावित किया है । इस ऊँचाई में भी आनन्द या सुख की भावना न होकर एक भय की भावना है । इसलिये भयंकर लहरों को पुकारत भीमकाय हाथियों को पर्वत कहा गया है । पहाड़ों के आकार की विशालता भी उनको आकर्षित करती है

हस्ती सिंघली बाँधे बारा जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा

(४५ २)

सुमेरु पर्वत के उल्लेख में कवि की भय की भावना वैभव और भव्यता के रूप में बदल गई है राजा के ऊँचे ऊँचे महलों गढ़ों की उपमा पर्वत से न दी जाकर सुमेरु पर्वत से ही दी गई है

हिय न समाइ दिस्टि नहिं पहुँचा, जानहु ठाढ़ सुमेरु
कहँ लगि कहौं ऊँचाई ताकर कहँ लगि बरनौं फेरु ।

(४० ८-९)

पद्मावती में सुगन्ध का आरोप करने के लिए मलय गिरि को भी लाया गया है। जायसी में पर्वतीय क्षेत्रों के बिंबों का अभाव ही कहा जायेगा क्योंकि पर्वत के बिंबों की संख्या बहुत कम है।

(च) खनिज—जायसी में खनिज वस्तुओं के प्रति पर्याप्त मोह है। सोना (पारस) रतन मोती माणिक आदि का उसने प्रस्तुत प्रयोग किया है 'रतन' और 'पारस' तो राजा रत्नसेन और पद्मावती के अर्थ में रूढ़ हो गये हैं। कंचन के साथ साथ विरोध अथवा वैषम्य दिखाने के लिये कौड़ी कांच की पोत (एक छोटा कांच का मोती) का प्रयोग भी किया है। मूल्य के आधार पर कवि ने विरहिणी रानी की रूप हीनता मलिनता आदि को कौड़ी से प्रकट किया है।

सीप भै नयन रतन सब मोती कंचन कया कांच भै पोती।

(३८३ १)

मोती को निर्मलता के लिये लाया गया है और स्वच्छ व श्वेत होने के कारण वह आंसू के उपमान भी बने हैं। पर जायसी के पात्र फारसी के प्रभाववश अक्सर रक्त के आंसू रोते हैं अतः विरह वर्णन में राजा रानी के रुदन के समय उसका बिंब आया है। समुद्र के माणिक उगलने का बिम्ब भी आया है

उगलहिं समुद जस मानिक भरे रोइ रुहिर आंसु तस ढरे

(३०८, २)

हीरा ज्योति की श्वेतता और उज्ज्वलता का रूप प्रस्तुत करता है और माणिक की चमक और लालिमा अधर का। रतन को प्रकाश की क्षमता के कारण राजा के तेज या वैभव और सुख का प्रतीक बनाया गया है

रोवैं मता न बाहुर बारा रतन चला घर भा अंधियारा।

(१११ ६)

संक्षेप में जायसी के खनिज वस्तुओं के बिम्ब अधिकतर मूल्यवान वस्तुओं के हैं या फिर उनकी तुलना में निकृष्ट वस्तुओं के। वस्तुओं के गुण पर आधारित यह बिम्ब मात्रा में भी पर्याप्त है।

(छ) समय और मौसम—समय और मौसम में वर्षा फागुन और वसन्त ने कवि को बहुत आकृष्ट किया है। जायसी को सौन्दर्य के प्रति मोह है इसलिए वसन्त में वह हंसते फूलों महकती हुई गन्ध का विशेष उल्लेख करता है।

भौंरि भौंरि फुलवारी चोवा चंदन बासु
निछि निन रही बसंत भा जनु रितु बारहु मासु

(४४ ८-९)

फागुन में वह होली (उत्सव) का रूपक देता है। फागुन का महत्व ही होली के लिए है। विरहाग्नि के लिये अधिकतर होली का प्रयोग हुआ है

हुँ फागु भलि चांचरि जोरी मोहि जिय लाइ दीन्ह जस होरी पारि।

(२०४ ४)

युद्ध में भी होली का रूपक है

दुवहिं कंध कबंध निनारे, माठ मजीठ जानु रन ढारे।
खेलि फाग सेंदुर छिरि डारा, चांचरि खेलि आगि रन जारा।
धरती लोह भरा सो बूड़ा, उठे टेसु तन बहिर भभूका।

सावन और असाढ़ का रूपक भी जायसी को प्रिय है। वर्षा हरियाली भूमि और नूतन पल्लवित वृक्षों से कवि को सहज स्नेह है। आषाढ़ प्रफुल्लता सुख और आनन्द का रूप है

पदमावति के पुरबारह राजा, जस असाढ़ आवै घर साजा।
देखि सो छत्र भई जग छाहाँ, हस्ति मेघ ओनए जग माहाँ।
सेना पूरि आए घन घोरा, रहस चाव बरिसै चहु ओरा।
धरति सरग अब होइ मेरावा, भरि सरवर पोखर ताल तलावा।
सहज उठा सब भुमिका कामा, डावहिं ठांव दूब अस जामा।
दादुर मोर कोकिला बोले, हुते आखोट जीभ सब खोले।

(४२१ २-७)

समष्टि में समय और मौसम सम्बन्धी बिम्ब जायसी के सुन्दर चित्र कहे जा सकते हैं। सावन और फाग की ओर कवि की विशेष रुचि है। इनकी सफलता जायसी की कवि प्रतिभा की सुन्दर परिचायक है।

(ए) जीव जन्तु—जायसी ने पशु पक्षियों एवं उनके विभिन्न व्यापारों को अप्रस्तुत रूप से साथ प्रयुक्त किया है। जायसी में जीव जन्तुओं के बिम्बों की संख्या १४१ है। सुविधा के लिये जीव जन्तुओं के बिम्बों को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—पशु पक्षी और जन्तु।

पशु—जायसी ने पशुओं में मुख्यतः हाथी शेर मृग अश्व बैल आदि को लिया है। इनमें पशुओं के स्वभाव उनके क्रिया कलापों पर जायसी का ध्यान विशेष नहीं गया है। बहुत से उपमान सिर्फ परम्परा पालन के हेतु रखे गये जान पड़ते हैं जैसे कमर के लिये की शेर कमर, चाल के लिये हाथी की मदमस्त चाल नेत्रों के लिए मृग के नेत्र और चितवन आदि। यद्यपि इनमें सुधर्म के कारण कहीं-कहीं सौन्दर्य आ गया है। परन्तु अधिकांश उपमान सिर्फ परम्परा के निर्वाह के लिये ही है। फिर भी कुछ बिम्ब रूप सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक हैं जिनमें पशुओं की प्रकृति की झलक मिलती है जैसे शेर के बिम्ब में

गाजै गोरा सुनावा लाग दुहु दल सीम
जाए कोठार भीतर परा जगहु सिंह औघान।

(२११ ८ ६)

और गोरा बादल वास्तव में वस्तुतः सिंह ही हैं पर जैसे शेर पकड़े में गिर कर वीर होते हुए भी विवश हो जाता उसी प्रकार गोरा बादल भी विवश है। उनका लोभ व मोह चौगान में पड़े सिंह जैसा है। लड़ाई में भी वह शेर के सदृश हाथियों के

समूह पर टूट पड़ते हैं। हाथी और शेर के बैर का एक बिम्ब नागमती के विरह वर्णन में है। विरह हस्ती उसको मारना चाहता है। उससे बचने के लिए वह सिंह रूपी प्रिय को पुकारती है। शेर के बिम्बों में उसकी वीरता क्रोध और उसके बल पर कवि की दृष्टि गई है। गड्ढे में पड़े हुये सिंह का परिस्थिति से विवश गोरा बादल के लिये उपमान कवि के निरीक्षण का द्योतक है। विरह रूपी हाथी युवा की बाड़ी को भी नष्ट करता है। यौवन के लिये भी हाथी का प्रयोग हुआ है। हाथी की मदमस्त प्रकृति यौवन पर आरोपित है। उसके लिये ज्ञान का अंकुश आवश्यक है। हाथी की मदमस्त प्रकृति के कारण गोरा के युद्धातुर बलवान साथियों को भी हाथी कहा गया है।

अन्य पशुओं में बिल्ली का बिम्ब कई बार आया है। बिल्ली की अनायास झपटा मारने की प्रकृति अकाल मृत्यु की प्रतीक है। आरम्भ में जायसी ने तोते के संदर्भ से मारने वाले को बिल्ली कहा है। पर बाद में मृत्यु के रूप में बिल्ली शब्द रूढ़ हो गया है। जैसे

अब चाहै बैठि पंजर मांहा　जैसे बीच मंजारी बांहा

(६८ ६)

समष्टि में जायसी के पशुओं के बिम्ब परम्परागत होने पर भी उनकी प्रकृति स्वभाव आदि को स्पष्ट करते हैं। शेर, हाथी आदि के विभिन्न धर्मों के आधार पर निर्मित बिंब उनकी निरीक्षण शक्ति और रुचि के परिचायक हैं। हाथी और शेर आदि के इन्हीं धर्मों ने कवि को आकर्षित किया है। इन बिंबों से प्रतीत होता है कि जायसी में पशुओं के प्रति उतना प्रेम नहीं है जितना पक्षियों और वनस्पति के प्रति।

पक्षी—जायसी ने पक्षियों के बिम्बों में अपने सूक्ष्म निरीक्षण का अच्छा परिचय दिया है। यद्यपि यहाँ भी बहुत से बिंब परंपरागत हैं। पर अधिकांश स्वतन्त्र बिंब कवि के विशाल अध्ययन का परिचय देते हैं। पक्षियों के गृहीत बिंबों की संख्या ७१ है। ध्यान देने की बात है कि जायसी ने जल पक्षियों के बिंब थल पक्षियों से अधिक व मर्मस्पर्शी दिये हैं।

जलपक्षी कौड़िल्ला का बिम्ब जायसी को बहुत प्रिय है। इसमें मछली पकड़ते कौड़िल्ले का दृश्य कवि ने विशेष रूप से अंकित किया है। नेत्रों से बूंद बूंद टपकते आंसू का दृश्य मछली उठाते हुए कौड़िल्ला के द्वारा चित्रित हो जाता है। मछली के भी दोनों सिरों से इसी प्रकार बूंद बूंद पानी गिरता है। जैसे नेत्रों के कोनों से—

पर्वं सीस पर भरती हिया सो प्रेम समुद्र।
नैन कौड़िया होइ रहे लै लै उठहिं सो बुंद

(१४१ ८-९)

कौड़िल्ला के बिम्बों में जायसी का ध्यान रूप साम्य की ओर है। सारस की उपमा में वह सारस की विरह अवस्था की ओर ध्यान देता है। उसका प्रेम और उसकी विह्वलता पर उसकी दृष्टि गई है। यहां रूप साम्य न होकर धर्म साम्य है। विरह में नागमती की उपमा सारस को जोड़ी के बिछुड़े सारस से की गई है। पद्मावती को भी

विरह में एकाकी तड़पता सारस ही कहा गया है।

जायसी ने बगुले का एक बिंब अत्यधिक युक्तियुक्त दिया है। उसके छलपूर्ण व्यवहार का कवि ने चित्रित किया है। उसका चुपचाप चलकर अचानक मछली को पकड़ लेना राक्षस के छल पर्व राजा का बाँधे से शिकार करने के पूरे बिंब को प्रस्तुत कर देता है

मंदिर देख भीषे बग धावा टोह टोह मुंह पावर उठावा
भाई सियर मैं कीन्हु जोहार मुंडा बैन घुसत बेहार।
(१११ २६)

जायसी ने हंस का बिम्ब उसकी आमनपूर्ण क्रीड़ा के लिए दिया है। धर्म साम्य के आधार पर प्रेम क्रीड़ा में मग्न राजा रानी को उसने सरोवर में क्रीड़ा करते हंस के बिम्ब से प्रस्तुत किया है, इससे उल्लास और आनन्द की स्पष्ट अभिव्यक्ति हुई है।

अन्य पक्षियों में कबूतर, मयूर, खंजन तोता कोयल आदि के बिम्ब रूप को प्रस्तुत करने के लिए लिए गए हैं। चातक और चकोर के बिम्बों में कुछ सूक्ष्म गिरी रस का आभास मिलता है। यह दोनों प्रेम के प्रतीक बन कर आए हैं। यहां उनका स्वाति बूंद की आशा करने का धर्म बिम्ब रूप में प्रस्तुत हुआ है। चातक स्वाति की बूंदों और चकोर चन्द्र का अनन्य प्रेमी है राजा की भांति। अतः राजा के लिए कई बार इन बिम्बों का प्रयोग हुआ है। कंकनू पक्षी से राजा की उपमा अवश्य मर्मस्पर्शी है। कंकनू का विरह में जल कर मर जाना मुख बिम्ब का आधार है। कंकनू की तरह राजा भी विरह विदग्ध और निराश व एकाकी है। उसी तरह स्वयं मरने का प्रयत्न भी करता है

"कंकनू पंखि जैस सर साजा सर चढ़ तबहि जरा चहु राजा।
(२०५ १)

इसी प्रकार पर्याप्त बाणों में चित्र गढ़ के लिए साही की उपमा भी बड़ी व्यंजक है। साही के शरीर पर तीखे जहरीले बाण लगे होते हैं। वह भी गढ़ को बेधने वाले बाणों की भांति अनगिनत होते हैं। यह बिम्ब स्वरूप को स्पष्ट करने में अद्वितीय है

"बानहु बेधि साहि कै राखा गढ़ भा मकर कुलाए पांखा"
(५९४, ५)

मकड़ की उपमा इसी स्थल पर उतनी व्यंजक नहीं हो सकी है जितनी साही की। क्योंकि साही गढ़ के आकार के अधिक निकट है। विरह बाज कबूतर का यह बिम्ब भी बड़ा व्यंजक है

परिति पैठा होइ पिय आइ पेमि पर टूटि
मारि पराए हाथ है सुरह जिम बाज का टूटि।
(३५३ ८१)

समष्टि में पक्षियों के बिम्ब कवि की दृष्टि की व्यापकता और निरीक्षण की बारीकी को प्रकट करते हैं। उसने मुख्यतः कोकिला के बिम्ब रूप के लिए, सारस को उसके विरह व्यथा सहन करने के धर्म के लिए बगुले को छलपूर्ण व्यवहार करने के धर्मसाम्य के लिए हंस को क्रीड़ा के रूप के लिए गुण साम्य के आधार पर चातक और कुकनू को विरह व्यथा सहने और जल जल कर मर जाने के धर्म साम्य के लिए, व गरुड़ साही कबूतर, खंजन मयूर आदि को साम्य के लिए प्रस्तुत किया है। समष्टि में यह सभी बिम्ब जलपक्षियों और उनके विभिन्न रूपों व व्यापारों के प्रति कवि की विशेष रुचि का परिचय देते हैं।

जन्तु—जायसी में जन्तु बिम्बों की संख्या भी पर्याप्त है। यह ८८ हैं। सर्प का बिम्ब सम्भवतः इसमें सबसे अधिक आया है। सर्प केशों या वेणी के लिए परम्परागत उपमान है पर जायसी ने उनका अत्यन्त सजीव वर्णन किया है जिससे यह सौन्दर्य बोध में सहायक हुए हैं। उनके रूप साम्य से अधिक उसमें लहर इत्यादि के धर्म साम्य से सजीवता उपस्थित कर दी है। यही केश जब चुनरी के पीछे होते हैं तब केंचुली मढ़े साँप से प्रतीत होते हैं :

मलयगिरि कै पीठ संवारी बेनी नाग चढ़ा जनु कारी
लहर देत पीठ जनु चढ़ा चीर ओढ़ावा कंचुकि मढ़ा।

(११२ २-३)

केंचुली युक्त सर्प का यह बिम्ब सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि का परिचायक है। शब्द साम्य के कारण सर्प (नाग) नागमती का द्योतक भी बन गया है। यहाँ धर्म साम्य का ही आधार बनाया गया है। नागिन रूपी नागमती प्रिय विरह में सर्प की भाँति पवन पर जी रही थी पर प्रियतम के आने पर उसका हृदय प्रसन्न हो उठा। दुःख केंचुली की तरह अलग हो गया

जाहि जो मुइ नागिनि लग तजा पिउ पावै तन भई मैं सजा
सब दु ख जनु केंचुल का छूटी नवि निसरी जैस चीर अछूटी।

(४२१ १)

मछली की उपमाएं कवि ने उसके पानी से प्रेम करने और उसके बिना न रहने के धर्म के कारण दी हैं जो बड़ी व्यंजक हैं। अधिकतर विरह विदग्ध व्यक्ति के लिए पानी से विहीन मीन का बिम्ब आया है। सूर्य रूपी अलाउद्दीन के आक्रमण करने पर राजा का सुख सरोवर शुष्क हो गया और राजा भी मछली की भाँति विकल होने लगा

'तहाँ आइ यह कंचन ग्रसातीं जहाँ अलाउद्दीन
सुनि कै चढ़ा भानु होइ रतन होइ जल मीन।

(४१६, ८ ६)

गुरु विहीन भटकते हुए व्यक्ति के लिए कवि अंधी मछली की उपमा देता है जिसे जल में रहते हुए भी जल दिखाई नहीं देता उसी प्रकार संसार में प्रत्येक स्थल

पर व्याप्त ईश्वर को भी गुरु विहीन अंधेरे में भटकता व्यक्ति खोज नहीं पाता। इसलिए जैसा मछली है गुरु कछुआ का साथ प्राप्त कराता है।

जायसी ने मगर जैसे पानी के जानवर का रूपक भी लिया है। जो उसके खाना खाकर नदी तट पर लेट जाने के रूप साम्य के आधार पर है। समुद्र रूपी मगर पद्मावती को (छुआ कर) खाकर सब शान्त पड़ा या मानो खाना खाकर ढीला होकर लेट गया हो।

लीन्ह रहा सब लोन होइ पेट पराएन मेलि
जौ उजियार करै सब लोपा चाँद उवेलि।

(८६ ८-९)

जायसी ने भ्रमर का उपमान भी बहुत लिया है। रस प्रेमक और प्रेमी के लिए यह बहुत बार आया है। केशों में केवल रंग साम्य के आधार पर है और प्रेमी राजा के लिए यह फूल को प्रेम करने की भ्रमर की व्यक्तिगत विशेषता के आधार पर

भवर जाम पै कवल पगोतो जहँ यह बिना बेल की पीती

(१८९ ४)

इसी से भ्रमर भी अन्त में राजा के लिए रूढ़ हो गया है।

पतंग भी पद्मावत में बहु प्रयुक्त बिम्ब है। पतंग का प्रेम, दीपक पर मर मिटने की प्रकृति जायसी के प्रेमी हृदय की प्रतीक बन गई है। रत्नसेन के लिए पतंग बार-बार आया है

"तुम्ह नित अपडु पतंग कै करा सिंघल दीप आइ जहि मरा

(३०७ ४)

पतंगों के एक के बाद एक बलिदान ने भी जायसी को विशेष आकृष्ट किया है। एक के बाद मरते हुए सैनिक उन्हें दीपक पर मरते पतंगों की भांति लगते हैं। इसी कारण वह हिन्दुओं को पतंगा कहते हैं जो दीपक रूपी युद्धाग्नि देखते ही आहुति के लिए दौड़ पड़ते हैं।

जायसी ने वीर बहूटी आदि के बिम्ब भी दिए हैं जो प्रधानतः वर्ण या अनुरूपता को स्पष्ट करने के लिए आये हैं।

जायसी का बहु प्रयुक्त बिम्ब सीप भी है। सीप का प्रयोग दो रूपों में हुआ है। एक तो यहां उसका आकार कवि की दृष्टि में रहा है जैसे नैन वर्णन में

नैन सीप आछहिं तस भरे
जानु मोति गिरहिं सब ढरे।

(९४ ४)

यही बिम्ब कई बार आया है। दूसरा रूप है जहां कवि की दृष्टि उसके गुण—स्वाति बूंद को ग्रहण करना और मोती निर्मित करना—पर रही है। इस रूप में प्रेमिका की प्रतीक्षा के लिए बार बार सीप का उपमान आया है

जब लगि पीउ मिलै तोहि साधु पेम क पीर
जैसे सीप सेवाति कहँ तबै समुद मंझ नीर।

(१७१ ८-९)

यह बिम्ब भी बार-बार दोहराया गया है। वस्तुओं से गृहीत यह सभी बिम्ब मुख्यतः धर्म और रूप साम्य पर आधारित है। धर्म साम्य में हम मछली पतंग भ्रमर, सर्प आदि को ले सकते हैं और रूप साम्य में सीप सर्प मगर आदि को रख सकते हैं।

समष्टि में प्रकृति से गृहीत यह सभी बिम्ब जायसी के अध्ययन की विशालता, अन्तर्दृष्टि की गहराई और निरीक्षण की सूक्ष्मता को व्यक्त करते हैं। प्रकृति के यह विभिन्न क्षेत्र और विभिन्न उपकरण उनके हृदय की व्यापकता और उदारता के परिचायक हैं। इनमें जिन धर्मों का साम्य लिया गया है वे परम्परागत भी हैं और कवि के आत्म दृष्ट नवीन भी।

(२) जीवन—जायसी ने प्रकृति के अतिरिक्त मानव जीवन के क्षेत्र से भी बहुत से बिम्ब प्रस्तुत किए हैं। यह बिम्ब कवि के अपने जीवन की स्थिति और स्वरूप के परिचायक हैं। किस स्थिति में कवि जन्मा वह कहाँ पला उसके ऊपर क्या-क्या और कैसे-कैसे संस्कार पड़े उसके जीवन पथ पर क्या-क्या वस्तुएं आई जिन्होंने उसे आकर्षित किया। इन सब का परिचय जीवन के क्षेत्र से उठाई गई कवि की उपमायें और बिंब देते हैं।

जायसी के जीवन के क्षेत्र से गृहीत बिंबों को हम ७ भागों में विभाजित कर सकते हैं। (१) लोक जीवन (२) मानव जीवन (३) क्रियाएं (४) खेल कूद, (५) राजसी, (६) खान-पान (७) अस्त्र-शस्त्र आदि।

(अ) लोकजीवन—लोक जीवन से गृहीत बिंब जायसी में बहुत अधिक हैं जो जायसी के ग्राम्य हृदय की सूचना देते हैं। उनकी कविता में लोक जीवन के उपकरण अर्थात् साधारण व्यवहार में आने वाली वस्तुओं के बहुत से बिंब हैं जो एक नगर वासी के लिए बहुत अंशों में अपरिचित हैं। यदि अपरिचित नहीं भी हैं तो उसके हृदय का सान्निध्य उनसे उतना नहीं है जितना जायसी के हृदय का है। ग्रामीण जीवन की वस्तुओं में जायसी ने ओलाती धार का बिंब लिया है। यह रूप साम्य के आधार पर है। छप्पर के किनारों से टपकने वाली यह ओलाती धार अश्रु बहाते [illegible] नेत्रों के लिए कवि का प्रिय उपमान है।

बरसा भया झकोरि झकोरी ओर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी

(१४९ ४)

जायसी में यही बिंब दो बार आया है। दोनों बार यह नैनों का उपमान बन कर ही आया है। रहँट का रूपक भी जायसी को प्रिय है। यह रूप साम्य के आधार पर निर्मित है। क्षण-क्षण पानी से भर कर आने वाली रहँट के डोल क्षण-क्षण खाली होते जाते हैं जैसे आँखें क्षण क्षण आंसुओं से भरती और खाली होती हैं

भए वै नैन रहंट की घरी भरी ते ढारी छूछी भरीं'

(१४० ७)

और भी नैन डोल भरि ढारे हिये न आगि बुझाई
घरी घरी जिउ आवै घरी घरी जिउ जाई।

(२८१ ८ ६)

जल-राश भरने और खाली होने वाले यह रहंट के डोल जायसी को संसार की नश्वरता जीवन चक्र के निरन्तर चलते रहने के प्रतीक भी जान पड़ते हैं

मुहम्मद जीवन जल भरन रहंट घरी की रीत
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीत।

(४२ ८ ६)

कुआँ और रस्सी आदि के बिम्ब भी जायसी ने दिए हैं कुआँ और रस्सी का संयोग सुखकर है उनका अलग अलग होना वियोग का व्यंजक है रस्सी से इच्छा की अनुभूति भी कराई गई है

भँवर भई नाह बिनु तोही, कुआँ परी धरि काढ़हु मोहीं'

(३८१ ७)

इसी प्रकार खेत की मेड़ का बिम्ब भी प्रभाव साम्य पर आधारित है। मेड़ होने से बाहर का पानी खेत में नहीं आता पर मेड़ टूट जाने पर खेत में पानी भर जाता है और खेत नष्ट हो जाता है। राजा भी अपने देश की मेड़ है। अगर मेड़ रूपी सिंहल का राजा अलाउद्दीन की सेना के बाढ़ के पानी से टूट जाता है तो उसका देश तो समाप्त होगा ही आस-पास के देश भी नष्ट हो जायेंगे

चितउर हिंदुन्ह कर अस्थानू सत्रु तुरुक हठि कीन्ह पयानू
आवा समुद्र आइ नहीं बाँधा मैं होइ मेंड़ भार सिर काँधा
पुरवहु आइ तुम्हार बड़ाई नाहितो सत गौ छाड़ि पराई
जौ लगि मेड़ रहै सुख साखा टूटे बारि जाइ नहीं राखा।

(५०१ ४-७)

मर्म और उपयुक्तता की दृष्टि से इस रूपक का विशेष महत्व है। जायसी ने ढाक बदाम केवड़ा आदि जंगली पेड़ पौधों का भी उल्लेख किया है। जायसी ने धन पूनी ध्रुव की रस्सी आदि की उपमाएं भी धर्म और रूप साम्य के लिए दी हैं, जो उनके ग्रामीण हृदय को स्पष्टता प्रदान करती हैं। जायसी के सरोवर के बिम्ब भी धर्म साम्य पर आधारित हैं। सरोवर के ग्रीष्म में टूक-टूक हो जाने का चित्र निश्चय ही गाँव की पोखर का आँखों देखा चित्र है। बरसने पर उसका उल्लास भी इसका समर्थक है

सरवर हिया घटत निस जाई टूकि टूकि होइ होइ बेहराई
बिहरत हिया करहु पिउ टेका दीठि दवँगरा मेरवहु एका

(३५८ ६-७)

यह बिंब जायसी को प्रिय है। पद्मावत में यह दो बार और आया है। इसके अतिरिक्त दीपक के इतने अधिक बिंब जो उसे उजियारे का बड़ा साधन प्रतीत कराते हैं जायसी के लोक-हृदय के द्योतक हैं। भाड़ में भुनते चने का बिंब भी जो नागमती के विरह विदग्ध और एकनिष्ठ हृदय का प्रतीक है जो भ्रम के आधार पर प्रयुक्त हुआ है लोक जीवन का उपकरण है। नागरिक जीवन से उसका उतना संबंध नहीं है।

लोक जीवन के क्रिया-कलापों रीति-रिवाजों का परिचय जायसी के बिंबों में कम आया है। केवल एक बार जादू टोने का उल्लेख है

हु बौरा परा जस सोना भुला जोग परा जनु टोना

(१६६ १)

टोना पड़े व्यक्ति की भ्रमित अवस्था राजा पर आरोपित है जो पद्मावती के रूप के जादू में फंस गया है। यह बिंब गांव की रीतियों और वहां प्रचलित क्रिया कलापों को स्पष्ट करता है।

जायसी में लोक कथाओं का बड़ा प्राधान्य है। अनेक अन्तर्कथाएं पद्मावत में आई हैं जो स्पष्टतः लोक कथाओं के रूप में हैं क्योंकि उनका मौलिक स्वरूप किन्हीं ग्रंथों में समाप्त हो चुका है। आज भी वह लोक कथाएं भारत के गांवों में प्रचलित हैं। परन्तु सभी लोककथाएं बिम्ब रूप में नहीं आई हैं। जायसी ने अधिकतर उनका उल्लेख भर किया है। बिम्ब या तुलना प्रस्तुत नहीं की है। परन्तु कुछ लोक कथाएं बिम्ब भी प्रस्तुत करती हैं। रामकथा का स्थान उनमें सबसे पहले आता है। जायसी ने राम और सीता की अवस्था के मार्मिक चित्र रत्नसेन और पद्मावती पर घटित किये हैं जिनसे प्रभाव में आशातीत वृद्धि हुई है। यह सभी बिम्ब परिस्थिति साम्य को प्रकट करते हैं। चिन्ताकुल बैठी पद्मावती का रूप इस तरह देना।

पदुमावतिहि सोच अस होता जस असोक तर बैठी सीता

(४१४ १)

राजा और उसकी मां की भेंट के समय उसे कौसल्या और राम की भेंट बताना। समुद्र खण्ड में समुद्र का राजा से यह कहना

तुई एक आगर मैं भेंटा जैस राम दसरथ कर बेटा
ओहि मेहरी कर परा बिछोवा एहि समुद माह फिर फिर रोवा

(४११ ४६)

बिम्ब की सृष्टि करता है परिस्थिति साम्य यहां प्रभावशाली हो गया है। अंत में राम सीता साम्य पद्मावती और रत्नसेन के लिए रूढ़ हो गए हैं। कवि ने लंका और रावन से श्लेषात्मक अर्थ भी निकाले हैं। राम रावण के युद्ध और मूर्च्छितावस्था में राजा के लिए शक्ति बाण से युद्धस्थल में मूर्च्छित लक्ष्मण के बिम्ब भी आए हैं। इस प्रकार राम कथा का कवि ने बिम्ब सृष्टि के लिए बार-बार प्रयोग किया है। हनुमान को विरह का प्रतीक माना है जो लंका की जैसी दाहक अग्नि शरीर में प्रज्व

मिला कर देता है। दहरार के लिए अंगद और हनुमान का भी उल्लेख है। कवि ने इन बिम्बों मे राम कथा को मनमाना रूप दिया है। उसने वह राम कथा दी है जो लोक गाथाओं के द्वारा एक बहुश्रुत मुसलमान कवि के पास पहुची थी।

राम-कथा के अतिरिक्त श्रवण कुमार की कथा भी जायसी के बिम्बों का साधन है। यहा भी परिस्थिति साम्य ही आधार बना है। रत्नसेन के वियोग में विलाप कुल माँ श्रवण की अन्धी माता व अन्धे पिता की भांति है। नल-दमयन्ती की कथा के प्रसंग में तोते [illegible] की उपमा भी दी गई है जिसने नल-दमयन्ती का संयोग कराया था। ऊषा-अनिरुद्ध साम्य से पद्मावती और रत्नसेन के अपार प्रेम का स्वरूप स्पष्ट किया है। इसके अतिरिक्त गोपीचन्द भर्तृहरि विक्रम भोज आदि की कथाएं भी आई हैं। इन भारतीय लोक कथाओं के अतिरिक्त मुगल कथाओं में नौशावा आदिल उमर सिकंदर आदि कथायें भी आई हैं। पौराणिक कथाओं में अगस्त्य ऋषि के समुद्र सोख लेने का रूपक कई स्थलों पर आया है। पद्मावती के दुख समुद्र के सूख जाने पर राजा अगस्त्य के रूप में आता है

हुत जो अपार बिरह दु:ख सोखा, जनहु अगस्ति उदधि जस सोखा
(१२४ ७)

जायसी के हृदय मे लोक हृदय से प्राप्त एक विश्वास और है वह है राजा का इन्द्र के रूप में देखना। भारत की भरत के पात्रो में इस विश्वास की जड़ें खोजी जा सकती हैं। लोक-कथाओं से सुने स्वर्ग जो जायसी के यहां कविलास या स्वर्ग है वहां के राजा इन्द्र और उसके दरबार की अप्सरायें सब कवि के मस्तिष्क में गहरी जमी बैठी है। ध्यान देने की बात है इस सामग्री का प्रयोग केवल राजा राजधानी रानी, सखियां राजा स सम्बन्धित व्यक्तियों के लिए हुए हैं। जायसी का हर राजा इन्द्र का स्वरूप है और राजधानी स्वर्ग

का राजा हौं बरनौं तासू सिंहल दीप आहि कविलासू
गंधरब सेन तहाँ बड़ राजा, अछरन्ह माँह इन्द्र बिधि साजा।
(९१ १४)

राजसभा इन्द्र सभा है, राजा नगरी क वृक्ष कल्पतरु हैं हाथी आदि ऐरावत हाथी हैं। रानी और उसकी सखियों के लिये तो अप्सरा शब्द १९ बार आया है। भवन भूमिका रानी और सखियां अप्सराएं ही तो हैं

बरनौं राज मंदिर कविलासू, अछरिन्ह भरा जानु कविलासू। आदि
(४६ १)

यहां तक कि गुम्बद अंटिकाओं से सज्जित कमर भी कवि को इन्द्र का अखाड़ा प्रतीत होती है। यहां विभिन्न राग रागिनियां सुनाई पड़ती हैं। जायसी के मन पटल पर स्थित यह बिम्ब कहीं-कहीं अंशों में और कहीं समग्र रूप में आया है। समष्टि में सम परिस्थिति और रूप का साम्य देने के लिए कवि ने लोक जीवन के उपकरणों आचारों कथाओं आदि को सुन्दर रूप से प्रस्तुत किया है।

(आ) मानव जीवन—प्रत्येक कवि मानव समाज का एक अंश होने के नाते प्रकृति के साथ-साथ मानव जीवन को भी अपने काव्य में प्रतिबिम्बित करता है। प्रकृति प्रेम कितना भी अधिक क्यों न हो पर मानव मानव जगत को बिल्कुल त्याग नहीं सकता। जायसी के काव्य में मानव जीवन में प्रयुक्त वस्तुओं मानव की अवस्थाओं अंगियों जन्म और मृत्यु आदि के बहुत से चित्र हमें प्राप्त होते हैं। मानव जीवन से गृहीत चित्रों की संख्या ६१ है।

मानव जीवन के उपकरणों में कवि ने दीपक का बिम्ब सबसे अधिक लिया है जो रूप और गुण साम्य पर आधारित है। प्रकाश दायक होने के कारण वह आनन्द देने वैभव ज्योति और सुख का द्योतक बन गया है। ज्योति स्वरूप मुहम्मद साहब के लिये दीपक का बिंब ही आया है

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा नाउँ मुहम्मद पूनिउँ करा
प्रथम जोति विधि तेहिक साजी औतिहि प्रीति सिस्टि उपराजी।
दीपक लेसि जगत कहुँ दीन्हा भा निरमल जग मारग चीन्हा
जौं न होत अस पुरुष उजियारा सूझि न परत पंथ अंधियारा

(११ १४)

संसार में भटकते हुए मनुष्य को सही मार्ग दिखाने वाला प्रेम भी दीपक ही है

जैसा हिया पेम कर दिया उठी जोति भा निरमर हिया
मारग हुत अंधियारा असूझा भा अंजोर सब जाना बूझा।

(१८ २१)

दान भी अन्धेरे संसार में प्रभु के पास तक ले जाने का मार्ग ज्योतित करने के गुण के कारण प्रकाशवान दीपक का ही रूप है।

दिया करै आगे उजियारा जहाँ न दिया तहाँ अंधियारा
दिया मंदिर निसि करै अंजोरा दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा

(१४५ ६९)

दान का यह प्रकाश छिप जाने पर संसार अन्ध कूप सदृश्य हो जाता है।

दीपक को प्रकाश और तेज का स्वरूप मानने से ज्योति के कारण नक्षत्रों मणि माणिक्यों को भी दीपक कहा गया है, जो अन्धेरी रात में भी उजाला करते रहते हैं यहाँ रूप साम्य प्रधान है। केशों के घने अन्धेरे में प्रकाश करने वाला सिन्दूर भी दिया है। यहाँ वर्ण साम्य पर भी कवि की दृष्टि गई है

बरनौं माँग सीस उपराहीं, सेन्दुर अबहिं चढ़ा तेहि नाहीं
बिनु सेंदुर अस जानहुँ दिया उजियरि पन्थ रैनि महँ किया।

(१० १२)

दीपक के साथ-साथ कवि ने निरन्तर जलने वाली दीपक की बत्ती को भी

देता है अपने निरन्तर प्रज्वलित रहने के धर्म के कारण वह कवि के मानस में विरहाग्नि निरन्तर दग्ध होने वाली प्रेमिका का प्रतीक बन गई है

जरै बिरह ज्यों दीपक बाती भीतर जरै ऊपर होई राती।

(१०८, ६)

विरह विदग्धा नायिका के लिए यही बिम्ब कई बार दोहराया गया है।

दर्पण और उसके प्रतिबिम्बित करने के धर्म ने भी जायसी को बहुत आकृष्ट किया है दर्पण में एक होने पर भी भिन्न-भिन्न रूपों के भिन्न-भिन्न प्रतिबिम्ब पड़ते हैं। इसी कारण सिंहल द्वीप भी दर्पण है जहां प्रत्येक व्यक्ति अपना प्रतिबिम्ब देख सकता है

दरपन दरपन भाँति बिसेखा जो जेहि रूप सो तैसई देखा

(२९ २)

दर्पण और प्रतिबिम्ब का यह बिम्ब कई स्थलों पर आया है। दर्पण कई होने पर एक वस्तु के अनेक प्रतिबिम्ब पड़ते हैं जैसे सेना की हर ढाल हर तलवार एक राजा का प्रतिनिधित्व करती है अथवा प्रतिबिम्बित करती है। परन्तु दर्पण में पड़ता प्रतिबिम्ब भी बीच में स्थित ईश्वर की तरह अग्राह्य है—

"जनु आहि दरपन मोरा हिया तेहि मंह दरस देखावै पिया।
नैन नियर पहुंचत सुठि दूरी अब तेहि लाग मरौं सुठि झूरी॥

(४०१, २१)

दर्पण स्वच्छता चमक आदि का रूप प्रस्तुत करने में भी समर्थ हुआ है। वस्तुतः दर्पण के यह बिम्ब जिनमें उसके धर्म और रूप आधार बने हैं जायसी के सूक्ष्म निरीक्षण के परिचायक हैं।

जायसी ने धूल आदि की उपमाएं भी दी हैं। धूल जीवन में निकृष्टता क्षुद्रता और व्यर्थता को बिम्बित करती है। जायसी ने मनुष्य प्रेम से रहित शरीर को धूल कहा है

"मानुस प्रेम भयउ बैकुंठी, नाहिं तो काह छार एक मूठी।

(१११ २)

रत्नसेन भी अपनी क्षुद्रता को धूल कह कर व्यंजित करता है। निर्जीव शरीर भी व्यर्थ होने के कारण मिट्टी या धूल है।

जायसी ने चित्र और मूर्तियों के बिम्ब भी, जिसमें रूप और प्रभाव का साम्य है दिये हैं। चित्र के तात्कालिक प्रभाव का जायसी को बड़ा अनुभव है वह उसे चित्र रूप में भी प्रस्तुत करते हैं।

एक रूप कर जैसेहि दीठा चित्त समाइ होइ चित्र पईठा

(२३८ १)

रूप दर्शन के पश्चात भी तात्कालिक प्रभाव के कारण उसे चित्र कहा गया

है। जायसी मूर्ति या चित्र की सुन्दरता और निर्जीवता का भी ध्यान रखते हैं इसलिये मूर्च्छित पद्मावती के लिए 'चित्रमूरति' कहा गया है

जानहुं चित्र मूरति गहि लाई पाटा परी रही तसि लाई।

(११७ १)

चित्रों के रंगों की मोहकता का रूप तालाब में तैरते रंग बिरंगे पक्षियों से प्रकट है:

कनक पंखि पैरहि अति लोने जानहु चित्र संवारे सौने

(३१ ७)

कागज की गुड़िया का बिम्ब रूप साम्य के आधार पर सुन्दरता व निर्जीवता की दृष्टि से प्रस्तुत किया गया है यह भी मूर्च्छित और अनन्य अनुरागमयी पद्मावती का उपमान है

कागर पुतरी जैस सरीरा पवन उड़ाइ परा मझ नीरा
लहरि झकोरि लहरि जस भीजी तबहि रूप रंग नाहीं छीजी

(११८ २ ३)

स्वप्न में क्षणिकता और असारता का गुण है उसका रूपक सदैव क्षणिकता और असारता की प्रतीति कराता है। जीवन व संसार क्षणभंगुरता के कारण स्वप्न सदृश ही है।

यह संसार सपन कर लेखा बिछुरि गयउ जानहु नहिं देखा

(११२ १)

क्षणिक सुख के लिये स्वप्न का उपमान अन्यत्र भी आया है।

जायसी ने काठ के घोड़े जिसको अन्दर से ऐंठ कर व्यक्ति नचाता है या चलाता है का भी बड़ा सार्थक उपमान दिया है। प्रेमी व्यक्ति का शरीर काठ का घोड़ा है जिसे प्रेम जिस तरह चाहे चलाय या नचावे

पेम क लुबुध बहिर भी अंधा नाच कोड़ जानहु सब अंधा
जानहु काठ नचावै कोई जो जिऊ नाच न परगट होई।

(५२ २ ६)

शिष्य के लिए भी यही बिम्ब आया है। क्योंकि वह भी गुरु के इशारों पर उसी तरह चलता है जैसे काठ का घोड़ा। धर्म की समानता के आधार पर निर्मित यह बिम्ब भाव-व्यंजना की दृष्टि से बड़ा सार्थक है।

स्तम्भ का बिम्ब उसके दृढ़ता के गुण के लिए आया है। स्तम्भ दृढ़ता का प्रतीक है। गोरा बादल विशाल राज्य के स्तम्भ हैं।

तुम्ह गोरा बादल खम्भ दोऊ, जस भारत तुम्ह और न कोऊ

(१०१ २)

जायसी के मैंड़ सौसाती बार रहँट के डोल आदि के रूपक भी बड़े व्यापक हैं। इनकी चर्चा पीछे हो चुकी है अतः यहां अनावश्यक है।

अन्य बिंबों में घर का बिंब और कलम व स्याही का रूपक भी आंचक है। मेघुर (रस्सी) और धागे आदि का बिंब केवल क्षीणता को व्यंजित करता है। हिंडोले का बिंब हृदय के चंचलपन को उपस्थित करता है। सराय का बिम्ब भी अस्थायित्व में आता है। समष्टि में जीवन के उपकरणों के बिम्ब उनके विभिन्न गुणों रूपों आदि पर आधारित है कवि की विशिष्ट दृष्टि व परख को प्रदर्शित करते हैं।

जीवन की अवस्थाओं में जायसी ने वय के अनुसार केवल एक रूप दिया है। बालक के रूप का भी विशेष मर्मस्पर्शी नहीं बन सका है। अवस्थाओं में अचेत (बावला) व्यक्ति का बिंब दिया है। अचेत अथवा पागल का मन मौन और दीवाना पन उनको इष्ट रहा है

कठिन वियोग जोग दुख दाहू, जरतहि मरत होइ ओर निबाहू
डर लाजहि न डुलाए डुला जीवहि भांति लाइ का भूला

(१४४, ३ ४)

यह बिम्ब कई बार प्रयुक्त हुआ है। इन बिंबों में मेहमान (पाहुन) की उपमा बड़ी सार्थक है। मेहमान का क्षणिक परिचय उसमें ही अपार सुख और चले जाने के बाद दुख और निराशा का दुख जीवन की क्षणिकता सुख और बाद के दुःख की द्योतक है

कब छोर कब पवन खोना, यह जोबन पाहुन जस होना

(३६४ ६)

जोगी का रूपक भी पद्मावत में कई बार आया है। जोगी की दरिद्र और विचित्र अवस्था उनका रूप अर्थात् वय प्रधान रहे हैं। आखिरी कलाम में दूल्हे का बिम्ब भी मुहम्मद साहब के लिए आया है —

आगे उमत सब बैठे और की पूरी पांति।
सबके मोल मुहम्मद दुलह आपहुं बराति ॥

(आ ४६)

व्यवसाय में केवल शिकारी और ठगियार का उल्लेख है। इन दोनों बिबा में धर्म की समानता मूल में रही है। भौंहें रूपी धनुष से प्रेमी हृदयों का संहार करन वाले नैन शिकारी हैं। अपना समस्त शृंगार प्रिय को सौंप देने वाली पद्मावती की उपमा ठगियार—वाली रखने वाली से की गई है। वा अत्यधिक व्यंजक है। उसका शृंगार उसके पास होकर भी उसका नहीं है मानो वह प्रिय की थाती है जिसकी उसे रक्षा करनी है।

जस किछु दीजै धरै कहूँ आपन लीजै सम्हार
तस सिंगार सब लीन्हेसि, मोहि कीन्हेसि ठगियार।

(३२२ ८-९)

शरीर और अंगों के बिम्ब जायसी ने नहीं के बराबर दिये हैं। मानव शरीर की तुलना गढ़ से की गई है जो सैद्धान्तिक अधिक होने से आत्म...

हो सकी है। शरीर और आत्मा का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध रत्नसेन और पद्मावती के द्वारा स्पष्ट हुआ है, राजा का विरह पद्मावती में भी व्याप्त है क्योंकि काया का दुख जीव (आत्मा) को भी रोगी बना देता है

अब तुम्ह कया जीव यह जोगी
कया क रोग जीव पै रोगी।

(२२९ ७)

मृत्यु एवं बीमारियों में जायसी का ध्यान बीमारियों पर बिल्कुल नहीं गया है। केवल एक जगह फोड़े का उल्लेख भर है। मृत्यु को यंत्रणा देने वाली और त्रास दायिका के रूप में स्वीकार किया है। प्रियतम को दूर ले जाकर विरह की दाहक अग्नि में डाल देने वाला तोता अपने त्रासदायक और निर्दयी होने के गुण के कारण नागमती के लिए काल का ही रूप है और जीवन को समाप्त करने की चेष्टा में लगा विरह भी काल के सदृश है

जानहि जीउ मन मरहि तरासा विरह काल होइ जीउ गरासा

(३४६ ५)

समष्टि में मानव जीवन से गृहीत उपमान यद्यपि कवि की व्यापक दृष्टि के सूचक (उपकरणों को छोड़कर) नहीं है पर कवि की रुचि का सूक्ष्म निरीक्षण इसमें स्पष्ट है।

(इ) क्रियायें—जायसी ने बहुत से बिंब क्रियाओं जिसके अन्तर्गत हम शिल्प और कलाओं को लेते हैं, से भी ग्रहण किये हैं। जायसी ने शिल्प संबंधी बिंब कला की अपेक्षा अधिक लिये हैं। संभवतः कलाकारों की अपेक्षा शिल्पियों से उनका परिचय अधिक था।

शिल्प में सबसे अधिक बिम्ब रसायनशास्त्र के क्रियाकलापों से लिये हैं। जिन में धर्म व प्रभाव साम्य प्रमुख हैं। जन्म खंड में चंपावति को रूपा (चाँदी) और पद्मावती को स्वर्ण मानकर, रसायन शास्त्र की चाँदी साफ करने की विधि जिसे सलोनी कहते हैं का रूपक दिया है

चंपावति जो रूप सँवारी पदुमावति क जोति मन छाँवारी
भै चाहै असि कथा सलोनी मैटि न जाइ लिखी जस होनी

(५० १२)

सीसा मिलने से सोना बिखर जाता है कलंकित हो जाता है और सुहागे से वह शुद्ध हो जाता है प्रीति के कंचन में खोट का सीसा भी प्रेम को विद्रूप कर देता है

परा प्रीति कंचन महं सीसा बिछुरि न मिलै स्याम पै दीसा
कहाँ सोनार पास बेहि जाऊँ, देइ सोहाग करै एक ठाऊँ।

(८६ १७)

सोने और सुहागे की यह उपमा बहुत अनोखी की गई है। सुहागे से स्वर्ण सुन्दरतम हो जाता है। पद्मावती भी शुद्ध और पूर्ण होने के लिये रत्नसेन रूपी सुहागे की कामना करती है। यह प्रभाव का सादृश्य है। शुद्ध स्वर्ण के साथ श्रेष्ठ रत्न (नग) ही जड़ जाता है इससे रत्नसेन को कई बार श्रेष्ठ नग कहा गया है। जो उसकी पात्रता की ओर संकेत करता है। यह रूपक स्वर्णकार से लिया गया है।

मरजिया (समुद्र से मोती ढूंढने वाला गोताखोर) से भी जायसी ने बहुत-सी तुलनाएँ दी हैं जो बड़ी सक्षम हैं। मरजिया साहस दृढ़ता और कर्मठता की प्रतिमूर्ति है जिससे भी बड़ा रत्न या स्वर्णकार को मरजिया बनकर पा सकता है और राजा भी इसी भांति सिंहल गढ़ पा सकता है

जस मरजिया समुद्र धंस हाथ आव तब सीप
ढूंढि लेहि जो सरग दुआरी चढ़ै सो सिंघल दीप

(२१५ ८ ६)

अन्यत्र भी इसी बिम्ब को लिया गया है।

जायसी ने कुम्हार के चाक का भी बिम्ब लिया है। यहाँ रूप और प्रभाव पर बिम्ब निर्मित है। यह उसके व्यापक ज्ञान को सूचित करता है।

फिरे लाल तोहि अस भाई
जनु कुम्हार धरि चाक फिराई।

(११७ ४)

जायसी ने मनुष्य की तुलना गुण व प्रभाव साम्य के कारण कुम्हार के बनाए मिट्टी के बर्तन से की है जो कच्चा चाक पर चढ़कर निर्मित हुआ है

घरा जो हाँड आपन सब कोऊ का निचित माटी कर भाँड़ा
तुम्ह ऐहि चाक चढ़ हो काँचे आपन फिरै न थिर होई बाँचे
घरी जो भरै घटै तुम आऊ का निचित सोवहु रे बटाऊ
पहरहिं पहर गजर नित होई हिया निसोगा जाग न सोई।

(४२, ४-७)

जायसी ने घड़ाव बनाने की क्रिया का भी एक रूपक लिया है—

बिरह सभय कीन्ह तन माठी हाड़ जराई कीन्ह जस काठी
नैन सो पोती किया तस मन चूना भरै जनु दीया।

(१२४ ६ ५)

एक अन्य स्थल पर विरह पीड़ित पद्मावती के लिए वैद्य रूप में तोते का भी उल्लेख है जो उसकी पीर को जानकर औषधि रूपी औषधि देता है।

कलाओं के बिम्बों में जायसी ने चित्र कला के बिम्ब ही प्रस्तुत किये हैं। चित्र का नाना प्रकार के रंगों से बनना और पानी से क्षण में ही मिट जाने का बिम्ब कवि ने इस प्रकार दिया है।

चितउँहि जो चित्र कीन्ह धनि रोंव रोंव रंग समेटि
सहस साल दुख आहि भरि मुरुछि परी गा मेटि ।

(२४७ ८ ६)

रंग का पानी में सहज ही मिल जाने का गुण कवि को आकृष्ट करता है । अपने को भूलकर परमात्मा (रानी) में लीन हो जाने वाला रत्नसेन रंग सदृश है—

रंगहि पानि मिला जस होई आपुहि खोइ रहा होइ सोई

(२१५ ५)

यही बिंब अन्यत्र भी पाया है ।

संगीत के वाद्य यन्त्र सारंगी का बिंब भी विरह विदग्ध पीड़ित नागमती के लिए प्रयुक्त हुआ है ।

हाड़ भये सब कींगरी नसें भईं सब तांति
रोवँ रोवँ तन धुनि उठे कहौं बिथा केहि भाँति ।

(३६१ ८ ६)

भौगोलिक ज्ञान की परिचायक उपमाएं भी कवि ने दी हैं । पद्मावती के वक्षस्थल के लिये जायसी ने स्याम सीरिया और रूम-कुस्तुन्तुनियाँ की उपमा दी है । इन दोनों की सीमाएं एक दूसरे को छूती भी हैं यह जायसी के भौगोलिक ज्ञान की परिचायक है । प्रयाग और अरइल (अरावली) की पहाड़ियाँ और वहाँ गंगा यमुना के मिलन की उपमा भी भौगोलिक ज्ञान की परिचायक है । जायसी में ज्योतिष सम्बन्धी भी कुछ उपमान मिल जाते हैं समष्टि में विद्याओं शिल्प और कला से गृहीत यह बिम्ब उसकी दृष्टि की विशालता के सूचक तो हैं पर उसके विशिष्ट ज्ञान के नहीं । उसकी रुचि रसायन शास्त्र में अधिक है संगीत चित्रकला आदि से भी उसका थोड़ा परिचय है ।

(ई) खेलकूद—जायसी ने खेलों के अधिक बिंब नहीं लिए हैं सम्भवतः खेलों में उनकी रुचि कम थी । उन्होंने मुख्यतः शतरंज और चौगान (जो पोलो की तरह का कोई खेल था घोड़े पर बैठ कर खेला जाता था) के ही बिंब लिए हैं । शतरंज से जायसी को काफी मोह है । युद्ध शृंगार के प्रसंगों में भी वह कुछ सादृश्य और कुछ श्लेष के बल पर शतरंज का रूपक देने से चूके नहीं हैं परन्तु बलात् लाये जाने के कारण यह भाव—व्यंजना की दृष्टि से व्यर्थ सिद्ध हुए हैं । धर्म साम्य के आधार पर राजा अलाउद्दीन की उपमा शतरंज के प्यादे (पैदल) से देना बड़ा व्यंजक सिद्ध हुआ है । प्यादा चलता सीधा है पर मारता बायें दायें है प्रेम का लोभी राजा भी खेल तो सामने रहा था पर कनखियों से दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब पाने की चेष्टा कर रहा था —

पेम क लुबुध पयादे पाऊं,
चलै सौंहँ ताकै कोहनाऊं

(२६७ २)

यहाँ वर्ण का साम्य बिम्ब को बड़ा सारगर्भित बना देता है। चौगान के बिम्ब भी जायसी ने पर्याप्त दिए हैं परन्तु इसका भी यहाँ वीर और शृंगार दोनों पक्षों में दिया गया है। यहाँ यह अपना सौन्दर्य खो बैठा है। जहाँ प्रथम युद्ध में इसका बिम्ब है

हुइ चौगान तुरक कस खेला। होइ खेलार रन जुरी अकेला॥
तब पावौं बादशाह साह गाँठ। जीत मैदान गोइ लै जाऊँ॥
आजु खड्ग चौगान गहि करौं सीस रिपु गोइ।
खेलौं सौंहें साहि सौं हाल जगत महँ होइ॥

(६२९ ८-९)

यहाँ इस खेल के बिम्ब का सौन्दर्य निखरा है। जायसी ने पतंग डोरी के खेल का भी रूपक दिया है। अलाउद्दीन के मन रूपी पतंग की डोरी पद्मावती के हाथ में थी। इसी कारण वह शतरंज के समय अन्यमनस्क सा था। जायसी ने इसकी तुलना उस पतंग से की है जिसकी डोरी किन्हीं अन्य हाथों में होती है और पतंग उनके संकेत पर ही नाचती है। संक्षेप में खेलकूदों के इन बिम्बों से प्रतीत होता है कि कवि की रुचि खेलों में केवल शतरंज और चौगान की ओर है। काव्य में उनका सम सादृश्य पाकर कवि ने उन्हें बिम्ब रूप में सफलता से प्रस्तुत किया है।

(ई) राजसी—जायसी ने राजकीय वस्तुओं क्रियाकलापों आदि के बिम्ब बहुत कम दिए हैं। इसका कारण राजसी जीवन से उनके परिचय का अभाव प्रतीत होता है। जो बिम्ब दिए भी हैं वह ऐसे हैं जो सर्वसाधारण व्यक्ति की दृष्टि में आ जाते हैं। जैसे सिंहासन पर बैठा राजा सेना आदि। सिंहासन पर आसीन छत्र धारण किए राजा का बिम्ब रूप साम्य के कारण दो स्थलों पर आया है। एक नखशिख वर्णन में दूसरे सिंहल वर्णन में

तेहि सिंगार पर तिलक बईठा। दुइज पाट जानहु ध्रुव डीठा॥
कनक पाट जनु बैठे राजा। सबै सिंगार अस लै साजा॥

(१०१ २६)

सभा का वर्णन दो स्थानों पर नायिका के अंग प्रत्यंगों एवं मांग सज्जा पर आरोपित है। यद्यपि वीर और शृंगार का विरोध नहीं है परन्तु ये स्पष्ट भाव के उपकारक नहीं बन पा सके हैं। अषाढ़ मास के वर्णन में इस बिम्ब को अवश्य सफलता मिली है। विरह विदग्धा नागमती के ऊपर काम कामी बादल सताने और कष्ट देने के कारण आक्रमणकारी ही प्रतीत होते हैं।

चढ़ा असाढ़ गगन घन गाजा। साजा विरह दुंद दल बाजा॥
धूम स्याम धौरे घन धाये। सेत धुजा बग पाँति देखाए॥
खड़ग बीजु चमकहिं चहुँ ओरा। बुंद बान बरसहिं घन घोरा॥

(३५४ [illegible])

धर्म साम्य के आधार पर सेना का बिम्ब आया है । सेना के प्रयाण का अच्छा बिंब जायसी ने अपनी अनुकरण प्रवृत्ति के लिए दिया है

हौं सब कविन्ह केर पछिलगा किछु कहि चला तबल देइ डगा

(२१ १)

सेना के प्रयाण के समय तबल (नक्कारा) बजता है उसकी आवाज पर पीछे वाले सिपाहियों को भी आगे बढ़ कर सबके साथ पैर मिलाकर चलना होता है । जायसी के अनुसार यही गति उनकी है पिछलगा होने के कारण उन्हें भी कुछ काव्य रचना करनी पड़ रही है । जायसी का यह रूपक उनके सेना विषयक विशिष्ट ज्ञान का परिचायक है ।

(ऊ) खानपान—खानपान का बिम्ब भी पद्मावत में आया है । खाने पीने के उपकरण अर्थात् बर्तनों आदि में उन्होंने थाल कचोरे सुराही और सिल को लिया है । थाल वक्षस्थल के लिए बहु प्रयुक्त उपमान है । विशालता की भावना से यह उपमान आया है । नागमती रत्नसेन के विशाल हृदय के लिए कहती है

रहिहु बिसरि हम्हे मन भोरे लागौं कंत थार जिउ तोरे

(२५२ ७)

रूप को प्रकट करने के लिए कचोरा उपमान नख के लिए प्रयुक्त हुआ है । नेत्रों के लिए भी मद भरे कटोरे का रूप दिया गया है

नैन कचोर पेम मद भरे भई सुदिस्टि जोगी सौं ढरे

जोगी दिस्टि दिस्टि सो लीन्हा नैन रूप नैनन्ह जीउ दीन्हा

(१६४ १४)

नेत्र मोती भरे कटोरे हैं

नैन कंचोर भरे जनु मोती

(४१७ ५)

सुराही ग्रीवा के लिए परम्परागत उपमान है जो ग्रीवा के रूप को प्रकट करता है । नेत्र से टपकते आंसुओं के लिए भी पानी ढालती सुराही का बिम्ब आया है । सिल की उपमा बूढ़ी के लिए आई है जो सिल की तरह हर जगह अपने कुकृत्य के लिए बहुत अधिक कूट दी गई है । यह उपमान बूढ़ी की दुरावस्था के रूप को प्रकट करता है

कैरत नैन चेरि सो छूटी मैं कुटनी कुटनि तासि कूटी ।

(६६६ ६)

खाद्य सामग्री म पानी घी, तेल नमक आदि के बिम्ब आए हैं । पानी की तरलता शीघ्र हल जाने का गुण जायसी को आकृष्ट करता है । इसी गुण के कारण वह प्रेमपूरित हृदय को पानी कहता है

जेहि जिय पेम पानि भा सोइ जेहि रँग मिलै तेहि रंग होइ

यह सब बहुत लो बूझि न करिए बरन देखि पानि होइ हरिए ।

(२४१ २ १)

आग पानी का विरोध भी जायसी को प्रिय है । सुल्तान के सेवक आग की तरह दाहक थे पर घूस (रिश्वत) लेते ही वह पानी हो गए । उन्हें जैसे चाहा शान्त किया गया । घी की उपमा पिघलने के धर्म की दृष्टि से की गई है । घूस लेकर सेवकों का हृदय घी की तरह पिघल गया जो दृढ़ता थी वह बह गई ।

नमक का प्रयोग घाव पर नमक छिड़कना अर्थात् अप्रियता के अर्थ में ही किया गया है, जो मुहावरे के रूप में है ।

कवि नागमती की विरहाग्नि में विकल दशा का चित्रण और एकनिष्ठता का संकेत भाड़ में भुनते चने से करता है । जो निरन्तर दग्ध होने पर भी उसे छोड़ना नहीं चाहता उसी में रहना उसे प्रिय है । निरन्तर दग्ध होने का यह गुण नागमती पर आरोपित है ।

लागेउ जरै जरै जस भारू फिर फिर भूजसि तजांहि न बारू

(१५४ ५)

विरह की विकलता की तुलना कड़ाही में गर्म तेल (तड़पता तेल) से भी की है । जो रूप को प्रकट करती है । आग की उपमा अधिकतर उत्तेजना व क्रोध के लिए की है, कहीं कहीं प्रकाश या ज्योति के कारण भी उसे प्रस्तुत किया गया है—जैसे केशों के बीच सेन्दुर पूरित माँग को आग कहना । आग का सबसे सुन्दर बिम्ब धुएँ देख की आग काहि जो पद्मावति के हृदय की विरहाग्नि और दुःख रूपी धुएँ के लिए प्रयुक्त हुआ है । रूप का इतना युक्तियुक्त साम्य अत्यन्त उत्तम है । धुआँ होने पर आग प्रकट नहीं होती इसी प्रकार दुःख के धुएँ से विरहाग्नि भी अप्रकट थी

दर्द विरह दारुन हिय काँपा, खोलि न जाइ विरह दुख झाँपा

(२११ ४)

विरह चिनगारी रूप है जो प्रज्वलित होकर महान प्रेमाग्नि में परिणित हो जाता है—अतः जायसी कहते हैं

गुरु विरह चिनगी पै मेला, जो सुलगाइ लेइ सो चेला

(१२६)

खाने पकाने की प्रक्रिया में जायसी ने सीक कबाब बनाने की क्रिया का रूपक रूप साम्य के लिए लिया है विरह की सलाख पर मांस भुन रहा है जिससे रक्त के आँसू टूट कर गिरते हैं

विरह सरागन्हि भूजै माँसू । गिर गिर परहिं रक्त कै आँसू

(१५४ ७)

इन बिम्बों से खानपान की ओर कवि की साधारण रुचि का ज्ञान होता है । जायसी मुसलमान थे इसलिए मुसलमानी खाने के बिम्ब ही वह दे सके हैं ।

(ए) अस्त्र शस्त्र—अस्त्र शस्त्रों में जायसी ने अधिकतर तलवार धनुष और बाण का ही प्रयोग किया है। जायसी का अस्त्र शस्त्र से भी कम परिचय था ऐसा प्रतीत होता है।

तलवार की तुलना क्षीणता और नुकीलेपन के आधार पर नासिका से की गई है जो रूप प्रस्तुत करने के लिए परम्परागत है। रुधिर पूरित तलवार को मांग बताया गया जो रंग साम्य के आधार पर है। परन्तु यह बिम्ब परम्परागत और भाव व्यंजना में विशेष सहायक नहीं हुए हैं। कवि की वाणी को तलवार कहना भावाभिव्यक्ति में अवश्य तीव्रता लाता है

कवि क जीभ खरग हिरवानी एक दिसि आग दोसर दिसि पानी

(४२ ४)

अर्थात् कवि की वाणी तलवार है जिसमें युद्ध और शान्ति दोनों की शक्ति है। तलवार में तेज करने पर एक ओर चिनगारी निकलती है दूसरी ओर पानी (भाव) चढ़ता जाता है।

धनुष की उपमा अधिकतर रूप के आधार पर भौंहों से दी गई है और नेत्रों के लिए अधिकतर बाण—कटाक्ष—बाण का प्रयोग हुआ है। तीक्ष्णता व तीव्रता के लिए भी कहीं कहीं बाण का उल्लेख हुआ है।

भावसती व्याकरन सरसुती पिंगल पाठ पुरान
भेद भेद सै बात कहु तस जानु लागहि बान।

(१ ८ ८९)

धनुष से एक दो बिम्ब बड़े व्यंजक बन पड़े हैं। गुण के आधार पर निरन्तर दृढ़ता से आक्रमण सहने वाले दुर्ग की उपमा कवि ने दिन दिन टांक (धनुष की शक्ति परीक्षा का मापदण्ड) के सहने पर दृढ़ से दृढ़तर होते धनुष से दी है

चारि पहर दिन बीता गढ़ न टूट तस बांक
गरुव होत पै आवै दिन दिन टांकहि टांक।

(५२४ ८१)

संक्षेप में अस्त्र-शस्त्र विषयक बिम्ब जायसी के विशेष ज्ञान और सूक्ष्म परीक्षण का परिचय नहीं देते। सम्भवतः इसका कारण उनका इन क्षेत्रों से दूर होना है। यह बिम्ब उनके व्यक्तिगत अनुभव को व्यक्त नहीं करते जन जीवन से गृहीत परम्परा ही उनमें झांकती है।

अंत में जायसी ने सबसे अधिक बिम्ब प्रकृति से ग्रहण किए हैं उसमें भी आकाशी बिम्बों की ओर उनकी विशेष रुचि है। अन्य प्राकृतिक उपादानों जिनका संबंध जल पर्वत या वनस्पति से है ने भी उनको आकर्षित किया है परन्तु संख्या और मार्मिकता की दृष्टि से प्रकृति के आकाशी क्षेत्र से गृहीत बिम्ब ही श्रेष्ठ कहे जा सकते हैं। प्रकृतेतर मानव जीवन में उन्हें ग्राम्य जीवन विशेष प्रिय है। ग्राम्य जीवन

के अनेक उपकरण, अनेक क्रिया व्यापार आदि को उनके काव्य में रूप प्रदान हुआ है। ग्राम्य जीवन से इतर मानव जीवन से उनका विशेष परिचय नहीं था।

(२) संवेदनाओं के आधार पर

कवि के बिम्ब विधान का अध्ययन कवि की सुवेदनाओं (सन्सज) को भी प्रकट करता है। कवि की तीव्र संवेदना सबसे अधिक बिम्बों की सृष्टि करती है। अतः किसी विशेष संवेदना-विषयक बिम्बों को पाकर हम कवि की संवेदना विषयक आवश्यकता का ज्ञान कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त कवि की संवेदना में क्या-क्या बातें प्रमुख हैं वह उसके क्षेत्र और रुचि का ज्ञान कराता है। बिम्ब द्वारा संवेदनाओं का अध्ययन कवि के मानस के साक्षात्कार का ही एक सोपान है।

किसी कवि की संवेदनाओं का अध्ययन पूरी तरह एक व्यक्तिपरक अध्ययन है जिसमें अध्ययन कर्ता का ध्यान प्रमुख रहता है। इसी कारण दो व्यक्तियों के निष्कर्ष भी इस पर एक नहीं हो सकते। व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक परिस्थितियों की भिन्नता के कारण संवेदना से उत्पन्न उत्तेजना में भी अन्तर आ जाता है जो उसके निष्कर्षों को बराबर प्रभावित करता है। कोई संवेदना किसी व्यक्ति को अधिक उत्तेजित करती है किसी को कम। इसके कारण उनके निष्कर्ष सहज ही भिन्न हो जाते हैं।[1] Fogle ने अपनी पुस्तक The Imagery of Keats and Shelly में स्पष्ट संकेत इस ओर किया है। संवेदनाओं में भी एक संवेदना ही एक बिम्ब में हो यह आवश्यक नहीं है। अधिकतर बिम्ब मिश्रित संवेदनाओं को स्पष्ट करते हैं। सुविधा के लिए ऐसी मिश्रित संवेदना वाले बिम्बों (जैसे ध्वनि-स्पर्श परक दृष्टि-स्पर्श परक) को दोनों ओर रख लिया है। बिम्बों को संवेदनाओं के आधार पर पाँच भागों में विभाजित किया जा सकता है

(१) दृष्टिपरक (Visual)
(२) स्पर्शपरक (Tactual)
(३) घ्राणपरक (Olfactory)
(४) श्रवण परक (Auditory)
(५) स्वादपरक (Gustatory)

(१) दृष्टिपरक

काव्यात्मक बिम्बों में सबसे अधिक संख्या दृष्टिपरक बिम्बों की ही होती है।

---

1 A study of sense Imagery is of necessity objective and Introspective in method the student is certain to have physical and psychic peculiarities imaginal idiosyncrasis which color his findings it is highly improbable that any two persons could obtain identical results from examining the same passage of verse.
—The Imagery of Keats and Shelley—R. H. Fogle p. 26

जीवन में भी सम्भवतः नेत्रों का व्यापार ही प्रधान रहता है। इसी कारण स्पर्श परक स्वाद सम्बन्धी आदि किसी भी अनुभव को केवल 'देखा' शब्द से भी व्यक्त किया जाता है। वस्तुतः किसी भी बिम्ब में चाहे वह स्पर्श से सम्बन्ध रखता हो या ध्वनि सुगन्ध आदि से—दृश्यता का गुण कुछ अंशों में मिला ही रहता है।

जायसी में भी दृष्टिपरक बिम्बों की संख्या सब से अधिक है। उसके काव्य का एक बहुत बड़ा भाग दृश्य वर्णनों से परिपूरित है। अन्य सभी संवेदनात्मक बिम्ब उसके सामने नगण्य से हैं। जायसी के यह दृष्टिपरक बिम्ब किसी साधारण व्यक्ति की संवेदना से कहीं अधिक सूक्ष्म समर्थ और गतिवान संवेदना के व्यंजक हैं।

जायसी के बिम्बो में समग्रता का गुण बहुत है। वर्णित वस्तु के प्रत्येक अंग का अंकन उसने किया है जो उसके सूक्ष्म निरीक्षण और शीघ्र प्रभावित होने की शक्ति का परिचायक है। जायसी का मोह समग्रता के प्रति इतना अधिक है कि अनेक वर्णनों में वह अप्रस्तुत की पूर्णता के लिए उसके अंगों का प्रयोग करते जाते हैं प्रस्तुत वर्णन अधिकतर उनमें पीछे छूट जाता है। इस तरह के वर्णन को हम प्रतीकात्मक कह सकते हैं

कंठ लाइ कै नारि मनाई जरी जो बेलि सींचि पलुहाई
फरे सहस साखा होइ दारिउ दाख जँभीर
सबै पंखि मिलि आइ जोहारे लौटि उहै भै भीर।

(४२८ ७-९)

पर वस्तुतः यह प्रतीक नहीं है यह कवि की बिम्बगत पूर्णता विषयक रुचि के द्योतक हैं।

प्रस्तुत वर्णनों में भी समग्रता बहुत आई है। राजनगरी की घनी अंबराइयों के वर्णन में उसका विस्तार, उसकी हरियाली की अधिकता जो रात्रि का आभास देती है, वहां का शीतल समीर, ठंडा वातावरण सभी कवि को प्रभावित करता है। मानसरोवर के वर्णन में भी अपार जलराशि उस पर पुष्पित लाल कमल तैरते हुए स्वर्ण वर्णी जल पक्षी सीढ़ियों का बना घाट उस पर उतरते हुए लोग सभी का वर्णन है :

मानसरोदक बरनौं काहा भरा समुद अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमर तासू अमृत आनि कपूर सुबासू
लंक दीप कै सिला अनाई बाँधा सरवर घाट बनाई
खंड खंड सीढ़ी भईं गरेरी उतरहिं लोग चढ़हिं चहु फेरी
फूला कँवल रहा होइ राता सहस सहस पखुरिन्ह कर छाता
उलथहिं सीप मोति उतराहीं चुगहिं हंस औ केलि कराहीं
कनक पंख पैरहिं अति लोने जानहु चित्र सँवारे सोने

(३१ १-७)

यह वर्णन सर्वत्र वस्तु प्रधान रहा है व्यक्ति प्रधान नहीं। कवि ने उनका रूप वैसा ही दिया है जैसे वे हैं उनमें अपनी ओर से आरोपित भावना कहीं नहीं है जैसी प्रायः छायावादी प्रकृति वर्णन में मिल जाती है।[1] यहां चांदनी सम्पूर्ण नारी या सुन्दरी है गंगा भी सुन्दरी है पवन नायक और जूही की कली नायिका है। जायसी में प्रकृति का ऐसा मानवीकरण नहीं के बराबर है। उनके वर्णन अधिक मूर्त हैं जो विषय को उसके यथार्थ रूप में नेत्रों के सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं

ताल तलावर बरनि न जाहीं, सूझै वार पार तेहु नाहीं
फूले कुमुद सेत उजियारे, मानहु उए गगन महं तारे।
उतरहिं मेघ चढ़हिं लै पानी चमकहिं मंछ बीजु कै बानी
पैरहिं पंखि सो संगहि संगा, सेत पीत राते बहु रंगा
चकई चकवा केलि कराहीं, निसि बिछुरैं दिन मिलाहीं
कुरलहिं सारस भरे हुलासा जियन हमार मुवहु एक पासा।
(३३ १६)

इसी प्रकार राजमहल आदि भी उनको राजमहल ही प्रतीत होता है। नायक नायिका या अन्य कोई वस्तु नहीं जो उनके दृश्य वर्णनों की वस्तु प्रधानता का द्योतक है। कवि की दृष्टि सूक्ष्म और सजग है परन्तु वह अपनी ही भावनाओं के भार से बोझिल नहीं है वरन् स्वतन्त्र है। वस्तु का व्यक्ति से पृथक भी कुछ महत्व है उसका अपना सौन्दर्य भी है इसी को जायसी के दृश्य वर्णन प्रमाणित करते हैं। उनके राज मन्दिर, समुद्र ताल हाट आदि के वर्णन वस्तु वर्णन के लिए हैं। आरोपण द्वारा अपनी ही भावनाओं को रूप देने के लिए नहीं।

जायसी के दृष्टिपरक बिम्बों की एक बहुत बड़ी विशेषता है उनकी पृष्ठभूमि। वह केवल वस्तु का चित्र ही नहीं देते वरन् उसके साथ उसकी पृष्ठभूमि के लिए अन्य वस्तुओं का भी उल्लेख करते हैं जिससे विरोध या अधिकता के कारण वस्तु का सौन्दर्य निखर कर आता है। यह उनके कलाकार हृदय का परिचायक है जो पृष्ठभूमि के महत्व से उसकी उपयोगिता से भली भांति परिचित है। हिन्दी की परम्परा के अनुसार उन्होंने नायिका पद्मावती को कमल रूप में तो देखा है पर परम्परा के विपरीत उन्होंने उसका उल्लेख सदैव सखियों के साथ किया है। जो कमल के साथ कुमुद की पृष्ठभूमि को देती है। वहां सरोवर का एक पूरा चित्र नेत्रों के सम्मुख आ जाता है जहां सौन्दर्य पूर्ण कुमुद हैं और उनके बीच केवल एक सौन्दर्यमूर्ति कमल है। यहां वस्तु के अनुसार सौन्दर्य के आधिक्य की व्यंजना भी हुई है। कुमुद की पृष्ठभूमि में कमल का सौन्दर्य और अधिक आश्चर्यजनक और उत्तेजक प्रतीत होता है। इसी प्रकार पद्मावती को जहां सूर्य कहा गया है वहां सौन्दर्य और तेज की अधिकता स्पष्ट करने के लिए पृष्ठभूमि के रूप में नक्षत्र मणियों का मशाल रूप में उल्लेख है।

१ पंत की चांदनी नौका विहार, प्रसाद की बीती विभावरी जाग री, निराला की सन्ध्या जूही की कली आदि।

यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि कवि किसी दृश्य में किसी एक वस्तु को ही नहीं उभारता वरन् पूरा का पूरा दृश्य उसके मानस पटल पर अंकित रहता है। यहाँ कवि के मानस में स्पष्टतः असंख्य नक्षत्रों के बीच जगमगाते केवल एक चाँद के लिए आकाश का रूप है। अनेक स्थलों पर यह पूरा दृश्य भी चन्द्र का समस्त सौन्दर्य पूरी पृष्ठभूमि के साथ आया है

भरी नीर सब खीलक सारी सरवर मह पैठी सब बारी
सरवर नहीं समाय संसारा चाँद नहाइ पैठ लेइ तारा
धनि सो नीर ससि तरई ऊई अब दिष्टि कंवल की कूई।

(६२ १-७)

इसी पृष्ठभूमि के कारण रनिवास के बीच बैठी पद्मावती उन्हें शशि मण्डल के मध्य शशि की भाँति प्रतीत होती है। इन उपमाओं में सौन्दर्य की अभिव्यक्ति में स्वरूप और सौन्दर्य की अधिकता का आभास अच्छी तरह हो जाता है। जायसी की यह पृष्ठभूमि प्रियता उनके बिम्बों में सर्वत्र देखी जा सकती है।

जायसी के दृश्य बिम्बों में रंगों अथवा वर्णों का प्रयोग भी बहुत हुआ है। वर्णों के उल्लेख से सौन्दर्य और सजीवता की सृष्टि तो हुई ही है साथ ही यह रंग विशिष्ट भावों के परिचायक भी बन गए हैं। निराशा दुःख वेदना, पीड़ा प्रेम उल्लास आनन्द क्रोध चिंता क्षोभ भय सभी रंगों द्वारा व्यंजित हुए हैं। प्रेम और उल्लास के कारण लाल चेहरे भी पद्मावत में हैं

राती पिय के नेह गई सरग भयऊ रतनार,
जो रे उवा सो अंथवा रहा न कोइ संसार

(३५० ८-९)

और वेदना एवं पीड़ा के पीले रंग भी

अंग अनल अस कंवल सरीरा हिया भा पियर पेम की पीरा
केसरि बरन हिया भा तोरा मानहु मनहिं भयउ किन्ह भोरा

(१६६ ४-७)

परिस्थितिगत वैषम्य प्रकट करने के लिए विरोधी वर्णों का भी कवि ने एक साथ प्रयोग किया है। अनुराग के लाल रंग से रंजित पद्मावती राजा के बंदी हो जाने का समाचार सुन तत्क्षण दुःखी और वेदना से पूरित हो श्वेत वर्ण हो जाती है

जबहिं सुरुज कहँ लागेउ राहू तबहिं कंवल मन भयउ अगाहू
जस दिन माँझ रैनि होइ आई बिगसत कंवल गयउ मुरझाई।
राता बरन गयउ होइ सेता, भौंवति भँवर रहि गई अचेता

(२६० २-७)

वर्णों में विरोध का उल्लेख करके भाव को तीव्र बना दिया गया है अंधेरा अथवा काला रंग दुःख पीड़ा निराशा मरण आदि का प्रतीक है और उजाला जीवन और आनन्द का प्रतीक

राजपाट अरु परगह सब तुम्ह सों उजियार
बैठ भोग रस मानहु कै न चलहु अँधियार ।

(१२६ ८-९)

राजा के प्रस्थान के पश्चात् नगर दुःख और वेदना की प्रतिमूर्ति बन जाता है । जायसी ने उसके लिए सघन काले रंग (अंधेरे) का प्रयोग किया है

रोवे मता न बहुरै बारा रतन चला जग भा अँधियारा

(११३ १)

अथवा

जोगी होइ निसरा सो राजा सून नगर जानहु धुंध बाजा

(१६२ १)

वर्णों के उल्लेख में कवि की दृष्टि उनके प्रतीकात्मक अर्थों पर बहुत रही है । ज्योति का उजाला जो स्वर्ण-वर्ण का द्योतक है जीवन के आनन्द सुख तेज आदि का प्रतीक है और काला रंग जीवन के अंधकार पक्ष का । इसी कारण जायसी ने सुख आनन्द आदि की उपमा उगते हुए सूर्य से की है

देखि मानसर रूप सुहावा, हिय हुलास पुरइन होइ छावा,
गा अँधियार रैनि मसि छूटी भा भिनसार किरन रवि फूटी

(१६८ २ १)

अथवा

यह सूरज तुम ससि सरब आनि मिलावहि सोइ ।
तस दुख मैं सुख ऊपने रैन माँझ दिन होई ॥

(६१० ८-९)

और जीवन की निराशा दुःख और पीड़ा की उपमा सूर्यास्त से

केतहु बिरह न भाखे भा ससि गहन गरास ।
नखत चहूँ दिस रोवहिं, अँधियारि धरति अकास ।

(२४९, ८-९)

वर्णों में कवि को काला सफेद, स्वर्णवर्ण चमत्कार वर्ण अधिक आकृष्ट करते हैं । लाल और पीले रंग का प्रयोग भी जायसी ने किया है यह मुख्यतः प्रतीकात्मक अर्थों को ध्वनित करते हैं । प्रस्तुत वर्णन में यह बाह्य वस्तु की सुन्दरता को व्यक्त करते हैं ।

जायसी दृश्य बिम्बों में गति परिवर्तन आदि को भी बड़ी स्पष्टता से प्रतिबिम्बित करते हैं । परिवर्तन को हम सूर्यास्त सूर्योदय आदि के बिम्बों में बड़ी स्पष्टता से देख सकते हैं । गति के प्रति उनकी जागरूकता भी उनके वर्णनों में विद्यमान है । इस गति को ही हम अनुभाव योजना कह सकते हैं । पद्मावती की विरह अवस्था के रूप में कायिक गति को देखा जा सकता है

बिरह् काल होइ हिय पईठा जीऊ काढ़ि लै हाथ बईठा,
जिन एक मु ठ बांध जिन खोला यहै जीम मुख जाइ न बोला
जिन्हहि बैस के बानन्हि मारा कांपि कांपि नार मरे बेकरारा

(२४९ ५-७)

इसी प्रकार प्रेम-समुद्र में अवगाहन करते समय राजा की अवस्था वर्णित है जो क्षण-क्षण में डूबता उतरता हिलोरे लेता है और निश्वास लेकर कभी अचेत हो जाता है कभी दुःख से शीत धर्म और अचेतनता से सचेत हो जाता है। पद्मावती के मिलन के समय अचानक सखियों के उसे लेकर अदृश्य हो जाने पर राजा की उत्सुकतापूर्ण निराशा का एक अनजानेपन का गति-चित्र जायसी ने दिया है। जो बड़ा भाव व्यंजक है

सूरज तपत सेज सो पाई पाठि ओर सखि सबी छपाई
जनु जाबिक मुख हुत गोस्वाति राजा चकचौंहुब होहि माति
कोपी भरा जनु भाण्डरम्हि हाथा कौच हाथ हुति ग्या बैहाथा

(२१९ ४६)

अनुभाव बिम्बों से उत्पन्न गति के अतिरिक्त भी जायसी के उपमान स्वयं गतिपूर्ण हैं। केश रूपी सर्प की लहरें उठना गिरना लौटना बलखाना वेणी की गति की सृष्टि करते हैं।

कंचल कुटिल केस नग कारे लौटन्हि भरे भुजंग बिसारे।
बेधे जानु मलयागिरी बासा, सीस चढ़ लोटहि चहु पासा

(९९, ४ ६)

समष्टि में जायसी के दृष्टिपरक बिंब उनकी विशिष्ट संवेदना के द्योतक हैं जो साधारण से कहीं अधिक है। सूक्ष्म परिवेशन समग्र व्यग्र पृष्ठभूमि का वर्णन उनकी दृष्टि की व्यापकता सूक्ष्मता उदारता और 'चित्र ग्राहिता' का परिचायक है। उनका वर्णों का प्रयोग और गति का उल्लेख भी उनकी संवेदना की विशिष्टता का द्योतक है। सूर्योदय और सूर्यास्त के बिम्बों का रंग और प्रभाव के आधार पर जैसा सफल प्रयोग जायसी ने किया संभवत: किसी और हिन्दी कवि ने नहीं किया है।

(२) स्पर्श परक—

जायसी में स्पर्श परक प्रतिमाएं अधिक नहीं हैं। मृदुलता चिकनापन कड़ापन खुरदरापन आदि का उसमें विशेष उल्लेख नहीं किया है। स्पर्शों से ठंडे स्पर्श शीतलता ने उसे सबसे अधिक प्रभावित किया है। शीतलता के साथ कवि के मन में एक सुखद आह्लादक स्पर्श की भावना है जो सुख और आनन्द की द्योतक है। तीव्र ग्रीष्म के पश्चात् इस सुखद स्पर्श का जायसी ने बहुत प्रयोग किया है। नागमती विरहावस्था में प्रिय के दर्शन के द्वारा शीतल होने की आशा करती है

बरत बजागनि होइ पिउ छाहाँ, आइ बुझाउ अंगारन्ह मांहा
तेहि दरसन होइ सीतल नारी आइ आग सों करु फुलवारी

(१६४ ४ ५)

इसी प्रकार विरह दग्ध पद्मावती को सुग्गे का आना प्यासे मरत को मेघ की छाँह जैसा शीतल लगता है। राजा भी सिंहलगढ़ में सुख के प्रतीक शीतल पवन का अनुभव करता है।

पु छा राजा कहु गुरु सुआ, काकी अस कहाँ दिन उआ।
पवन बास सीतल लै आवा, कया दहत चंदन जनु लावा॥
कबहु न ऐसी जुड़ान सरीरू, परा अगिनि महँ मलै समीरू।

(१२६, १ २)

मानसरोवर भी पद्मावती के स्पर्श से ऐसी शीतलता और शान्ति की अनुभूति करता है।

परन्तु 'शीत' अर्थात् ठण्ड के प्रति कवि के मन में एक भय है। शीत कवि को सुख नहीं देती। कवि शीत के द्वारा अपने भय को व्यक्त करता है—

ए जग सुर सीउ मोहि लागा

(३६१, १)

"हे जग के सूर्य मुझे शीत लगती है तुम अपने ताप से मेरी रक्षा करो—इससे लगता है सम्भवतः जायसी निर्धन रहे हों क्योंकि शीत अमीर का जिसके पास उससे बचने के लिए अनेक यत्न हों सुखदायक लगती है। निर्धन का उससे डर ही लगता है। जायसी का शीत के प्रति इस भय का अपना उनके व्यक्तित्व उनकी परिस्थिति का सुन्दर परिचायक है।

प्रकृति वर्णन में भी कवि ने प्राकृतिक वस्तुओं के शीतल स्पर्श का उल्लेख किया है। अमराई के वर्णन में वृक्षों की घनी छाँह, सुखद समीर का वर्णन है

धन अमराउ लाग चहुँ पासा, उठा भूमि हुत लाग अकासा,
तरिवर सबै मलयागिरि लाए भै जग छाँह रैन होइ आइ
मलै समीर सोहाई छाँहा जेठ जाड़ लागै तेहि माँहा
ओही छाँह रैनि होइ आवै हरियर सबै अकास दिखावै
पथिक जो पहुँचै सहि कै घामू, दुख बिसरै सुख होइ बिसरामू
जिन्ह यह पाइ छाँह अनूपा, बहुरि न आइ सही यह धूपा।

(२० २-७)

सिंघल द्वीप के जिन वृक्षों के नीचे रत्नसेन ने पद्मावती का संदेश पाया था वह भी घने ऊँचे ऊँचे और शीतलता प्रदान करने वाले थे। ऋतु वर्णन में कवि ने वर्षा के प्रसंग में शीतल बूँदों और सुखद वायु का उल्लेख किया है।

रितु पावस बरिसै पिउ पावा, सावन भादौं अधिक सोहावा

सीतल बूँद ऊँच चौबारा हरियर सब देखिअ संसारा
मलै समीर बास सुख बासी बेइलि फूलि सेव सुख बासी

(११७ ११)

शीतलता से कवि का तात्पर्य शीत से भिन्न उस सुखदायक स्पर्श से है जो ग्रीष्म की जलती धूप में छाँह आदि के द्वारा प्राप्त होता है। शीत के प्रति कवि भय भीत है पर शीतलता को वह सुखदायक समझता है। शीतल स्पर्श की भाँति जायसी ने दाहक स्पर्श का भी पर्याप्त उल्लेख किया है। दुःख की तीव्र असम दाहक है

'रोवहिं रोव लाग जनु चाटे, सोतहिं सोत बेधि जिउ काटे।
दगध करांहु जरी सब घीऊ बेगि न आऊ मरी फिरि पीऊ'

(१४७ १४)

पद्मावती के इस विरहाग्नि में दग्ध होने के समान ही रत्नसेन भी विरहाग्नि की दाहकता अनुभव करता है।

केइ यह बसत बसंत उजारा गै सो चाँद अथवा लेइ तारा
अब तेहि बिन जग भा अंधकूपा, वह सुख छाँह जरौं हौं धूपा।

(१११ २६)

विरह में नागमती सुखद स्पर्श में भी दाहकता का अनुभव करती है

कातिक सरद चाँद उजियारी जग सीतल हौं बिरहै जारी।
चौदह कर चाँद परगासू, जनहुँ जरै सब धरती अकासू ॥

(१४८ १२)

पद्मावती के आगमन पर भी नागमती दाहक सूर्य की गर्मी का अनुभव करती है। जो उसके हृदय की ईर्ष्या की व्यंजना करता है।

आवा पद्मावति क बेवानू नागमती जरि उठा सो भानू
जनहुँ छाँह महँ धूप देखाई, तैस झारि लागै जो आई
तहि गहिं आइ सौत के आरा दूसर मंदिर दीन्ह उतारा।

(४२६ ४६)

जायसी ने 'कोमल' स्पर्श का भी उल्लेख किया है। पद्मावती सुन्दर होने के साथ साथ कोमल भी है। स्वर्ण वर्ण के साथ साथ सुकुमारता भी उसमें है

यह जो पदुमिनि चितउर आनी, कुन्दन कया दुवादस बानी
कुन्दन कनक न नंग न बासा वह सुगंध जनु कंवल बिगासा
कुन्दन कनक कठोर सो अंगा, वह कोमल रंग पुहुप सुरंगा

(४६८ ११)

उसके केश भी काले लहरदार और कोमल हैं।

समष्टि में जायसी में स्पर्श बिम्बों का प्रयोग क्षेत्र की दृष्टि से विशिष्टता का द्योतक नहीं है परन्तु सूक्ष्मता पर्याप्त अवश्य है।

(३) घ्राण परक—

जायसी में घ्राण परक बिम्ब भी काफी मात्रा में पाये हैं। जायसी मधुर और भीनी भीनी सुगन्धियों के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हैं। पूरे पद्मावत में एक भी स्थल ऐसा नहीं है जहाँ दुर्गन्धि जैसे मरे जानवर की बदबू, नाली सड़ने की बदबू, चमड़े अथवा किन्हीं अन्य वस्तुओं आदि की बदबू का उल्लेख हो। केवल एक स्थल पर योगी रत्नसेन के शरीर से आने वाली कुरकुटा (भस्म) की विशेष गन्ध का उल्लेख है। जिसे कुछ अंशों में दुर्गन्ध कहा जा सकता है

सबुद करे भुरै भस भारी पहु न बोहु रे बोल भिखारी
बौरहि होहिं जोगि तोरि बेरी आवै बासु रकुटा केरी।

(१०४ १४)

अन्य सभी स्थलों पर जायसी केवल सुगन्धियों इत्रों आदि का वर्णन करते हैं। पुष्प गंध में जायसी का कमल गंध विशेष रूप से आकर्षित कर सकी है कुछ तो पद्मिनी नायिका होने के कारण और कुछ रुचि के कारण जायसी ने उसे बहुत प्रयुक्त किया है। पद्मावती के शरीर में सदैव पद्म की गंध आती है जिससे भ्रमर उसके चारों ओर सदैव घूमते हैं

जहँ सौगंध पदुमावति बारी बरन बौरे सब करी संवारी।
जस केवा तेइ अंग सुबासा भँवर आइ लुबुधे चहुँ पासा।

(५५ ७ ३)

सभी पद्मिनी नारियों में जायसी ने कमल-गंध का वर्णन किया है। यहाँ तक कि सिंहलगढ़ की पनिहारियाँ भी कमल गंध से युक्त हैं। पद्मावती तो फिर अत्यन्त रूपवती और सर्वश्रेष्ठ होने के साथ-साथ पद्मगंध से स्वतः युक्त होगी

पदु जो पदुमिनि सिंगार पानी कुन्दन कया सुहाग बानी
कुन्दन कनक न पंथ न बासा वह सुगन्ध जनु कंवल बिगासा।

(४६८ १२)

सामान्य पुष्प गंध भी जायसी को प्रिय है। सखियों और अन्य नारियों में पुष्प गंध का उल्लेख हुआ है। बसन्त पुष्पित फूलों की गंध की ओर भी उसका ध्यान गया है। बसन्त की यह गंध जायसी को प्रिय है। आनन्द पूरित नर नारियों में बसन्त की गंध का वर्णन है। विजय और आनन्द से प्रफुल्लित रत्नसेन भी सिंहल द्वीप में बसन्त के फूलों की गंध की अनुभूति करता है।

फोब दखिन दिसि निमेर कंचन मेघ बिराव।
जात बसन्त रितु आवै तैस बास जग आव॥

(१६५ ८-९)

मलय समीर की गंध का भी उल्लेख हुआ है। यह आनन्दावस्था की द्योतक है। मानसरोवर पद्मावती के आगमन पर मलयगंध का अनुभव करता है।

मलै समीर बास तन आई, भा सीतल भै तपन बुझाई
न जानौं कौन पौन ले आवा पुनि दसा भै पाप गंवावा।

(६५ १४)

मनुष्य निर्मित सुगन्धियाँ—इनमें आदि में जायसी ने मेद चोवा परिमल आदि का वर्णन किया है जो सुन्दर और युवती नारियों में सर्वत्र कल्पित की गई है। राजधानी में सर्वत्र ही चन्दन मेद कस्तूरी की सुगन्ध फैली है—

मढ़ुक मध बैठे सब राजा दर निसान नित जिन्ह के बाजा
रूपवंत मनि दिपै लिलाटा माथे छत्र बैठि सब पाटा,
मानहु कंवल सरोवर फूलै सभा क रूप देखि मन भूले
पान कपूर मेद कस्तूरी सुगंध बास भर रही अपूरी।

(४७ १६)

जायसी ने एक विशिष्ट गंध भी दी है जो उनके ग्रामीण हृदय की परिचायक है। जायसी लोक जीवन के कवि हैं यह गंध इसको भली प्रकार प्रभावित कर देती है। यह गंध है, आषाढ़ मास में धरती पर बूँदों के पड़ने से उत्पन्न सौंधी गंध'। 'सौंधी सुगंध' यहाँ जीवन के आनन्द की प्रतीक है।

जस भुइँ दहि असाढ़ पलुहाई, परहिं बूँद औ सौंध बसाई
ओहि भाँति पलुही सुख बारी उठे करिल नव कोंप संवारी

(४२१ ४५)

जायसी का सुगन्धियों के लिए मोह है दुर्गन्धियों के विषय में कवि एकदम मौन है। सुगन्धियाँ ही उसे आकर्षित कर सकी हैं। सुगंध को वह जीवन का अमर तत्त्व मानता है जो भौतिक अस्तित्व समाप्त हो जाने पर भी बना रहता है। सुगन्धि अपनी भौतिकता से परे अमरता के कारण ही उसे प्रिय है। कवि दान को इसलिए सुवासित कपूर कहता है जो द्रव्य के समाप्त होने भी शेष रहता।

दानि आहि सब दरब कपूर, दान लाभ होइ बाँचै मूर

(१८७ ४)

पद्मावती की मरणावस्था या विरह में मरण की सी अवस्था में भी वह उसकी अमरता को सुगंधि के द्वारा व्यक्त करता है। 'फूल मुए पै मुए न बासू' ऐसे पद पद्मावत में बहुत आए हैं। जो जायसी के सुगंधियों के प्रति विशेष आकर्षण को प्रकट करते हैं।

(४) श्रवण परक—

जायसी में ध्वनि का क्षेत्र काफी व्यापक है। धीमी धीमी ध्वनियाँ जो अक्सर संगीतमय हैं उसमें सुनी जा सकती हैं।

छुद्र घंटि कटि कंचन तागा चलतै सो उठें छतीसौ रागा

(२९६ ७)

करपनी की झंकार को संगीतमय है मानी भी गाई है। जायसी को संगीत का भी सामान्य ज्ञान था ऐसा प्रतीत होता है उसने बीन मृदंग आदि का उल्लेख किया है। इसके अतिरिक्त लोक जीवन में प्रचलित वाद्यों में—ढ़ठ, धम तूर्य नागसुर मंजीर, डफ आदि की मोहक झंकार और गम्भीर घोष का भी उल्लेख किया गया है।

बाज उपंग नागसुर तूरा महुआरि बाज बंसि भल पूरा
हुडुक बाज डफ बाज गम्भीरा औ तेहि मोहन बाजत मजीरा
तंत बितंत सिरखर घन तारा पोख सबद होइ झनकारा

(१२७ १-७)

सारंगी आदि की एकरस ध्वनि का भी वर्णन है। परन्तु यह सब उसके संगीत विषयक विशिष्ट ज्ञान का परिचय नहीं देता है। कवि को संगीत का सामान्य ज्ञान ही था। संगीत की राग रागनियाँ उसे विशेष रुचिकर नहीं लगती थी।

कवि ने पक्षियों के स्वरों को भी लिया है इनमें कोयल चातक पपीहा बहु प्रयुक्त हैं। परन्तु मधुरध्वन्यात्मक न होने के कारण यह कर्ण प्रिय नहीं हो पाये हैं। कहीं कहीं तो कानों को चुभते से जान पड़ते हैं जैसे मोर का 'मुर्यों-मुर्यों' बोलना।

पशुओं में सिंह की गर्जन ने कवि को आकृष्ट किया है। सिंह का गरजना वीरत्व की हुँकार है जो विपक्षी के हृदय में भय उत्पन्न करती है।

गढ़ेक कोप जस छूटेक राजा चढ़ा तुरंग सिंघ अस गाजा

(५२५ ४)

बादल और गोरा के लिये भी सिंह के गरजने का उल्लेख किया गया है।

जायसी को तीव्र और जोरदार ध्वनियों से अधिक मोह है। रानी के रुदन का भी सामान्य रुदन के रूप में उल्लेख नहीं है वरन् वह धार से स्वर करके रोती है—'कंठ लागि सो होमुर गाई' आदि। तीव्र ध्वनियों के प्रति आकर्षण जायसी के युद्ध स्थलों में खूब सुना जा सकता है। युद्ध की भयानकता को चित्रित करने के लिए घन-गर्जन बहु प्रयुक्त ध्वनि है। हाथी मेघों की तरह गर्जन करके एक दूसरे से भिड़ जाते हैं, कुम्भ से टकराने का स्वर इतना भीषण है कि मेघ के गरजने का आभास होता है। गोले के फूटने से भी भीषण गर्जन होती है

अष्ट धातु के गोला छूटहिं, गिरि पहार बज्र सब फूटहिं
एक बार सब छूटहिं गोला गरजै गगन धरति सब डोला

(५२४ ५-६)

क्रोधित राजा भी मेघ की भांति भयानकता से गरजता है

सुनि अस लिखा उठा जरि राजा, जानहु दैव तड़पि घन गाजा

(४८१ १)

भीषण ध्वनियों के लिए जायसी का मोह इतना अधिक है कि युद्ध स्थल पर अनेक इनका उल्लेख किया है यह भय की सृष्टि करने में भी समर्थ है। जायसी के

समुद्र के भयानक पक्षियों के पंख खोलने में भी मेघ की गर्जन का वर्णन किया है। जायसी का मोह मेघ गर्जन के लिए इतना बड़ा है कि विवाह के बाजे भी उन्हें मेघ गर्जन प्रतीत हुए हैं।

भीषण रवों में नगाड़ों के गम्भीर घोष का भी वर्णन है। युद्ध स्थलों पर वातावरण और उत्तेजना भर देने में यह बड़े सफल हुए हैं

बाजहिं बाज घुरे बह ठाटा देखत जैसे गगन घन घटा।
चमकहिं खरग सो बीज समाना घमचावहिं घुम्मरहिं निसाना

(१११ २६)

समष्टि में जायसी तीव्र ध्वनियों के प्रति अधिक आकृष्ट हैं यद्यपि धीमी और संगीतमयी स्वर लहरियां भी उनके काव्य में हैं। पर अधिकतर वह गर्जन-तर्जन का ही प्रयोग करता है।

२। स्वाद परक

स्वादों के प्रति जायसी की दृष्टि अधिक नहीं गई है। बहुत कम वस्तुओं र बहुत कम स्वादों को उसने लिया है। अप्रिय स्वाद का उल्लेख कहीं नहीं आया । प्रिय स्वादों में उसने उन्हीं स्वादों को लिया है जो सामान्यतः सबको प्रिय हैं। सा प्रतीत होता है कि स्वादिष्ट खाने-पीने के प्रति जायसी की विशेष रुचि नहीं थी उन्हें स्वादिष्ट खाने-पीने के अवसर कम मिले थे। वह हर सामान्य प्राणी की ति खान-पीने के शौकीन थे। उनके स्वाद के उल्लेख उनके किसी विशेष स्वाद को नहीं बताते। स्वाद की दृष्टि से वह एकदम सामान्य थे।

जायसी में बहु प्रयुक्त स्वाद अमृत का है जो अतीव मधुर और अपूर्व मीठेपन द्योतक है परन्तु वह स्वाद कल्पित है। जायसी ने सम्भवतः १२ स्थलों पर अमृत उल्लेख किया है। वचनों की कर्ण प्रियता के लिए वह अमृत ही लाया है

रसना कहीं जो कहि रस बाता, अमृत बचन सुनत मन राता

(१०८ १)

पद्मावती के अधर भी अमृत सदृश ही हैं। मानसरोवर का पानी अमृत की ति स्वादिष्ट है और चलकुण्ड का पानी भी

गढ़ पर नीर खीर दुइ नदी पानी भरइ जैस दुरपदी।
और कुंड एक मोती चूर, पानी अमृत कीच कपूर।

(४१ १२)

फल-फूल भी अमृत की भांति हैं।

जायसी ने मीठे स्वाद का भी पृथक से उल्लेख किया है। जायसी मधु को भी बार लाया है। सम्भवतः मधु की विशिष्ट मिठास उसे पसंद रही हो। मधु स का श्रेष्ठ रूप है। कवि प्रेम को भी जीवन का श्रेष्ठ स्वरूप है मधु ही ा है क्योंकि दोनों ही अक्षय हैं

दुख भीतर जो पेम मधु राखा गंजन मरन सहै सो चाखा
(१८ २)

हृदय में यह प्रेम रूपी मधु छिपा रहता है
हिय भंडार नग आहि जो पूँजी खोली जीभ तारु कै कुंजी
रतन पदारथ बोलइ बोला, सुरस पेम मधु भरा अमोला
(२१ ४१)

जायसी ने विरह में गुड़ के कड़ुवेपन और घी के रूखेपन का उल्लेख भी किया है। विरोधी स्वादों का प्रयोग भी किया गया है। आरम्भ में कर्णकटु और अन्त में मधुर भाव के लिए कड़वे और मीठे स्वाद का उल्लेख पाया है

सोइ बिनती जिह करौं कसौठी पहिले करुइ अंत होई मीठी
(२६६ १)

जायसी के स्वादपरक बिम्ब जायसी की सामान्य स्वाद चेतना के द्योतक हैं। केवल मधु के प्रति उनकी विशेष रुचि प्रकट होती है। परन्तु अन्य स्वादों का कहीं उल्लेख भी नहीं है। समग्र दृष्टि से यह विशिष्ट नहीं केवल सामान्य कहे जा सकते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि जायसी का कवि हृदय अत्यन्त संवेदनशील था। दृश्य स्पर्श स्वर आदि सभी उसे अपने एक विशिष्ट रूप में आकर्षित करते थे। पद्मावत में दृश्य बिम्ब सबसे अधिक है। जो अत्यन्त स्वाभाविक है। क्योंकि दृश्यता का व्यापार हमारे जीवन में सर्वप्रधान रहता है। अन्य बिम्बों की संख्या भी पद्मावत में पर्याप्त है।

(१) भावों के आधार पर वर्गीकरण

भावों के आधार पर कवि के बिम्बों का वर्गीकरण कवि के मानस का स्पष्टीकरण करता है। कवि सर्वदा उसी रस अथवा भाव से सम्बन्धित बिम्ब अधिक और मार्मिक देगा जिसने उसके हृदय पर एकाधिकार किया हुआ है। वही कवि का प्रकृतिस्थ भाव है जिसमें कवि के मानस का साक्षात्कार किया जा सकता है। इस पर विस्तृत विवेचन ४ अध्याय में किया जा चुका है। कवि पूर्ण रसात्मकता की स्थिति में ही बिम्बों का श्रेष्ठ निर्माण करता है और यह पूर्ण रसात्मकता की स्थिति उसे अपने प्रकृतिस्थ भाव में ही मिल सकती है। उस भाव में जो उसके हृदय के सबसे अधिक निकट है। जिसमें कवि को सबसे अधिक आत्म विभोर करने की क्षमता है। इस रूप में कवि के बिम्बों की मार्मिकता, व्यंजकता एवं अधिकता का परीक्षण करके कवि के प्रकृतिस्थ भाव अथवा उसके मूल भाव का ज्ञान किया जा सकता है। बिम्ब का अध्ययन कवि के विशिष्ट रस एवं विशिष्ट भाव को समझने में सहायक होता है। यहाँ भाव का तात्पर्य मुख्यतः रस के स्थाई भावों से है। जिसके द्वारा हम कवि की रस मग्नता तक पहुँच सकते हैं।

जायसी में शृंगार रस प्रधान है यह जायसी के सभी मर्मज्ञ आलोचकों ने स्वीकार किया है। जायसी के बिम्ब भी शृंगार को ही जायसी का प्रधान रस प्रमाणित करते हैं जिसमें इनका हृदय सबसे अधिक रमण करता है। जायसी ने शृंगार के दोनों पक्षों—संयोग-वियोग को लिया है। यहां सब न एक स्वर से उसे प्रेम-पीर का गायक और विप्रलम्भ शृंगार का प्रधान कवि स्वीकार किया है।

उसके बिम्बों का अध्ययन उसके विप्रलम्भ शृंगार की दक्षता को ही प्रमाणित करता है। यद्यपि संख्या की दृष्टि से संयोग शृंगार में बिम्ब अधिक हैं परन्तु मार्मिकता और व्यंजकता की दृष्टि से विप्रलम्भ शृंगार के बिम्ब कहीं अधिक हृदयग्राही बन सके हैं। जो स्पष्ट रूप से जायसी को प्रेम-पीर का गायक प्रमाणित करते हैं। निष्कर्ष रूप में यहां केवल मात्रा के आधार पर संयोग शृंगार को जायसी का प्रमुख क्षेत्र नहीं कहा जा सकता वस्तुतः विप्रलम्भ शृंगार ही उनका प्रमुख क्षेत्र है। शृंगार के पश्चात् रहस्य की भावना एवं आध्यात्मिकता का प्राधान्य होने के कारण उनमें शम या निर्वेद भावों की प्रधानता है। करुणा का भी जायसी में पर्याप्त स्थान है। इसके अतिरिक्त क्रोध उत्साह भय आश्चर्य की भी पर्याप्त अभिव्यक्ति पद्मावत में है। हास्य जुगुप्सा का जायसी में नितान्त अभाव है। वात्सल्य भाव का भी अभाव ही है। रत्नसेन की मां की विकल अभिव्यक्ति में स्नेह कम शोक ही अधिक व्यंजना मिलता है। अतः वात्सल्य भाव का अभाव ही कहा जा सकता है। जायसी के बिम्बों को भावों के आधार पर ७ भागों में बांटा जा सकता है

(१) शृंगार (रति)—(अ) संयोग, (ब) वियोग
(२) उत्साह व क्रोध
(३) भय
(४) आश्चर्य
(५) शोक
(६) शम या निर्वेद

(१) शृ गार रति

(अ) संयोग—जायसी में संयोग शृंगार का पर्याप्त वर्णन है। उनके सर्वाधिक बिम्ब संयोग और उसके नाना रूपों से ही सम्बन्धित हैं। जायसी ने अधिकतर बिम्ब रूप वर्णन में दिये हैं। नख शिख वर्णन सांगोपांग रूप में पद्मावत में केवल दो बार है पर स्फुट रूप में कितनी ही जगह पद्मावती के सौन्दर्य की चर्चा हुई है। रूप वर्णन में जायसी ने पर्याप्त विस्तारक वर्णन किये हैं पर अधिकतर उपमान परम्परागत होने के कारण अपना सौन्दर्य खो चुके हैं और अब वह मर्मस्पर्शी नहीं कहे जा सकते हैं ऐसे उपमानों की संख्या जायसी में बहुत है। यहां जायसी ने वर्णन और शैली दोनों ही दृष्टियों से प्राचीन परम्परा का निर्वाह किया है। यद्यपि इन दोनों ही नख शिख वर्णनों के पश्चात् जायसी ने उन्हें पूर्णतः बिम्बात्मक कहा है

पुहुप सुगंध सुरति यह कही, चित महं लाग बिंब होइ रही

(६६ २)

पर सच तो यह है कि रूप वर्णन के यही दोनों स्थल बिम्ब की दृष्टि से सबसे कम सक्षम हैं। फुटपुट रूप में जहाँ बिंब अंकन हुआ है वहाँ वह कहीं अधिक व्यंजक मर्मस्पर्शी और सुन्दर है। नख-शिख वर्णन में सम्भवतः जायसी केवल परम्परा का निर्वाह कर रहे थे शैली में भी और वर्णन में भी। उनके हृदय की रागात्मकता का परिचय यथार्थ रूप में उनके अन्य रूप वर्णन ही देते हैं।

रूप वर्णन में जायसी की दृष्टि अधिकतर प्राचीन रही है। कहीं खंजन नैन हैं सर्प केश हैं, मुख कमल है आदि आदि। अंग प्रत्यंग के यह पृथक-पृथक वर्णन नवीनता के अभाव में अधिक हृदयग्राही नहीं जान पड़ते। पर जहाँ गति रूप और रंग का साम्य अधिक बन पड़ा है वहाँ यह अंकन भी सुन्दर हो गये हैं यथा

'होइ अँधियार बीजु धन लौके जबहिं चीर गहि झाँपु,
केस नाग होइ लस मैं बैठे संवरि संवरि जिय काँपु

(४७० ८-६)

इसी प्रकार स्नान करते समय बाल का पूरा बिम्ब दिया गया है। फुटफुट रूप के वर्णन में अन्य अवयवों का सौन्दर्य अलग अलग नहीं परखा गया है वरन् समग्र रूप को प्रस्तुत किया गया है। जैसे सौन्दर्य और तेज की अधिकता की अनुभूति कराने के लिए प्रयुक्त यह बिम्ब

ऊमत सूर जस देखिअ, चांद छपै तेहि धूप।
ऐसे सब जाहिं छपि पदुमावति के रूप।

(६६ ८-६)

इसी प्रकार रानी के सौन्दर्य और राजा की आश्चर्य मिश्रित भावना को प्रकट करने वाला यह बिम्ब बड़ा व्यंजक सिद्ध हुआ है

भै निसि ससि जब लसि परगसी, राजै देखि भुइँमि फिर बसी

(१११ १)

जायसी ने रूप वर्णन के बिंब ऐसे दिये हैं जो प्रकाश से युक्त या जीवन में भी आनन्द की सृष्टि करने वाले और सुन्दर हैं।

संयोग वर्णन में जायसी ने सर्वाधिक श्रेष्ठ बिंब प्रिय के पुनर्मिलन के अवसर पर दिए हैं। वियोग से दग्ध नारी जब प्रिय आगमन का सुख पाती है तो जायसी का हृदय नाच उठता है जैसे जलती हुई पृथ्वी पर वर्षा की बूंदें देखकर मयूर

नागमती कहं अगम जनावा गै सो तपन बरसा रितु आवा

(४२१ १)

ध्यान देने की बात है कि जायसी प्रथम मिलन पर भी इतने सुन्दर बिंब नहीं दे पाये हैं जितने पुनर्मिलन पर। उन्होंने स्पष्ट कहा है 'अधिक मोह जो मिलै बिछोही'

पुनर्मिलन का एक भी अवसर जायसी ने नहीं छोड़ा है। राजा के पुनः चित्तौड़ लौट आने के अवसर पर 'नाग' शब्द के श्लेष द्वारा जायसी ने नागमती के दुःख रूपी केंचुली के उतर जाने की सुन्दर उपमा दी है

जहीं जो गुरु नागिन जसि तथा जिऊ पाये तन भइ भें तथा।
सब दुःख जस केंचुल गा छूटी होइ निसरी जनु बीर बहूटी॥
(४२१ २ १)

बसन्त खण्ड में पद्मावती के पूर्वराग के कारण और रत्नसेन की आकुल प्रतीक्षा की पूर्ति के कारण मिलन वेला में अपूर्व आनन्द की सृष्टि हुई है जैसे बसन्त में दुःख के प्रतीक पतझड़ के बीत जाने पर सुख के लाल-लाल कोमल-कोमल पल्लव निकल आये हों

पियर पात दुःख झरे निपाते सुख पाल्हौ उपने होइ राते
(१८३ ७)

जीवन में दुःख की अपार व्यथा के बाद मिलने वाली आनन्दात्मक अनुभूति के जितने रूप हो सकते हैं जायसी ने वह सभी लिए हैं। गहरी काली रात के बाद सुबह का प्रकाश लिए निकलने वाला दिन भी उसका उपमान है और ग्रीष्म की तपन सहने के बाद पावस की छांह पाने वाली पृथ्वी भी

जब लगि रही पवन हो तपता आइ लागि सोहै सीतल छाता
नहि दुख्खी जस पावस छाहाँ तस हुलास उपना जिय मांहा
(४२४ १२)

इसी प्रकार ग्रीष्म की ज्वाला से फटते सरोवर में वर्षा में पुनः आ जाने वाली अथाह जल राशि पक्षियों की वही भीड़ और कोलाहल ध्वनि ताप से जलती हुई बेल का पानी पाकर पल्लवित हो उठना सभी इस आनन्दानुभूति को अभिव्यक्त करने के साधन हुए हैं। राजा का पुनः लौटकर आना आषाढ़ मास का आगमन-सा प्रतीत होता है जब पृथ्वी आनन्द से भर जाती है सुख की वर्षा होने लगती है। राजा व नागमती की सुखात्मक अनुभूति को यहां जायसी ने आषाढ़ मास के पूरे रूपक में व्यक्त किया है।

पलटा से पुरुखा रथ राजा जस असाढ़ आवै घर लाजा
हैगि सो छत्र भई जस छाहाँ हस्ति मेघ औनए जस माँहा,
सेन पूरि आये घन घोरा रहस चाव बरिसे चहुँ ओरा
धरती सरग अब होइ मेरावा भरथरि पोखर ताल तलावा
उमग उठा सब भुमिया नामा ठावहि ठाँव दूब अस जामा
दादुर मोर कोकिला बोले हुत अलोप जीभ सब खोले
(४२५ २-७)

हीरामन तोता भी पद्मावती को प्रिय है उसके आगमन से भी रानी को अपूर्व हर्ष की प्राप्ति होती है

कठ लाग सो हौं तुर रोइ अधिक मोह जौ मिलै बिछोही
आगि बुझी दुख जो गंभीरु, नयनहु आइ चुआ होइ नीरु
तेहि क उतर पदुमावति कहा बिछुरन दुख हिये भरि रहा
मिला जो आए हिये सुख भरा वह दुख नैन नीर होइ ढरा
बिछुरंता जो भेंटिऐ सो जानै जेहु नेहु
सुक्ख सुहेला उग्गवइ दुक्ख झरै जनु मेहु

(१७५ १६)

दुःख के पश्चात् सुख के व्यंजक इन बिम्बों में ग्रीष्म के पश्चात आने वाली वर्षा ऋतु के आनन्द की अनुभूति देने वाले बिम्ब सर्वाधिक हैं। चाहे वह आषाढ़ मास के समग्र रूप में आये हैं या भूमि पल्लव आदि के पृथक अर्थों के रूप में। मिलन के प्रस्तुत वर्णनों को भी जायसी ने रंग गंध स्पर्श की अनुभूति देकर बिम्बात्मक बनाया है।

रितु पावस बरसै पिउ पावा सावन भादौं अधिक सोहावा
कोकिल बैन पाँति बग छूटी धनि निसरीं जनु बीर बहूटी
चमकि बिज्जु बरिसै जल सोना दादुर मोर सबद सुठि लोना
रंग राती पिय संग निसि जागी गरजै गगन चौंकि गर लागी
सीतल बूँद ऊँच चौबारा हरियर सब देखिय संसारा

(३३७ १२)

जायसी के ग्रामीण हृदय को सुख की सबसे अधिक अनुभूति वर्षा ऋतु ही देती है। कवि ने उसे बार बार प्रस्तुत किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी ने संयोग शृंगार की सभी सुखात्मक अनुभूतियों को बिम्ब द्वारा व्यंजित किया है। पद्मावत में शारीरिक संयोग की अवस्थाओं से अधिक राजा रानी के हृदय की प्रसन्नता और सुख के आंतरिक भावों को बिम्बों द्वारा अनुभूत कराया गया है। रूप-सौन्दर्य की अपरिमितता भी जायसी को आकर्षित करती है। जायसी इसको प्रभाव रूप से अत्यन्त सुन्दर बिम्बों द्वारा व्यंजित करते हैं। हृदय की आन्तरिक सुखात्मक अनुभूतियों में वियोग के पश्चात मिलन दुःख के पश्चात सुख की अनुभूति जायसी को सबसे अधिक आकर्षित करती है। इसकी अनुभूति कराने के लिए जायसी ने आषाढ़ मास में पृथ्वी के पल्ल- वित होने वर्षा में सरोवर के पुनः भर जाने सूखी लता के पल्लवित हो जाने आदि के अत्यन्त व्यंजक चित्र दिये हैं।

वियोग—जायसी का वियोग वर्णन हिन्दी साहित्य की अद्वितीय वस्तु है। कवि का हृदय जितना वियोग वर्णन करने में रमा है उतना न शृंगार में न अन्य किसी रस या भाव में न अपने सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति में ही। नागमती का विरह वर्णन जायसी के हृदय की रागात्मक अनुभूति को प्रकट करने के लिए अकेला ही पर्याप्त है। वियोग के प्रति विशेष रुचि होने के कारण जायसी ने वियोग के बिम्बों में

अपूर्व सजगता दिखाई है वह व्यंजक और बड़े संदर्भयुक्त हैं। विरह की सारी अभिव्यक्ति उसके बिंबों में ही हुई है। विरह में जायसी की दृष्टि एकाकी अवस्था दग्धता पीड़ा निराशा और रुदन आदि की ओर अधिक गई है। एकाकीपन की अनुभूति और अनन्यता को देने वाला सुन्दर बिम्ब सारस का है। जो लोक कथाओं और साहित्यिक रूढ़ियों में अब तक सदैव साथ जोड़े से रहने वाला पक्षी माना जाता है और अकेला जीवित नहीं रह सकता। जायसी ने अकेले सारस की उपमा देकर एकाकीपन और अनन्यता की व्यंजना करवाई है।

सारस जोरी किमि हरी मारि गयउ किन खग्गि ।
झुरि झुरि पाँजरि धनि भई बिरह क लागी अग्गि ।

(३४१ ८ ९)

असहाय स्थिति की अनुभूति समुद्र में डूबते व्यक्ति से व्यंजित की गई है जिसके लिए तिनके का सहारा भी नहीं वो केवल पुकार कर प्रिय की प्रतीक्षा ही करता है

भरी अथाह थाह हौं बोरत जबहि गभीर
तोहि चितवौं सारस सिसि कौ गहि लावै तीर

(१७ ८-९)

नागमती के एकाकीपन की व्यंजना कुए पर पड़ी रस्सी से सौंपी गई है जिसे कोई उठा कर पानी खींचने वाला नहीं है।

विरह की जलन और दग्धता भी जायसी को बहुत आकृष्ट करती है। ग्रीष्म की तपन से सरोवर का फटता हृदय सूना तट निर्जन वातावरण निर्घोष कोलाहल सभी विरहिणी का आभास कराते हैं। प्रिय वियोग में पद्मावती कहती है

नीर गम्भीर जहाँ हों पिया तुम्ह बिनु फाट सरोवर हिया
गयेउ हिराइ बिरह के हाथा चलत सरोवर लीन्ह न साथा
सरवर जो खंडि केलि के तीरा नीर भरे कोउ आव न तीरा
कंवल सूखि पखुरी बिहरानी गल गल होइ मिलि छार बिलानी
बिरह रेत कंचनु तन लावा चून चून के खेह मिलावा
कनक सो कनकन होइ बिहराई, पिय पै छार समेटे आई
बिरह पवन वह छार सरीर छारहु आनि मिला बहु नीर।

(३८२, १-७)

विरह में निरन्तर जलते रहना जायसी को दीपक की निरन्तर जलती रहने वाली वर्तिका प्रतीत होता है। वर्ण साम्य के कारण यह बिम्ब बड़ा व्यंजक है। लाल रंग अनुराग का प्रतीक भी है। इस प्रकार जलन में विपत्ति की निरन्तरता की भावना जायसी ने भाड़ में भुनते चने के बिम्ब से की है जो दग्ध बालू को छोड़ कर भी फिर से भाड़ में आ गिरता है मानो दग्ध होने में ही सहायुक्त है। जायसी इस बिम्ब से नागमती की पीड़ा की व्यंजना करते हैं।

लागेउ जरै जरै जस भारू फिर फिर भू जसि तजहिं न बारू
(१२४ ५)

दाध होने और जलने के लिए फाल्गुन मास में होली का बिम्ब भी दिया गया है

होइ फागु भलि चाँचरि जोरी, बिरह जराइ दीन्ह जस होरी
(३१५ ६)

बिरह की दाह के साथ साथ तड़पन का बिम्ब देने के लिए जायसी ने कड़ाह में तड़पते तेल का रूपक दिया है

तलफ तेल कराह जिमि, इमि तलफ तेहि नीर
कह जो मरी गिरि पेम का बूँद संमुद समीर।
(११४ ८-९)

वस्तुतः खौलते तेल से पीड़ा और अगाध जलन की अच्छी अभिव्यंजना हुई है विरह में सुख के समाप्त हो जाने का बिम्ब पल्लवित देश के मूकपन से दिया गया है।

जायसी ने विरह में विरहिणी के रुदन को भी बड़ा महत्व दिया है। सावन और भादों मास में तो प्रकृति का सहारा पाकर यह कल्पना पूर्ण भई है

बरिसै मघा झकोरि झकोरी मोर दुइ नैन चुवहिं जस ओरी
चमकि बीज घन गरजि तरासा बिरह काल होइ जिउ गरासा
(३४६ ५ ६)

घर में टपकता हुआ पानी ऐसा लगता है मानो नेत्र ही चू रहे हों। 'माहुट नीर' के साथ नागमती के नेत्र भी बरसते ही रहते हैं।

नैन चुवहिं जस माहुट नीरू
टूटहिं बूँद परहिं जस ओला बिरह पवन होइ मारै झोला
कहिक सिंगार को पहिरि पटोरा गिउ नहिं हार रही होइ डोरा।
(३५१ ७-९)

जायसी ने आँसुओं के निरन्तर बहते रहने के लिए 'रहँट' की घरियों से नेत्रों का साम्य देना है जो निरन्तर पानी उड़ेलती ही रहती हैं।

भये दै नैन रहँट की घरी भरी ते ढारी छूछी भरी
(४१ ७)

विरह में प्रिय की प्रतीक्षा में रत नारी की उपमा अथक प्रतीक्षा के क्रम के कारण सीप और चातक से दी गई है जो समस्त जलों का त्याग करके स्वाति नक्षत्र की एक बूँद के लिए अपार पीड़ा सहते हैं असीम प्रतीक्षा करते हैं। इसमें अनन्यता की अद्भुत व्यंजना है

"अब ससि पीउ मिलै तोहि, साधु पेम कै पीर
जैसे सीप सेवाति कहँ तपै समुँद मँझ नीर ।

(१७१, ८-९)

वियोग में निराशा की व्यंजना भी कवि ने की है । निराशा का प्रतीक रूप अन्धकार जायसी में अनेक बार आया है

केह यह बसत बसंत उजारा, पा(? सो चाँद अथवा लै तारा
अब तेहि बिनु जग भा अँधकूपा वह सुख छाँह जरौं हौं धूपा ।

(११६ ४ ९)

इसके अतिरिक्त कंचन काया का काँच का मोती या कौड़ी बन जाना भी तुच्छता और निस्सारता का प्रतीक है ।

संग लै गयउ रतन सब जोती, कञ्चन क्या काँच कै पोती

(४८३ १)

और

पहिल पदारथ पदुमिनी रानी पिय बिनु भै कौड़ी बर बानी ।

(४८३ २)

पीला पत्र या शाखा रहित पत्र निराशा और वेदना का व्यंजक है । नागमती कहती है ।

तन जस पियर पात भा मोरा बिरहु न रहै पवन होइ झोरा

(३५२ २)

पत्ते के टूटकर गिरने का समग्र बिम्ब भी जायसी ने दिया है । टूटा हुआ पत्ता फिर कभी न जुड़ सकने की अथाह निराशा से पीड़ित है यही दशा नागमती की है जिसको विरह पवन ने अपने प्रिय रूपी डाल से पृथक कर दिया है ।

आखा पीत बिछोव का पात परा बेकरार
तरिवर तजै जो चूरि कै लागै केहि की डार ।'

(३६६ ८-९)

वियोग के सभी बिम्ब जायसी की उत्कृष्ट कल्पना का परिचय देते हैं । वियोग ने कवि को विशेष रूप से आकृष्ट किया है वियोग में हृदय की पीड़ा निराशा प्रेम की गम्भीरता व अनन्यता एवं [illegible] कृशता आदि को सारस सूने सरोवर बालिका ऋतु में भुनते चने रहे [illegible] अन्धकार, पीले पत्ते आदि से व्यंजित किए [illegible]

[illegible] तथा [illegible] कवि की [illegible] [illegible]त्मक

[illegible]

वीरता की प्रतिमूर्ति योद्धा बादल शत्रु पक्ष के प्रति क्रोधित भी है और युद्ध करने के लिए उत्साहित भी। यद्यपि कहीं कहीं क्रोध भाव का प्रसंग से वर्णन भी हुआ है परन्तु अधिकांश में वह वीर रस अथवा उत्साह भाव के साथ ही आया है।

क्रोध भाव की अभिव्यक्ति जायसी में बहुत कम हुई है। जायसी ने इसके लिए एक ही बिम्ब सूर्य के उदय उठने का दिया है। एकदम गर्म हो जाने और अपनी दाहक किरणों से सबको झुलसाने के कारण यह बिम्ब बड़ा सफल हुआ है क्रोधित शाह के लिए जायसी ने यही रूपक दिया है

सुनि कै रिसि राता सुल्तानू, जैसे तिपै जेठ कर भानू

सहसौं करा रोस अस भरा जेहि दिसि देखै सो दिसि जरा।

(४२४ ४५)

क्रोधित राजा की उपमा गरजते बादल से भी दी गई है जो मार्मिक है। क्रोधित व्यक्ति गरजता ही है बोलता नहीं है।

वीर भाव अथवा उत्साह की अभिव्यक्ति युद्ध वर्णनों में हुई है। वीर योद्धा उत्साह की मूर्ति है जो पतंग की भांति अग्नि की ओर धैर्यपूर्वक बढ़ता है। यहां वीर योद्धाओं का साहस पतंग के समान वर्णित है

हिनुवंह केर पतंग कर भेसा, दीरै परै अगिन जहं देखा

(५०२ ५)

उनका उत्साह युद्धस्थल में भली भांति देखा जा सकता है जहां वह पतझड़ और बसन्त की भांति समाप्त हो-होकर पुनः उत्पन्न हो जाता है।

लाल झार आवहिं झुर जाहा,

फर्राहि झर्राहि अपने भी छाया

(५२२ ५)

वीर योद्धा बिना सूंड के मदमस्त हाथी है अथवा सिंह है जो अपने शत्रु पर भयानक आक्रमण करता है। यह बिम्ब उनके बल और वीरता को व्यंजित करता है।

अपार सेना के लिए जायसी ने रात्रि का बिम्ब दिया है। एक तो धूल आदि के उड़ने से सूर्य स्वयं ही छिप जाता है और रात्रि सी प्रतीत होती है साथ ही काले काले हाथी भी अन्धेरे को बढ़ा देते हैं। जायसी भी सेना की सघनता और अन्धकारता मूर्तित करने के कारण उसे रात्रि कहते हैं।

आज कटक सुलतानी गगन छपा मसि मांझ

परत आव जग कारी होत आव दिन सांझ

(५२७, ८-९)

युद्ध स्थल के वर्णनों में जायसी ने अधिकतर वर्षा का रूपक दिया है। अमा जान वर्षा प्रलय आदि के बिम्ब जायसी में भय का संचार करते हैं। अत्यन्त भयानक वातावरण और भय का संचार करने के कारण यह रूपक प्रयुक्त कहे जा सकते हैं अन्य

केसों आदि के रूपक में धर्मसाम्य कुछ भी न होने के कारण व्यंजकता का अभाव है। खड्ग का चमकना, तोपों का गरजना, नगाड़े का बजना आदि से बिजली वर्षा मेघ आदि का वातावरण सहज ही उपस्थित हो जाता है।

चमकै बीजु होइ उजियारा जेहि सिर परै होइ दुइ फारा
सैन मेघ अस दुहु दिसि गाजैं खरग जो बीच बीजु अस बाजै
बरिसै सेल बानु होइ काँदो जस बरिसै सावन औ भादों
टूटहि कुन्त परहि तरवारी औ गोला ओला जस भारी।

(५१८ ११)

युद्ध वर्णनों में इसी प्रकार के रूपक कम से कम १५ बार आये हैं। प्रलय के रूपक भी जायसी ने दिये हैं जिनमें भय संचार करने की और भी अधिक क्षमता है।

तब सरजा गरजा बरिबंडा, जानहु सेर केर भुज दंडा।
कोप सुरज मेलेसि तस बाजा जानहुं परी परबत सिर गाजा
ठाठर टूट फूट सिर तासू सिउ सुमेरु जनु टूट अकासू
धमकि उठा सब सरग पतारू, फिरि गै दीठि फिरा संसारू
भा परलौ सबहूं अस जाना, काढ़ा खरग सरग नियराना
तस मारेसि सिउं घोरे काटा धरती फाटि सेस फन फाटा

(६१७ ११)

युद्ध वर्णन में होली का वर्णन भी जायसी ने किया है। यहां वीरों ने रक्त की होली खेली है। पर उत्साह और क्रोध के साथ यह श्रृंगारमयी कल्पना भाव का विशेष उपकार नहीं कर पाई है। जहां वीर रस में श्रृंगार का वर्णन अप्रस्तुत रूप में आता है वहां उत्कृष्ट नहीं कहा जा सकता। केवल रंगों का साम्य ही बिम्ब की श्रेष्ठता प्रमाणित नहीं कर सकता। भाव की व्यंजना और उपकार उसका प्रथम धर्म है।

समष्टि में उत्साह व क्रोध भावों की ओर कवि की दृष्टि अधिक नहीं गई है। कवि उनके सामान्य रूप में सामान्य धर्मों को ही देख पाया है। क्रोध में प्रज्वलित हो उठने व भयभीत करने का धर्म उत्साह की दृढ़ता व स्थिरता ही कवि को विशेष आकृष्ट कर सकी है। इसके लिए कवि ने सूर्य पतंग आदि के रूपक दिए हैं। वर्षा के रूपकों में युद्ध स्थल का पूरा चित्र स्पष्ट हो गया है जो कवि के युद्ध विषयक भय की अनुभूति का द्योतक है।

(२) भय भाव (भयानक रस)

जायसी में भयानक रस यद्यपि नहीं है परन्तु भय भाव की अभिव्यक्ति अवश्य है। समुद्र की उन्नत हिलोरें कवि में भय का संचार करती हैं। युद्ध वर्णन में वह शाह की भयानक विनाशकारी सेना के लिए यही चित्र उपमान रूप से लाया था। प्रत्युत समुद्र वर्णन में भी जायसी के भय की ही अभिव्यक्ति है।

पुनि किलकिला समुद्र में आये, किलकिला देख सबन डर पाय ।

पुनि किलकिला समुद्र में आये,
गा धीरज वह देखि हिलोरा, जनु अकास टूटै चहुँ ओरा
उठै लहरि परबत की नाईं, होइ फिरै जोजन लख लाईं
धरती लेत सरग लहि बाढ़ा, सकल समुद्र जानहु भा ठाढ़ा
नीर होइ तर ऊपर सोई, माथे रंभ समुद्र जस होई
मै अकसान सबहिं के देखि समुद्र के बाढ़ि
निभर होत जनु लीले, रहा नैन अस काढ़ि (१५५ १९)

समुद्र की उत्तंग हिलोरें, पर्वत सदृश बड़े-बड़े जीव आकाश को छूती लहरें उसमें भय की सर्जना करती हैं। भंवर में पड़ी नाव जब कुम्हार के चाक की भाँति घूमती है तब भी भय की अवतारणा हो जाती है

राकस आनि तहाँ के छरे, बोहित भंवर चक मंह परे,
फिरै लाग बोहित अस तहाँ, जनु कुम्हार धरि चाक फिराईं
(१६४ १-७)

समुद्र बीच का राक्षस भी भय की सृष्टि करता है। रीछ के शरीर वाला अँधियारे मेघ जैसा राक्षस जब हँसता है तो मानो स्वर्ग टूट रहा है ऐसी भयानक ध्वनि होती है

पुनि बाउर राकस तब हँसा, जानहुँ टूटि सरग भुइँ खसा
(१६५, १)

उसका छल पूर्ण कपट व्यवहार मछली को देखकर बगले की तरह बासाकी स पास कर जाना भी भय की सृष्टि करते हैं

मंछ देखि जैसे बग आवा टोइ टोइ भुइँ पाँव उठावा
आइ नियर भै कीन्ह जोहारू, पूछा खेम कुसल बेवहारू
(१६१ ५६)

अलाउद्दीन का कोप और उसका आक्रमण भी भय की सृष्टि करने में समर्थ है। सूर्य के समान तप्त अलाउद्दीन के समक्ष सुख का सरोवर शुष्क हो जाता है और राजा मीन की भाँति विकल होने लगता है। यहाँ राजा की विकलता को मछली के द्वारा मूर्त किया गया है

तहाँ आइ यह कवल अमासी जहाँ अलाउद्दीन
सुनि के बड़ा भानु होइ रतन होइ जल मीन
(४५१ ८-९)

शाह के आगमन से समस्त राजा पत्ते की भाँति काँपते हैं

जावत पहुपति सब काँपि पो डोले अस पात
जब कहूँ बोलि लीन्ह भा बातसहि कर ठाल ।
(५०० ८-९)

भय की सृष्टि में जायसी ने एक ओर तो निर्बल और शक्तिहीन वस्तु को प्रस्तुत किया है और दूसरी ओर उसके विरोध में निर्भयी और शक्तिशाली को। जायसी के भय भाव की अभिव्यक्ति करने वाले बिम्ब उसके मानस का विवेचन भी करते हैं। उसके समुद्र के भयानक स्वरूप का वर्णन इसका प्रमाण है।

(४) आश्चर्य भाव (अद्भुत रस)

जायसी में अद्भुत रस की व्यंजना भी नहीं के बराबर है। आश्चर्य भाव अवश्य एक दो स्थलों पर आ गया है। आश्चर्य की सबसे सुन्दर और निर्दोष अभिव्यक्ति राघव चेतन के कथन में है पद्मावती के जिस अपार सौन्दर्य की वह कल्पना भी न कर सकता था उसको एक दिन प्रत्यक्ष पाकर उसका हृदय आश्चर्य से भर उठा। जायसी उसकी अवस्था का वर्णन इस प्रकार करते हैं।

आजु राघो चेतनि धौराहार के पास
ससि न जाने धुरती बिजुरी चढ़ी अकास
(४६० ८-९)

बिजली और आकाश पद्मावती और महल के प्रतीक हैं। इसमें अपूर्व सौन्दर्य देख और पृष्ठभूमि की जैसी सुन्दर अभिव्यंजना हुई है उससे आश्चर्य भाव को प्रभावशाली बना दिया है। अन्य स्थलों जैसे गढ़ वर्णन पद्मावती के विमान के वर्णन आदि में भी आश्चर्य की झलक मिलती है। नाचते हुए पेड़ को देखकर पक्षियों के आश्चर्य का भी उल्लेख जायसी ने किया है।

राजा के आश्चर्य व चौंकने की अभिव्यक्ति मिलन खंड में है जहाँ जायसी ने राजा को चातिक कहा है जो भाव की व्यंजना तीव्र रूप में करता है। असीम प्रतीक्षा के पश्चात् चातक स्वाति की बूंद पाता है पर वह बूंद भी उसके हाथ से छिन जाए तब उसकी चौंकाहट और आश्चर्य राजा की भाँति ही होगा जिसकी अनेक यत्नों से प्राप्त की हुई प्रेमिका को सखियां छिपा बैठी हैं

सूरज लपत सेज सी धाईं पाछि छोरि ससि सखी छिपाईं
जनु चातिक मुख हुत भी स्वाति राजहिं चकचोहुद तेहिं भाँति
(२६२ १४)

यहाँ राजा की आश्चर्य जड़ता को चातक की अवस्था से चित्रित किया गया है। समष्टि में आश्चर्य भाव की अभिव्यक्ति जायसी में बहुत कम हुई है। पद्मावति के रूप को देखकर राघव-चेतन और राजा रत्नसेन के आश्चर्य की अभिव्यक्ति अवश्य बिम्बात्मक रूप में हुई है जिसमें प्रथम में प्रस्तुत वर्णन में बिम्बात्मक अभिव्यक्ति हुई है और द्वितीय में चातक की अवस्था के द्वारा भाव को मूर्तित किया गया है।

(५) शोक भाव (करुण रस)

जायसी में करुणा अथवा शोक की भावना प्रधान है। वह प्रेम पीर का गायक रहस्यवादी कवि है इसी कारण उसका जीवन में करुणा को प्रधानता देना बहुत संभव

तीत होता है। जायसी ने राजा के नगर को छोड़कर वियोगी बन कर जाने पर करुणा की सुन्दर व्यंजना की है। शोक की इस भावना में निराशा और दुःख की प्रधानता है। अन्तिम दृश्य में भी करुणा एवं शोक की अभिव्यक्ति है। दोनों ही स्थलों पर निराशा और दुःख प्रधान रहा है। जायसी ने अपने बहु प्रयुक्त बिम्ब-सूर्यास्त आदि जिससे उन्होंने सदैव निराशा दुःख पीड़ा भय आदि की व्यंजना की है यहां भी प्रयुक्त किए हैं। राजा के जाने पर सूने नगर में अंधेरा छा जाता है। माता का हृदय दुःख की कालिमा से भर जाता है

रोवै माता न बहुरै बारा रतन चला घर भा अंधियारा
(१३१ १)

जीवन का सुप्रभात राजा रूपी सूर्य के अस्त होने से अंधेरे में बदल जाता है

राज पाट दर परगह सब तुम्ह सो उजियार
बैठ भोग रस मानहु कै न चलहु अंधियार
(१२९ ८ ९)

राजा के जाने से मानो सुख का नाश हो रहा था यह सब बिम्ब निराशा व्यथा और पीड़ा के प्रतीक हैं और जायसी ने कई जगह उन्हें प्रयुक्त किया है। अन्तिम दृश्य में जहां रत्नसेन की मृत्यु और रानियों के विलाप एवं सती होने का वर्णन है वहां भी शोक की अच्छी व्यंजना हुई है वहां भी कवि ने अन्धेरे, अमावस आदि के बिम्ब अंकित किये हैं।

सूरज छपा रैन होइ गई, पूनौं ससि सो अमावस भई।
छोरे केस मोति लर छूटे जानहु रैन नखत सब टूटे
सेंदुर परा जो सीस उघारी आगि लागि चहु जग अंधियारी
(६४८ २ ५)

राजा की मृत्यु पर सूर्य के आलोप हो जाने का बिम्ब दिया गया है

आजु सूर दिन अंथवा आजु रैनि ससि बूड़ि।
आजु नाचि जिउ दीजिअ आजु आगि हम जूड़ि॥
(६४९ ८ ६)

राजा के बंदी होने पर पद्मावती के शोक और नैराश्य की अभिव्यक्ति के लिए भी यही बिम्ब आया है

नैन गगन रवि बिनु अंधियारे ससि मुख आंसु टूट जनु तारे
जग अंधियार गहन दिन परा का सखि ससि नखतन्ह मिलि भरा
(५८८ २ १)

इसके अतिरिक्त पद्मावती की विदा आदि अन्य स्थलों पर भी करुणा की अभिव्यक्ति है। पद्मावती का रूपचित्र जायसी ने इस प्रकार दिया है जो करुणा की अवतारणा करता है

महुवर मैन आए भरि आँसू छाड़ब यह सिंघल कबिलासू
छाड़िब नैहर चलिउँ बिछोई एहि रे दिवस मैं होतहि रोई
(१७८ २१)

यहाँ प्रस्तुत में करुणा की व्यंजना है।

स्पष्ट है कि जायसी में करुण भाव की सम्यक अभिव्यंजना की है। करुणा कवि को प्रिय है। इसी कारण वह वियोग बिदा आदि स्थलों पर विरह की अभिव्यंजना न करके करुणा व शोक की अभिव्यक्ति करता है। प्रस्तुत रूप में भी इसकी अभिव्यक्ति हुई है। उपमानों में सामान्यतः अन्धकार को जायसी ने शोक और करुणा की अभिव्यंजना के लिए चुना है जो बड़ा सफल हुआ है।

(६) निर्वेद या शम भाव (शान्त रस)

जायसी में आध्यात्मिक पक्ष की प्रबलता के कारण शांत रस अथवा निर्वेद भाव की प्रधानता है। परन्तु कवि के रहस्यवादी और आध्यात्मिक अधिक होने के कारण साहित्यिक रस का स्वरूप बहुत कुछ विशृंखलित हो गया है। अनेक बिम्ब जो एक ओर शम भाव की अभिव्यंजना करते हैं दूसरी ओर जायसी के सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी करते हैं। कहना न होगा कि ऐसे स्थलों पर स्वभावतः रस का साहित्यिक स्वरूप क्षीण हो गया है और कवि की रहस्यवादिता आध्यात्मिकता एवं सिद्धान्त विवेचन प्रमुख हो गया है। अखरावट आखिरी कलाम के अधिकांश बिम्ब ऐसे ही हैं। रहस्यवाद की समस्त उक्तियां में शम भाव को ही प्रधानता है। पर सिद्धान्त पक्ष प्रधान होने के कारण हम उन बिम्बों की चर्चा सिद्धान्तों के अध्ययन में करेंगे। यहाँ पर कुछ उन बिम्बों को लिया जायगा जिनसे जायसी के सिद्धान्तों का बरा दूर का सम्बन्ध है।

कवि के निर्वेद की अभिव्यक्ति शोक प्रसंगों पर अधिकतर हुई है। राजा की मृत्यु के समय शोक प्रसंग पर कवि ने राजा को भिखारी कहा है जिसके पास कुछ गांठ की पूंजी नहीं है रतन कौड़ी के समान हीन हो गया है। यहां कवि भिखारी के द्वारा राजा की हीनता व सांसारिकता (द्रव्य) की असारता को प्रकट करता है।

हाथ झारि जस चला जुआरी तजा राज होइ चला भिखारी
जब हुत जीव रतन सब कहा भा बिनु जिय कौड़ि न लहा
(१४७ १-७)

यहां परिस्थिति गत वैषम्य दिखाकर निर्वेद की अभिव्यक्ति हुई है। रतन और कौड़ी राजा और भिखारी के भिन्न भिन्न स्वरूपों को हमारे सामने प्रत्यक्ष करते हैं। जीवन की तुच्छता एवं निस्सारता इस बिम्ब से व्यंजित है।

इसी प्रकार राजा के गृह त्याग पर शम की अभिव्यक्ति राजा के द्वारा कराई गई है। संसार की असारता एवं असत्यता को लक्षित कर राजा जीवन को तनिक देर सुखपूर्वक देखा गया स्वप्न कहता है जो पीछे दुःख के ही अवशेष छोड़ जाता है

यह संसार स्वप्न कर लेखा बिछुर गए जानहु नहीं देखा
(१५२ २)

राजा और गजपति के सवाद में भी इसी प्रकार शम की अभिव्यक्ति हुई है

पेम पंथ जो पहुचे पारा बहुरि न आइ मिलै ऐहि छारा
ऐहि जीवन के आस का जस सपना तिल आधु
महुमद जियतहि जे मरहि तेहि पुरुष कहु साधु ।
(१४६ ८ ६)

इसी प्रकार जायसी के शम भाव के व्यजक बिम्ब उसकी करुणा धारा एवं
शांत रस विषयक रुचि को प्रदर्शित करते हैं ।
समष्टि में भावों में प्रयुक्त बिम्ब जायसी की भाव विषयक रुचि और आकर्षण
को प्रकट करते हैं । जायसी को प्रेम ने सबसे अधिक आकर्षित किया है । उसके संयोग
और वियोग—दोनों ही पक्ष कवि को प्रिय हैं । पर उसको वियोग और वियोग के
पश्चात मिलने वाला संयोग सबसे अधिक आकर्षित कर सका है । अन्य भावो में
करुणा और निर्वेद भी उसके हृदय के अधिक निकट हैं । क्रोध उत्साह आदि का उसके
हृदय से थोड़ा ही परिचय था । संयोग और वियोग एव करुणा व शम से ही कवि ने
बिम्ब योजना अधिक व्यजक व मार्मिक की है । साथ ही इन भावो के बिम्ब भी काव्य
में अधिक हैं । भाव को स्पष्ट करने वाले बिम्बों में सर्वाधिक सख्या सयोग के बिम्बों
की है । परन्तु मार्मिकता की दृष्टि से वियोग के बिम्ब अधिक सफल हैं संख्या में भी
यह संयोग से कुछ ही कम हैं । इससे प्रतीत होता है कि वियोग को कवि के हृदय का
सबसे अधिक सामीप्य और नैकट्य प्राप्त था और इसके बाद संयोग व शम को । अन्य
भाव उसके सम्मुख गौण से हो गए हैं ।

(४) बिम्ब की प्रकृति के आधार पर

बिम्बों की प्रकृति के आधार पर भी कवि की रुचि का विश्लेषण किया जा
सकता है । बिम्बों का स्वभाव के आधार पर वर्गीकरण भी एक रोचक विषय है ।
इसमें बिम्बों की मूर्तता और अमूर्तता का अध्ययन किया जा सकता है किसी कवि
की दृष्टि मूर्त बिम्बों पर अधिक जाती है और किसी की अमूर्तता की ओर । यह
विवेच्य कवि की रुचि और जीवन दृष्टि को भी स्पष्ट करता है ।

साधारणत यह बात सभी को मान्य है कि आदिकालीन और मध्यकालीन
साहित्य म मूर्तता की ओर कवियों की अधिक रुचि रही है । स्थूलता और प्रत्यक्षता
की ओर उनका आग्रह अधिक रहा है और है भी ऐसा ही । इसके बिल्कुल विपरीत
आधुनिक कवि मुख्यत छायावादियों की दृष्टि सूक्ष्मता व अमूर्तता की ओर रही है ।
जिसने उनके वर्णनों का रूप रस गंध से हीन वायवीय बना दिया है जिनका प्रत्यक्ष
दर्शन करके छू पाना तो दूर अस्पष्ट सा आभास ही हम अनुभव कर सकते हैं । उनके
काव्यों में बिम्बों से अधिक प्रतीकों की योजना है । मध्ययुगीन कवियों की मूर्तता के

कई कारण हैं। सर्वप्रथम तो यह कि स्थूलता और प्रत्यक्षता का वह कटु अनुभव उन्हें सम्भवतः न था जो छायावादियों को था जो उनमें मांसलता एवं स्थूलता के प्रति विकर्षण पैदा करता। उन्होंने काव्य को जीवन्त बनाने की वही प्राचीन परम्परा ग्रहण की थी जो संस्कृत साहित्य तथा लोक कथाओं में चलती आ रही थी। उनमें परम्परा के प्रति कोई विद्रोह भी न था जो वायवीयता के रूप में काव्य से मुखर होता। न ही उन पर अंग्रेजों के रोमांटिक साहित्य की अमूर्तता जैसा कोई प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव ही पड़ा था। फलतः छायावाद के अतिरिक्त हिन्दी का अधिकांश साहित्य स्थूलता का ही प्रतिपादक रहा है। जिसके कारण उसमें मूर्तता भी अधिक है। अंग्रेजी साहित्य में भी रोमांटिक्स के अतिरिक्त सभी कवि स्थूल की ओर अधिक सूक्ष्म की ओर कम अग्रसर रहे हैं। उनमें भी मूर्तता अधिक मिली है। वस्तुतः भावव्यंजना की सफलता के लिए मूर्त वर्णन अधिक उपयोगी प्रतीत होते हैं।

जायसी अपने बिम्बों में वायवीयता का पोषक न होकर प्रत्यक्षता एवं स्थूलता का पोषक है। मूर्त वर्णन की ग्रहणीयता से सम्भवतः वह परिचित था इसी कारण चित्र अथवा मूर्ति का उल्लेख वह अपने बिम्बों में बहुत करता है। परन्तु स्थूलता का अर्थ स्थिर चित्र (स्टेटिक) नहीं है उसमें गति का आरोप भी हुआ है और प्रत्यक्षता में रूप रस गंध विषयक संवेदनाओं को तुष्टि देने की शक्ति भी रही है। इस अध्ययन में हम जायसी के मूर्त अथवा अमूर्त बिम्बों और उनकी विशेषताओं को देखेंगे।

(१) मूर्तता का आग्रह

जायसी का आग्रह वस्तु के मूर्त वर्णन की ओर है। उन्होंने मूर्त और अमूर्त सभी वस्तुओं को मूर्त उपमानों द्वारा व्यंजित किया है। उनके वर्णन प्रत्यक्ष एवं मूर्त होने के कारण वायवीयता (एयरी नथिंग) के अभाव के कारण यथार्थ के अधिक निकट हैं। इनमें लम्बी चौड़ी वायवीय रूप योजना नहीं है वरन् जीवन का एक एक व्यापार, एक एक रूप पृथक पृथक आया है। समग्रता का अभाव भी उसमें नहीं है वह अपने आप में एकदम पूर्ण है। ऐसे चित्र अपनी सूक्ष्मता विशिष्टता एवं गतिमत्ता के कारण जीवन के वास्तविक रूप को हमारे सामने लाते हैं। जैसे सरोवर का वर्णन और सेना के प्रयाण आदि का वर्णन

हय गय सेन चलइ जग पूरी परबत टूटि उड़हिं होइ धूरी
रेनु रहिन होइ रबिहि गरासा मानुस पंखि लेहिं फिर बासा
(१४ २ १)

धार्व डोलत सरग पतारू, कांपै धरति न अंगवै भारू
टूटहिं परबत मेरु पहारा होइ होइ चूरि उड़हिं होइ छारा
गगन छपान खेह तस छाई सूरज छपा रैनि होइ आई
(२०६ १ ७)

बिरहिं रात मस परी भ्रवाका मा रवि मस्त चंद रथ हाँका
दिन के पति करत उठि भावे, निसि के निसर चरे सब लावे
(२१० १ २)

यद्यपि यहां कवि भ्रांतिमान के मोहवश अतिशयोक्ति कर गया है पर मूल के साम्राज्य में इस भ्रम्बेरे भौर भस्पष्टता का होना भसम्भव नहीं लगता। इसी प्रकार युद्ध वर्णन में

गगन रुहिर जनु बरिसै धरती भीजि बिलाई
सिर घर टूटि बिलाहिं तस पानी पंक बिलाई
(२१७ १ २)

रक्त की धाराएँ भाकाश की वृष्टि की भांति थी जिसमें भीग कर धरती बही जाती थी इसमें कटे हुए रुण्ड—मुण्डों के टुकड़े कीचड़ की भांति साथ साथ बह रहे थे। युद्ध मे ऐसे दृश्य कुछ असम्भव नहीं है। रण क्षेत्रों में रक्तरंजित भौर रुण्ड मुण्डों से दलदल बनी हुई धरती भक्सर ही देखी जा सकती है। ऐसे दृश्य जीवन के वास्त विक रूप को सामने रखते हैं। युद्ध की भयानक विभीषिका भी इससे व्यंजित है।
इसी प्रकार रूप वर्णन भी यथार्थ के निकट है। पद्मावती के रूप को जायसी इस प्रकार वर्णित करते हैं

उमत सूर जस देखिय चांद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति के रूप।
(६१ ८ ६)

सौन्दर्य की ऐसी लावण्यमय कांति जिसके सम्मुख भन्य रूप फीके भौर मलिन हो जाते हैं जैसे सूर्य के तेज के समक्ष चांद मलिन हो जाये कोई भयथार्थ और भ्रला र्लौकिक नहीं है भौर लोकोत्तर भी नहीं कही जा सकती है। जीवन में भी ऐसे सौन्दर्य का साक्षात्कार किया जा सकता है। ऐसे स्थल जायसी के मूर्त बिम्बों की यथार्थता और जीवन की निकटता के परिचायक है। यद्यपि कवि का मोह अतिशयोक्ति के लिए बहुत है जो उसे यथार्थ से दूर ले जाती है। परन्तु उसके भनेक वर्णन वास्तविकता के निकट है। विरह के बहुत से भंश एवं ऋतु वर्णन भादि इस तथ्य को भलीभांति प्रमा णित कर सकते हैं।

जायसी की मूर्त उपमाओं में रंग रूप स्पर्श गंध गति भादि के तत्व भी बड़े स्पष्ट है। रूप भौर रंग के प्रति तो वह सदैव जागरूक रहे है इसके बड़े सुन्दर प्रयोग पद्मावत में मिल सकते है जैसे

बेनी छोरि झार जौ बैंसा रैन होइ जग दीपक लेसा
सिर हुत सोहरि परहिं भुइं बारा सगरं देस होइ भंधियारा
(४७० १ २)

भर्थात् पद्मावती के केश अत्यन्त सघन व काले थे जब वह अपने केश भाड़ती

थी तो समस्त देशों में अन्धेरा छा जाता था लोग भाँति भाँति दीपक जलाने लगते थे। यहाँ केशों की सघनता के साथ साथ उनके कालेपन पर भी कवि का ध्यान गया है। जिससे प्रकट होता है कि वर्ण या रंग के प्रति भी कवि जागरूक है।

गति के प्रति भी जायसी सचेष्ट रहे हैं। कायिक अनुभावों आदि का वर्णन उन्होंने कई स्थलों पर किया है। गंध स्पर्श आदि की ओर कवि कम गया है परन्तु इनका वर्णन भी पर्याप्त हुआ है इनको कवि संवेदनाओं के अध्ययन में देखा जा चुका है। अन्त में कवि के मूर्त बिम्बों में रूप रस गति आदि की स्पष्टता के लिए एक उदाहरण पर्याप्त होगा

मान सरोदक देखिय काहा भरा समुद्र अस अति अवगाहा
पानि मोति अस निरमर तासू अंब्रित आनि कपूर सुबासू
लंक दीप के सिला अनाई बाँधा सरवर घाट बनाई
खंड खंड सीढ़ी भई गरेरी उतरहि लोग चढ़हि चहु फेरी
फूला कंवल रहा होइ राता सहस सहस पखुरिन्ह कर छाता
उलथहि सीप मोति उतराही चुगहि हंस औ केलि कराही
कनक पंखि पैरहि अति लोने जानहु चित्र संवारे सोने।

(११ १७)

यहाँ कवि ने मानसरोदक के पानी की गंध उसका वर्ण सरोवर के तट पर बनी सीढ़ियाँ उससे उतरते—चढ़ते लोग सरोवर में खिलने वाला सहस दल लाल कमल सरोवर में तैरते स्वर्णवर्णी पक्षी मोती उगलती हुई सीपियाँ और उन मोतियों को चुगते हंस—सबका एक समग्र चित्र प्रस्तुत किया है। जो रूप गंध वर्ण गति आदि विशेषताओं से संयुक्त होने के कारण जायसी के बिम्ब विधान का एक उत्कृष्ट उदाहरण है।

रूप रंग गन्ध आदि से संयुक्त होने के साथ साथ यह जीवन की वास्तविकता से भी दूर नहीं है। वस्तुतः जायसी के काव्य में कला कल्पना प्रकृति और मानवता एक दूसरे से गुँथी हुई है। अपनी कल्पना को वह प्रकृति के सहयोग से कला रूप में ढालता है जो जीवन के भी निकट है किन्हीं आकाशी ऊहाओं और अपार नीति मार्गों में यह विचरण नहीं करती वह स्पष्ट प्रत्यक्ष और वास्तविक है। इस रूप में उसके बिम्ब रहस्य और यथार्थ प्रेम और वास्तविक जगत भावना और रूप आकार के बीच सम्बन्ध सूत्र का काम करते हैं। कवि के बिम्ब उसे बराबर रहस्य और दर्शन की ऊँचाइयों में भी इस धरती का कवि घोषित करते हैं। जीवन और जगत एवं रहस्य और दर्शन के बीच यह संतुलन है। एक बिम्ब से यह बात अच्छी तरह स्पष्ट की जा सकती है

मुहम्मद जीवन जस भरन रंहट घरी की रीति।
घरी जो आई सो भरी ढरी जनम गा बीति॥

(४२, ८६)

जायसी की बिम्ब योजना

यहाँ रहस्य और बंधन की समस्या का स्वरूप कवि जीवन के उपकरणों द्वारा स्पष्ट करता है। वह कहता है कि जीवन की रीति पानी की घरिया जैसी है जो एक क्षण पानी से भरती है और दूसरे क्षण उससे खाली हो जाती है। घरिया का इस प्रकार भरना और खाली हो जाना एक जीवन है। जीवन का क्षण क्षण आने जाने का चक्र सदा चलता रहता है। इसमें जीवन की क्षणिकता व्यंजित है। ऐसे बिम्ब कला व कल्पना प्रधान संसार को वास्तविक जीवन से मिला देते हैं। जायसी में मूर्तता की प्रधानता के कारण सभी बिम्ब इस कोटि में आ सकते हैं। पदमावत में भी आध्यात्मिक को स्पष्ट करने वाले बिंब पर्याप्त हैं।

जायसी का मूर्त वर्णन का मोह अमूर्त का मूर्त वर्णन करने में भी देखा जा सकता है। मानवीय भावनाएं सुख उत्साह आनन्द अवसाद प्रेम विरह आदि सभी मूर्त बनाकर प्रस्तुत की गयी हैं। सुख समृद्धि की वर्षा से दारिद्र्य रूपी पतझड़ समाप्त हो जाता है। कवि संक्षेप से इसे इस प्रकार कहता है

कनक बरसि सोर जग भयऊ
दरिद्र भाग देसांतर भयऊ। (१७ ५)

मानो दारिद्र्य को देश निकाला दे दिया गया हो यहाँ सुख के साम्राज्य और दरिद्रता के अभाव के अमूर्त को मूर्तित कर दिया गया है। उपमान स्पष्ट न होने पर भी भाग आदि क्रियाएं कवि के मानस में बिम्ब का आभास दिखाती हैं।

अमूर्त भावों और वृत्तियों का जायसी ने सदैव मूर्त रूप में वर्णन किया है। जो उनकी कला की उत्कृष्टता का अच्छा परिचायक है। पद्मावती के प्रति अनुरक्त रत्न सेन के लिए नागमती की उक्ति बड़ी व्यंजक है

कहा हँसहि तू मोसों किये और सो नेहु,
तोहि मुख चमकै बीजुरी, मोहि मुख बरिसै मेहु। (४२७ ८१)

यहाँ बिजली आनन्द का प्रतीक है और मेघ अश्रु, रुदन अथवा दुख का प्रतीक है। इन शब्दों (पदार्थ) में हर्ष और विषाद चित्रित हो गये हैं। यहाँ एक विशिष्ट सौन्दर्य है। इस वर्णन में एक ही प्रसंग —वर्षा— से दो बिम्ब लेकर भिन्न २ भावों को कवि ने व्यक्त किया है। वर्षा का एक उपकरण बिजली आनन्द का द्योतक बन गया है व दूसरा उपकरण मेह—रुदन का। हर्ष और विषाद के अमूर्त भावों के लिए अंधकार और प्रकाश जायसी का बहु प्रयुक्त मूर्त बिम्ब है। निराशा व दुख को जायसी सदैव अन्धकार से मूर्तित करता है।

राती सुपट सुना सब गयऊ जनु निसि परी अस्त दिन भयऊ
गहने गही चाँद कै करा आँसु गगन जनु नखत तरइन्ह भरा (१७, १२)

राजा के गृह त्याग पर माता व पत्नी दोनों निराशा और दुःख के घने अंधेरे से ग्रस्त हो जाती हैं

रोवै मता न बहुर बारा रतन चला घर भा अँधियारा
(१११ १)

समस्त नगर भी विषाद के घने काले बादलों से घिर जाता है

जोगी होइ निसरा जो राजा, सून नगर जानहु धुँध बाजा
(११२ १)

राजा की मृत्यु पर भी इस निराशा और दुःख के अन्धकार का उल्लेख है। निराशा के अन्धकार की भाँति जायसी ने सुख और आशा के प्रभात का भी वर्णन किया है। प्रभात यहाँ जीवन के सुख और आनन्द का व्यंजक है। मानसरोवर के सुख और उल्लास को जायसी ने इस प्रकार मूर्तित किया है

देखि मानसर रूप सोहावा हिय हुलास पुरइन होइ छावा
गा अँधियार रैन मसि छूटी भा भिनसार किरन रवि फूटी
(१२८ २ १)

गोरा बादल के आश्वासन से रानी का दुःख समाप्त हुआ और उसे अँधेरे में आशा की किरण दिखाई दी

जनु निसि महँ रवि दीन्ह दिखाई भा उदोत मसि गई बिलाई
चढ़ी सो सिंघासन झमकत चली जनहु दुइज चाँद निरमली
(५१२ ५ १)

राजा के पुनर्मिलन पर भी निराशा के गहन आवरण को हटा कर आते सुख के प्रभात का उल्लेख है

जानँ उई होइ जस भोरा रैन गई दिन कीन्ह अँजोरा
(५३८ २)

सुख और दुःख के अमूर्त भावों पतझड़ के पीले पत्तों के बाद पल्लवित होती लाल कोंपलों से भी मूर्तित किया गया है

'पियर पात दुख झरे निपाते सुख पालौ उपने होइ राते
(१८१ ७)

नागमती में नाग सर्प के रूपक द्वारा दुःख की केंचुली उतर कर निर्मल हो जाने का भी उल्लेख है यहाँ केंचुली का उतरना दुःख निवृत्ति का द्योतक है :

छूटी जो भुइँ नागिनी जसि लहरा फिर पाएँ तन मँह मैं लहा
तन दुख जनु केंचुल भा छूटी होइ निसरी जनु बीर बहूटी
(४९१ ४ २)

दुःख का बहु प्रयुक्त मूर्त स्वरूप मेघ का बरसना है। दुःख के बादल हृदय को आच्छादित किये रहते हैं। अश्रु के रूप में बरस जाने के बाद प्रसन्नता का निर्मल आकाश दृष्टिगत होता है

कंठ लागि सो होसुर रोई अधिक मोह जो मिले बिछोह
प्राय झूरी सुख हिये जो गम्भीर नगह आइ चुवा होइ नीर
तेहि क उत्तर पदुमावति कहा बिछुरन दुख हिये भरि रहा।
मिला जो आइ हिये सुख भरा वह दुख नैन नीर होइ ढरा
(१७५ ७-७)

अथवा

बिछुरता जस भेंटिये, सो जानै जेहु नेहु
सुक्ख सुहेला उग्गवइ दुख झरे जेउ मेहु।
(१७५ ८ ९)

सुहेला नक्षत्र रूपी सुख के आगमन से दुख की वर्षा हो गई और निर्मल आकाश दिखाई देने लगा।

दुख के पश्चात प्राप्त होने वाले सुख की अमूर्तता तप्त पृथ्वी को वर्षा के आगमन से मिलने वाले सुख में प्रत्यक्ष हो गई है। राजा के आगमन के पश्चात नागमती की तुलना पृथ्वी से करता है—

नागमती कहुं अगम जनावा गै सो तपनि बरसा रितु आवा
(४२१ १)

प्रसन्नता के अमूर्त भाव को भी भूमि के द्वारा मूर्तित में किया है। पावस की छाँह पाकर जिस प्रकार ग्रीष्म में जलती हुई पृथ्वी शांति व सुख पाती है उसी प्रकार नागमती को भी प्रिय आगमन पर सुख मिलता है

जब लगि सदी पवन हा ताना आइ लागि मोहि सीतल गाता।
महि हुलास जस पावस छाँहा तस हुलास उपना जिय माँहा।
(४२४ १-२)

पद्मावती के जन्म के समय पद्मावती को जननी के हृदय का सुख और उल्लास दीपक के झीने प्रकाश से मूर्तित किया है

जस औधान पूरि होइ तासू दिन दिन हिये होई परगासू।
जस अंचल झीने महं दिया तस उजियार देखावै हिया।
(५० ८ ९)

सुख और प्रसन्नता के भाव और भी अनेक सुखात्मक भाव हृदय में उठा करते है। जायसी ने उनको सुख-सरोवर के समीप क्रीड़ा करते हुए पक्षियों द्वारा मूर्तित किया है, जो सरोवर के सूखने पर विदा हो जाते हैं :

सुभर सरोवर जो लहि नीरा बहु आदर पंछी बहु तीरा
नीर घटे पुनि पूछ न कोई बिरसि सो लीजै हाथ रह सोई
(२६१ ४ ५)

तट पर क्रीड़ा करने वाले पक्षी जो एक बार उड़ जाते हैं फिर लौट कर

शुष्क सरोवर पर नहीं आते। उसी प्रकार विरहिणी रानी के सुख के क्षीण हो जाने पर आनन्द, उल्लास, उमंग पुलक क्रीड़ा कौतूहल आदि उससे विमुख हो जाते हैं

नीर गंभीर कहां हो पिया तुम्ह बिनु फाट सरोवर हिया।
गयउ हेराइ बिरह के हाथा चलत सरोवर लीन्ह न साथा।
बरत जो पंछि केलि कै नीरा नीर घटे कोउ आव न तीरा।

(१८२ ११)

सुखात्मक भावों अथवा अनुभूतियों के लिए पक्षियो का मूर्त उपमान बहु प्रयुक्त है। अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग है। कहीं यह सरोवर पर क्रीड़ा करने वाले पक्षी है तो कहीं लता वृक्ष आदि पर कलरव करने वाले पक्षी। नागमती और रत्न सेन के मिलन पर कवि सुखात्मक भावों को पक्षी कहता है

कंठ लाइ कै नारि मनाई जरी सो बेल सींच पलुहाई
फरें सहस साखा होइ, दारिउँ दाख जंभीर
सबै पंखि मिलि आइ जोहारे, लोट उहें भै भीर।

(४२८ ७६)

जायसी ने विरह के अमूर्त भाव को भी मूर्तता प्रदान की है। विरह में उनकी दृष्टि उसकी भारवाहकता निरन्तर दग्ध करने की भावना और मलिन या विषाद पूर्ण बनाने की ओर गई है। विरह की क्रूरता अथवा नाशदायकता को कवि क्रूर हाथी से मूर्तित करता है जो यौवन की सुख वाटिका को पददलित कर देता है

जोबन सुनहु कि नवल बसंतू तेहि बन परेउ हस्ति मैमंतू।
अस जोबन बारी को राखा कुंजर बिरह बिधासैं साखा॥

(१७० २१)

विरह में एकनिष्ठ होकर निरन्तर दग्ध होने वाली भावना को दीपक की प्रज्वलित रहने वाली वर्तिका मूर्तित कर देती है

जरै बिरह ज्यों दीपक बाती भीतर जरै उपर होइ राती।

(१०८ १)

विरह के लिए कवि ग्रहण का उपमान भी लाया है जो चन्द्र और नक्षत्रों (रानी और सखियों) को विषाद और दुख के गहन अन्धकार से भर देता है

कँवलहू बिरह न छाड़ै भा ससि गहन गरास
नखत चहूं दिसि रोवहि अंधियर धरति अकास।

(२४१ ८-९)

यौवन की अमूर्तता को भी जायसी रूप देते हैं उसकी उन्मत्तता तरलता एवं तरंगायितता को समुद्र नदी आदि के द्वारा व्यक्त किया गया है।

यौवन की तरंग (उन्माद) और तरलता (लावण्य) के लिए वह उसे नदी कहते हैं।

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा नाऊं मुहम्मद पुनिउ करा।
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी औ तेहि प्रीति सिस्ट उपराजी
दीपक लेसि जगत कहं दीन्हा भा निरमल जग मारग चीन्हा।
जौ न होत अस पुरुष उजियारा सूझि न परत पंथ अंधियारा।
(११ १४)

जायसी की मान्यता है कि प्रेम का आन्तरिक सुख विपत्तियों के बाह्य दुःख के पश्चात ही मिल सकता है। यह मधु की भांति है। जो दुःख और विपदाओं के छत्ते में छिपा रहता है। यह सभी अध्यात्मवादियों की मान्यता है जो प्रेम की दुर्लभता को व्यंजित करती है

दुख भीतर जो पेम मधु राखा गंजन मरन सहै सो चाखा।
(६८ ३)

प्रेम पूरित हृदय को जायसी पानी कहते हैं जो स्वयं को खोकर जिस रंग से मिलता है वैसा ही हो जाता है अर्थात् प्रियतम का स्वरूप हो जाता है

जेहि जिय पेम पानि भा सोइ जेहि रंग मिलै तेहि रंग होइ
(२४१ ३)

प्रेमी व्यक्ति अन्धा और बहरा अर्थात् अन्य चेतनाओं से परे होता है। वह काठ के घोड़े की भांति नाचता है मानो कोई पंक्ति से उसे नचा रहा हो

पेम क लुबुध बधिर औ अंधा, नाच कोड जानहुं सब कंधा।
जानहु काठ नचावै कोइ, जो जिउ नाच न परगट होई।
(६५७ ५ ६)

प्रेम के जोगी शाह के लिए उसकी मानसिक अवस्था का परिचय देने के लिये कवि ने शतरंज के प्यादे (एक मोहरा) का बिम्ब दिया है जो चलता तो सीधा है पर मरता बायें-बायें है।

पेम क लुबुध पयादे पाऊं, चलै सौंहु ताकै कोहनांऊ।
(६६७ ५)

शाह भी छलपूर्वक देख तो सामने की ओर रहा था पर कनखियों से पार्श्व में रखे दर्पणों को जिनमें पद्मावती का प्रतिबिम्ब पड़ने वाला था ताकता जा रहा था। छलपूर्ण मनोवृत्ति का यथार्थ मूर्तीकरण इस बिम्ब में हुआ है।

प्रेम जीवन का आवश्यक तत्व है। प्रेम हीन जीवन की निस्सारता है कवि एक मुट्ठी राख की तुच्छता और क्षुद्रता से मूर्तित करता है। वह कहता है

मानुस पेम भयउ बैकुंठी, नहिं तो काहा छार एक मुठी।
(१६६, २)

अमूर्त दान वृत्ति को भी जायसी ने मूर्त रूप से प्रस्तुत किया है। दान जीवन का प्रधान तत्व है कपूर अर्थात सुगंध है जो अक्षय है अमर है,अवस्था और समय से उसका कोई सम्बन्ध नहीं है। वह दीपक है जो जीवन के आचार पक्ष को प्रकाशित करता है

दिया करै आगे उजियारा जहाँ न दिया तहँ अँधियारा——
दिया मंदिर निसि करै अँजोरा, दिया नाहिं घर मूसहिं चोरा।
(१५५ ४१)

दान रूपी दीपक के अभाव में संसार का मार्ग अन्धकारमय हो जाता है। राजा के दान का अन्त हो-जाने पर जायसी उसके मार्ग के अन्धकारपूर्ण हो जाने का उल्लेख करता है। इन पंक्तियों में दान की प्रमुखता दीपक और सुगन्ध के द्वारा मूर्तित हो गई है।

अन्य अमूर्त भावों में विवशता व क्रोध के मिले जुले भाव को लासे में गिरे सिंह द्वारा रूप दिया गया है। गोरा बादल के प्रसंग में कवि उनके वीरत्वपूर्ण क्रोध और विवशता के लिए कहता है

राजै लीन्ह सुनावा, लाग दुहूँ जस लोन।
आइ कोहाइ मंदिल महँ सिंघ जानु औगाह।
(५५६, ८ १)

नागमती के सौतिया डाह जैसे अमूर्त भाव को भी कवि रूप देता है

आपा पदुमावति कै देखनु, नागमती जिउ उठा सो भसमू।
जानहु छाँह मँह धूप देखाई तैस झार लागी जो आई।
(४२६ ४ २)

राजा की चौंकाहट की चपलता को चातक के मुख से बहुप्रतीक्षित स्वाति बूँद के छूट जाने का उल्लेख करके प्रत्यक्ष कर दिया गया है। प्रेम के मनमुटाव को भी कवि ने मूर्तित किया है

परा प्रीति कंचन महँ सीसा बिछुरि न मिलै स्याम पै दीसा।
कहँ सोनार पास जेहि जाऊँ देइ सोहाग करै एक ठाऊँ।
(८६, ६-७)

अनुकरण वृत्ति को भी सेना के प्रयाण से पूरे रूपक द्वारा मूर्तित किया गया है।

रूपहीनता को भी कवि मूर्तित करता है। कवि उसकी तुलना पतंग वृक्ष के ठूंठ के मूर्त उपमान से देता है जो अपने सुन्दर पत्तों के अभाव में कुरूपता और निकृष्टता का एक हास्यास्पद उपकरण मात्र बनकर रह जाता है।

छोंड़ रहीं गुनीनता, निसठे आपनि भूख।
बिनु गए पुहुप पतंग ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पै सूख।
(५२० ८-९)

अमूर्त मन को जायसी मूर्त उपमान पारा द्वारा प्रस्तुत करते हैं जो कभी मर नहीं सकता अर्थात जिसका दमन नहीं हो सकता। परन्तु ज्ञान रूपी शिला पर घिसने से उसके समाप्त हो जाने अर्थात वृत्तियों के चांचल्य के शान्त हो जाने की

सम्भावना रहती है

> मानुस्मव यह मन भमर है, कहु किमि मारा जाइ ।
> ध्यान सिखा सों लो बसे अंजतहि बसत बिलाइ ।
> (४२१ ८-९)

कवि की वाणी अर्थात कविता को भी जायसी ने मूर्त रूप से प्रस्तुत किया है। उसे वह एक तलवार के समान कहते हैं जिसमें युद्ध और शांति—दोनों की सामर्थ्य छिपी रहती है। तलवार को घिसने से एक ओर चिनगारी निकलती है और दूसरी ओर उस पर पानी अर्थात धार चढ़ती है

> कवि क जीभ खरग हिरवानी एक दिसि आग दोसर दिसि पानी।
> (४५० ४)

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी की मूर्तता के प्रति विशेष रुचि है उन्होंने सुख प्रसन्नता उत्साह, दुख निराशा विषाद विरह, यौवन प्रेम लोभ ईर्ष्या विवशता क्रोध मनमुटाव ज्ञान अस्थिरता अनुकरण वृत्ति मन हृदय कविता जैसे अमूर्त भावों को मूर्तित किया है। अमूर्त भावों एवं वस्तुओं का यह मूर्तीकरण मूर्तता (कंक्रीटनस) के प्रति जायसी के मोह और विशिष्ट आसक्ति का द्योतक है। मूर्तता वस्तुतः वस्तु को व्यंजक और प्रेषणीय बनाने में सफल होती है, इसी कारण जायसी ने इसका आश्रय अधिक लिया है।

(२) अमूर्तता

जायसी में अमूर्त बिम्ब योजना नहीं के बराबर हुई है। कवि जहाँ अमूर्त उपमान लाया भी है, वहाँ वह उसके प्रति विशेष सचेष्ट नहीं है। कहना चाहिये कि अमूर्त उपमान योजना अनचाहे और अनजाने ही उसके काव्य में आ गई है उसकी रुचि उस ओर नहीं है।

अमूर्त उपमान मृत्यु को कवि कई बार लाया है। मृत्यु एक भीषण दुःख की भावना है जो क्रूर और पीड़क वस्तु या व्यक्ति के लिए आई है। प्रिय का वियोग कराने वाले दोषी के लिए कवि यही उपमान देता है

> दुखा काल होइ लै गा पीउ पिउ नाहि जैत जैत बर जीउ।
> (३४१ १)

पीड़ादायक विरह को भी मृत्यु कहा गया है

> चमकि बीजु घन गरजि तरासा बिरह काल होइ जीउ गरासा
> (३४१ ४)

यहाँ कवि ने अमूर्त की अमूर्त से उपमा दी है। विरह भी अमूर्त है और मृत्यु भी।

संसार के प्रति क्षणिकता और नश्वरता की अमूर्त भावना के लिए भी कवि ने अमूर्त उपमान दिया है। कवि उसे सपने के सदृश कहता है जो अमूर्त है

> यहु संसार सपन कर लेखा बिछुरि गये जानहु नहि देखा।
> (११६, १)

अथवा

देहि जीवन के आस का जस सपना तिल आधु।
मुहम्मद जियतहि जे मरहिं तेइ पुरुष कहु साधु।
(१४६ ८-९)

जायसी ने पद्मावती के नैहर के क्षणिक सुख के लिये यही अमूर्त उपमान स्थान प्रस्तुत किया है

नैहर आइ का सुख देखा, जनु होइगा सपने कर लेखा।
(१७८, ६)

यहां अमूर्त नैहर के सुख के लिए अमूर्त सपने का उपमान लिया गया है।

अन्यत्र एक स्थल पर जायसी ने मन (अमूर्त) को भी उपमान बनाया है। पर यहां मन शुद्ध उपमान रूप में प्रयुक्त न होकर अतिशय और आश्चर्य प्रकट करने के रूप में आया जान पड़ता है

तलफत धाइ तैसाइ पहुंचा, मन सो अधिक गगन सों ऊंचा।
(२२२, ३)

अमूर्त उपमानों की यह अल्प संख्या उनकी शैलीगत अमूर्तता के प्रति कोई आकर्षण न रखने की द्योतक है।

समष्टि में जायसी के बिम्बों की मूल प्रकृति मूर्तता है। मूर्तता, जो गति रूप, रस गन्ध से युक्त है, कवि को विशेष प्रिय और सदा कवि के अमूर्त भावों, विचारों मनोवृत्तियों तथा अमूर्त वस्तुओं को अनुभूत तथा रमणीय बनाने का माध्यम रही है। बिम्बों की यह प्रकृति उनकी मूर्तता के प्रति विशेष रुचि की द्योतक है। मूर्तता का यह आग्रह कवि के यथार्थ के प्रति प्रेम का प्रमाण है। जायसी जीवन के बहुत निकट था जीवन का प्रत्येक रूप प्रत्येक क्षण उसे आकर्षित करता था इसीलिए वह काव्य में इतनी स्पष्टता से प्रकट हुआ है। वह आकाश की गहन नीलिमा के आवरण में छिपे सत्य को ही जानने का उत्सुक नहीं था वरन् जीवन को जीवन की भूमि पर ही बसाने के लिये प्रयत्नशील था। रहस्यवादी होते हुए भी उसकी शैलीगत मूर्तता (कंक्रीटनेस) उनकी सामंजस्य भावना को प्रकट करती है। वायवीयता अथवा अमूर्तता का अभाव उसकी सामाजिकता जीवन की निकटता और जीवन के मोह का संकेत भी देता है।

(५) अभिव्यक्ति के आधार पर

कवि के बिम्बों का अभिव्यक्ति के आधार पर वर्गीकरण अर्थात् काव्य में उसके बिम्बों के भाषागत रूप भेदों का अध्ययन, कवि के भाषाधिकार की क्षमता और शैलीगत रुचि को प्रकट करता है। बिम्ब की अभिव्यक्ति का यह वर्गीकरण प्रयोग मात्र के आधार पर है। प्रत्येक व्यक्ति की भिन्न-भिन्न रुचि-प्रवृत्ति बिम्बों के प्रयोग में अन्तर डाल देती है उसके हृदय का विद्रोह अथवा परम्परा के प्रति मोह भी बिम्बों के

आधार पर प्रकट होता है। आधुनिक परम्परा का विद्रोह कवि बिम्बों के माध्यम से विद्रोह प्रकट करता है, वह नई-नई वस्तुओं का बिम्ब तो देता ही है, साथ-साथ प्रयोग में भी नवीनता प्रकट करता है। प्राचीन कवि रूढ़ि और परम्पराओं के पोषक व समर्थक थे। उनमें प्राचीन उपमान अथवा बिम्ब प्राचीन रूप से ही प्रयुक्त हुए हैं। उनकी अभिव्यक्ति उपमा रूपक—अर्थात अलंकारों के दायरे को लांघने में हिचकती है। परन्तु आधुनिक कवि अलंकारों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं रखते अपनी बिम्बात्मक अभिव्यक्ति को व नये नये भाषागत रूपों अर्थात मानवीकरण लक्षणा प्रतीक आदि आदि के रूप में प्रस्तुत करते हैं। जायसी के बिम्बों का यह अध्ययन उसके परम्परा पोषक रूप को देते हुए, उसकी स्वच्छन्द वृत्ति का परिचय भी देता है।

अभिव्यक्ति अथवा भाषागत प्रयोग के आधार पर बिम्ब निम्नांकित रूपों में हमारे सम्मुख आते हैं

(१) अभिधा द्वारा अभिव्यक्ति
(२) लक्षणा
(३) अलंकारों द्वारा अभिव्यक्त (अ) शब्दालंकार में (आ) अर्थालंकार में।
(४) मानवीकरण द्वारा अभिव्यक्त
(५) प्रतीकों द्वारा अभिव्यक्त
(६) मुहावरे या लोकोक्तियों द्वारा अभिव्यक्त।

(१) अभिधा द्वारा अभिव्यक्त

जायसी में अभिधेयार्थ में पर्याप्त बिम्बात्मक वर्णन मिल जाते हैं। वस्तु वर्णन एवं प्रकृति वर्णन में अभिधा में बिम्ब देने की प्रवृत्ति खूब मुखर हुई है उनके राजमहल राजसभा ताल तालाब हाट आदि सब रूप रंग से पूरित हैं। इनको कवि ने सदैव बिम्ब रूप में हमारे सम्मुख रखा है। राजमन्दिर आदि सब नेत्रों को प्रत्यक्ष हो गये हैं। राजमहल का वर्णन कवि इस प्रकार करता है

साजा राजमंदिर कबिलासू, सोने कर सब धरती अकासू।
सात खंड धौराहर साजा, उहै संवारि सकै अस राजा।
हीरा ईंट कपूर गिलावा, औ नग लाइ सरग लै आवा।
जावत सबै उरेहैं उरेहैं, भाँति भाँति नग लाग उबेहैं।
भा कटाव सब अनबन भाँती चित्र होत गा पाँतहि पाँती।
लाग खंभ मनि मानिक जरे, जानहु दिया दिन आछत बरे।
देखि धौराहर कर उजियारा, छपि गे चाँद सूर औ तारा।

(४८ १-७)

यहाँ राजमन्दिर में स्वर्ण वर्ण कपूर गन्ध मणि माणिक्य और दीप के सदृश प्रकाश आदि का उल्लेख है जो वर्णन को प्रत्यक्ष कर देता है। अन्य स्थलों पर भी

राजमहल की घनी अमराइयाँ उनकी शीतलता और अंधेरा, सुगन्धित पवन, स्वर्णमयी दीवारें और छतें उनकी गगन तक की ऊँचाई, वहाँ के सरोवर में खिले सात कमल प्रस्फुटित होते पुष्प महलों की दीवारों पर पत्थरों में उत्कीर्ण की गई पशु-पक्षी और मनुष्यों की मूर्तियाँ सब राजमहल के स्वरूप और वातावरण को नेत्रों के सम्मुख प्रत्यक्ष कर देती है

साँवत पँवरि गए खंड साता। सोने भूमि बिछावन राता।
सोवन साहु ठाढ़ भर आई, मंदिर छाँह अगिनि सीतल पाई।
चहुँ पास फुलवारी बारी माँझ सिंहासन धरी सँवारी।
जनु बसंत फूला सब सोने हँसहि फूल बिगसहि पर सोने।
जहाँ सो ठाढ़ दिस्टि महँ आवा दरपन भा दरसन देखरावा।
(२२९, १२)

कवि कहता है कि राजमहल की दीवारों पर उत्कीर्ण प्रतिमाएँ इतनी सजीव है कि जीवन्तता का भ्रम कर देती है

पँवरि सात सातों खंड बाँको सातों लाखि काढ़ि ऐ झाँकी।
जानु उरेहु काढ़ि सब काढ़ी, चित्र मुरति जनु बिसमै ठाढ़ी।
(२२२ १-७)

जायसी को राजमन्दिरों में स्वर्ण वर्ण विशेष प्रिय है। गढ़ की दीवारों के रंग में उन्हें स्वर्ण वर्ण विशेष आकर्षित करता है यहाँ तक कि गढ़ की सीढ़ियों के लिए भी जायसी यही रंग देता है

कनक सिला गढ़ सीढ़ी लाई जगमगाहि गढ़ ऊपर ताई।
(४१ ७)

सिंहलगढ़ के हाट मन्दिर, शृंगारहाट सभी चित्र रूप में हमारे सम्मुख आए हैं। यह सारा रूप वस्तुगत रूप में हुआ है और कवि-कल्पना के द्वारा ही है। ताल तलावों का जायसी का वर्णन बड़ा जीवन्त है। यथा

मानसरोदक देखिय काहा भरा समुद्र अस अति अवगाहा।
पानि मोति अस निरमर तासू अंब्रित आनि कपूर सुबासू।
लंक दीप कै सिला अनाई बाँधा सरवर घाट बनाई।
खंड खंड सीढ़ी भई गरेरी, उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी।
फूला कँवल रहा होइ राता सहस सहस पंखुरिन्ह कर छाता।
उलथहिं सीप मोति उतराहीं, चुगहिं हंस औ केलि कराहीं।
कनक पंखि पैरहिं अति लोने जानहु चित्र सँवारे सोने।
(११, १७)

यहाँ तालाब में कमल के पुष्पों सीपी के ऊपर आने पक्षियों व हंस लोगों के ऊपर उतरने चढ़ने निर्मल जल में कपूर की सुगन्धि के आलेख से समस्त दृश्य

प्रत्यक्ष हो गया है। वस्तु वर्णनों के सभी स्थल बिम्बात्मक हैं। सेना के प्रयाण पर छा जाने वाला धूम और अन्धकार भी दृश्य को मूर्तित कर देता है

> भाउ कटक सुलतानी गगन छपा मसि मांझ।
> परत आव जग कारी होत आव दिन सांझ।
>
> (१७ १२)

रात्रि के इस भ्रम में पशु पक्षी तक भ्रमित हो जाते हैं। समस्त पदार्थों में धूल भर जाती है सारा संसार एक अंधकूप के सदृश्य हो जाता है। यह सारा दृश्य बिम्बात्मक है। प्रकृति वर्णन में भी प्रस्तुत रूप विधान पर्याप्त मिलता है। यद्यपि संख्या इनकी अधिक नहीं है परन्तु इनमें बिम्बात्मकता पर्याप्त है। सावन भादों बसंत आदि के चित्र अभिधेयार्थ शब्दों द्वारा ही प्रस्तुत हुए हैं। रूप वर्णन भी कहीं-कहीं उपमानहीन पर बिम्बात्मक है। जैसे पद्मावती का यह रूप वर्णन

> *भै निसि ससि धौरहर चढ़ी सोरह करा जैस विधि गढ़ी।*
> *बिहँस झरोखे आइ सरेखी निरख ताहि दरसन मुंह देखी।*
> *होतहिं दरस परस भा लोना धरती सरग भयऊ सब सोना।*
>
> (५९९ २४)

गति एवं क्रियाओं के उल्लेख द्वारा भी अभिधेयार्थ में बिम्ब योजना की गई है। जैसे विरही राजा की अवस्था के वर्णन में

> निहुर्चै पेम पीर यह जागा कसत कसौटी कंचन लागा।
> बदन पियर जल डभकहिं नैना परगट दुऔ पेम के बैना।
>
> (२११ १४)

पद्मावती एवं नागमती की विरहावस्था भी क्रियाओं एवं मुद्राओं द्वारा चित्रित की गई है

> सखि मानहिं तेवहार सब गाइ देवारी खेल।
> हौं का खेलौं कंत बिनु रही छार सिर मेल।
>
> (१४८ ८९)
>
> अथवा
>
> *बिरहु न धापु संभारै मैल चीर सिर रूख।*
> *पिउ पिउ करत राति दिन पपिहा भइ मुख सूख।*
>
> (२२९ ८९)

मानवीय व्यापार भी बिंब द्वारा प्रकट हुए हैं। बधिक का आगमन क्रियाओं की सहायता से प्रत्यक्ष हो जाता है

> पैग पैग भुइँ चापत आवा पंखिन्ह देख सबहिं डर खावा।
>
> (५९ २)

इसी प्रकार पनिहारी प्रेम से व्याकुल राघव का भ्रमपूर्वक भागना 'टोई टोई भुइ

पाँव उठावा' पद से प्रकट हो जाता है

> मत देखि जैसे कम आवा डोई डोई मुई पाँव उठावा।
> थाह भियर ना कीन्ह ओनाहू, पूछा कैस कुसल बेवहारु।
>
> (३११ ८-९)

कहीं कहीं मुद्राओं का भी उल्लेख है जिनसे एक स्थिर चित्र की रचना हुई है। कमर पर हाथ रखकर खड़े होने की चिंतित मुद्रा और स्नेहपूर्वक कंधे पर हाथ रखने की मुद्रा को जायसी ने दिया है। पद्मावती के चिंतित रूप का चित्र इस प्रकार आया है

> एक बार दुख जाना जिउ आपुहु गा छोंकि।
> सब सिखानि कै रोव पुरि मंदार कर टेकि।
>
> (१३८, ८९)

समष्टि में अभिधा प्रणाली जायसी की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति का एक प्रधान साधन रही है। महल मंदिरों धाम-उजाला हाट आदि वस्तुओं सावन बसंत आदि ऋतुओं व दृश्यों रूपाकृतियों क्रियाओं मुद्राओं-आदि के अनेक बिम्बात्मक वर्णन पद्मावत में मिल जाते हैं।

(२) व्यंजना द्वारा अभिव्यक्ति

व्यंजना जायसी की अभिव्यक्ति का प्रधान माध्यम है और यह व्यंजनात्मक उक्तियाँ अनेक स्थलों पर बिम्बात्मक रूप में ही हैं। व्यंजनात्मक उक्तियों में बिम्ब का प्रयोग सबसे अधिक हुआ है। सुख दुख हर्ष और विषाद की व्यंजना सूर्योदय और सूर्यास्त के बिम्बों द्वारा बड़ी सफलता से कराई गई है इन हम पिछले अध्यायों में देख चुके हैं। अतः उन्हें फिर से यहाँ दुहराना अनावश्यक ही होगा। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि मानवीय भावनाओं एवं अनुभूतियों-सुख दुःख प्रेम-घृणा उत्साह विषाद प्रसन्नता ईर्ष्या आदि की व्यंजना उनमें बड़ी सफलता के साथ हुई है। अन्य अनेक स्थलों पर भी व्यंजनात्मक बिम्ब योजना हुई है। अंधेरा सदैव दुख और विषाद का व्यंजक है। राजा के नगर से प्रस्थान करने पर जायसी नगर के अंधकार पूर्ण हो जाने का उल्लेख करता है

> जोगी होइ निसरा जो राजा। सून नगर जानहु धुंध बाजा।
>
> (१६५ १)

यहाँ बादलों से जायसी ने दो उपमान ग्रहण किये हैं बिजली और वर्षा और दोनों से क्रमशः आनंद और रुदन की व्यंजना की है। नई पत्नी के प्रेम में अनुरक्त राजा की प्रसन्नता और विरह से पीड़ित नागमती की अवस्था इस प्रकार वर्णित हुई है

> कहा हँसहि तू जोतों किये और सो नेहु।
> तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरिसै मेहु।
>
> (४२७ ८९)

बिजली आनंद सौन्दर्य और प्रकाश की प्रतीक है इस कारण पद्मावती के रूप की व्यंजक बनी है। राघव चेतन की सहज अभिव्यक्ति में व्यंजना का श्रेष्ठ रूप लक्षित होता है

आवा राघौ चेतनि धौराहर के पास।
अहे न जाने हिरदै बिजुरी भई अकास।

(४५ ८ ९)

भ्रमर और हंस भी काले और सफेद होने के कारण श्याम और श्वेत केशों का स्वरूप उपस्थित करते हैं जो यौवन और बुढ़ापे के द्योतक हैं। इस रूप में भंवर और हंस यौवन और बुढ़ापे की व्यंजना करते हैं। कवि कहता है यौवन जल जैसे जैसे घटता जाता है भ्रमर से काले केश लुप्त होते जाते हैं और हंस से श्वेत केश होने लगते हैं

जोबन जल दिन दिन जस घटा भंवर छपान हंस परगटा।

(५६१ १)

सर्वसंगत आपेक्षिता के कारण कहीं कहीं उक्तियां बड़ी व्यंजक बन गई हैं। यथा

जो निसि लगि अस ससि परगसी रानी देखि पुहुमि फिर बसी।

(१११ १)

'पुहुमि फिर बसी' शब्द बड़े व्यंजक हैं। मनस्थिति और सौन्दर्य की समग्र व्यंजना कराने में यह पूर्ण सफल हुए हैं। धन की तुच्छता और व्यर्थता की व्यंजना निम्नांकित पदों में हुई है

जौं पै कनक होइ फिर माया तैसंत सिद्ध न पावत राया।
बहेरु न जो लंका जो पाका देखा भार धूरि के छाड़ा।

(४११ ५ ६)

यहां लक्षणा है। लक्षणा में दो अर्थ होते हैं लक्ष्यार्थ और वाच्यार्थ। यहां धन की निकृष्टता लक्ष्यार्थ और उसका घूम कर छोड़ना वाच्यार्थ है, वाच्यार्थ का उपादान लक्षणा में है। इसी कारण लक्ष्यार्थ वाच्यार्थ के द्वारा ध्वनित होता है और वाच्यार्थ का बिंब बन जाता है। इसी प्रकार लक्षणा में बिंब का अन्य उदाहरण है

कंचन बरसि सोर जग भयऊ, दरिद्र भाग देसांतर गयऊ।

(१७ ५)

यहां भी उपादान लक्षणा है और पूर्ण बिम्बात्मक वर्णन है। दारिद्र्य का भाग कर देशांतर जाना बिम्ब निर्माण करता है।

समष्टि में लक्षणा और व्यंजनाओं के माध्यम से जायसी के सुन्दर बिम्ब प्रस्तुत हुए हैं। प्रेम वियोग सुख-दुःख यौवन वृद्धता सौन्दर्य निकृष्टता आदि अनेक तत्व व्यंजना और लक्षणा के बिम्बात्मक वर्णनों में प्रकट हुए हैं। जायसी में अभिधा की प्रवृत्ति इतनी नहीं है जितनी व्यंजना की। इसी कारण अभिधा के बिम्बों की अपेक्षा

अप्रस्तुत रूप में आये बिम्बों की संख्या कहीं अधिक है।

(३) अलंकार रूप में

अलंकार बिम्बों की अभिव्यक्ति के सहज और सर्वप्रधान माध्यम हैं। बिम्बों की सबसे अधिक अभिव्यक्ति अलंकारों द्वारा रूप रंग या धर्म साम्य उपस्थित करने में होती है। साम्य के आधार पर अलंकार और बिम्ब एक दूसरे के बहुत निकट आ जाते हैं। यह हम तीसरे अध्यायों में देख चुके हैं यहां संक्षेप में जायसी के अलंकार गत बिम्ब विधान की चर्चा ही उपयोगी होगी।

जायसी में बिम्बों की सबसे अधिक अभिव्यक्ति अलंकारों के माध्यम से ही हुई है। बिम्बों की अभिव्यक्ति करने वाले अलंकारों में अर्थालंकार प्रधान हैं। शब्दालंकार भाषा के स्वरूप हैं, भाव से उनका कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है इसी कारण भाव को मूर्तित करने वाले बिम्ब से भी उनका कोई निकट सम्बन्ध नहीं है। फिर भी कहीं कहीं ऐसे स्थान मिल जाते हैं जहां शाब्दिक चमत्कार भी है और बिम्ब भी। यहां हम पहले शब्दालंकारों की ही चर्चा करेंगे।

शब्दालंकार में अनुप्रास यमक और श्लेष प्रमुख हैं। इनमें अनुप्रास भाव से नितान्त असम्बद्ध होने के कारण बिंब से इतना दूर जा पड़ता है कि बिम्बों की चर्चा में इसका उल्लेख अनावश्यक ही प्रतीत होता है। भाव के प्रकाशक बिंब केवल शाब्दिक चमत्कार के इस रूप से कोई सम्बन्ध नहीं रखते। यमक और श्लेष कहीं-कहीं बिम्ब के साथ आये हैं। यद्यपि उनका सम्बन्ध भी निकट का नहीं है पर यह कहीं-कहीं जायसी की अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि द्वारा बिम्ब देने की प्रवृत्ति में सहायक हुए हैं। श्लेष का महत्व इस रूप में यमक से अधिक है। श्लेष का प्रयोग जायसी ने बहुत किया है। 'रतन' शब्द का श्लेष जायसी को प्रिय है

रोवै मता न बहुरै बारा रतन चला सब भा अँधियारा।

(११२ २)

जोहु करा तुम्ह कोंवल कीन्हा, तब भा रतन जोति तुम्ह दीन्हा।

(१०४ ३)

यहां दोनों स्थलों पर 'रतन' रत्नसेन और रत्न के अर्थों को ध्वनित करता है। यहां रत्न से बिंब भी ग्रहण होता है।

इसी प्रकार नाग शब्द का श्लेषात्मक अर्थ लिया गया है एक ओर वह नागमती का वाचक है दूसरी ओर सर्प का

ओहि तोहि कारन मरै भै बारा रही नाग होइ पवन अधारा।

(१६६ ,४)

यहां नाग उपमान से अधिक सक्षम हो गया है। जायसी ने अपने पात्रों के नाम पर सर्वत्र श्लेष दिया है। उनके प्रमुख नाम रत्न-एक ओर तो उपमान रूप में वस्तु के

व्यंजक होते हैं दूसरी ओर पात्र हैं। जायसी की श्लेषात्मक अभिव्यक्ति का यही मूल है। यहाँ एक ओर तो वस्तु का बिम्ब आ जाता है दूसरी ओर पात्र के मर्म की अभिव्यंजना भी हो जाती है।

'देना' धातु की भूतकालिक क्रिया का रूप 'दिया' देकर भी कवि ने श्लेष किया है जो एक ओर दान का सूचक है दूसरी ओर दिये (दीपक) से उसका सादृश्य होने के कारण बिम्ब भी बन गया है

दिया बुझा सतु न रहा हुत निरमल जेहि रूप।
आइ बाँधी जाहि आइ कै मारि दिया अँधकूप।

(१११ ८९)

संपुट शब्द के भी दो अर्थ—नेत्र की पलक व कमल पल्लव लेकर बिम्ब विधान किया गया है

कँवल करी तू पदुमिनी गै निसि भयउ बिहान।
अबहि न संपुट खोलहि जौ रे उठा जग भान।

(२५० ८९)

पर यह स्पष्ट है कि शब्दालंकार बिम्ब में विशेष सहायक नहीं हुए हैं जहाँ कवि उनसे सादृश्य का आधार बनाना चाहता है वहीं बिम्ब निर्माण हुआ है। श्लेषात्मक बिम्ब (नाग पद्म रत्न) इसका प्रमाण है।

अर्थालंकारों में उपमा रूपक उत्प्रेक्षा और रूपकातिशयोक्ति जायसी के प्रिय अलंकार हैं। इनमें प्राय सुन्दर बिम्बों की योजना हुई है। उपमा के रूप में आए बिम्ब गहराई और सजिल्वता के कारण बड़े व्यंजक बन पड़े हैं यथा

जस किछु दीजै धरै कँह आपन लीजै सँभार।
तस सिंगार सब लीन्हेसि मोहि कीन्हेसि ठठियार।

(३२५ ८९)

जैसे कोई व्यक्ति अपनी धरोहर वापस ले ले और धरोहर रखने वाला बिल्कुल खाली हो जाय उसी प्रकार प्रिय ने सारा शृंगार ले लिया मानो धरोहर हो और मुझे केवल खाली रखने वाली बना दिया। यहाँ रानी का मौन समर्पण व्यंजित है। इसी प्रकार बलहीन व्यक्ति की उपमा कवि पतंग के ठूठ से देता है जो तुच्छता की पूर्ण व्यंजना करती है

लोटै परे भुवीनता मिलते धामरि मुख।
बिनु बल पुरुख पतंग ज्यों उड़ उड़ गै सूख।

(४२० ८-९)

विरह व्यथा से दग्ध रानी की उपमा दीपक की बाती से दी है जो एक बिम्ब प्रस्तुत करती है। अनुराग का अर्थ रक्त होने के कारण इसमें अपूर्व साम्य है जिससे व्यंजना बहुत आ गई है। दीपक का झिलमिल प्रकाश प्रसन्नता का द्योतक भी

गया है

जस भौराल पुरि होइ तासू दिन दिन हिए अधिक परगासू ।
जस अंचल झीने महँ दिया तस उजियार देखावै हिया ।
(५ ८-९)

इसी प्रकार वियोगिनी रानी के लिए सीझत बिरह म जग जान को प्रस्तुत राजा के लिए कंकनू पक्षी श्यामवर्णी नागमती के लिए भंवरी रात आदि की उपमाएं दी गई हैं जो बिम्ब विधान भी करती हैं। जायसी म उपमाएं बहुत अधिक नहीं हैं फिर भी बिम्बात्मक उपमाएं पर्याप्त मात्रा में मिल जाती हैं।

उपमा के पश्चात रूपक का स्थान है रूपक जायसी का प्रिय अलंकार है जो अधिकांशतः बिम्बात्मक है। उसके कुछ रूपकों का परीक्षण यहां अपेक्षित होगा।

यौवन की उन्मत्तता अथाह सौन्दर्य राशि के लिए जायसी ने समुद्र का रूपक दिया है जिसमें अवगाहन करने पर प्रेमी हृदय डूबने उतरने लगता है। विरहिणी नायिका स्वयं उस समुद्र म डूबने लगती है और किसी किनारे लगाने वाले की कामना करती है

परी अथाह भार हौं जोबन उदधि गम्भीर ।
तेहि चितवौं चारिउ दिसि, को गहि लावै तीर ।
(१०० ८ ६)

समुद्र और नाव आदि के पूरे रूपक को कवि ने जीवन सागर में गुरु की सहायता के महत्त्व का प्रदर्शन करने के लिए भी प्रयुक्त किया है

खार समुद्र पाप मोर मेला बोहित धरम लीन्ह कहँ बेला ।
उतर मोर करिया पोढ़ कर गहा, पावउ तीर घाट जो अहा ।
जो कह भइस होइ गहि हारा तुरत बेग सो पावहि पारा ।
(११ ७-९)

यहाँ समुद्र के पूर्ण चित्र में नाव भी रूपक बन गया है।

जायसी ने एक ऐसा विकसित रूपक भी दिये हैं जहां सादृश्य शब्दों में बिम्ब को प्रस्तुत करने की उनकी प्रवृत्ति मुखर हो उठी है राजा के स्वदेश प्रस्थान पर कवि कहता है

राजपाट दर परगह सब तुम्ह सों उजियार ।
बैठ जोय रस माणहु कै न चलहु अंधियार ।
(१२९ , ८-९)

अर्थात् हे सूर्य रूपी राजा ! राजपाट तुम्हारे प्रकाश से ही प्रकाशित है। यहाँ प्रवेश करके मत जाओ। यहाँ यद्यपि पूर्ण रूपक है पर कवि ने राजा के लिए

सूर्य शब्द का उल्लेख नहीं किया है। पाठक स्वयं पिछले प्रसंगों और कवि द्वारा स्वीकृत उसके प्रतीकात्मक रूप के कारण सहज ही अर्थ ग्रहण कर लेता है। यह वर्णन पूर्णतः बिम्बात्मक है।

जायसी का सांगरूपकों के लिए भी विशेष मोह है। ऐसे रूपक जहाँ भावोत्कर्षकारक हैं वहाँ बिम्ब के श्रेष्ठ स्वरूप को प्रस्तुत करते हैं। यथा :

पलटा जो पुरुषारथ राजा, जस असाढ़ आवै दर साजा।
देखि सो राज भई जस छाँहा हस्ति मेघ ओनए जस माँहा।
सेना घूरि आए घन घोरा रहस चाउ बरिसै जनु ओरा।
धरती सरग अब होइ मेरावा भरि भरि पोखर ताल तलावा।
लहुर उठा सब भुम्मिया नामा ठावँहि ठाँव दूब अस जामा।
दादुर मोर कोकिला बोले हुते अंजोर बीज सब खोले।

(४२५ १७)

यहाँ राजा के आगमन पर मिलन बेला—आषाढ़ रानी-राजा—धरती—आकाश आनन्द उत्साह—वर्षा हाथी और विलासवाहिनी सेना—मेघ घटा घुमड़ना मनमुटाव—पोखर ताल-तालाब रानी का सौन्दर्य—लहलहाती हुई भूमि सुख के नाना छोटे छोटे भाव—दादुर मोर आदि से व्यंजित हुए हैं। इस प्रकार यहाँ वस्तु का सांगोपांग वर्णन होने के कारण पूर्ण स्पष्टता आ गई है। ऐसे बिंब जायसी की समृद्ध कल्पना को प्रकट करते हैं। इस प्रकार के वर्षा आदि के रूपक युद्ध वर्णन में भी आये हैं जो भावोत्कर्ष में सहायक हुए हैं इनसे बिम्ब रूप से भी सफल कहे जा सकते हैं। परन्तु जहाँ जायसी ने सांगरूपकों में बलात् साम्य लाने का प्रयत्न किया है। वहाँ वह काव्य का अपकर्ष करते हैं। शतरंज चौगान आदि के रूपक ऐसे ही हैं। दोनों पर नारी रूप का आरोपण भाव व्यंजना में व्याघात ही डालता है। इस कारण ऐसे वर्णन सफल नहीं कहे जा सकते।

जायसी ने उत्प्रेक्षा द्वारा भी सुन्दर बिम्बों का निर्माण किया है। उनकी वस्तूत्प्रेक्षाओं में बिम्ब का सुन्दर रूप प्रस्तुत हुआ है। यथा

मलयागिरि कै पीठ सँवारी बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।
लहरैं देत पीठ जनु चढ़ा, चीर ओढ़ावा केंचुलि मढ़ा।

(११२ २३)

साधारण रूप से वेणी सर्पिणी के सदृश दिखाई देती है पर जब वह झीनी चुनरी की ओट हो जाती है तो कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो वह सर्पिणी अब केंचुली से मण्डित हो गई हो।

मिस्सी की कालिमा के बीच चमकती दंत पंक्ति के लिए भादों की रात में चमकती बिजली का रूप सम्मुख लाया गया है जो दोनों वर्ण और चमक को मूर्त कर देता है। यह भी उत्प्रेक्षा ही है

बसन चौक बैठ जनु हीरा औ बिच बिच रंग स्याम गंभीरा।
जनु मारौं मिलि धाई डीठी चमक उठी तस भीन बत्तीसी।

(१०७ १२)

राजमहर के विभिन्न रंगों के वस्त्र धारण किये मनुष्यों के लिए बसन्त योगियों के लिए गेरू रंग के आधार पर टेसू आदि की उत्प्रेक्षाएं भी रूप निर्मित करने में पूर्ण सफल हुई हैं।

क्रिया उत्प्रेक्षाएँ भी बिम्ब प्रस्तुत करने में सफल हुई हैं। मसो के लिए कवि ने समुद्र और उसके भंवरों की उत्प्रेक्षा की है

मस के मैन जस बुड़ मानिक भरे तरंग।
आवत तीर जाहि फिरि काल भंवर तेन्ह संग।

(८७४ ८ ६)

हेतूत्प्रेक्षा के अन्तर्गत भी सुन्दर बिम्बों का वर्णन हुआ है। वृद्ध रूप को देख कर कवि उत्प्रेक्षा करता है।

महुम्मद बिरधि जो नै चलै कहा चले भुइ टोइ।
जोबन रतन हेरान है मकु धरती मंह होइ।

(७८६ ८-६)

अर्थात् वृद्ध जो झुककर चलते हैं तो शायद इसलिए कि उनका यौवन रूपी रत्न खो गया है उसे ही धरती में ढूंढ़ते हैं।

सन्देह और तद्गुण अलंकारों में भी बिम्ब प्रस्तुत हुआ है। अर्थान्तरन्यास विनोक्ति आदि भी कथन को मूर्तिमय बनाने में सहायक हुए हैं। अर्थान्तरन्यास में प्रयुक्त बिंब मार्मिक और व्यंजक हैं

मिलहिं जो बिछुर साजना गहि गहि भेंट अहुत।
तपनि मिरग सिरा के सहहिं तौ अदरा पलुहत।

जो प्रियतम वियोग सहन करते हैं वही प्रवास का प्रेम है प्रफुल्लित होकर भेंट और आलिंगन भी करते हैं जो मृगशिरा की तपन सहन करते हैं वही आर्द्रा नक्षत्र में पल्लवित होते हैं।

(३४३ ८ ६)

समष्टि में अलंकार रूप में कवि ने सभी प्रमुख अलंकारों में बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की है। उपमा रूपक उत्प्रेक्षा बहु प्रयुक्त बिम्बात्मक अलंकार हैं उपमा अर्थान्तरन्यास विनोक्ति तद्गुण रूपकातिशयोक्ति आदि भी प्रायः मूर्त वर्णन प्रस्तुत करते हैं।

(४) मानवीकरण द्वारा अभिव्यक्ति—

जायसी में मानवीकरण की प्रवृत्ति बहुत कम है। वस्तुतः सभी प्राचीन और मध्यकालीन कवियों में इसका अभाव-सा है। पाश्चात्य साहित्य से परिचित होने के

साथ ही हिन्दी साहित्य में मानवीकरण का प्रयोग और विवेचन आरम्भ हुआ। जायसी ने प्राचीन परम्परा से अलंकारों का ऐसा प्रयोग नहीं पाया था अतः स्पष्ट और सप्रयास वह इसे कभी नहीं करते। यहां तक कि उसके प्रति सचेष्ट भी नहीं हैं अनजाने ही सहज रूप से उनके मुख से कुछ ऐसी उक्तियाँ निकल गई हैं जिन्हें आधुनिक मानवीकरण की मान्यता की सीमारेखा के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

समुद्र वर्णन में जायसी ने समुद्र पर मानवीय भावनाओं का आरोपण किया है खड़ा होना मेंड़ निकालकर घूर घूर कर देखना मानवी क्रियाएं हैं जो समुद्र पर आरोपित हैं

उठै लहरि परबत की नाईं होइ फिरै जोजन लख ताईं।
धरती लेत सरग लेइ बाढ़ा सकल समुद्र जानहु भा ठाढ़ा।
(१५५ १४)

नौ अवसान सबहिं के देखि समुद्र कै बाढ़ि।
निअर होत जनु लीलै रहा नैन अस काढ़ि।
(१५५ ८-९)

वृक्षों का भी मानवीकरण किया गया है। वसन्त में लाल पल्लवों से मण्डित पलाश उन्हें ऐसे लगते हैं मानो कोई नवोढ़ा प्रिय आगमन पर शृंगार करके सिन्दूर लगाकर बैठी हो।

आइ बसंत जबहि रितु साजा, पंचमि होइ जगत सब साजा।
नवल सिंगार बनस्पति कीन्हा सीस परासहि सेंदुर दीन्हा।
(१८३ ४ ५)

पद्मावती के पाँव के आभूषण चूड़ा पायल अनवट बिछुवा आदि भी हृदय से लग जाने के लिए मानवीय ढंग से विनती करते हैं।

चूरा पायल अनवट बिछिया पायन्ह परे बियोग।
हिए लाउ टुक हम कहं समदहु तुम्ह जानहु अस भोग।
(९६६ ८-९)

पद्मावती के कानों के आभूषण भी कभी मानवीय ढंग से मंत्रणा करते हैं कभी कम्पित होते हैं।

सुक सनीचर दुहु दिसि मते होहिं निनार न स्रवनन हुते।
काँपत रहहिं बोल जो बैना स्रवनन जनु लागहिं फिर नैना।
जौ जौ बात सखिन्ह सो सुना दुहु दिसि करहिं सीस वै धुना।
(४७९ ४ ६)

दुःख और काल का मानवीकरण भी किया गया है। दुःख का नाच पीड़ा और व्यथा का हृदय बना देता है।

टूटे मनी जस मोती टूटें मनी जस काँच
लीन्ह समेटि ओबरानि होइगा दुख कर नाच ।
(१३१ ८६)

राजा की मृत्यु पर जायसी काल की कल्पना एक दुष्ट स्वामी के रूप में करता है जो प्राण के सेवक को दंड देकर अपने साथ ले जाता है ।

काल आइ देखराई सांटी उठि जिउ चला छाँड़ि कै माटी ।
(६४७ २)

दारिद्र्य आदि का भी मानवीकरण कवि ने किया है जो पूर्णत बिम्बात्मक है।

संक्षेप में कवि की रुचि मानवीकरण की ओर विशेष नहीं है इसको स्पष्ट रूप से स्वीकारा जा सकता है। इस रुचि हीनता के मूल में कुछ मूल कारण हैं जिन पर पहले कहा जा चुका है। उन्होंने आभूषणों समुद्र वृक्ष आदि का मानवीकरण किया भी है जो पूर्णत बिम्बात्मक है। जायसी को चित्र देने की मानवीकरण की प्रणाली से अरुचि नहीं थी वरन् वह परिस्थिति के आग्रह और परिवेश के प्रभाव के कारण वैसा नहीं कर पाये हैं।

(५) प्रतीक रूप में अभिव्यक्ति—

जायसी में शुद्ध प्रतीकात्मकता बहुत कम मिलती है। उनके अधिकांश प्रतीक ऐसे हैं जो उपमान से प्रतीक बने हैं अर्थात् कवि के द्वारा सर्वप्रथम वह रूप वस्तु या गुण के उपमान बन कर प्रयुक्त हुए थे पर कालान्तर में निरन्तर प्रयोग में आते आते वह रूढ़ हो जाते हैं। और कवि व पाठक के हृदय में एक निश्चित अर्थ के द्योतक बन जाते हैं कि उनके सन्दर्भ के उल्लेख की आवश्यकता नहीं रह जाती। ऐसे रूढ़ और निश्चित अर्थ से युक्त हो जाने पर ही उपमान अथवा बिम्ब प्रतीक बन जाते हैं। जायसी के समस्त प्रतीक इसी प्रकार के हैं।

जायसी ने चन्द्र—सूर्य भ्रमर—कमल और भ्रमर—मालती के प्रतीकों का बड़ा व्यापक प्रयोग किया है। यहाँ इन प्रमुख प्रतीकों की बिम्बात्मकता का परीक्षण अपेक्षित होगा।

चन्द्र और सूर्य पद्मावती और रत्नसेन के लिए बहु प्रयुक्त उपमान हैं जिनका मूल बिम्बों में ही है। रत्नसेन और पद्मावती के मिलन से बहुत पहले ही कवि उनके लिए क्रमशः सूर्य-चन्द्र उपमान दे चुका था। राजा के देश से निकलने के समय बार बार सूर्य का बिम्ब आया है। पद्मावती के सौन्दर्य के लिए भी चन्द्र का उपमान आया है। यही उपमान क्रमशः प्रयुक्त होते गये और विवाह खण्ड तक वे प्रतीक रूप बन गये। परन्तु उनकी बिम्बात्मकता वहाँ भी विद्यमान रही है कारण कि उनका मूलाधार बिम्ब है। विवाह वर्णन में कवि कहता है।

चांद सुरुज दुइ निरमल दुवौ संजोग अनूप ।
सुरुज चांद सो भूला चांद सुरुज के रूप ।
(२८५, ८ ६)

यहाँ चाँद रानी और सूर्य राजा के प्रतीकात्मक अर्थ में प्रयुक्त हुए हैं। आगे भी विवाह के क्रिया कलापों आदि में यही प्रतीक फिर आये हैं।

चाँद के हाथ दीन्ह जेमारा चाँद आनि सुरुज सिर मासा।
सुरुज लीन्ह चाँद पैहिराई, हार नखत तरइन्ह सिउं पाई।
(२८६ २ १)

चाँद सुरुज दुई भाँवरि लेहीं नखत मोति निवछावर देहीं।
फिरहिं दुवो सत फेर को टेकै साती फिरि गाँठि सो एकै।
(२८६ १-७)

इसके बाद कथा के अन्त तक बार बार यही प्रतीक प्रयुक्त हुए हैं। इन प्रतीकों के सदर्भ से जायसी की कल्पना ने आगे भी विकास किया है। पद्मावती की सखियों क लिए वह चन्द्र के साथ रहने वाले नक्षत्रों का प्रतीक लाया है।

पदुमावती संग सखी सयानी, गुनि के नखत चीर ससि जानी।
जानहिं मरम कवंल कर कोई देखि बिथा बिरहुन की रोई।
(२४८ १ २)

यह प्रतीक भी पद्मावत में बहुधावृत्त हुए हैं। इसी संदर्भ में शशि रूपी पद्मावती को पीड़ा देने वाली विपदाएँ कष्ट सब कवि ने राहु के प्रतीक से प्रस्तुत किये हैं। जो वस्तुत व्यापक बिम्ब का एक पूरक अंश है। रत्नसेन क बन्दी होने का समाचार जान कर पद्मावती पीड़ित होती है। कवि कहता है

जबहिं सुरुज कंहु लागेउ राहु तबहिं कवंल मन भयउ अगाहु।
(२४७ १)

और

सूर उदैगिरि चढ़त भुलाना गहने गहा चांद कुम्हलाना।
(२६२ १)

यह सभी प्रतीक परम्परागत प्रतीक न होकर कवि के स्वनिर्मित प्रतीक हैं और स्वयं कवि के अंतर्मन म एक व्यापक बिम्ब के रूप में स्वीकृत हो चुके हैं। इस कारण जहाँ इनका प्रतीकात्मक अर्थ प्रयुक्त हुआ है वहाँ वह सदैव बिम्ब विधान करते हैं। जायसी के प्रतीकों की बिम्बात्मकता को चन्द्र सूर्य—नक्षत्र आदि के यह प्रतीक बड़ी स्पष्टता से प्रस्तुत करते हैं।

पद्मावत का एक अन्य बहु प्रयुक्त प्रतीक है कमल और भ्रमर। यह भी क्रमश पद्मावती और रत्नसेन के प्रतीक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। चन्द्र और सूर्य के प्रतीक की भाँति इनका मूल भी बिम्ब में ही है। कथा के प्रारम्भ में कवि ने सर्वप्रथम जहाँ भंवर व कमल शब्द का प्रयोग किया है वहाँ वह बिम्ब रूप में ही है

हीरामन जो कमल बखाना सुनि राजा होइ भंवर भुलाना।
आगे आउ पंखि उजियारे कहहि सो दीप पतंग कै मारे।
(६४ १ २)

कालांतर में आवृत्ति के कारण उसका अर्थ निश्चित हो गया और वह प्रतीक बन गया है। कथा के मध्य में कवि कहता है

मगन सरोवर ससि कंवल कुमुद तराई पास।
तू रवि उवा तो भंवर होइ पवन मिला सा बास।
(१६० ८१)

आकाश मानसरोवर है चन्द्रमा कमल है उसके समीप दृष्टिगत होने वाले नक्षत्र कुमुद हैं। जैसे सूर्य के निकलने पर भौंरा विकसित कमल की सुगन्ध लेकर आता है वैसे ही तुम्हारे आने पर पवन उस पद्मावती की बास लेकर आया है। यहां प्रतीकों द्वारा बिंब ग्रहण कराया गया है। पूरा दृश्य उत्पन्न हो गया है।

नागमती के लिए कवि ने मालती का प्रतीक भी बहुधा लिया है। नागमती और रत्नसेन के लिए क्रमशः मालती और भ्रमर के प्रतीक लाये गये हैं अन्य प्रतीकों की भांति यह भी मूलतः क्रियात्मक है। इस कारण प्रतीक रूप में ही जहां यह आये हैं वहां बिम्बात्मकता स्वतः ही आ गई है। यथा

बरसि एक तेहि सिंघल रहे। भोग बेरास कीन्ह अस चहे।
भा उदास जिउ सुना संदेसू, संवरि चला मन चितउर देसू।
कंवल उदासी देखी भंवरा, फिर न रहै मालति अस संवरा।
(३७३ १४)

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के प्रतीक बिम्ब का एक सुन्दर माध्यम रहे हैं। यद्यपि जायसी के प्रतीकों में विविधता नहीं है परन्तु व्यापकता और एक उन्नत अर्थ सम्पदा को व्यक्त करने की क्षमता उनमें है। उनके सूर्य चन्द्र कमल मालती भ्रमर आदि सब प्रतीक हैं जो बिम्ब विधान में पूर्ण सहायक हुए हैं।

(६) मुहावरे और लोकोक्तियों द्वारा

मुहावरे और लोकोक्तियां जनमानस की उपज हैं। पहले पहले मुहावरे और लोकोक्तियां किसी उपदेशात्मक कथा या घटना के रूप में प्रस्तुत होती हैं जो दृश्य अथवा संवेदनात्मक होती हैं। धीरे धीरे उन कथाओं और घटनाओं के सूक्ष्म स्वरूप या मूल स्वरूप मुहावरे या लोकोक्तियों के रूप रह जाते हैं पर वह सदैव मूल कथा या घटना का स्मरण कराते हैं और इस प्रकार वर्णन को दृश्य बनाते हैं। मुहावरे अधिकांशतः बिम्बात्मक होते हैं। उनके पीछे कथा का एक लम्बा सम्बन्ध सूत्र चलता है, जो व्यंजना को तीव्र कर देता है।

मुहावरों के प्रयोग में जायसी पटु हैं। उन्होंने अनेक मुहावरों का प्रयोग किया है, जो बिंब विधान भी करते हैं। व्यर्थ प्रयत्न के लिए 'सेंबर सुआ' का मुहावरा बहु प्रयुक्त है जो बिंब योजना भी करता है

सेंबर सेइ न चित कर सुआ पुनि पछताति अंत होइ सुआ।
रूप तोर जग ऊप लोना यह जोबन पाहुन चल होना।
(५६४ ५१)

असम्भ्य वस्तु के लिए 'ऊमर के फूल' मुहावरा प्रयोग किया है। गूलर का फूल एक अत्यन्त दुर्लभ फूल है, अनेक प्रयत्नों के बाद प्राप्त होने वाली पद्मावती गूलर के फूल के सदृश है जिसे खोकर राजा अतीव पीड़ा का अनुभव करता है

तपि कै पाव ऊमर कर फूला पुनि तेहि खोइ तैहि पंथ भूला।
(४१२)

आडम्बरपूर्ण वीरता के लिए हाथी के दांत और कछुए की ग्रीवा को लाया गया है। हाथी के दांत वीरता का यथार्थ रूप है। कछुए की ग्रीवा कायरता का प्रतीक है

पुरुष बोलि के टरै न पाछू, दसन गयंद गीव नहिं काछू।
(११८)

अधिकार में होने पर भी द्रव्य पिटारी में बन्द सर्प की भांति घातक होता है। जायसी द्रव्य की इस घातकता को 'पिटारी में मूंदा हुआ साप' मुहावरे से प्रकट करते हैं। 'घाव पर नमक छिड़कना' मुहावरे का भी जायसी ने प्रयोग किया है जो प्रसंग के कारण बिम्बात्मक हो गया है

बड़ी सो सोने लोने भरी सो रूपे भाग।
सुनत रूप भै रानी हिये लोन अस लाग।
(८४)

निकृष्ट पर आभ्यन्तर गुणों से विभूषित व्यक्ति के लिये कवि 'मदार का पतंग' लोकोक्ति का प्रयोग करता है जो बड़ा व्यंजक है। मदार पर तितली का कैटर पिलर रहता है जो कुरूप और तुच्छ होता है परन्तु उसी से सुरम्य तितली का निर्माण होता है। उस कुरूप आवरण के पीछे यह सुन्दरता छिपी रहती है। आभ्यंतर गुणों से मंडित सुग्गे के लिए कवि ने यही लोकोक्ति दी है

बँदे लाग हुत जो ओही ओछ रतन मानिक जहँ होई।
सुआ जो पु छे पतंग मंदारे, चलन दैव आछे मन मारे।
(७६)

रात्रि की दिन की समता न कर सकना हंस के समान न बगुले का हंस कहलाना आदि अन्य अनेक लोकोक्तियां पद्मावती व नागमती के रूप के विरोध को स्पष्ट करने के लिए आई है। अर्थ का साम्य होने से यहां बिम्ब भी निर्मित हुआ है

सबर रूप पदुमावति केरा हंसा सुआ रानी सुख हेरा।
जेहि सरवर मँह हंस न आवा बगुली तेहि जस हंस कहावा।
का पूछहु सिंघल की नारी दिनहि न पूजै निसि अंधियारी।
पुहुप सुवास सो तिन्ह कै काया जहाँ माथ का बरनौ पाया।
(८४)

इसके अतिरिक्त गेहूं के साथ घुन पिसना, चबेने की बसा पथर के सिर, आदि मुहावरे, 'जिन्हहि जो चाहन मन करी, मन कहि कै भूल बात' 'रोवहि की को बात देवहि जहाँ उपास' 'जो विष (तृष्णा) बुझै न समुद्र जस सो बुझाइ कब ओस' पृथ्वी का बसना आदि लोकोक्तियों का कवि ने बिम्बात्मक प्रयोग किया है।

अन्त में इस अध्ययन से स्पष्ट है कि जायसी में सर्वाधिक बिम्ब उपमान या अलंकारों के रूप में आये हैं जो अत्यन्त स्वाभाविक भी है। उपमानों से कविता का एक बड़ा भाग भरा रहता है और उपमान बिम्ब के सहज माध्यम हैं। इसके पश्चात् दूसरा स्थान लक्षणा अथवा व्यंजना का है। प्रतीकों और मानवीकरण का मूल बिम्ब में ही है इस कारण वह सदैव बिम्ब विधान करते हैं। लोकोक्तियों और मुहावरों के द्वारा अभिव्यक्त बिम्बों की संख्या भी पर्याप्त है। अभिधा में जायसी ने बिम्ब विधान कम किया है और उपमान या अलंकार में सबसे अधिक। यह जायसी के परम्परावादी स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। वह उन्हीं प्रचलित परिपाटियों पर रूप और वस्तु का विधान करता रहा जो प्राचीन साहित्य में गृहीत थी परन्तु दूसरी ओर व्यंजना का इतना अधिक प्रयोग उन्हें परम्परावादियों से दूर ले जाता है। यह दृष्टि उनकी स्वच्छंद प्रवृति की द्योतक है। ऐसा प्रतीत होता है कि वह नवीनता के अन्वेषक थे पर उन्हें पुरातन से भी मोह था। उनकी अभिव्यक्ति स्वतन्त्र है। भाषा के सभी सम्भव साधनों का प्रयोग उन्होंने बिम्ब को अभिव्यक्त करने के लिए किया है।

प्रस्तुत अध्याय में हमने जायसी के बिम्बों का भिन्न-भिन्न आधारों पर वर्गीकरण और विवेचन किया, जिससे उनकी अनेक मान्यताएं, रुचियों दृष्टिकोणों आदि का ज्ञान हुआ।

उपात्त वस्तुओं में सर्वाधिक संख्या प्रकृति के क्षेत्र से गृहीत वस्तुओं की है। प्रकृति के प्रति जायसी के हृदय में विशेष मोह है। प्रकृति में भी आकाशी बिम्बों ने उन्हें सर्वाधिक आकृष्ट किया है। अन्य क्षेत्रों—वनस्थल, पर्वत जल आदि से गृहीत बिम्बों की संख्या भी पर्याप्त है। प्रकृतितर जीवन में ग्राम्य जीवन में उन्हें विशेष रुचि है। ग्राम्य जीवन के अनेक उपकरण बिम्बात्मक रूप में प्रस्तुत हुए हैं। जीवन के अन्य क्षेत्रों में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी या उनसे उनका परिचय अधिक नहीं था।

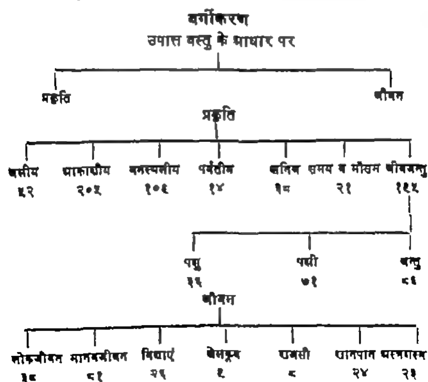
संवेदनाओं में जायसी में दृश्य संवेदना से युक्त बिम्ब सर्वाधिक हैं। इन दृश्य बिम्बों में रूप रंग पर्याप्त है। कहीं यह बिम्ब पेस्टल के हरे पीले लाल रंगों से युक्त है तो कहीं केवल प्रकाश और छाया के चित्र उतारते हैं। अन्य संवेदनाओं में स्पर्श घ्राण और श्रवण में कुछ विशिष्टता है जो जायसी की रुचियों को प्रकट करती है। साधारणतः वह संवेदनाओं की दृष्टि से सामान्य ही रहे हैं, विशिष्ट नहीं। वैसे उनमें कई व्यक्तिगत विशिष्टताएं हैं पर वह असाधारण और बहुत अधिक नहीं है।

भावों में रति जायसी का प्रधान भाव है। प्रेम के दोनों पक्ष—संयोग और वियोग जायसी के कवि की प्रमुख भाव भूमियां हैं इनमें भी व्यंजकता और मार्मिकता

वियोग के बिम्बों में ही अधिक है जिससे उसका पीड़ित हृदय और प्रेम पीर के गायक कवि का रूप प्रत्यक्ष होता है। प्रेम के अतिरिक्त करुणा या शोक सम उत्साह क्रोध आदि ने उसे आकर्षित किया है। वात्सल्य और हास्य के लिए उसके हृदय में कोई स्थान नहीं है।

काव्यगत शैली में बिम्बों की मूर्तता पर कवि का विश्वास अधिक है। अमूर्त बिम्ब उसके काव्य में बहुत कम है कुछ तो परम्परा के कारण कुछ अपनी विशिष्ट दृष्टि के कारण। उसने मूर्त और अमूर्त दोनों ही प्रकार के भावों विचारों अथवा वस्तुओं को मूर्तता के माध्यम से ही प्रस्तुत किया है।

बिम्बों के रूपगत प्रयोगों में सबसे अधिक अलंकारगत बिम्बों का प्रयोग हुआ है जो उसके परम्परावादी रूप को प्रकट करता है। परन्तु दूसरा स्थान व्यंजना या लक्षणा के माध्यम से प्रकट होने वाले बिम्बों का है जो उसकी नवीनता के प्रति आग्रह की दृष्टि का परिचायक है। मानवीकरण मुहावरे प्रतीक आदि सभी सम्भावित शैलियों द्वारा उसने बिम्ब ग्रहण कराया है जो कवि के भाषाधिकार को प्रकट करता है।



विस्तृत-सूची

प्रकृति

(अ) जलीय बिम्ब—५२

समुद्र २४ सरोवर ९ नदी १५ अन्य ४।

(आ) आकाशीय—२०५

सूर्य—४४ (सूर्योदय १० सूर्यास्त १८ सूर्य २१ अन्य ४) चन्द्र ६७ दिवस व रात्रि ९, नक्षत्र ३१ बिजली २०, मेघ १६, आकाश ६ पवन १ वर्षा १२ आकाशगंगा १ प्रलय १।

(इ) वनस्पतीय—१०९

वृक्ष ७ लता १४ फुलवारी १ पुष्प ४७ फल ७ पत्ता ५ कली १ बीज १ भूमि २ तिनका १ अन्य ३।

(ई) मौसम और समय—२१

बसन्त १२ सावन भादों ४ असाढ़ १ फाल्गुन १ अन्य ३।

(उ) पर्वतीय—१४

पर्वत १४।

(ऊ) खनिज—३८

मोती ६, माणिक २ मूँगा ४ हीरा ५, नग १, पदार्थ ४ रतन ६ कंचन ३, पन्ना १ घुँघची २, कौड़ी १ कांच का पोत २।

(ए) जीव जन्तु—११५

(क) पशु—(२६)—सिंह ६ हाथी ७ मृग ९ रीछ १ बैल १ दादुर १ घोड़ा ५, बिलाव १ बिल्ली १।

(ख) पक्षी—(७१)—मयूर ६ तोता ९ हंस ५, कोयल ६ खंजन ६ कबूतर ५ चातक ६ चकोर ४, मुर्गा २ बगुला ९ सारस ४ पक्षी ३ बाज २ [illegible] १ चील या गिद्ध १ कौड़िल्ला २, गरुड़ १ अन्य ३।

(ग) जन्तु—(८८)—पतंगा २० भौंर बहूटी ६ सर्प २० भ्रमर १७ मीन ६, मगर १ कछुआ १ कृमि ४ चींटी २ सीपी १० मक्खी १।

जीवन

(अ) लोक जीवन—३८

उपकरण १५ क्रिया कलाप १ कथाएं २२।

(आ) मानव जीवन—८१

उपकरण ६१ जीवन की अवस्था ११ मनुष्य की श्रेणियां २ शरीर व अंग ४ मृत्यु व बीमारी ३।

(इ) विद्याएं—२६

शिल्प व कलाएं २ भौगोलिक २ ज्योतिष ४।

(ई) खेलकूद—७

शतरंज ४ चौगान १ पतंग उड़ाना १ लट्टू १।

(उ) राजसी—८

युद्ध १ सेना ३ राजा का रूप ४।

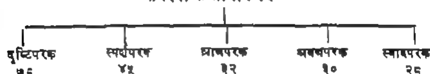
(ऊ) खानपान—२४

उपकरण ७ वस्तु १६ प्रक्रिया १।

(ए) अस्त्र शस्त्र—२१

धनुष बाण १७ तलवार ३ वज्र १।

संवेदना के आधार पर



अध्याय ९

जायसी की बिम्ब योजना का परीक्षण

(१) सफल बिंब

बिम्बों की सफलता काव्य के सफल पक्ष का कारण होती है। वह सद् काव्य का एक सबल प्रमाण है। जायसी के बिम्बों का परीक्षण करने पर उनकी असंदिग्ध सफलता सिद्ध हो जाती है। सफलता के लक्ष्य पर पहुँचाने वाले कुछ सोपान भी बिम्ब के समीक्षकों एवं आचार्यों द्वारा स्पष्ट किए गए हैं। उन्हीं कसौटियों पर परीक्षण के उपरान्त कवि की बिम्बगत सफलता का आभास मिल सकता है। बिम्ब की सफलता के लिये प्रसिद्ध आलोचक मुरम ने कुछ गुण बताये हैं जिनके होने पर बिम्ब की सफलता में सन्देह का कोई स्थान नहीं रहता। ये गुण निम्नांकित हैं

(१) भाव को उत्तेजित करने की शक्ति evocativeness

(२) तीव्रता Intensity

(३) नवीनता व ताजगी Novelty and Freshness

(४) परिचित वस्तु का ग्रहण Familiarity

(५) व्यंजकता Fertility and Suggestiveness

(६) औचित्य Congruity

(७) रचना में योगदान as a part of whole structure

(८) भावों का प्रकाशन evidence of ideas and thoughts

बिम्बों के इन गुणों का विस्तृत विवेचन बिम्ब के संदर्भ में द्वितीय अध्याय में किया जा चुका है यहाँ समग्र रूप से न लेकर जायसी के बिम्बों में ही इन गुणों को प्रकट किया जायगा और उनकी सफलता के साधन के रूप में इनका विवेचन होगा। इसके अतिरिक्त जायसी को सफलता प्रदान करने वाले अन्य गुणों का भी विवेचन किया जायेगा।

(१) भाव को उत्तेजित करने की शक्ति—बिम्ब में सफलता का कारण उसकी भावात्मक उत्तेजना प्रदान करने की शक्ति माना गया है। पाठक के अन्तर्मन में सुप्त भावनाओं को जागृत कर बिम्ब उसे उस सीमा तक उत्तेजित करता है जहाँ पाठक भाव का पूर्ण आस्वादन कर सकता है अर्थात भाव की सम्यक अनुभूति से

भावसरलता की स्थिति को प्राप्त कर सकता है। शुक्ल ने यह गुण पूर्णत व्यक्ति परक बताया था परन्तु एक बिम्ब से उत्तेजना किसी न किसी मात्रा में सभी पाठक पा सकते हैं। जायसी के भी जो बिम्ब हमें उत्तेजित करते हैं वह न्यूनाधिक रूप में सभी को आकर्षित करते हैं। बिम्बों में नवीनता और तीव्रता की शक्ति उसको उत्तेजना के गुण से पूरित कर देती है। समस्त चेतना को झंकृत कर देने की सामर्थ्य जायसी के बिम्बों में पर्याप्त है। यथा

हाड़ भये सब कींगरी नसें भईं सब तांति
रोम रोम ते धुनि उठे कहुंसि बिथा केहि भांति।

(१६१ ८-९)

यहां बिम्ब रूप से अभिव्यक्त विरह व्यथा का भाव पाठक को उत्तेजित करता है। यद्यपि अतिशयोक्ति का हलका सा सहारा यहां लिया गया है पर वह भाव की स्थिति हास्यास्पद न करके उसका उपकार ही करता है। विरह जनित कृशता और तन्मयता की व्यंजना नसों के तांत बनने और एक ही स्वर के निरन्तर बजने में बड़ी सुन्दर हुई है। यहां नागमती प्रतिमाणा हिन्दू नारी से भी अधिक अनन्य व अनुराममयी साधिका के रूप में प्रकट होती है। बलिदान जिसका धर्म है। अपनी शारीरिक सुन्दरता को जिसने विरह की अग्नि में जला कर कींगरी और तांत बना लिया है, एकनिष्ठ तप जिसका जीवन है। ऐसे बिम्ब भाव की सम्यक व्यंजना के कारण उत्तेजना प्रदान करते हैं और बिम्बगत सफलता में योग देते हैं। पद्मावती का रूप वर्णन भी उत्तेजना से पूर्ण होने के कारण सफल हुआ है

तेहि मंदिल मूरति मैं देखी बिजु तजु बिजु बिम जम बिसेखी।
चांद संपूरन जनु होइ तपी पारस रूप दरस दै छपी।
बिगसा कवल सरग निसि जनहु लौकि गा बीजु,
यह राहु भा भानहि राघौ मनहिं पतीजु।

(२७१ १ १)

यहां पद्मावती की तुलना तपोमय वृत्त के बीच चन्द्रमा से की गई है। यह उपमा पद्मावती के सौन्दर्यपूर्ण मुखमण्डल के तेज को प्रकट करती है। जायसी ने पद्मावती के मुख के चारों ओर भी भगवान राम कृष्ण आदि के चित्रों के सदृश तेज का वृत्त या मण्डल कल्पित किया है। पारस से युक्त चन्द्र का बिम्ब इसे स्पष्ट करता है। जिससे उसकी लोकोत्तरता के कारण उत्तेजना आती है। रूप की एक अपूर्वता का आभास मिलता है। बिजली की चमक भी रूप के प्रकाश को प्रकट करती है। पद्मावती के लिए प्रयुक्त पूर्णिमा के चांद का बिम्ब भी उत्तेजना के कारण विशेष सफल हुआ है। विरह विदग्धा अनुराममयी रानी का रूप दीपक में निरन्तर प्रज्वलित होती रहने वाली बातिका से किया गया है

जस धनि देखस बिरहु मा राती,
भई बिरहु ज्यों दीपक बाती ।
(३४६ २)

निरन्तर प्रकाशमान रहने और निरन्तर दग्ध होते रहने के कारण बिम्ब बड़ा उत्तेजक बन पड़ा है। यह रानी का स्वरूप सामने रखता है। इसी प्रकार बिरह के अपार समुद्र में डूबती हुई रानी का चित्र है जो समुद्र की अपारता अथाहता पर ध्यान केन्द्रित करने के कारण बड़ा उत्तेजक प्रतीत होता है

जल-जल भरे समुद्र सब गगन धरति मिलि एक
धनि जोबन औगाह में दे बूड़त पिय टेक ।
(१८६ ८-९)

यही बिम्ब अपने इसी उत्तेजक रूप के साथ पद्मावत में कई बार प्रयुक्त किया गया है।

समुद्र में बह कर आती हुई मूर्छिता रानी का चित्र भी अपूर्व व्यंजकता के कारण उत्तेजक है

रंग जो राती प्रेम के जानहु बीर बहूटी ।
आइ बही दधि समुद में पै रंग गांठ न छूटि ।
(३६७ ८-९)

रानी के अनुराग एवं एक निष्ठ प्रेम की व्यंजना लाल रंग की बीर बहूटी के द्वारा हुई है जो बिरह समुद्र को पार करने के उपरान्त भी अनुरागमयी बनी रहती है इसी स्थल पर प्रयुक्त दूसरा चित्र भी उत्तेजक है

कागर पुतरी जैस सरीरा पवन उड़ाए परा मंझ नीरा,
उदधि झकोरि लहरि जल भीजी तबहु रूप रंग नाहीं छीजी ।
(३६८ २-३)

कागज की पुतली के रूप में पद्मावती की निष्प्राणता और मूर्छावस्था साकार हो उठी है। उसकी प्रेम पूर्णता के लिये 'रूप रंग नाहीं छीजी' शब्द लिए गए हैं अन्यथा कागज की पुतली का रूप रंग तो पानी में विकृत हो जाता है। समग्र बिम्ब भाव को उत्तेजित करता है और इस कारण सफल भी हुआ है। जायसी के अधिकांश बिम्ब नवीनता व्यंजकता और अन्तर्संगत अपेक्षा के कारण उत्तेजक और सफल हैं।

(२) भाव को तीव्र करने की शक्ति—भाव को तीव्र रूप में उपस्थित करने की शक्ति ही बिम्ब की सफलता एवं महत्त्व का एक बड़ा कारण है। काव्य की भाषा चरित्र की भाषा (लैंग्वेज आफ पोयम) कहलाती है यह (फोर्स) शक्ति भाषा को बिम्ब की ही देन है। साधारण रूप से काव्य में भाव प्रकट नहीं हो सकता उसकी सफल अभिव्यक्ति के लिए बिम्ब अपेक्षित है। रूप कथन की अभिधा द्वारा सम्यक प्रभाव नहीं

उत्पन्न कर सकते हैं। उसके लिए बिम्बात्मक भाषा की आवश्यकता होती है। उपमानों एवं बिम्बों द्वारा ही भाव अथवा रूप की तीव्रता अभिव्यक्ति की जा सकती है। जो बिम्ब भाव को साधारण से अधिक आकर्षक या प्रभावशाली बना कर प्रस्तुत करने म असमर्थ है उन्हें सफल नहीं कहा जा सकता। पद्मावत के सम्भवतः सभी बिम्ब भाव का उपकार करते हुए उसे अधिक उत्कृष्ट रूप म प्रस्तुत करते हैं। यथा

चाँद जैस धनि उजियरि अही भा पिय रोस गहन अस गही

(८६ १)

कुपित राजा की क्रूर आज्ञा सुनकर सती होने की आशंका और राजा के रोष स रानी ग्रहण ग्रस्त चाँद की भांति मलिन हो जाती है। रानी रूप गर्विता और प्रेमगर्विता है। राजा एक तुच्छ सुग्गे का कारण उस पर कोपित भी हो सकता है इसकी कल्पना भी शायद उसने न की थी। इसी कारण राजा के अकस्मित रोष से उसकी हृदयगत भावनाओं को धक्का लगता है और फिर मृत्यु की भावी आकांक्षा से उसका हृदय पूरी तरह दुःखी और मलिन हो जाता है जैसे चाँद को अनायास ग्रहण लग गया हो। बिम्ब परिस्थिति और चरित्र को भी स्पष्ट करने के कारण बड़ा सफल हुआ है। भाव की समग्र और तीव्र अनुभूति सहज ही की जा सकती है। इसी प्रकार राजा के प्रस्थान के समय नगर में अन्धेरा छा जाने का रूपक दिया गया है। जो निराशा युक्त वेदना और आगामी अनिष्ट का अंकन बड़ी सफलता स करता है। रूप वर्णन में तुलना का प्राधान्य रहने के कारण रूप की उज्ज्वलता और सुन्दरता की तीव्रतम अभिव्यक्ति हुई है

तू रे राहु हौं ससि उजियारी
        दिनहि के पूजै निसि अँधियारी।

(४४० ७)

अथवा

उअत सूर जस देखिअ चाँद छपै तेहि धूप
ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति क रूप।

(६५ ८-६)

विरोधात्मक वस्तुओं को एक साथ रखने से भाव एवं रूप निखर उठा है। नागमती की कुरूपता और पद्मावती का तेजोमय सौन्दर्य राहु शशि रात-दिन और सूर्योदय के रूपक में तीव्रतम रूप में व्यंजित हुआ है। बिम्बों द्वारा यहां रूप की प्रतीति साधारण से कहीं अधिक होती है। नागमती और पद्मावती क्रमशः असाधारण असौन्दर्य का रूप हो जाती है।

विरोधात्मक वस्तुओं में सदैव ही भाव तीव्रतर हो जाता है। विरह से अमुन्दर और मलिन पद्मावती के लिए काँच के पोत की उपमा आई है जो उसके पहले

ज्योतित रूप के समक्ष अति क्षुद्र अति निकृष्ट स्वरूप को उपस्थित करती है और इस प्रकार क्षुद्रता और असुन्दरता को तीव्र बनाकर प्रस्तुत करती है

नंग सौ जगमग रतन सब जोती, कंचन कया कांच भै पोती

(५८१ १)

पद्मावती की विरह जन्य मलिनता को जायसी ने इसमें चित्रित कर दिया है।

अतिशयोक्ति का अंश आने पर भी बिम्ब भाव को तीव्र करने के कारण सफल कहे जा सकते हैं। यद्यपि अतिशयोक्ति में बिम्ब निर्मित नहीं होता और हो भी तो विशृंखलित ही हो जाता है परन्तु अतिशयता का हल्का सा आभास उसे लोकोत्तर एवं अपूर्व तो बना देता है पर उपहासास्पद नहीं बना पाता। जैसे—

बेनी छोर झार जौ केसा, रैनि होइ जग दीपक लेसा।
सिर हुत चौरंग परहिं भुइँ बारा, सगरे देस होइ अँधियारा।

(४७० १२)

इस वर्णन में पद्मावती के केशों की घनी श्यामता का पूरा आभास मिलता है जो उसे अयथार्थ न बनाकर लोकोत्तरता की ओर ले जाता है। इसी प्रकार क्रोधित राजा का बिम्ब जेठ मास के तपते हुए सूर्य से दिया है

सुनि कै रिसि राजा सुलतानू, जैसे दिपै जेठ कर भानू।
सहसौं करा रोस तस भरा, जेहि दिसि देखै सो दिसि जरा।

(४६४ ४५)

'जिधर देखा उधर ही जलने लगा' से अयथार्थता नहीं आ पाई है वरन् उसके विनाशकारी क्रोध की तीव्र व्यंजना हुई है। सैनिक प्रयाण पर रात्रि के घिर आने की कल्पना में भी अतिशय के कारण तीव्रता आई है

हय गय सेन चलइ जग पूरी परबत टूटि उड़हिं होइँ धूरी।
रेनु रहनि होइ रविहिं गरासा मानुस पंखि लेहिं फिर बासा।

(१४ २१)

युद्धस्थल पर घनघोर वर्षा के रूपक भी विनाशकारी स्वभाव और भयानकता की समता के कारण युद्ध की भयंकरता को तीव्र रूप में प्रस्तुत करते हैं। जायसी ने इसी कारण युद्ध स्थल पर वर्षा और प्रलय के लम्बे २ रूपक दिये हैं।

परिस्थितिगत एकता होने के कारण विरह दाह से भग्न नागमती का हृदय और ग्रीष्म के तप्त सूर्य की दाह से भग्न सरोवर की भूमि से सहज ही सामंजस्य करने में सफल हो गया है

सरवर हिया घटत निति जाइ टूक टूक होइ होइ बिहराई
बिरहा हिया करहु पिउ टेका दीठि दवंगरा मेरवहु एका।

(३२४ ६-७)

संक्षिप्तता एवं व्यंजकता के कारण भी बिम्ब में तीव्रता का गुण आ जाता है। इसी कारण मुहावरे के रूप में प्रयुक्त बिम्ब अवश्य ही सफल होते हैं। जायसी ने भी कहीं कहीं बिम्बात्मक मुहावरे दिये हैं

> तपि के पाव उभारि करि फूला पुनि तेहि जोड़ तेहि पंथ भूला
>
> (४१९ २)

'उमर का फूल' अति असम्भ पद्मावती के लिए उचित उपमान है। राजा की तप साधना और कष्ट सहने के पश्चात मिलने वाली रानी का मोह-छवी इस रूपक से ध्वनित हो रहे हैं। भाव की अत्यन्त उत्कृष्ट व्यंजना यह मुहावरा कर सका है। रूपकों के अतिरिक्त कहीं-कहीं प्रस्तुत चित्रों में भी ऐसे शब्दों का संयोजन होता है जहां भाव तीव्र हो जाता है। जैसे

> मा धीरज वह देखि हिलोरा जनु अकास टूटे चहुं ओरा
>
> उठै लहर परवत की नाईं होई फिरै जोजन लख ताईं
>
> धरती लेत सरग लेहि बाढ़ा सकल समुद्र जानहु भा ठाढ़ा।
>
> (१११ २४)

महा पर्वत के समान उठती लहरें कहने से सम्भवतः कवि को संतोष नहीं होता इसी कारण वह समुद्र के खड़े हो जाने का रूप प्रस्तुत करता है जो विस्तार को स्पष्ट कर देता है। इस प्रकार भयंकरता की जो चरम सीमा कवि देना चाहता था वह आ जाती है। यहां 'ठाढ़ा' शब्द कवि के भावों को तीव्रतम रूप में प्रस्तुत कर सका है और यही बिंब की सफलता का मूल कारण भी है। जायसी के सभी बिम्ब भाव की अभिव्यक्ति करने में समर्थ और इस कारण सफल कहे जा सकते हैं।

(३) नवीनता और ताजगी—बिम्ब की नवीनता और ताजगी भी उसकी सफलता का एक बड़ा सोपान है। प्राचीन बिम्ब प्रयुक्त होते होते इतने जड़ हो जाते हैं कि भावोद्बोधन की तनिक भी सामर्थ्य उनमें नहीं रहती न वह अनुभूति का संकुल कर पाते हैं। इस पर भी कवि लगातार उन्हें उन्हीं सन्दर्भों में उसी मन्शा के साथ रखते चले जाते हैं। ऐसे बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते हैं। बिम्ब में नवीनता भी इतनी आवश्यक नहीं जितनी ताजगी। पुराने उपमान भी नये सन्दर्भों में नये से लगते हैं। और काव्य में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करते हैं। जायसी में यद्यपि नवीनता की ओर झुकाव कम है पर कहीं कहीं वह सुन्दर और नवीन बिम्ब भी प्रस्तुत कर सके हैं

> पुतरि भरी पदुमावती रानी कहूं बिरु कोइ पिउ पसै न जानी
>
> जानु चित्र मूरति गहि लाई पाछा परी रही तसि आई।
>
> (३६७ १२)

'चित्र मूर्ति' के रूप में पद्मावती के सौन्दर्यपूर्ण निष्प्राण शरीर की बड़ी उत्कृष्ट व्यंजना हुई है। यहां बिम्ब नवीन है और भाव एवं स्थिति के सन्दर्भ में आने के कारण विशेष सफल हुआ। वस्तुतः नवीनता की खोज में कवि कभी-कभी ऐसी

ाचीन अप्रस्तुत वस्तु एवं व्यापारों का चिड़ियाघर उपस्थित करते हैं वहाँ कोई भी भी हमारे काम का नहीं होता। जायसी ने ऐसी नवीनता का पस्सा कहीं नहीं कड़ा है। इसके स्थान पर उन्होंने पुरानी वस्तुओं को नवीन भाव सज्जा में प्रस्तुत या है जिससे वह ताजगी के कारण अभीष्ट प्रभाव डालने में समर्थ हो सकी है। ा केश के लिए सर्प अत्यन्त प्राचीन उपमान है परन्तु जायसी ने उसे नवीन रूप से तुत किया है

मलयगिरि की पीठ सँवारी बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।
लहरैं देत पीठि जनु चढ़ा चीर ओढ़ावा कँचुरि मढ़ा।

(१११ १)

कँचुली मढ़ा हुआ नाग जो आवरण से युक्त वेणी का उपमान है नवीनता और ताजगी दोनों ही गुणों से युक्त है। यद्यपि ताजगी का सम्बन्ध नवीनता से है परन्तु नवीनता उसके लिए एकान्त आवश्यक नहीं है। सन्दर्भगत उपयोगिता के कारण भी बिम्ब जीवन्त और सशक्त कहे जा सकते हैं। जैसे गर्भवती माँ के हृदय के उल्लास का व्यंजक यह बिम्ब

जस औधान पूर होइ तासू दिन दिन हिये अधिक परगासू
जस अंचल झीने महँ दिया तस उजियार देखावै हिया।

(२० ६-७)

स्वाभाविकता और ममत्व भाव की तत्कालिक अनुभूति करा देने के कारण भी बिम्ब ताजे और सशक्त प्रतीत होते हैं—

तपै बीज जस धरती सूख बिरह के घाय।
कब सुदिष्टि कै बरसै तन तरिवर हो जाय।

(१६१ ८ १)

अर्थात् दाह धरती में ग्रीष्म रूपी विरह से दग्ध होते बीज की भाँति रानी की सुदृष्टि की वर्षा की प्रतीक्षा कर रहा था जिससे उसका प्रेम भाव अंकुरित हो जाता। यहाँ नवीनता सन्दर्भ और समग्र परिस्थितिको एक साथ प्रकट कर देने के कारण बिम्ब विशेष सशक्त हुआ है। जायसी के प्रस्तुत वचनों में भी ताजगी का पर्याप्त आभास मिलता है। ऋतु वर्णन इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है

रितु पावस बरसै पिउ पावा सावन भादों अधिक सोहावा
चमकै बीजु बरसि जल सोना दादुर मोर सबद सुठि लोना
रंग राती पिय सग निसि जागी गरजै गगन चौंकि गर लागी
सीतल बूंद ऊंच चौपारा हरियर सब देखिये संसारा।

(३३७ १ ३)

इसी प्रकार मानसरोदक ताल तमाल समुद्र आदि के वर्णन भी सुन्दर एवं ताजगी से परिपूरित हैं। समष्टि में यद्यपि जायसी न नवीन बिम्बों की ओर रुचि

नहीं है पर वह नवीनता का सृजन करने में समर्थ हुए है। तामयी और नवीनता की विभूति उनके बिम्बों को एक विशिष्ट महत्व का अधिकारी बनाती है।

(४) परिचितता— बिम्बों का परिचित होना उसकी प्रेषणीयता में सहायक होता है। बिम्बों के उपकरण जीवन और जगत में साधारणतः प्रचलित और परिचित होने चाहिये। जायसी का आग्रह बलात लाई गई नवीनता के लिए बिल्कुल नहीं था इसके कारण उनके सभी बिम्बों के उपकरणों से समाज परिचित है। कुछ उपकरण उनके शुद्ध ग्रामीण हृदय की झाँकी भी देते हैं जो आधुनिक नागरिक पाठकों के लिए उसी रूप से आकर्षक एवं ग्राह्य नहीं हो सकते जैसे स्वयं कवि के लिए थे। जैसे

(१) भर भै नैन र हृद की भरो
भरी तै हारी झूठी भरी।

(४१ ७)

(२) सरवर हिया घटत नित जाई टुकि टुकि होइ होइ बेहराई।
बिहरत हिया करहु पिय टेका दीठि दवगरा मेरवहु एका।

(१४५ ८ १)

(३) बरिसै मघा झकोरि झकोरी मोर दुइ नैन चुवहिं जस औरी।

(१४६ ५)

(४) जितवर हिनुवहु कर अस्वादू सतुन सुवक हुठि कीन्ह पयादू।
माथा उम न पईं नहीं बाँधा मैं होइ मेढ़ भार सिर बाँधा।
पुरवइ आव तुम्हार बड़ाई नाहि त सब गी काढ़ि पराई।
जो लगि मेढ़ रहै सुख साखा टूटे बार जाइ नहिं राखा।

(५ १ ४-७)

आदि। परन्तु हमारा नागरिक जीवन भी सम्भवतः अभी ग्रामों से इतना दूर नहीं गया है कि रहट मेढ़ सरोवर मघा की वर्षा आदि उसके लिए अपरिचित हो जाय। अतः अपरिचितता का दोष जायसी पर नहीं लगाया जा सकता और वैयक्तिक अनभिज्ञता के लिए कवि को उत्तरदायी भी नहीं ठहराया जा सकता।

जायसी के सभी बिम्ब जीवन और जगत के बीच से उठाए गए हैं। नागमती के विरह वर्णन में कवि ने कई बिम्ब एक साथ प्रस्तुत किए हैं। कहना न होगा कि वह सभी हमारे परिचित हैं।

नैन चुवहिं जस माहुट नीरू
टूटहिं बुन्द परहिं जस ओला बिरह पवन होइ मारें झोला
केहिक सिंगार को पहिर पटोरा, गिय नहीं हार रहौं होइ डोरा
तुम्ह बिन कता धनि हरुइ तन तिनवर भा डोल
तेहि पर बिरह जराइ कै चहै उड़ावा झोल।

(१२१, ५-६)

यहाँ सभी प्राकृतिक व्यापार हमारे परिचित हैं। इसी से भाव को सहज ग्राह्य बना देते हैं। मानवीय उपकरणों में दीपक आदि के बहु प्रयुक्त बिम्ब भी हमारे परिचित हैं। प्रकृति से गृहीत सूर्योदय और सूर्यास्त के अत्यन्त व्यंजक बिम्बों से भी हम अनभिज्ञ नहीं हैं। सूर्य किरण जो पद्मावती का प्रतीक है हमारी परिचय की परिधि में ही है

भये दस मास पूरि भै घरी पदुमावति कन्या औतरी।
जानहु सुरुज किरन हुति काढ़ी सुरुज करा घटि वह बाढ़ी।
भा निसि माँह दिनस परगासू सब उजियार भयउ कबिलासू।

(५१ १ १)

कमल पुष्प मधुकर केल पुष्प सभी की ग्राह्यता का कारण हमारा उनसे निकट का रागात्मक परिचय है। साधारण जीवन में भी हम इनसे भावाभिभूत होते हैं। काव्य में आकर भी उनका यह कार्य चलता है। बसन्त और पतझड़ जीवन में भी उत्थान पतन लाभ और क्षय के प्रतीक हैं। जिस प्रकार काव्य में

केवरहु निवहि बेह नव साखा कबहुँ न साख धर्इ सत राखा
लाख जाहि आवहि दुर लाखा फरहि झरहि उपहि नौ साखा

(५२३ ४ ५)

इसी प्रकार वर्षा घमासान वृष्टि आदि भी जायसी में बहुत प्रयुक्त की हैं जो परिचित ही हैं। घमासान वृष्टि के भागरूपक जीवन में भी विनाश और भय के प्रतीक होने के कारण कवि युद्ध वर्णनों में लाया है

जोम पवन बहु विधि तसि भाई घटा कहि घरप बानि भर लाई
हाथन्ह महँ करम किरवानी चमकहि सेल बीज की बानी
तबै बान जानहु घोह गाजा बासुकि डरै सीस जनि बाजा

(११० १ ४)

पशु पक्षियों में सिंह मृग सारस चातक खंजन कौड़िल्ला आदि भी हमारे परिचित हैं और पद्मावत में बहुतायत से आये हैं। कौड़िल्ला का बिम्ब जायसी को उन महत्त्व के कारण विशेष प्रिय रहा है

जैस कौड़िया के मकुरानी विरहि मारि कै चाहहिं आही
कन मवरा होइ कमल बसेरी होइ मरजिया न जानहि हेरी।

(४०१ ६-७)

कौड़िल्ला मछली के पानी से मछली उठाता है उस समय उसकी चोंच में दबी मछली के दोनों ओर से पानी ऐसे टपकता है जैसे नैनों से अश्रु टपक रहे हों। मछली और उसके बीच में अश्रु आयाँ और मालिका का सादृश्य भी कराती है। इसी कारण यह बिम्ब बड़ा हृदयात्मक सिद्ध हुआ है। जायसी ने लोक कथाओं लोकोक्तियों एवं मुहावरों के रूप में भी बिम्ब लिए हैं। जो समाज के बीच से

उठाए गए हैं। जो समाज की ही सम्पत्ति है और समाज ही जिसका निर्माता है। समिष्टि में जायसी के सभी बिम्ब परिचित हैं। इसी कारण अभीष्ट प्रभाव उत्पन्न करते हैं और सफल कहे जा सकते हैं।

(२) उर्वरता और व्यंजकता व्यंजकता और उर्वरता से पूर्ण बिम्ब काव्य में सबसे अधिक कहे जा सकते हैं। जायसी में व्यंजना के द्वारा धर्म देने की प्रवृत्ति अद्भुत है। उसने बिम्बों का भी प्रायः व्यंजनात्मक प्रयोग किया है। उसके उपमान इतने उचित और व्यंजक हैं कि भावों की परम्परा ही निर्मित कर देते हैं। असंख्य भाव रश्मियाँ उसमें से विकीर्ण होती दिखाई देती हैं जो काव्य के सौन्दर्य को कई गुना अधिक कर देती हैं। उर्वरता व व्यंजकता जायसी के अनेक उपमानों से प्रकट होती है। यथा

जोबन भर भादों जस गंगा लहुर देह समाइ न अंगा।

(१७ ७)

यह साधारण सा उपमान भी व्यंजना की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। उन्मत्तता चंचलता शांति उन्मत्तता आदि कितनी ही बातों की व्यंजना बाढ़ आई गंगा से हो जाती है। बाढ़ में भी न अपने किनारों में नदी समाकर सीमा उल्लंघन कर देती है यौवन भी सीमाओं के प्रति विद्रोही है और उसके सीमोल्लंघन का भी समाज पर उतना ही बुरा प्रभाव पड़ता है जितना बाढ़ग्रस्त प्रदेशों पर गंगा का। इस प्रकार कितनी ही दृष्टियों से यह उपमान व्यंजक प्रतीत होता है। साधारण सी उपमा में व्यंजना की इतनी शक्ति रखने की सामर्थ्य जायसी में ही है। उसकी अनेक उपमाएं इस रूप से द्रष्टव्य हैं। सांग रूपकों में भी व्यंजना की अपूर्व सामर्थ्य है

जस भुइं दहि असाढ़ पलुहाई परहिं बूंद औ सौंध बसाई
सोही भांति पलुही सुख बारी उठे करिल नव कोंप संवारी।

(४२१ ४ ५)

विरह विदग्धा रानी की (प्रिय आगमन पर) तुलना आषाढ़ मास की भूमि की है। रानी ताप में जल कर वैसे ही शुष्क और ताम्र भी जिस प्रकार सरोवर तल की भूमि। राजा का आगमन अषाढ़ मास है। जो रानी रूपी भूमि के लिए सुख सामग्री का विधान करता है वह सुगन्धि से पूरित हो जाती है। उठे करिल नव कोंप संवारी शारीरिक उन्नति और मानसिक सुखात्मक भावनाओं की वृद्धि दोनों ही रूपों में लिया जा सकता है। भूमि ग्रीष्म के बाद आषाढ़ में जिस सुख का अनुभव करती है वही सुख रानी विरह ताप सहने के पश्चात् प्रिय आगमन पर प्राप्त करती है। स्पष्ट कहा भी है :

नागमती कहं अगम जनावा गै सो तपनि बरखा रितु आवा

(४२१ १)

यहां गै सो तपनि बरखा रितु आवा पद बड़े व्यंजक हैं। वर्षा ऋतु सुख की

अनेक रूपों में व्यंजक है। पहले की गई सारी व्याख्या इस पद में भी समा सकती है। सूर्यास्त और सूर्योदय के भी अनेक रूपक व उर्वर और व्यंजक हैं। यौवन और वृद्धता का व्यंजक यह रूपक भी मर्म-स्पर्शी है :

उठत कोंप तरुवर जस तस जोबन तोहि रात
तौ लहि रंग लेहि रचि पुनि सो पियर होइ पात।

(११४ ८ १)

नवीन कोंपलें यौवन के सुख की प्रतीक हैं और पीला पत्ता जीवन की कुरूपता और मृत्यु की समीपता को प्रकट करता है। नव किसलय लाल होते हैं और लाल रंग अनुराग का प्रतीक है जो यौवन की एक विशेषता है और पीले पत्ते का पीला रंग भय और निराशा का प्रतीक है। मृत्यु का भय और जीवन की निराशा वृद्धावस्था में पर्याप्त देख पड़ते हैं। इस कारण नव किसलय में जीवन और उमंग है। पीला पत्ता होने पर केवल मृत्यु की राह देखनी ही शेष रह जाती है। वृद्धावस्था की बड़ी उत्कृष्ट व्यंजना इस रूपक द्वारा होती है। नव किसलयों और पाके पत्तों द्वारा सुख और दुःख की व्यंजना जायसी को प्रिय है

बिहर पात दुख झरे निपाती सुख पालौ उपने होइ राती

(१८३ ७)

यहाँ भी पतझड़ के पश्चात वसन्त आगमन पर वनस्पतियों के स्वरूप द्वारा दुःखित पद्मावती के सुख की व्यंजना हुई है।

जायसी ने विरोधात्मक वस्तुओं और भावों के द्वारा सुन्दर व्यंजना की है। यौवन और वृद्धावस्था की व्यंजना केवल भ्रमर, धूप और हंस बक आदि के रूप में केशों का वर्ण परिवर्तन करने से की गई है। जैसे

जोबन गत दिन दिन बस बरा,
भंवर छपाइ, हंस परगटा।

(२११ २)

भंवर और हंस श्यामता और श्वेतता के कारण यौवन के काले बालों और वृद्धता के श्वेत केशों के लिए प्रयुक्त हुए हैं। व्यंजना की दृष्टि से ऐसे विरोधात्मक स्वरूप सहज ही बड़े सक्षम हुए हैं। प्रसन्नता और दुःख एवं रुदन की व्यंजना बिजली और मेघ (वर्षा) से हुई है।

कहाँ हंसहि तू जैसी किये चीक सो मेहु।
तोहि मुख चमकै बीजुरी मोहि मुख बरिसै मेहु।

(४२७ ८ ६)

बिजली चमक और उज्ज्वलता के कारण प्रसन्नता और सुख की प्रतीक है और वर्षा-पानी की बूंदें टपकाने के कारण रुदन की। यहाँ व्यंजना के कारण अप्रस्तुत रूप के उपयुक्त भाव से ही रूप की पूर्ण प्रतीति हो जाती है। इसी प्रकार चकोर(कुम)

लेने पर साह के नौकरों का याम स पानी बन जाना कहा गया है, जो बड़ा व्यंजक है। पहल वह अपने कर्तव्य पर अडिग थे अपने विरोधियों को वह याम की भांति बना बैठे थे पर चू स लेकर वह पानी की तरह बह गए, उन्हें जिस रूप में चाहो रख सकते हैं। दृढ़ता और निष्ठा समाप्त हो गई और पानी की भांति उनके अस्तित्व का कोई अपना रूप न रह गया जिस पात्र में रखो वह उसी आकार का हो जाता है इसी भांति वह भी सत्य छोड़ बैठे और राजा के पक्ष में बह गए। याम और पानी शब्द विरोधात्मक सौन्दर्य को सफलता से व्यंजित करते हैं।

प्रस्तुत रूपों में जायसी न कहीं कहीं बड़ी सफल अभिव्यंजना की है। उनके मत से द्रव्य या धन व्यर्थ है। उसका उपभोग करना तो ठीक है पर उस पर ही ध्यान केन्द्रित रखना उचित नहीं है। उसका त्याग अथवा दान ही उचित है। इसका वर्णन जायसी यू करते हैं

दान आहि सब दरब कजूक ताहु लाग छोड़ बांधे सूत।
(१८७ ४)
बड़ेन्ह जो न सेंता और गाड़ा देखा भार चू वि कै छाड़ा।
(४११ ६)

अर्थात् दान धन का सार है बड़े अथवा महान पुरुषों ने उसे भोग किया पर भार जानकर अर्थात् व्यर्थ और स्थूल जानकर उपभाग करके ही छोड़ दिया जहां देखा भार चू वै कै छाड़ा 'शब्द बड़े व्यंजक है। ऐसा प्रतीत होता है कि धन अस्थिरता मे वेश्या सदृश है जिसका चुम्बन तो सब चाहते हैं पर गर्हितता के कारण भार उठाना रक्षा करना कोई नहीं चाहता है। धन के प्रति निकृष्ट भावनाओं को उद्दीप्त करने के कारण यह पद काव्य में बड़ा व्यंजक सिद्ध होता है। इसी प्रकार राघव चेतन की किंचित आश्चर्यपूर्ण अभिव्यक्ति पद्मावती के सौन्दर्य की बड़ी सफल व्यंजना करती है

आवा रानी बैठनि धौराहर के पास।
पर्स न जानै हिरदै बिजुरी बसे अकास
(४५ ८१)

धौराहार यहां बादल और बिजली पद्मावती के रूप का उपमान है। बादल में चमकती बिजली से रानी के तेज ऐश्वर्य अपूर्व सौन्दर्य उज्ज्वलता सभी की अनुभूति हो जाती है।

संक्षिप्तता एवं सुमठितता से भी व्यंजना में वृद्धि हुई है। मुहावरे के रूप में व्यंजना सदैव बड़ी सफल रही है। यथा

भे निसि धनि जस ससि परगसी राजै देखि भूमि फिर बसी
(१११ १)

यहाँ मुहावरा 'भूमि फिर हरी' अत्यधिक उर्वर है। अन्तर्गत अपेक्षिता के कारण इसमें व्यंजना की बड़ी शक्ति आ गई है। आक्रमणकारी राजा जिस भूमि को परन्तु ठिठ कर जाते हैं पुनः आगमन पर वह उन्हें हरी भरी एवं पल्लवित मिलती है किंचित आश्चर्य के साथ उनकी पुनः ठिठ करने की कामना फिर उद्दीप्त हो जाती थी। यह सम्पूर्ण भाव यहाँ प्रकट है। उनकी मिलनोपरान्त स्थिति राजा की आश्चर्य मिश्रित लोभपूर्ण दृष्टि और पद्मावती का समग्र सौन्दर्य सभी इसमें मुखर हो उठे हैं। एक बिम्ब कई भावों की सफल व्यंजना कर सका है। अन्यत्र भी मुहावरे व्यंजक हैं

बेंचि लाग हाट लै ओही मोल रतन मानिक जहँ होई
सुआ का पूँछ पतंग मँडारे चलन देखि आछे मन मारे।

(७६ २१)

यहाँ सुग्गे को मन्दार का पतंग (कीड़ा) कहा गया है। मन्दार पर तितली का कीड़ा कि निर्भर रहता है जो बड़ा भद्दा होता है। कुरूपता के कारण वह तुच्छता का ही अधिकारी है पर कालान्तर में उसी से सुन्दर तितली निकलती है। सुग्गा भी वहाँ अमूल्य वस्तुओं के बीच मंडार के कीड़े जैसा निकृष्ट बना हुआ था पर उसी के अन्तर में अनेक गुण छिपे हुए थे जो कालान्तर में राजा और पद्मावती का मिलन कराएँगे। उसके अन्तस्थ गुण और बाह्य रूपहीनता एवं कथा का सारा स्वरूप यहाँ एक साथ स्पष्ट हो उठा है। कथा की व्यंजना के कारण यह बिम्ब बड़ा सफल है। इसी प्रकार विवश और खोयी धीरज बाल्य के लिए पास में घिरे सिंह की उपमा, धनहीन व्यक्ति की पतझड़ वृक्ष से तुलना भी बड़ी व्यंजक है। पतझड़ वृक्ष की समस्त शोभा उसकी हरी और नुकीली पत्तियाँ हैं पत्तियाँ झड़ जाने पर पेड़ का सूखा ठूँठ बड़ा अप्रिय और निकृष्ट प्रतीत होता है। धनहीन व्यक्ति भी शोभा के अभाव में कुरूप प्रतीत होता है। इसी प्रकार राजा के पहरेदारों के हृदय का भी कहुआ भी बड़ा व्यंजक है। अस्थिरता और निर्भर हो उठ जाने का गुण उसमें भी खूब व्यंजित हुआ है। समष्टि में जायसी के सभी बिम्ब चाहे वह उपमा रूपक या मुहावरे कुछ भी क्यों न हों सदैव सफल अभिव्यंजना करने में समर्थ हुए हैं।

(९) औचित्य—औचित्य बिम्ब की सफलता का सबसे बड़ा कारण है। कहना न होगा कि जायसी ने इस औचित्य की सर्वत्र रक्षा की है। भाव, वस्तु, रूप आदि सबको सम्यक् रूप से प्रस्तुत करने में जायसी सफल हैं। रूपगत औचित्य की रक्षा पद्मावती में अधिक हुई है। वस्तुओं के अनुमान आकार—प्रकार में समान ही हैं। हाथी आदि विशालकाय जीवों की उपमा पहाड़ या मेघ आदि से की गई है। जिसमें रंग रूप दोनों का सादृश्य है:

हस्ती सिंघली बाँधे बारा जनु सजीव सब ठाढ़ पहारा
कौनौ सेत पीत रतनारे कौनौ हरे धूम औ कारे।

बरनहिं बरन गगन जस मेघा औ तिन्ह गगन पीठ जनु ठेघा ।

(४१ १३)

इसी प्रकार पद्मावती के मधुपूरित नैनों के लिए मुख्यतः तीन उपमान दिए गए हैं—

(१) रातीं सुरंग सुना सब पयाऊ
पहुँमै यही चांद कै करा आँसु गगन जनु नखतन्ह भरा

(१७ १४)

(२) नैन सीप मोती भरि आँसु टूटि टूटि परहिं करहिं तस आसु ।

(५८३ १)

(३) भये वे नैन पहुँप की धरी भरी ते वारी बूझी भरी ।

(४१ ७)

इसमें प्रथम वर्ण साम्य पर आधारित है दूसरे में आकार की समानता है और तीसरे में धर्म अर्थात क्रिया की । यह तीनों बिम्ब जायसी की बिम्ब चयन की व्यापकता के परिचायक हैं । हथेलियों के लिए जायसी ने एक कंवल की कुली कोरी उपमान दिया है वस्तुतः हाथ कमल सदृश्य होते भी नहीं हैं कमल के अर्धभाग के सदृश्य ही होते हैं । जायसी की कल्पना यथार्थ के अधिक निकट है और रूप का औचित्य भी स्पष्ट हुआ है । इसी प्रकार भुजा का वर्णन कवि यों करता है

कनक दंड भुज बनी कलाई डाँडी कंवल फेरि जनु लाई

(४८२ १)

अर्थात भुजाएं कमल की नाल के सदृश्य थीं जिनको फेरकर (उलट कर) लगाया गया था । नाल में कमल ऊपर होता है पर भुजाओं में कमल रूपी हाथ नीचे होते हैं । अतः कमलनाल को पलटकर लगाने की बात कही गई है । यह सब जायसी की औचित्यगत व्यापकता का परिचय देते हैं । रूपगत औचित्य का एक सुन्दर उदाहरण यह वर्णन में भी है । बाणों से रोम रोम पर छिदे गढ़ के लिए जायसी ने साही की उपमा दी है । जो आकार और रूप को स्पष्ट करती है । पक्ष फुलाए बैठा मानहु भी गढ़ का उपमान है और रूप को स्पष्ट बनाने में सहायक है । यह दोनों ही उपमान बड़े संगत हैं । आकार और रंग आदि के साथ साथ भाषा का ध्यान भी जायसी को रहता है । राजा के साथ सहस्रों राजकुंवर योगी बन कर महल से निकल पड़ते हैं । गेरुए वस्त्रों से ढके इन योगियों को देखकर कवि को टेसू याद आ जाते हैं

चला कटक जोगिन्ह कर कै गेरुआ सब भेसु,
कोस बीस चारहुँ दिसि जानहु फूला टेसु ।

(१३४ ८-९)

यहाँ रंग साम्य के साथ साथ मात्रा का भी साम्य है । असंख्य योगियों की उपमा के लिए टाक का पूरा वन ही रखना उचित था ।

जायसी की औचित्यगत सक्षमता के सबसे अच्छे उदाहरण उनके परिस्थितिगत साम्य में मिलते हैं। जायसी की यह प्रवृत्ति है कि वह वर्णन करते हुए प्रस्तुत वर्णन के ही उपमान प्रयुक्त करता जाता है। समय वस्तु या परिस्थिति का साम्य होने से बिम्ब सहज ही ग्राह्य और आकर्षक बन जाता है। जैसे सावन मास में नागमती के नेत्रों से रक्त अश्रु रूप में बीर बहूटियां टूटने लगती हैं। चारों ओर पानी ही पानी दिखाई देता है मन भवरी सा भ्रमित हो जाता है और नागमती की जीवन नैया डूबने उतराने की प्रयत्न करते करते थक जाती है

सावन बरसि मेह अतिपानी भरनि परइ हौं बिरह झुरानी
रकत क आंसु परे भुइं टूटी, रेंगि चले जनु बीर बहूटी
हाट समुद अथाह गभीरी जिउ बाउर भा भवं भम्भीरी।
जग जल बूडि जहाँ लगि ताकी मोर नाव खेवक बिनु थाकी।

(३४५ १-७)

भादों मास में नागमती के नेत्र औधाती धार से सहज ही सादृश्य स्थापित कर लेते हैं। और पानी की अतिशयता से भरी सारी पृथ्वी उसको अपने यौवन जल में डूबन का सा आभास देती है

भर भादों दूभर अति भारी कैसे भरौं रैनि अंधियारी।
चमकि बीजु घन गरजि तरासा बिरह काल होइ जीउ गरासा।
बरिसै मघा झकोरि झकोरी मोर नैन चुवहिं जस ओरी।
जल थल भरे अपूर सब धरति गगन मिलि एक।
धनि जोबन औगाहु मैं दे बूड़त पिउ टेक।

(३४९ १-६)

फाल्गुन मास में यही नागमती होली के साथ अपने विरहदाह में जलते हृदय का सादृश्य देखती है

फागुन पवन झकोरे बहा चौगुन सीउ जाइ किमि सहा,
फाग करहिं सब चाचरि जोरी मोहि तन लाइ दीन्ह जस होरी

(३५२ १४)

और ग्रीष्म (बैसाख) में नागमती के दग्ध हृदय की उपमा ग्रीष्म के ताप से दरक दरक कर फटते सरोवर से की गई है। परिस्थिति का यह साम्य उपमानों के प्रभाव को कई गुना बढ़ा देता है और जायसी की प्रकृति से सहज ही सम्बन्ध स्थापित कर लेने वाली रागात्मिका वृत्ति का परिचय देता है। परिस्थिति से ही बिम्ब ग्रहण करने की प्रवृत्ति का सुन्दर रूप शाह और राजा के शतरंज के खेल के समय पाया है। शाह शतरंज एक विशेष मनोवृत्ति—रानी को देखने की लालसा से खेल रहा था। उसके दोनों ओर पार्श्वों में दर्पण रखे थे जिनमें पद्मावती का प्रतिबिम्ब पड़ने की सम्भावना थी। फलतः शाह का ध्यान शतरंज की ओर कम दर्पण की ओर अधिक

था। चूंकि वह दर्शन की ओर उन्मुखता से देख सकने के लिए स्वतन्त्र नहीं था अतः वह शिष्टाचार निर्वाह के लिए सामने तो राजा के साथ शतरंज खेल रहा था पर कनखियों से दर्पण को देखता जाता था। जायसी उसकी इस अवस्था को बिम्बित करने के लिए कहीं दूर से वस्तु नहीं लाते वरन् उसके खेल शतरंज से ही पैदल मोहरे की तुलना करते हैं

पेम क लुबुध पयादें पाऊ
ताकै सौंह चलै कोन ठाँऊ।

(५१७ ६)

अर्थात् प्रेम का लोभी शाह पैदल की तरह है चलता तो सीधा है और मारता बांये बाएं पाश्वों में है। यहां इसी स्वल से गृहीत होने के कारण यह बिम्ब बड़ा व्यंजक है। और साथ ही परिस्थिति के साम्य के प्रति जायसी कितने अधिक सजग हैं उसका परिचय देता है।

जायसी ने प्रभावगत औचित्य का भी ध्यान रखा है। यद्यपि प्रभाव साम्य की ओर उनका झुकाव कम है। पर कहीं कहीं रूप रंग के साथ साथ वह अनायास ही आ गया है। जैसे

आऊ कटक सुलतानी गगन छिपा मसि मांझ,
परति आव जग करि, होत आव दिन सांझ,

(६२७ ८६)

यहां शाह की सेना की अपारता और भयकरता सांझ होती आती है इस पद से स्पष्ट है। साथ निराशा और वेदना देने के कारण पीड़ा और भयकरता का जो रूप सेना देती है वही सांझ का काला रंग भी। अचानक दिन का अस्त हो जाना भावी अनिष्ट की सूचना भी देता है। इसी प्रकार राजा की मृत्यु के उपरान्त रानी के केशों से मोतिया की लड़ गिरने पर कवि ने उत्प्रेक्षा की है

छोरे केस मोति लर छूटे जानहु रैन नखत सब टूटे।
सेंदुर परा जो सीस उघारी आगि लागि चहु जग अंधियारी।

(६४८ १४)

यहां नक्षत्र टूटना और आग लगना दोनों ही अमंगल सूचक हैं। जो विनाश को स्पष्ट करते हैं। प्रभावगत औचित्य के यह अच्छे उदाहरण है। समष्टि में जायसी ने (हारमनी) संगठन के सौन्दर्य की सर्वत्र रक्षा की है औचित्य के सभी रूप उनमें मिल जाते हैं।

(७) कथा में योगदान—जायसी के बिम्ब विधान की सफलता का बहुत बड़ा श्रेय उसके कथा में योग देने की शक्ति को है।

पद्मावत की कथा प्रतीकात्मक महत्व रखती है। कथा के अंत में कवि ने स्वयं समस्त प्रमुख पात्रों के प्रतीकात्मक अर्थ की व्यंजना की है। उसने पद्मावती को

हृदय या आत्मा, रत्नसेन को मन नागमती को गोरखधंधा अलाउद्दीन बादशाह को माया व शैतान राघव चेतन को दूत आदि-आदि रूपों में स्वीकृत किया है। इन पात्रों के लिए प्रयुक्त बिम्ब विधान अनेक स्थलों पर इनकी प्रतीकात्मकता में सहायता होकर कथा में योग देता है।

पद्मावती को कवि ने आत्मा या परमात्मा का स्वरूप माना है अतः सर्वत्र उसका सौन्दर्य इस रूप में व्यक्त हुआ है कि उससे अलौकिकता और अपूर्वता का एक स्पष्ट आभास मिलता है। उसके जन्म के अवसर पर ही कवि उसे सूर्य किरण कहता है जिसके उदित होते समस्त संसार में प्रकाश छा जाता है

भए दस मास पूरि भै घरी पदुमावति कन्या औतरी।
जानहु सुरुज किरन हुति काढ़ी सुरुज करा घाटि वह बाढ़ी।
भा निसि माँह दिनक परगासू सब उजियार भएउ कविलासू।

(५१ १३)

यह बिम्ब विधान उसके प्रतीकात्मक अलौकिक स्वरूप की स्पष्ट व्याख्या करता है। इसी प्रकार मानसरोदक खंड में उसके लिए चंद्र का बिम्ब आया है जो उसकी प्रतीकात्मकता में सहायक है

सरवर तीर पदुमिनि आईं खोंपा छोरि केस मोकराईं।
ससि मुख अंग मलै गिरि रानी नागन्ह झाँपि लीन्ह अरघानी।
ओनए मेघ परी जग छाहाँ ससि की सरन लीन्ह जनु राहाँ।
भूलि चकोर दिस्टि तहँ लावा मेघ घटा महँ चाँद दिखावा।
1 सरवर रूप बिमोहा हिय हिलोर करेइ
पाय छुवै मकु पावौं तेहि मिसु लहर लेइ।

(६१ १६)

पद्मावती के लिए प्रयुक्त बिम्ब-योजना सर्वत्र उसके प्रतीकात्मक अर्थों को व्यक्त करती है और इस रूप म कथा म अपूर्व योग देती है।

नागमती का चरित्र और उसका प्रतीकात्मक रूप दोनों ही उसके लिए प्रयुक्त बिम्ब विधान से स्पष्ट होते हैं। कवि ने उसके लिए नागिन का बिम्ब दिया है जो उसके निम्न चरित्र और गोरखधंधे के प्रतीकात्मक अर्थ को व्यक्त करता है

नागमती कँह अगम जनावा गै सो तपनि बरसा रितु आवा।
अही जो भुइ नागिन बसि लगा जिउ पायं तन महु म लगा।
अब फुरत जनु केंचुलि वा छूटी जनि सिकरी बेड और बहूटी।

(८२१ १३)

इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी के पद्मावत का बिम्ब विधान उसकी प्रतीकात्मक कथा में पूर्ण योग देता है। इसका व्यापक अध्ययन अगले अध्याय में किया जायगा।

(८) भाव एवं विचारों के प्रकाशक—कवि के बिम्ब उसके सिद्धान्तों भावों एवं विचारों को भी सम्मुख प्रत्यक्ष कर देते हैं। इससे काव्य में उनके महत्व की वृद्धि होती है। भावों का पूर्ण प्रकाशन बिम्ब की सफलता को विस्तार देता है। जायसी ने अपने भावों और विचारों को बिम्ब के माध्यम से ही स्पष्ट किया है।

वे जीवन को क्षणिक मानते हैं। क्षणिकता की अनुभूति पानी के बुलबुले से भली भांति व्यंजित हो जाती है

पानी महं जस बुल्ला तस यह जग उतराई
एकहि आवत देखिए एक है जात बिलाई।

(भ्रज ११)

बुलबुले का क्षणिक अस्तित्व मानव जीवन की क्षणिकता और निस्सारता को नैनों के सम्मुख प्रत्यक्ष कर देता है। इसी क्षणिकता की अनुभूति के लिए रहट की घरिया का बिम्ब आया है यहां घरिया के क्षणिक साक्षात पर कवि की दृष्टि रही है

महुम्मद जीवन जलभरन रहट घरी की रीति।
घरी जो आइ सो भरी ढरी जनम गा बीति।

(४२ ८-९)

जायसी प्रेम को जीवन का मधु मानते हैं। इसी के [कारण मनुष्य स्वर्ग का अधिकारी हो सकता है, अन्यथा प्रेम हीन जीवन एक मुट्ठी राख के सदृश है।

मानुस पेम भयउ बैकुंठी नाहिं ती कहा छार एक मुठी।

(१११ २)

प्रेम ही जीवन के अंधकार को हरण कर ईश्वरीय ज्योति के दर्शन कराता है। यह परमात्म ज्योति घट घट में व्याप्त है जैसे पुष्प में सुगन्ध।

जस तन तस यह धरती जस मन तैस अकास।
परम हंस तेहि मानस जैस फूलि महं बास।

(भ्रज १४)

परन्तु यह अदृश्य होने के कारण सर्वेव प्रयत्नशील रहने पर भी अलभ्य बनी रहती है।

पहुंच हाथ तस सरवर हिया कवल तेहि माहं
ननहु जानहु नियरे, कर पहुंचत अवगाह।

(१९१ ८-९)

यहां फूल की सुगन्धि और सरोवर के कमल के द्वारा उस परमात्मा की सर्वत्र व्यापकता और अलभ्यता को स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार ज्ञान आदि भावों को दीपक के बिम्ब द्वारा व्यंजित किया गया है।

अगले अध्याय में जायसी के बिम्बों द्वारा प्रकट भावों और विचारों का विस्तारपूर्वक विवेचन किया जायगा यहां संकेत रूप में इतना ही अलम् है। यद्यपि

में यह कहा जा सकता है कि जायसी के भावों एवं विचारों को सम्यक रूप से व्यंजित कर सकने के गुण के कारण भी बिम्ब सफल हुए हैं। इससे उनमें विचारों की गहराई आई है और सौन्दर्य एवं उपयोगिता में वृद्धि हुई है।

अंत में स्पष्ट है कि भावों को उत्तेजित करने तीव्र करने और स्पष्ट व्यंजित करने काव्य में नवीनता एवं ताजगी का विधान करने कथा में योग देने विचारों एवं भावों की सम्यक अभिव्यक्ति करने के साथ ही औचित्य की पूर्ण रक्षा करने के कारण जायसी के लगभग सभी बिम्ब सफल कहे जा सकते हैं।

(२) असफल बिम्ब

बिम्बों के असफल प्रयोग भी काव्य में बराबर प्राप्त होते हैं सभी बिम्ब सफल नहीं कहे जा सकते भाव अपकार संयम की उपेक्षा बौद्धिकता आदि के कारण अनेक बिम्ब काव्य को प्रेक्षणीय और सफल बनाने में कोई योगदान नहीं कर पाते। जायसी में भी कुछ बिम्बों के प्रयोग इस प्रकार के मिल जाते हैं जो काव्य की सौन्दर्य वृद्धि में सहायक नहीं हुए हैं। उनके उन बिम्बों की असफलता के कुछ कारण हैं आगे उन्हीं की चर्चा होगी।

१—भाव अपकारता—पद्मावत में अनेक बिम्ब इस प्रकार के आ गए हैं जिनमें श्रृंगार आदि की ओर तो कवि की रुचि है पर वह भाव की स्पष्ट और सम्यक अभिव्यंजना कहाँ तक कर सकेंगे? इस ओर उनका ध्यान नहीं गया है। शृंगार के प्रसंग में जहाँ मधुरता और रमणीयता का साम्राज्य है वहाँ कवि अवसर रुधिर आदि की वीभत्सता को सामने रख गया है। रूप और रंग साम्य पर उसकी दृष्टि है भाव व्यंजना पर नहीं। जैसे

सुरज किरन जस गगन बिसेखी जमुना मांझ सरसुती देखी
खांड़े धार रुहिर जनु भरा करवत लै बेनी पर धरा।
(१०० ४५)

यहाँ शृंगार के संदर्भ में पद्मावती की काली पाटियों के बीच मांग को दीपक, स्वर्ण रेखा सरस्वती आदि रूपों में उपमित करने के पश्चात उसी के लिए रुधिर से सनी तलवार का चित्र दिया है जो शृंगार के माधुर्य को एकदम विकृत कर देता है रुधिरपूरित खड्ग किसी को भी प्रिय नहीं हो सकती उसमें सौन्दर्य की सृष्टि नहीं होती वीभत्सता का भाव ही जाग्रत होता है। इसी प्रकार अधरों को रक्तवर्ण बताने के लिए रुधिर पूरित होने की कल्पना और हथेलियों के सहज गुलाबी रंग के लिए रक्त भरी और हृदय को निकाल कर रक्त सनी कल्पना भी सौन्दर्य में विकृति ला देता है

कमल दंड दुइ भुजा कलाई जानहु फेरि कुंदेरै भाई।
जानौ रकत हथोरी बूड़ी, रवि परभात तात वह जूड़ी।
हिया काढ़ि जनु लीन्हेसि हाथा रकत भरी अंगुरी तेहि साथा।
(११२ १४)

जायसी में मुगल प्रभाव के कारण वासरस के लिए रक्त की कल्पना बहुत आई है। मुगल कविता में विरही सदैव रक्त के आंसू ही रोते हैं। प्रसिद्ध शायर गालिब ने स्पष्ट ही कहा है

रगों में दौड़ते फिरने के हम नहीं कायल।
जो आँखों ही से न टपका तो फिर लहू क्या है।[1]

तब मुगल कविता से प्रभावित और स्वयं मुसलमान होने के नाते जायसी में भी यह कल्पना आनी स्वाभाविक ही है। रत्नसेन के आंसुओं के लिए कवि ने अवसर प्रभाव वृद्धि के लिए रक्त के गिरने का उपमान दिया है

तस रोवै जस जिउ जर गिरै रकत औ मांसु।
रोव रोव सब रोवहि सौत सौत भर आंसु।

(२११ ८१)

सम्भवतः फारसी और उर्दू कविता में यह उपमान और यह रूप चित्र प्रिय रहे हों जैसे गालिब साहब की कविता से जाहिर होता है। पर हम हिन्दी पाठकों के लिए तो यह सौन्दर्य का विधान न करके जुगुप्सा की भावना ही जाग्रत करते हैं। इसी प्रकार विरह में शरीर के क्षीण होने पर एवं आंसुओं के निरन्तर गिरते रहने पर सीक कबाब बनने का रूपक भी भाव की अभिव्यंजना को सुन्दर और हृदय ग्राही रूप में न प्रस्तुत करके घृणा और विकृति का विधान ही करता है

विरह सरागन्हि भूजै मांसु गिरगिर परहिं रकत के आंसु।

(११४ ७)

हमारे हिन्दी और संस्कृत के साहित्य में हाड़ मांस मज्जा रक्त आदि सदैव ही बीभत्स रस अथवा जुगुप्सा भाव के उपकरण रहे हैं इसी कारण हम शृंगार में इनके आ जाने से भाव तीव्रता की अनुभूति न करके जुगुप्सा की अनुभूति ही करते हैं। सम्भवतः जायसी ने इस रूप चित्रों से भावाधिक्य का ही अनुभव किया है परन्तु हम हिन्दी के पाठकों के लिए यह बिम्ब वैसा उत्कृष्ट नहीं है और विकृति की अनुभूति होने से हम तो इसको जायसी की बिम्बगत असफलता ही कहेंगे। अन्य लोगों के विचार हम से भिन्न भी हो सकते हैं।

इसी प्रकार जायसी में कुछ स्थल ऐसे भी आए हैं जहां वीर भाव की व्यंजना के साथ साथ शृंगारपरक बिम्ब दिया गया है। वैसे शास्त्रानुसार वीर और शृंगार विरोधी नहीं हैं और अक्सर सहोदर की भांति साथ-साथ पाते रहे हैं। कालिदास ने इसका बड़ा सुन्दर समीकरण प्रस्तुत किया है पर भाव का उपकार करने के लिए ऐसे बिम्ब मेरे मत से विशेष उत्कृष्ट नहीं हैं और जहां शृंगार अधिक स्थूल हो जाता है वहां तो स्पष्ट ही यह भाव का अपकार ही करता है उपकार नहीं। कम से कम जायसी के शृंगारिक और वीर के साथ-साथ प्रस्तुत होने वाले स्थलों के लिए तो यह

1 उर्दू कविता पर एक नज़र [illegible]

कथन उपयुक्त ही है। युद्धस्थलों पर जायसी ने शृंगार परक रूपक दिये हैं जो बड़े स्थूल हैं। केवल रूप साम्य तक ही कवि की दृष्टि पहुंची है और भाव का वैसा ध्यान नहीं रखा गया है वरन उससे भाव की अवहेलना हो जाती है। तोपों आदि के लिए जहां अत्यधिक स्थूल नारी रूप को सामने लाया गया है वहां भाव की वृद्धि न होकर हानि ही हुई है। यथा

> कहौं सिंगार जो जैसी नारी। दारु पियहिं सहज मतवारी।
> उठै आगि जो छाड़हि स्वांसा तेहि डर कोउ रहै नहिं पासा।
> सेंदुर आग सीस उपराहीं, पहिया तरवन चमकत जाहीं।
> कुच गोला दोइ हिरदय लाए अंचल धुजा रहहिं छिटकाए।
> रसना लूकि रहहि मुख खोलहि लंका जरि सो उन्ह के बोले।
> अलक सांकरि हस्तिगह चीता खांचत हरहिं मरहिं जूठि मीता।
> बीर सिंगार दुवौ एक ठाऊं, सत्रुर साल गढ़भंजन नाऊं।
> तिलक पलीता तुपक तन दसन सिनि जग के काल
> वह हेरहिं नहु पर्र जगाला हुलहि तकेहि अमाल।
>
> (५०७ १-९)

यहां वीर भाव दब सा गया है और शृंगार ही प्रधान हो गया है। युद्ध स्थल की भयानकता के बीच इतनी स्थूल शृंगारिक कल्पना पाठक को भ्रमित कर देती है। यहां वीर भाव की कोई प्रभाववृद्धि नहीं हुई है वरन रसाभास सा हो जाता है वीर के साथ इतना स्थूल शृंगार जुगुप्सा ही उत्पन्न करता है। वीरता की अनुभूति नहीं कराता है। इसी प्रकार शृंगार के स्थलों पर भी वीर की कल्पना हुई है। बादल की नवविवाहिता पत्नी अपने को शृंगार की नायिका के साथ-साथ युद्धवीर भी मानती है

> जौ तुम्ह जूझि चाहौ पिय बाजा किन्हि सिंगार जूझि मैं साजा।
> जोबन आइ सौंह होइ रोपा पखरा बिरह काम दल कोपा।
> भयउ बीर रस सेंदुर मांगा राता रुहिर खरग अस नांगा।
> भौंहैं धनुक नैन सर सांधे काजर पनच बरुनि बिष बांधे।
> मैं कटाछ सौं सान संवारे नख नग सेल भाल अनियारे।
> अलक फांस गिउ मेलि असूझा अधर अधर सौं चाहहिं जूझा।
> कुंभस्थल दुइ कुच मैमंता पेलौं सौंह संभारौ कंता।
>
> (६१६ १-७)

यहां भी शृंगार में वीर का आरोपण प्रशंसनीय नहीं है। शृंगार भी यहां स्थूल है और वीर का आरोपण इसी कारण भाववृद्धि न करके केवल चमत्कार की प्रतीति ही कराता है यहां वैसी विकृति तो नहीं होती पर मात्र चमत्कार की अभिव्यंजना होने के कारण यह भाव का उपकार नहीं करते और इस दृष्टि से यह असफल

ही कहे जाएँगे। इसी प्रकार युद्ध वर्णनों में चौगान के खेल का रूपक भी कवि ने दिया है जहाँ शृंगार भी अपने अति स्थूल रूप में आ गया है

होइ मैदान परी अब गोई। खेल हार दुहुँ काकरि होई।
जोबन तुरै चढ़ी सो रानी। चली जीति यहि खेल सयानी।
कट चौगान गोइ कुच साजी। हिय मैदान चली लै बाजी।
हाल सो करै गोइ लै बाढ़ा। कूरी दुहूँ बीच कै काढ़ा।
भए पहार दुवौ वै कूरी। दिस्टि नियर पहुँचत सुठि दूरी।
ठाढ़ बान अस जानहुँ दोऊ। सालहिं हिये न काढ़ै कोऊ।
सालहिं तेहि न जासु हिय ठाढ़े। सालहिं तासु चहै औन्ह काढ़े।
(६२८ १-७)

यहाँ भी वीर पीछे रह गया है और चौगान का खेल शृंगारमयी कल्पना के साथ उभर कर आता है ऐसे स्थल भी भाव के सहायक नहीं हैं वरन् भाव का अपकार करते हैं इसी कारण असफल हैं।

(२) रूढ़िगतता—बिम्बों की असफलता का दूसरा प्रधान कारण है रूढ़िगतता। अधिकतर बिम्ब आदिकाल से आज तक उसी संदर्भ और उसी रूप में प्रयुक्त होते होते इतने रूढ़ बन चुके हैं कि पाठक अब उनमें अति प्राचीनता के कारण कोई सौन्दर्य नहीं पाता और इस तरह वह काव्य का किसी प्रकार का भी उपकार कर सकने में समर्थ नहीं होते। जहाँ बिम्ब या उपकरण या संदर्भ की नवीनता के कारण रूढ़िगत बिम्ब में भी सौन्दर्य आ जाता है वहाँ वह सफल कहे जा सकते हैं पर जहाँ उसी रूप और उसी संदर्भ में उनका उल्लेख होता रहता है। जिस रूप में विगत कई शताब्दियों से हो रहा है वहाँ वह भाव की अभिव्यंजना में कोई वृद्धि नहीं करते, पाठकों पर उनका कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता ऐसे बिम्ब अभावात्मक होने के कारण असफल कहे जा सकते हैं। जायसी कुछ अंशों में परम्परा के पोषक कवि हैं। अतः उनमें सभी परम्परागत कवियों की भाँति प्राचीन उपमान एवं रूपक मिल जाते हैं। शृंगार वर्णन में ऐसे रूपकों की प्रमुखता है।

नेत्र मुख केश ग्रीवा गति आदि के लिए जायसी ने अवसर वही परम्परागत उपमान अपने उसी रूप में लिए हैं। नखशिख वर्णन के अधिकांश उपमान परम्परा से गृहीत हैं। उनमें मौलिकता का तनिक सा सौन्दर्य भी नहीं है

सरु सिंघनी सारंग नैनी हंस गामिनी कोकिल बैनी।
केस मेघावरि सिर ता पाईं चमकहिं दसन बीजु की नाईं।
कनक कलस मुख चंद दिपाहीं रहस केलि सो आवहिं जाहीं।
जा सौं वै हेरहिं चख नारी बांक नैन जनु हनहिं कटारी।
(१२, १-७)

यहाँ उपमान रूढ़िगत होने के कारण सौन्दर्य वृद्धि में सहायता नहीं करते। वस्तुत: यह उपमान इतने रूढ़ हो चुके हैं कि इनसे कोई चित्र ही नेत्रों के सम्मुख नहीं आता। काव्य के ये अनावश्यक भार से लगते हैं। इसी प्रकार राघव चेतन द्वारा वर्णित पद्मावती का रूप चित्र भी रूढ़िगतता के कारण रूप या सौन्दर्य को चित्रित करने के लिए सर्वथा असमर्थ है

केहरि लंक कुम्भस्थल हिया। गीव मयूर अलक रवि बिया।
कंवल बदन औ बास समीर। खंजन नैन नासिका कीर।
भौंहें धनुष ससि दुइज लिलाटू। सब रानिन्ह ऊपर वह पाटू।

(२५४ ११)

यहाँ एक तो केवल रूप साम्य तक ही कवि की दृष्टि जा पहुंच है दूसरे रूप भी रूढ़ है अत यह बिम्ब काव्य की श्री वृद्धि करने में तनिक भी योग नहीं दे पाया है और अपनी रूढ़िमतता के कारण असफल कहा जा सकता है।

इसी प्रकार नखशिख वर्णन में भी कवि ने बहुत से रूढ़ उपमानों का प्रयोग किया है। नेत्रों के लिए भ्रमर या समुद्र भवों के लिए धनुष केशों के लिए अथवा भ्रमर जायसी ने कई बार रखे हैं। भाल के लिए बहु प्रयुक्त उपमान चन्द्र जायसी में भी उपलब्ध है।

कहौं लिलार दुइज के जोती। दुइजिहि जोति कहाँ जग ओती ।
कै सरवर तेहि देउँ मयंकू। चांद कलंकी वह निकलंकू।
औ चांदहि पुनि राहु गरासा। वह बिनु राहु सदा परगासा।
तेहि लिलार पर तिलक बईठा। दुइज पाट जानहु ध्रुव डीठा।
कनक पाट जनु बैठा राजा, सबै सिंगार अत्र लै साजा।
ओहि आगे थिर रहे न कोऊ। दहुँ का कहँ अस जुरा संजोऊ।

(१०१ १०७)

यहाँ मस्तक के लिए प्रयुक्त सभी रूप—चांद ध्रुव राजा परम्परागत हैं इनमें कोई विशिष्टता प्रतीत नहीं होती। इस कारण यह काव्य का कोई विशेष उपकार नहीं करते इस दृष्टि से यह असफल तो शायद नहीं है पर अनावश्यक अवश्य है और इसी कारण आंशिक असफल भी कहे जा सकते हैं। जायसी ने रूढ़िगत उपमानों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग किया है। स्वयं पद्मावत में दो बार रूप वर्णन विशद रूप में आया है। दोनों बार ही रूढ़ उपमानों का प्रयोग है। इन दोनों वर्णनों में बहुत अधिक साम्य है। देखो, नेत्रों ग्रीवा आदि के लिए वही उपमान जो पहले नखशिख वर्णन खण्ड में आ चुके हैं वही फिर से पद्मावती रूप चर्चा खण्ड में भी आये हैं। नख शिख वर्णन में उपमानों में यदि कहीं नवीनता है भी वह भी पुन रूप चर्चा खण्ड में भी उसी रूप में दिखाई देती है। इससे प्रतीत होता है कि रूढ़ि अथवा पुनरावृत्ति के प्रति जायसी का कोई विरोध नहीं था रूढ़िगत उपमानों को वह बड़े सहज रूप में

प्रयुक्त कर गये हैं। यह वक्रिमतता भाव का कोई विशेष उपकार करती प्रतीत नहीं होती। इस रूप में यह काव्य का कोई प्रयोजन न सिद्ध कर सकने के कारण असफल ही कहे जायेंगे।

(३) संदर्भ की उपेक्षा संदर्भ की उपेक्षा अर्थात् कथा चरित्र या घटना के प्रति विरोधी भावनाएं जागृत करने वाले उपमान भी काव्य में असफल कहे जा सकते हैं। जायसी ने अपने चरित्रों (पात्रों) कथा एवं घटनाओं की सदैव रक्षा की है। उसने कहीं भी ऐसे उपमान प्रस्तुत नहीं किये हैं जो पूर्वधारणा पर आघात करें। वरन् कहना होगा कि जायसी इस विषय में बड़े सतर्क हैं चरित्र के विषय में पाठक की धारणा को वह उपमानों के माध्यम से ही बनाते हैं। पद्मावती के लिए प्रयुक्त ज्योति एवं प्रकाशपूर्ण उपमान—सूर्य चन्द्र आदि उसकी लोकोत्तरता की ओर संकेत करते हैं नागमती के पतिव्रत का प्रभावक होने पर भी कवि ने एसी श्रद्धा और ऐसी भावना उसके प्रति प्रकट नहीं की है वरन् उसको 'नाग' कहा है जो उसकी कथा की रूपका त्मकता (एलेगरी) को पुष्ट करता है। स्पष्ट है कि जायसी उपमानों की संदर्भ—अनुकूलता के प्रति बड़े जागरूक हैं।

परन्तु फिर भी किन्हीं स्थलों पर संदर्भ की उपेक्षा हो ही गई है। जैसे इस रूपक में

बिरह मंजूर नाग वह नारी
तू मंजार करु बेगि बीहारी।

(३६६, ६)

अर्थात् नागमती नागिन है और बिरह मोर है जो उसे निगल जाने के लिए प्रयत्नशील है हे राजा तू बिलाव बन कर आ और इस मोर रूपी बिरह को नष्ट करके नागमती की रक्षा कर। यहां रूपक की पूर्ति के लिये कवि राजा को बिलाव कह गया है जो उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। न गुण न धर्म न प्रकृति न रूप अथवा अन्य किसी प्रकार का साम्य इसमें है। राजा के चरित्र पर दृष्टिपात करें तो यह उपमा एकदम त्रुटिपूर्ण प्रतीत होती है। यहां कवि केवल रूपक की पूर्णता के प्रति जाग रूक है संदर्भ के प्रति नहीं।

संदर्भ की उपेक्षा उन स्थलों पर भी हुई है जहां कवि उपमान रूप में किसी लोककथा को रखता है पर उसका रूप सही न होने के कारण वह संदर्भ की विरोधी सी बन जाती है। ऐसा अधिकतर रामकथा के साथ हुआ है। जायसी मुसलमान थे और पंडित भी न थे सम्भवतः रामकथा उनके पास उस मौलिक रूप में न पहुंची होगी जैसी हिन्दुओं एवं विद्वान पंडितों के पास रही होगी।१ उनके पास वह लोक कथाओं की भांति भ्रष्ट रूप में ही पहुची होगी और उन्होंने उस कथा का उसी रूप में प्रयोग कर दिया परिणामतः हम हिन्दुओं के लिए वह भ्रांतिपूर्ण प्रतीत होती है और अगर वह स्पष्ट भी हो तो उसका पात्रों और कथा के साथ विरोध प्रतीत होता है। ऐसा एक बड़ा स्पष्ट उदाहरण पद्मावत में है।

तब लगि भयउँ न लै सका रावन सिय एक साथ।
अब कौन भरोसे किछु कहौं, जीउ पराये हाथ।
(२६२ ८९)

पद्मावती कहती है, 'रावण और सीता जब एक साथ थे तब स्वतन्त्र होने पर भी वह उसका भोग न कर सका अब मैं विवश हूँ और राजपुर में हूँ तब किस विश्वास के सहारे कुछ कहूँ। यहाँ कवि कथा का अन्तर्भाव विस्मृत कर बैठा है केवल परिस्थिति तक ही उसकी दृष्टि गई है। रावण और सीता में वैसा प्रेम न था जैसा राजा और पद्मावती में है न वह परस्पर अनुरक्त थे। भोग न होने का कारण उनका मानसिक विरोध था पर रत्नसेन और पद्मावती में ऐसा नहीं है। वह अनुरक्त हैं, और भोग के अभिलाषी हैं. रावण और सीता के भोग न होने के कारण उनका मानसिक विरोध था और उनके भोग न होने का कारण बाह्य (परिस्थितियों) का विरोध है। यहाँ कथा का मर्म भिन्न है, कवि यहाँ संदर्भ की उपेक्षा कर गया है इस कारण यह बिम्ब सफल नहीं कहा जा सकता। संदर्भ का विरोध बिम्ब का एक बड़ा दोष है और उसकी असफलता का प्रधान कारण है।

(४) अति नवीनता—अति नवीनता अर्थात् सर्वथा अपरिचित उपमानों का प्रयोग भी अधिकतर असफलता में वृद्धि करता है। कवि को सदैव उन्हीं वस्तुओं एवं घटनाओं को उपमान रूप में लाना चाहिए जिनके साथ उसके पाठकों का रागात्मक सम्बन्ध हो सकता है अन्यथा परिचय के अभाव में अनेक सुन्दर उपमान भी असफल हो जाते हैं। बहुत से नये कवियों की बहुत सी अप्रस्तुत योजना इसका प्रमाण दे सकती है। जायसी में नवीनता के प्रति ऐसा मोह कहीं भी नहीं है। उन्होंने अनेक नवीन बिम्ब दिये हैं पर वह सभी हमारे परिचित हैं और सहज ही हमारे हृदय में सामंजस्य स्थापित कर लेते हैं अतः अति नवीनता का दोष जायसी की बिम्बगत असफलता के लिये अंशों में भी उत्तरदायी नहीं है।

(५) बौद्धिकता—बौद्धिकता के कारण भी भाव से दूर हो जाने के कारण बिम्ब अधिकतर असफल हो जाते हैं। जायसी के बिम्ब भी कहीं कहीं भावोद्बोधक न होकर दिमागी कसरत से हो गये हैं। अधिकतर ज्योतिष आदि के बिम्बों में जहाँ भावगत साम्य बिल्कुल नहीं है पर कवि आग्रहपूर्वक उनको प्रस्तुत करता है वहाँ बिम्ब भाव ग्राह्य न होकर बुद्धिग्राह्य हो गया है और इस प्रकार भाव का कोई उपकार न कर सकने के कारण अनावश्यक प्रसंग प्रतीत होता है, यही उसकी असफलता है। रसायनशास्त्र के बिम्बों में यद्यपि साधारण साम्य तो सरल है पर विशिष्टता के कारण वह रसायन शास्त्र से अनभिज्ञ व्यक्ति के लिये कठिन प्रतीत होता है और वह बुद्धि से श्रमपूर्वक ही उसका साक्षात्कार कर सकता है। पारसों के स्पर्शों से विशिष्ट सम्बंध के रूपक में कवि ने शरीर बुद्धिजन्य साम्य रखा है जो बात यह है पाठक के सम्मुख वस्तु का कोई रूप कोई स्पष्ट चित्र नहीं आ सकता। यथा

पैसे राजकुँवर नहीं मानी खेलु सारि पासों तो जानी।
कच्चे बारहु बार फिरासी पक्के तो फिर थिर न रहासी।
रहै न आठ अठारहु—भाखा सोरहु सतरहु रहै सो राखा।
सतए ढरै सो खेलनि हारा ढार इग्यारहु जासि न मारा।
तू लीन्हे मन आछसि दुआ औ जुग सारि चहा रिपुनि छुआ।
हौं नव नेहु रचौं तोहि पाँहा दसौ दाऊ तोरे हिय माँहा।
पुनि चौपर खेलों के हिया जो तिरहेल रहै सो तीया।
(३१२, १-७)

यहाँ रत्नसेन पद्मावती के मिलन प्रसंग का कोई सरस चित्र सामने नहीं आ पाता कवि ने श्लेष के बल पर एक शब्द के दो-दो तीन-तीन अर्थ निकालने की कोशिश की है। पर यह प्रयत्न इतना कठिन भाव से दूर हो गया है कि कल्पना या प्रसंग का कोई स्पष्ट चित्र नहीं दे पाता। इस रूप में बलात आरोप किया गया यह चौपर के खेल का रूपक नितान्त असफल है काव्य का कोई उपकार इससे नहीं हुआ है वरन् रसता का खंडन ही हुआ है।

इसी प्रकार कवि ने युद्ध स्थल पर चकमक और लोहे का भी एक रूपक दिया है जो रसायन-शास्त्र से गृहीत है। यहाँ भी पाठक को बुद्धिपूर्वक रूप चित्र सामने लाना पड़ता है

चकमक अनी देखि कै आइ दिस्टि तसि लागि।
जुध होइ औ लोहै बई माँझ उठि आगि।
(४२ ८-९)

अर्थात् राजा की सेना चकमक के समान थी उसके देखते ही लोहे के समान शाह की सेना की दृष्टि उसमे मिली उससे लोहे और चकमक के टकराने के समान युद्धाग्नि प्रज्वलित हुई जिसमे सेना के बीच युद्ध की आग वर्ष के समान बल उठी थी। यहाँ राजा और शाह की सेना का आमने-सामने खड़े हुए रूप-चित्र है जिसके टकराने से युद्धाग्नि प्रज्वलित होती है। यहाँ सेना का कोई स्पष्ट रूप सामने तब तक नहीं आता तब तक रसायन-शास्त्र का यह विधि-विधान पाठक को ज्ञात न हो। इसके साथ ही यह उपमा भाव उत्तेजना में उतनी सहायक नहीं होती। यहाँ कवि ने बुद्धि बल से इस रूप को दिया है सहृदय कवि का रूप यहाँ दब-सा गया है। यद्यपि बौद्धिकता का आग्रह जायसी में अधिक नहीं है फिर भी कुछ उपमान उनके बुद्धिबल को अवश्य स्पष्ट करते हैं जो काव्य का कोई विशेष उपकार नहीं कर पाते।

(६) अनौचित्य—अनौचित्य काव्य की सबसे बड़ी असफलता है बिम्ब में भी अनौचित्य असफलता का सर्वप्रधान कारण है। उपरोक्त सभी असफलता के कारण किसी न किसी रूप में अनौचित्य के अन्तर्गत ही आते हैं। भाव अपचार भी अनौचित्य का ही एक रूप है और मर्मगत उपेक्षा बौद्धिकता आदि भी किसी न किसी

रूप में अनौचित्य के अन्तगत आ जाते हैं। अनौचित्य के और भी रूप जायसी में यत्र तत्र मिल जाते हैं। उनमें रूपगत अनौचित्य कई बार आ गया है जिसके लिए जायसी ही नहीं वरन फारसी एवं लोककथाओं की परम्परा भी कारण है। रूपगत अनौचित्य का एक स्पष्ट उदाहरण पद्मावती की क्षीण कटि के भृंगि और बसा के उपमान में है जो मुख्यतः सभी प्रेमाख्यानों एवं लोककथाओं में प्रचलित रही है

लंक पुहुमि अस आहि न काहू केहरि कहौं न ओहि सर ताहू।
बसा लंक बरनै जग झीनी तेहि त अधिक लंक वह खीनी।
(११६ १२)

और

भिंगि लंक जनु मांस न लागा दुइ खंड नलनि मांझ जस तागा।
(४८४ १)

यहाँ भृंगि और बसा की कटि की क्षीणता पद्मावती की कटि का कोई उपयुक्त और सुन्दर चित्र नहीं देती वरन अत्योक्ति के कारण उसे उपहासास्पद ही बना देती है। इसी प्रकार कपोलों के लिए 'खिरौरा' आदि भी रूप को सुन्दर न बनाकर असुन्दर और अनुपयुक्त ही बनाते हैं। इसी प्रकार ग्रीवा का वर्णन भी उपयुक्त नहीं बन पड़ा है

बरनौं गीवँ कूंज के रीसी कंज नार जनु लागेउ सीसी।
मिऊ मंजूर तमचूर जो हारा वहै पुकारहि सांझ सकारा।
पुनि तिहि ठाऊ परी तिर रेखा घूंटत पीक लीक सब देखा।
(१११ १६)

यहाँ ग्रीवा की पारदर्शिता सुन्दर न बनकर हास्य का उपकरण बन गई है पर इसके लिये भी फारसी साहित्य और प्रेमाख्यानक काव्य उत्तरदायी हैं। मधुमालती आदि काव्यों में भी इस प्रकार की कल्पना बराबर आई है।[1] रूपगत विलगाव का प्रकटीकरण जायसी में है वह सभी मुख्यतः फारसी साहित्य की देन है। रक्त के अश्रु रक्त—हमोरी आदि भी फारसी साहित्य के कारण ही जायसी के काव्य में आई है।

लोक कथा के समान प्रयोग आदि भी अनौचित्य के अन्तगत ही आते हैं। रूप के प्रति जायसी जहाँ भी अतिशयोक्ति पूर्ण कथन करते हैं वहीं वह रूप की अनुभूति जगाने में सहायक नहीं होते जैसे राजमहल के कनकवृक्ष के वर्णन में।

कंचन बिरछि एक तेहि पासा जस कलपतरु इन्द्र कबिलासा।
मूल पतार सरग ओहि साखा अमर बेल को पाव को चाखा।
चांद पात और फूल तराईं होई उजियार नगर जहें ताईं।
(८१ ४-६)

[1] मधुमालती मंझन

यद्यपि चित्र में मधुरता एवं सौन्दर्य है पर ऐसी विशालता की कल्पना सहज ग्राह्य नहीं है। इसी कारण यह बिम्ब जायसी के श्रेष्ठ बिम्बों में नहीं माना जा सकता।

समष्टि से जायसी के असफल बिम्बों में से अधिकांश फारसी साहित्य एवं लोक कथाओं की परम्परा से गृहीत उपमान हैं उनके लिये जायसी उतने उत्तरदायी नहीं हैं परम्परा द्वारा वह उपमान स्वीकृत हो चुके थे अतः उनका ग्रहण भी स्वाभाविक ही था। इस रूप में जायसी की बिम्बगत असफलता आंशिक ही है और उसका समस्त दोष भी उनको नहीं दिया जा सकता।

१—परम्परागत बिंब

प्रत्येक कवि चाहे वह किसी काल का हो या किसी देश का हो परम्पराओं से किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित होता है। नवीन वस्तु विधान और नवीन कल्पना विधान में भी परम्परा से प्राप्त अनेक धारणाएं, अनेक रूप निहित होते हैं। कोई विचार या भाव निरन्तर प्रयुक्त होकर पर्याप्त समय के बाद बल प्राप्त करता है शतियों तक वह विचार मनीषियों के मस्तिष्क में बसा रहता है और फिर समाज उसे परम्परा के रूप में पाता है। पर यहां ध्यान देने योग्य बात है कि विचार या भाव केवल अमूर्त हो कर जीवित नहीं रहते, समाज उन्हें सदैव मूर्त रूप में ग्रहण करता है। इस कारण कोई परम्परागत विचार या भाव केवल अमूर्त चिन्तन नहीं होते वरन उनके साथ साथ परम्परागत बिम्ब भी रहते हैं। समाज बिम्बों द्वारा ही परम्पराओं के विचारों और धारणाओं को जान पाता है। जैसे सृष्टि में किसी अनश्वर सत्ता परम ब्रह्म की धारणा हमें परम्परा से प्राप्त है वह मान्यता वैदिक काल से चली आई है पर साथ ही साथ इस अमूर्त ब्रह्म के रूप (क्योंकि रूप यदि निराकार है तो अन्यथा ब्रह्मा-विष्णु-महेश आदि) भी हम परम्परा से प्राप्त हुए हैं। इस प्रकार प्रकट होता है कि सुदृढ़ और गहन विचारों के लिए सदैव सुदृढ़ उपमान गृहीत होते हैं जो परम्पराओं के साथ साथ चल आते हैं। और सदैव उस विचार या भाव को प्रकट करते रहते हैं। काव्य में भी ऐसे परम्परागत उपमान बहुलतया से गृहीत होते हैं। कवि प्राचीन मान्यताओं और विचारों को बहुधा उन्हीं बिम्बों के माध्यम से प्रकट करता है जिस माध्यम को वह विचार रूप में पहले स्वीकार कर चुके होते हैं। ऐसे परम्परागत उपमान प्रायः उन्हीं अर्थों में रूढ़ हो जाते हैं। परन्तु उनमें प्रतीक व्यंजनात्मकता विचार को समग्रता से प्रस्तुत करने की सामर्थ्य भी होती है। जिसके कारण वह काव्य में विशेष महत्व के अधिकारी होते हैं और प्रायः परम्परागत होने पर भी जीवन्त बने रहते हैं।

जायसी सूफी कवि था और बहुश्रुत था अतः उसके काव्य में अनेक परम्पराओं के दर्शन हो जाते हैं उसकी उपमान योजना भी परम्परागत उपमानों से बहुत अंशों में पूरित है। जायसी में सिद्ध और नाथों के साम्प्रदायिक उपमान सूफी कवियों

के परम्परागत उपमान साहित्यिक व लोक जीवन की परम्पराओं के उपमान एवं फारसी साहित्य अथवा उर्दू मसनवियों से गृहीत उपमान बराबर मिल जाते हैं।

किसी भी कवि के परम्परागत उपमानों की खोज करना एक अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि कवि भिन्न भिन्न स्रोतों से प्रभावित होता है जिन सबका स्पष्ट परिचय किसी भी पाठक को नहीं हो सकता। अनेक उपमानों की परम्परा से अवगत न होने के कारण पाठक नवीन समझ लेता है जबकि उसे कवि ने किसी विशिष्ट परम्परा से प्रभावित होकर प्रयुक्त किया होता है। कवि पर पड़े समस्त प्रभावों और परम्पराओं को स्पष्ट करना सर्वथा असम्भव है फिर भी अनेक परम्पराओं को लक्षित किया जा सकता है जिनसे कवि विशेष रूप से प्रभावित हुआ होता है। परम्परागत बिम्बों में हम केवल मिश्रित बिम्ब (कम्प्लेक्स इमेज) को ही ले सकते हैं साधारण बिम्ब (सिम्पुल इमेज) को नहीं क्योंकि साधारण प्रतिमाएं अथवा बिम्ब कवि के कल्पना—प्रवाह में स्वतः ही प्रवाहित होते रहते हैं उन पर किसी का विशेष अधिकार नहीं कहा जा सकता। परम्परागत बिम्ब वही कहे जा सकते हैं जो किसी विचारधारा से पुष्ट रूपक हैं या जो सर्वत्र उसी विशेष संदर्भ में आते हैं। कोरी २ उपमाएं सादृश्य अथवा तुलना परम्परागत नहीं कही जा सकती।

जायसी की परम्परागत उपमान योजना का विश्लेषण एक अत्यन्त कठिन काम है क्योंकि उन पर अनेक प्रभाव पड़े व बहुश्रुत होने के कारण उनके अनेक स्रोतों का ज्ञान अभी हिन्दी साहित्य का नहीं है। मुसलमान होने के कारण मसनवी शैली में लिखने के कारण व सूफी मान्यताओं से प्रभावित होने के कारण उन पर फारसी काव्य का भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा है जिसका पर्याप्त परिचय हिन्दी साहित्य का नहीं है न ही उस साहित्य से संबंधित कोई सामग्री ही उपलब्ध है। इस कारण जायसी पर पड़े सूफी काव्यों के प्रभाव को स्पष्ट करना एक कठिन कार्य हो गया है। इसके साथ ही सिद्ध व नाथ एवं भारतीय प्रेमाख्यानकों से गृहीत बिम्ब भी जायसी में पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं परन्तु अभी तक सिद्ध और नाथ साहित्य व प्रेमाख्यानक साहित्य के समय के विषय में भी दृढ़ मत स्थापित नहीं हुये हैं। गोरखनाथ जायसी से कितने पूर्ववर्ती थे? और क्या समस्त गोरखबानी गोरखनाथ द्वारा ही निर्मित है? इन मूलभूत प्रश्नों का भी कोई निर्णय नहीं हो पाया है। जायसी से पूर्ववर्ती बहुत सा साहित्य आज भी अन्धकार के गर्त में पड़ा है। जायसी द्वारा उल्लिखित बहुत सी पुस्तकें भी अभी तक अनुपलब्ध हैं। ऐसी परिस्थितियों में जायसी पर पड़े परम्परागत बिम्बों के प्रभाव का स्पष्ट करना एक दुष्कर कार्य बन गया है। आज जो भी प्रमाण व पुस्तकें उपलब्ध हैं उन्हीं के आधार पर यहां जायसी द्वारा गृहीत परम्परागत बिम्बों का विवेचन किया जायेगा।

१—सिद्ध और नाथ सम्प्रदायों से

सिद्ध और नाथों का साहित्य जायसी का पूर्ववर्ती और समकालिक साहित्य रहा है।

सिद्धों और नाथों ने अपनी साधना पद्धति काव्यात्मकता आदि से समाज को बहुत अधिक प्रभावित कर रखा था। जायसी पर भी सिद्ध और नाथों की विचारधारा का प्रभाव पड़ा। परन्तु कितना सिद्ध साहित्य अथवा नाथ साहित्य जायसी से पहले लिखा जा चुका था यह प्रमाण पूर्वक नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त उनका साहित्य उनके समय में ही लिपिबद्ध हो चुका था या उसे उसके पश्चात उनके शिष्यों ने लिपिबद्ध किया यह भी स्पष्ट नहीं कहा जा सकता इस कारण उनके साहित्य में भाषा और भावगत अनेक अन्तर आ जाने की बहुत अधिक सम्भावना है। यहां उनके प्राप्य और बहुत बादों में संचित साहित्य के आधार पर ही जायसी के कुछ बिम्बों की परम्परा को खोज करने का प्रयत्न किया जायगा। जायसी पर सिद्ध और नाथ परम्परा का प्रभाव कुछ रूपकों से स्पष्ट लक्षित हो जाता है। परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं है कुछ ही रूपकों को उसने ज्यों का त्यों ग्रहण किया था। इनमें प्रथम है चांद और सूर्य का रूपक जिसे उसने नाथ सिद्ध साहित्य से ग्रहण करके अपनी कल्पना के अनुसार विकसित किया है

चांद और सूर्य का रूपक सिद्ध और नाथ साहित्य में अनेक स्थलों पर आया है। चर्यापदों में चन्द्र और सूर्य प्रज्ञा तथा उपाय के प्रतीक माने गये हैं और उनका संबंध ललना तथा रसना से है परन्तु उनका आग्रह वहां उनका मेल कराने से न होकर उनकी द्वयता का परित्याग कराकर एकत्व अर्थात सहज अद्वैतावस्था की ओर है।[1] कुक्करीपा सरहपा गोरखनाथ आदि ने इसका पर्याप्त प्रयोग किया है। कुक्करीपा कन्हपा और सरहपा की उक्तियां इस प्रकार है

कुक्करीपा : चांद सुज्ज वेणि पखा फाल।[2]

कन्हपा रवि शशि कुण्डल किउ आभरणे।[3]

सरहपा : नाद न बिंदु न रवि शशि मंडल।[4]

गोरखनाथ ने इसी धारणा को अधिक समग्रता के साथ एक रूपक में प्रस्तुत किया है

चंद सूर की मुद्रा कीन्हीं धरणि सैरम जल मेला।
नाथी ध्यांन सीधीं आकासी अलख गुरु का चेला।[5]

प्रेम काव्यों में कुछ स्थलों में सौन्दर्य के उपमान और कुछ स्थलों में इस धारणा से प्रभावित होने के कारण चन्द्र सूर्य के रूपकों का पर्याप्त व्यवहार हुआ है। जायसी ने अपनी उन्नत कल्पना दृष्टि से इसे अत्यन्त भावगत समृद्धि के साथ प्रस्तुत किया है।

---

१ सिद्ध-साहित्य : डा० धर्मवीर भारती पृ० ४२६
२ चर्यापद : पृ० ११
३ ,, : पृ० ११०
४ ,, : पृ० ११०
५ गोरखबानी पृ० ११०

इसका विस्तृत विवेचन अगले अध्याय में प्रस्तुत किया जायेगा । यहाँ हम मुख्यत अपने को रूपक के उन्हीं अंशों से सम्बन्धित रखेंगे जो सिद्ध नाथ विचारधारा का भी प्रस्तुत करते हैं ।

सिद्ध नाथ साहित्य म इस रूपक से प्रज्ञा और उपाय हृदय अथवा मस्तिष्क का अर्थ लिया जाता है और उनके द्वारा योग साधना के संकेत दिये जाते हैं । जायसी ने उसे कहीं कहीं इसी रूप में रखा है । यथा पद्मावती क स्वप्न विचार क समय

रैन पूरि जस बीजल कासी सपन एक निसि देखेउँ आसी ।
जनि ससि उवो पुरुब दिसि कीन्हा और रबि उवी पच्छिम दिसि लीन्हा ।
पुनि चलि सुरुज चांद पहँ आवा चांद सुरुज दुइ होइ मेरावा ।
(१९७ १ ५)

इसी रूपक को पद्मावती—रत्नसेन के विवाह क समय और अधिक प्रसार प्राप्त हुआ है । जायसी ने विवाह प्रसंग में सर्वत्र इन्हीं प्रतीकों का प्रयोग किया है जैसे

चांद सुरुज दुवौ निरमल दुवौ संजोग अनूप ।
सुरुज चांद सों भूला चांद सुरुज के रूप ।
(२८५ ८ ६)

पारस रूप चांद देखराई देखत सुरुज गयउ मुरझाई ।
सोरह करा दिस्टि ससि कीन्ही, सहसौ करा सुरुज कहँ लीन्हीं ।
भा रबि अस्त तराइन हँसे, सुरुज न रहा चांद परगसे ।
धाइ सूर ससिहर पर आवा चांद सुरुज दुइ होइ मेरावा ।
(२८ ७)

इन सभी स्थलों पर कवि ने सिद्धनाथ सम्प्रदायों की युगनद्ध या समरस भावना को उन्हीं के प्रतीकों द्वारा व्यंजित किया है । कवि की दृष्टि यहाँ सौन्दर्यपरक नहीं है वह केवल सिद्ध नाथों की युगनद्ध या भावना की समरस इन परम्परागत बिम्बों द्वारा व्यंजित करना चाहता है । यद्यपि जायसी न चन्द्र सूर्य के रूपक का सर्वत्र परम्परागत प्रयोग नहीं किया है परन्तु उपरोक्त कुछ स्थलों पर यह स्पष्टत सिद्धनाथ साहित्य से गृहीत प्रतीत होते हैं उनका संयम उनकी भाव व्यंजना सिद्ध नाथ साहित्य क अनुरूप ही है ।

सिद्धनाथ साहित्य से गृहीत एक अन्य रूपक है शरीर का । शरीर के अंगों का रूपक सिद्धनाथ साहित्य में बहु प्रयुक्त है । वहाँ प्रत्येक शरीरांग के प्रतीकात्मक अर्थ लिए गये हैं । जायसी ने उन्हें अर्थों का त्यों ग्रहण किया है । सिद्धनाथ साहित्य में काया को नगर, मन को राजा' आत्मा को कोतवाल इन्द्रियों को नव रंध्र कहा गया है । गोरखनाथ ने कहा

काया हमार सहर बोलिए, मन बोलिए हुम बारं।
चेतनि पहर कोठवाल बोलिए, तो चोर न लाके द्वार।
बीनोंश साठि चौरा मढ़ रचिले सोहम पाचीले पाई।
नव दरवाजा प्रगट दीस दसवां लख्या न जाई।[1]

उन्होंने नव रन्ध्रों में नवोद्वार, त्रिकुटी में जगन्नाथ दसमद्वार (ब्रह्म रन्ध्र) में केदारनाथ आदि तीर्थों का स्थान माना है। गोरखनाथ ने कहा है

नमो द्वारे नव नाथ त्रिवेणी जगन्नाथ दसवें द्वार केदार
जोग युगति सार लो भी सिरिये पार
कथते गोरखनाथ विचार।[2]

जायसी ने भी शरीर के रूपक का गढ़ पर आरोपित किया है और इसी प्रकार के साधनात्मक संकेत दिये हैं

गढ़ तस बांक जस तोरि काया परखि देख तै ओहि कै छाया।
पाइय नाहि जूझ हठि कीन्हें जेइं पावा तेइं आपुहि चीन्हें।
नौ पौरि तेहि गढ़ मझियारा औ तेहि फिरहि पांच कोटवारा।
दसव दुआर गुपुत एक ताकी अगम चढ़ाव बाट सुठि बांकी।
(२१५ १४)

यहां गढ़ को शरीर, नव पौरी को नव चक्र पांच कोतवालों को पंच विषयों तथा दसवां द्वार को कुण्डलनी का प्रतीक बनाया गया है जो पूर्व ही इन विषयों के लिए स्वीकृत हो चुके थे। यह रूपक जायसी ने सिद्ध-नाथ साहित्य से ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है अतः इसे निश्चय ही परंपरागत माना जा सकता है। अन्य स्थलों पर भी जायसी ने सिद्ध और नाथ सम्प्रदाय से गृहीत मान्यताओं के संकेत दिये हैं परन्तु वहां स्वीकृत बिंब विधान को नहीं प्रयुक्त किया है, वहां अपनी कल्पना दृष्टि से कवि ने नवीनता बनाये रखी है परंतु इन कुछ स्थलों पर विचारधाराओं के साथ साथ कवि ने वही प्रतीक विधान स्वीकृत कर लिया है। इस कारण चन्द्र-सूर्य और शरीर के रूपकों को सिद्धनाथ साहित्य की परंपरा से गृहीत माना जा सकता है।

२—भारतीय सूफी प्रेमाख्यानकाव्य

मध्यकाल में सूफी प्रेमाख्यानकों का प्रणयन पर्याप्त मात्रा में हुआ है। परंतु प्रेमाख्यानक परंपरा में सर्वप्रथम जायसी का पद्मावत ही प्रामाणिक ग्रन्थ कहा जा सकता है कुतबन मंझन उसमान का जायसी ने उल्लेख किया है परन्तु यह उससे पूर्ववर्ती ही थे यह संदिग्ध है। मंझन की मधुमालती उसमान की चित्रावली कुतबन की मृगावती आदि प्राप्य हैं परंतु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है। प्रेमाख्यानक परंपरा में सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थ जायसी का पद्मावत ही प्राप्त होता है। यों किसी निर्

[1] गोरखबानी : १ १९
[2] गोरखबानी : १ १५-६५

पर चलती हुई काव्य परंपरा का एक प्रौढ़ ग्रन्थ लगता है। पद्मावत को देखकर प्रतीत होता है कि सूफी विचारों से प्रभावित प्रेमाख्यानकों की परंपरा पुरानी थी प्राय उसके ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं सम्भवत: जायसी के पद्मावत से पूर्व कई ग्रन्थ लिखे जा चुके थे। यह काव्य परम्परा पर्याप्त प्रौढ़ रही होगी। उसमें केवल रूढ़ विचार ही नहीं होंगे वरन उनके साथ उपमान भी निर्मित हो चुके होंगे भाव के साथ-साथ उसकी अभिव्यक्ति भी रूप ले चुकी होगी अर्थात् वह साहित्य के स्तर तक पहुँची हुई काव्य परंपरा थी क्योंकि परवर्ती साहित्य में भाव और विचारों के साथ-साथ उनकी अभिव्यक्ति भी ज्यों की त्यों ग्रहण कर ली गई है। बहुत से बिंब जायसी कुतबन मंझन और परवर्ती सूफी कवियों में ज्यों के त्यों मिल जाते हैं जो किसी प्रौढ़ चलती आती हुई काव्य परंपरा का आभास देते हैं। उनकी बिंब योजना विचारों और भावों से इतनी परिपक्व है कि वह अनायास उद्भूत हो जाने वाली कल्पना नहीं लगती वरन किसी प्रौढ़ काव्य परंपरा का संकेत देती है। सभी सूफी प्रेमाख्यानों में यह कल्पना प्रायः उसी रूप में प्राप्त होती है जिसके कारण उसे परंपरागत कहा जा सकता है। यहाँ हम जायसी के पूर्ववर्ती और सामयिक सूफी काव्यों के आधार पर उनके परंपरागत बिंबों का विवेचन करेंगे जो उसने सूफी काव्य परंपरा से ग्रहण किये हैं।

सूफी विचारों में प्रेम का महत्त्वपूर्ण स्थान है। प्रायः सभी सूफी कवियों ने प्रेम की जीवन में अनिवार्यता को स्वीकार किया है। वह उसे जीवन का प्रकाश दीपक की उज्ज्वलता स्वीकार करते हैं जीवन में दुःख विघ्नों और अज्ञान के अन्धकार को दूर करने के लिए वह दीपक है। दीपक प्रेम के लिए सूफी मान्यताओं द्वारा स्वीकृत बिम्ब है। प्राय सभी कवियों ने इसका उल्लेख किया है। मधुमालती में मंझन ने प्रेम के लिए दीपक का बिम्ब कई बार दिया है

प्रेम दिया जाके घट बारा, तेहि सम भागि गंउ अंधियारा।[1]
यह जगत के प्रेम दीप मंह परी दीठि हुति आई।
जारे पीव मधु मलताली पंखो निकसि नहि जाई।[2]

चित्रावली में भी उसमान प्रेम को दीपक कहता है प्रेम रूपी दीपक की ज्योति से समस्त सृष्टि को संवारा गया है। प्रेम ही दीपक है और प्रेम ही पतंग है जो उसमें अपने प्राणों की आहुति देता है

पहिले प्रभु प्रेम विधि किये, उपजी जोति प्रेम की दिये।
वही जोति पुनि किरन पसारी किरन किरन सब सिरिष्टि संवारी।[3]
दीपक जोति प्रेम उजियारा, प्रेम पतंग आनि तेहि जारा।

१ मधुमालती : संपा० डॉ० माताप्रसाद गुप्त पृ० ४६
२ वही, पृ० ३११
३ चित्रावली : उसमान सं० जगमोहन वर्मा पृ० २
४ वही, पृ० ८

जायसी ने भी प्रेम विषयक यह धारणा इसी बिम्ब द्वारा व्यंजित की है। प्रथम खण्ड में ही यह परम्परागत बिम्ब प्रयुक्त हुआ है

कैसा हिया पेम कर दिया उठी जोति भा निरमर हिया।
मारग हुत अंधियार असूझा भा अंजोर सब जाना बूझा।

(१८ २१)

प्रेम के लिए दीपक का यह बिम्ब परवर्ती साहित्य में भी आया है। जायसी ने इस परम्परागत बिम्ब का बड़ा सफल प्रयोग किया है। यह स्पष्ट है।

जायसी ने प्रेम के लिये समुद्र का रूपक भी लिया है जो परम्परागत है। सूफी साहित्य में प्रेम सदैव समुद्र के प्रतीक द्वारा व्यञ्जित हुआ है।[1] मधुमालतीकार मञ्झन ने प्रेम को समुद्र कहा है

पाइ प्रेम समुद्र महं पैठु बौरि धसि लेई।
जै मानिक लै निकरैं के जोहि पंथ जेह लेई।[2]

जायसी ने भी प्रेम को समुद्र कहा है

परा सो पेम समुद्र अपारा लहरहि लहर होइ बिसमारा।

प्रेम के एक पक्ष विरह के लिए भी समुद्र का उपमान सर्व स्वीकृत है। विरह को प्रायः सूफी कवियों ने समुद्र कहा है जिसमें अवगाहन करने के पश्चात् निस्तार सम्भव नहीं है चित्रावलीकार उसमान ने कहा

विरह समुद्र जासु अति बाढ़ा जो पड़ि मुख जल बूड़त काढ़ा।[3]
विरह समुद्र अति अगम अपारा वार अपार बूड़ मंझधारा।
यहु विधि हेरत हिलु कोऊ नाहीं बूड़त काहु उबारें बांही।

मञ्झन ने भी विरह को समुद्र कहा है पर वहाँ उसकी दृष्टि इससे भिन्न समुद्र से मोती ढूंढने के मरजीवा के व्यापार पर केन्द्रित है

विरह समुद्र अथाह अति पाय जाल सम कोइ।
मानिक सो लै उभरै जो मरजीवा होइ।[4]

परन्तु जायसी ने विरह वर्णन में पूर्णतः चित्रावलीकार की भांति समुद्र के उपमान का प्रयोग किया है। प्रेम समुद्र में डूब कर उनकी नायिका निस्तार की कामना करती है

बूड़त हौं दुख उदधि गंभीरा तुम्ह बिनु कंत लाव को तीरा।
करवत सहौं होत दोइ आधा सहौं न जाइ बिरह कै दापा। (१८३४)

---

१ जायसी के परवर्ती सूफी कवि—डा० [illegible] पृ० [illegible]
२ मधुमालती मंझन छन्द [illegible]
३ चित्रावली : उसमान पृ० [illegible]
४ वही पृ० [illegible]
५ मधुमालती : मंझन, छन्द [illegible]

> विरहा सुमेर समुद असंभारा भंवर मेलि जिउ लहरहिं मारा।
>
> (१७२ २-४)

यह रूपक परम्परा द्वारा ही कवि ने प्राप्त किया है। यद्यपि प्रयोग में आंशिक अन्तर आ गया है परन्तु भाव और उसका रूप समान होने के कारण यह परम्परागत कहा जा सकता है।

हृदय के लिये सरोवर का रूपक भी परम्परागत है सूफी कवियों ने बराबर इस रूपक का प्रयुक्त किया है। चित्रावली में उसमान ने कहा है विरह व्यथित हृदय सरोवर है जिसमें दुख-रस भरा रहता है

> निसि को धावै गा पीतम सूरा हिय सर रहा दुख जलपूरा।[1]

मधुमालती कार ने विरह व्यथित हृदय का विदीर्ण सरोवर कहा है

> जेहि संताप दुख जल मानि में बना जीवन रहानि।
> जिमि सरवर बिनु काईं दरस फाटि मरि जानि।

जायसी ने इसी रूपक को एकदम इसी रूप में प्रस्तुत किया है परन्तु उसकी दृष्टि इससे अधिक समग्र है

> रतन करमुसे मन भये जीव हरा जेहि जाद।
> सरवर नीर बिछोह जेऊं तरकि तरकि हिय फाट।
>
> (४२४ ८-९)
>
> सरवर हिया घटत नित जाई टूकि होइ होइ बिहराई।
> बिहुरत हिया करहु पिउ टेका डीठि दंवगरा मेरवहु एका।
>
> (१२४ ६-७)

विदीर्ण सरोवर के साथ साथ वह यहां 'दंवगरे' का उल्लेख भी करता है जिससे रूपक की समग्रता के कारण व्यंजकता में वृद्धि हो जाती है।

जायसी द्वारा प्रयुक्त पद्मावती का उपमान शशि भी परम्परागत है। यद्यपि उसका रूप सर्वत्र स्पष्ट नहीं है परन्तु उसका मूल अवश्य परम्परागत है। सूफी कवियों ने अपनी नायिका के लिए सर्वत्र शशि का बिम्ब दिया है। चन्द्र उपमान यद्यपि साहित्य में सौन्दर्य के लिये स्वीकृत है परन्तु वहां उसका प्रयोग केवल मुख सौन्दर्य के लिये हुआ है सम्पूर्ण नायिका के लिए नहीं साथ ही रहस्यात्मकता का जो पुट सूफी कवियों के चन्द्र के रूपक में मिलता है वह भी इतर साहित्य में नहीं है। सभी सूफी कवियों ने अपनी नायिका को परमात्मा का रूप दिया है जिसके कारण शशि-रूप में संसार को प्रकाशित करने का धर्म उस पर आरोपित है। चित्रावली मधुमालती सभी में इस रूपक को प्रयुक्त किया गया है। चित्रावली में अनेक स्थलों पर यह बिम्ब प्रयुक्त हुआ है

१ चित्रा भी उसमान ९ ७३
२ मधुमालती मनम मंडल १ ९

राजा गेह चित्रावलि बारी सहस कला बिधि ससि औतारी।
दूसर कोउ न पाव तेहि जोरा एक दीप जहं चांद अंजोरा।[1]
चित्रावलि झरोखे आई, सरग चांद जनु दीन्ह देखाई।
भयो अंजोर सकल संसारा भा अलोप जिन कर मनिआरा।

मधुमालती में भी इस उपमान का प्रयोग हुआ है

चंद बदन मुख दुहु कर गहा जो हुत दुन राहु।
पूनिवं भे परगास तस सुनि मधुमालती चाहु।[2]

अनुराग बांसुरी में भी इस उपमान का प्रयोग हुआ है

अवहुं यहि नखत तन अति सुकुमार।
मनहु कीन्ह धरती पर ससि अवतार।

जायसी ने अनेक स्थलों पर पदुमावती के लिए चन्द्र के रूपक का प्रयोग किया है।

पदुमावति सो झरोखे आई, निहकलंक जस ससि देखराई। × ×
पहिर ससि नखतन्ह के मारा धरती सरग भयउ उजिआरा।
(५६१ १ ३)

पूर्णिमा के चन्द्र का उपमान भी जायसी ने अनेक स्थलों पर लिया है जैसे

पदुमावति जो पूनिवं कला चौदह चांद उए सिंघला।
(११८ २)
पदुमावति जो सवारै लीन्ही पूनिवं रात दैय ससि कीन्ही।
(२६७ १)

जायसी ने पद्मावती के शशि रूप के साथ साथ उसकी सखियों के तारागण रूप की कल्पना की है यह भी परम्परागत है। जायसी ने सर्वत्र सखियों को चन्द्र के साथ तराई का रूप दिया है

औरहुर तर दीन्हें वासू सात खंड जहिंवा कबिलासू।
सखी सहस दुइ सेवा आईं जनहुं चांद संग नखत तराईं।
(२८८ ८-९)
पदुमावति सब सखी बोलाईं चीर पटोर हार पहिराईं। × ×
जानहु कंवल संग फूली कूईं कै सो चांद संग तराईं भईं।
(११२ १ ४)

1 चित्रावली उसमान पृ० १८
2 वही पृ० ६६
3 मधुमालती : मंझन मैसा ७५८
4 सूफी काव्य संग्रह : सं० परशुराम चतुर्वेदी पृ० १७७

यह परम्परा मृगावती और अन्य सूफी काव्यों में भी खोजी जा सकती है। मृगावती के रचयिता कुतबन ने दरबार के बीच बैठी मृगावती को तारागणों के मध्य चन्द्र कहा है

आपु जाहि जो बैठइ ताही तारन मांझ चन्दु जनु आही।
जैरे सरग नखतपती आई, ताल मांझ पूनी जस होई।

चित्रावली में भी सखक व उसकी सखियों के लिए यह बिम्ब आया है

सकल सखी आरति लै आई सखि समीप जनु मिलि तराई।
जही अटारि बैठहिं रनिवासा जनु ससि नखत सरग परगासा।[1]

इस प्रकार यह बिम्ब भी परम्परा द्वारा स्वीकृत प्रतीत होता है।

जायसी की राजनगरी के लिये कविलास की कल्पना भी परम्परागत है। सभी कवियों ने राजनगरी को कैलाश कहा है।

उसमान ने कांचीपुर के लिए कहा

पुनि कलि जुग महं अमरपति भई आनहु अमरपुर बसि गई।
सिरिजि सिरजि चित्र विचित्र संवारा जनु पृथ्वी कविलास उतारा।[2]
पश्चिम देस जान जिन्ह देखा रूप नगर कविलास विसेखा।
रूप नगर जो उत्तम देसा, जनु कविलास आइ भुइ बैसा।[3]

मधुमालती में भी राजनगरी को कैलाश कहा गया है

कोटि कोटि लख घर घर, नगर अनेक हुलास।
कलिजुग में जस अगिनी उतरि बसी कविलास।[4]
गढ़ कनैगिरि नगर सोहावा जनु कविलास उतरि भुइ आवा।[5]

छिताईं-वार्ता कार ने भी यह उपमा दी है

राजन रंग कोटि रमनीक लागहि सुई नखत अधीक।
पाट छप्पर सातसै अवास कंचन कलस मनहिं कविलास।[6]

जायसी ने भी इस परम्परागत उपमान को अनेक स्थलों पर इसी रूप में प्रयुक्त किया है। सिंहलगढ़ उन्हें सदैव कैलाश प्रतीत हुआ है

---

१ मृगावती : सूफी काव्य संग्रह पृ० १००
२ चित्रावली : उसमान, पृ० ११
३ चित्रावली : उसमान, पृ० ३२६
४ वही, पृ० ६
५ वही, पृ० ३९
६ वही पृ० ४७
७ मधुमालती : मंझन पृ० १४
८ वही
९ छिताई वार्ता : नारायणदास पृ० १०

जरहिं दीप नियरवा जाहीं जनु कबिलास नियर भा आईं ।
(२७ १)

ताहि मंदिल भरा देखा जस कबिलास अनूप ।
आखर अस चौराहर सो रानी कैहि रूप ।
(४११ ८-९)

बरनौं राज मंदिर रनिवासू अछरिन्ह भरा जानु कबिलासू ।
(४९ १)

स्पष्टत इस चमक को भी उन्होंने परम्परा से प्राप्त किया है ।

राजपुत्रियों अथवा उनकी सखियों के सामूहिक रूप म फुलवारी कहने की परम्परा भी सूफी काव्य मे भी इससे रंग बिरंग वस्त्रों मे इनकी आशाओं का रूप साकार हो जाता है । चित्रावली म सखी-सहेलियों को फुलवारी कहा गया है

सखी सहेली लीन्ह हँकारी आईं सब जानहु फुलवारी ।[1]

जायसी मे भी ऐसे प्रयोग मिल जाते है

पदुमावति सब सखी बोलाईं जनु फुलवारि सबै चलि आईं ।
(५१ १)

गई खेलत पदुमावति बारी अब चौरे सब करी सँवारी ।
जस देखा तेइ अंग सुबासा भँवर आइ लुबुधे चहुं पासा ।
(५१ १२)

जायसी ने नेत्रों के लिये भरा हुआ समुद्र का उपमान हिलोरे लेने के साम्य के कारण दिया है । पद्मावती के नेत्रों को वह समुद्र ही कहता है

सुभर समुद अस नैन दुइ मानिक भरे तरंग ।
आवत तीर जाहि फिरि काल भँवर तेन्ह संग ।
(१०१ ८ ९)

विरहावस्था में भी नेत्रों को रक्त के आंसू रूपी माणिक उमगते हुए समुद्र कहा गया है

उलथि समुद अस मानिक भरे, रोइ रुहिर आंसु तस ढरे ।
(१०८ २)

यह दोनों रूप सम्भवत परंपरा में आ चुके थे । क्योंकि चित्रावली और मधुमालती में यह उपमान इसी धर्म के कारण गृहीत हुआ । रक्त है ... आंसू भरे नेत्रों को मधुमालती में भी समुद्र कहा गया है

रकत आंसु तस पेमा रोवा, कैहे रे सुना तई हिया करोवा ।
मन बहुरुर हिय उठेउ झंकोरा, मन समुद्र के रगत हिलोरा ।[2]

---

१ चित्रावली संकलन [illegible]
२ मधुमालती संकलन ५ २१८

उसमान ने भी हिलोरें लेने व लहरों के कारण नेत्रों को समुद्र कहा है। नेत्र वर्णन में वह कहता है

दोऊ समुद्र जनु उठहि हिलोरा, पल मंह व्याकुल अमल सब डोरा।[1]
दोऊ मगन जनु समुद्र अपारा उमगि चले राखो को पारा।[2]

इन प्रयोगों से यह बिंब परंपरा द्वारा स्वीकृत प्रतीत होता है।

प्रेमी के लिये प्रयुक्त उपमान भ्रमर और पतंग जिनका उल्लेख जायसी ने बहुतायत से किया है सूफी परंपरा द्वारा स्वीकृत उपमान थे। यह इतने रूढ़ हो चुके थे कि बहुधा इनका प्रयोग प्रतीकवत् हुआ है। भ्रमर और पतंग का उल्लेख सभी सूफी काव्यों में मिलते हैं।

कुंअर कहा सुनि राजकुमारी [illegible] जोगी जस भंवर दुखारी।[3]
बिरह पतंग पर कहा जो मोरा जाइ करेउ सेउ प्रम संजोरा।[4]
हर मन मोह लिस बलिहारी दीपक पर पतंग भयी वारी।[5]

जायसी ने भी अनन्यता की इस प्रतीति के लिये भ्रमर और पतंग का बार बार प्रयोग किया है

हीरामन जो कमल बखाना सुनि राजा होइ भंवर भुलाना।
आगे आऊ पंखि उजियारे, कहहि सो दीप पतंग कै मारे। × ×
जो राजा अस धीर न होई, बेहि रे कुसल मन मयक पतंगु।
सुनि सो समुद्र चखु भे किलकिला कवलहि चहौं भंवर होइ मिला।
(६४ १ ५)

स्पष्टतः जायसी द्वारा प्रयुक्त यह बिंब भी परंपरागत है।

समष्टि में जायसी ने मौलिक कल्पना होते [illegible] भी अनेक उपमानों को परंपरा से ग्रहण किया है और उनका उसी रूप में प्रयोग किया है। जायसी की पूर्ववर्ती चित्रावली मधुमालती आदि सूफी—प्रेमाख्यानक कथाओं में बहु बिंब ज्यों के त्यों प्रयोग किये हुए मिल जाते हैं। इन प्रयोगों के लिये कवि एक दूसरे से प्रभावित थे ऐसा नहीं कहा जा सकता जब कि ऐसा हो सकता है क्योंकि जायसी का सरोवर पर पद्मावती के स्नान करने का वर्णन चित्रावली में भी बहुत कुछ इसी रूप में आया है परन्तु ज्यादा संभव यही लगता है कि यह सभी उपमान किसी प्रौढ़ काव्य परंपरा से गृहीत हैं जो इन सूफी काव्यों की रही होगी जिसमें भाव बहुत से सामान्य है। इसी कारण उनके रूप प्रत्येक काव्य में समान मिल जाते हैं।

---

1 चित्रावली उसमान पृ ४०
2 वही पृ ४१
3 चित्रावली पृ ८८
4 मधुमालती संपादित पृ १३०
5 हंस जवाहिर : कासिम शाह, सूफी काव्य संग्रह पृ १३१

१—साहित्यिक व लोक परम्पराओं से

कवि एक सामाजिक और साहित्यिक प्राणी होता है। साहित्य में निरन्तर प्रयुक्त होने वाले उपमानों की अपनी एक अलग परम्परा होती है प्रत्येक काव्य में वह बहुत कुछ उन्हीं रूपों मे मिल जाते हैं। उपमानों की इस साहित्यिक परम्परा से प्रत्येक कवि न्यूनाधिक रूप में प्रभावित होता है। लोक साहित्य की परम्पराएं भी इसके साथ ही कवि को बराबर प्रभावित करती रहती हैं। कवि के अनेक उपमान उसके इन परम्परागत प्रभावों को व्यक्त करते हैं।

जायसी में भी ऐसी उपमान योजना बहुलता से आई है जिसे हम साहित्यिक अथवा लोक साहित्य की परम्परा से गृहीत कह सकते हैं। लोक साहित्य का जायसी कालीन कोई स्वरूप यद्यपि इस समय उपलब्ध नहीं है परन्तु कवि के प्रयोगों से उसका अनुमान लगाया जा सकता है।

नखशिख वर्णन में जायसी प्रायः परम्परागत उपमानों का प्रयोग करते हैं। केशों के लिए सर्प मुख के लिए चन्द्र नासिका के लिए खड्ग भौंह के लिए धनुष ग्रीवा के लिए सुराही दाँतों के लिए दाड़िम मोती अधरों के बिम्बफल कमर के लिए मृ सिं केहरी गति के लिए हंसनी आदि को बराबर प्रयुक्त किया गया है। उदाहरणार्थ

प्रथमहिं सीस कस्तूरी केसा बलि बासुकि को और नरेसा।
भंवर केस वह मालति रानी बिसहर लुरहिं लेहिं अरघानी
बेनी छोरि झार जौ बारा सरग पतार होइ अंधियारा।
कोंवल कुटिल केस नग कारे लहरन्हि भरे भुअंग बिसारे।
बेधे जनु मलैगिरि बासा सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा।
(९९ १-५)
ससि मुख अंग मलैगिरि रानी नागन्ह झाँपि लीन्ह अरघानी।
(९१ २)
मानिक तरग फूल धुवतारा भोंहैं धनुक गगन को पारा।
(४४३ १)
बरनी गीव कुंभ की रीसी कर्न भार जनु लागेउ सीसी।
कुंदै फेरि जानु गिउ काढ़ी हरी पुछारि ठगी जनु ठाढ़ी।
जनु हिय काढ़ि परेवा ठाढ़ा तेहि तें अधिक भाउ गिउ बाढ़ा।
(१११ १३)
दसन चौक बैठे जनु हीरा औ बिच बिच रंग स्याम गंभीरा। ———
जनु भादौं निसि दामिनी दीसी चमकि उठी तस बीज बतीसी।
(१०७ १२)
दसन स्याम पानन्ह रंग पाके बिहुँसत कँवल भँवर अस ताके।
चमतकार मुख भीतर होई, जस दारिउं औ स्याम मकोई।

चमक चौक बिहँसि जो नारी, बीज चमक जस निसि अँधियारी ।
सेत स्याम अस चमकै जोठी स्याम हीर दुइ पाँति बईठी ।
(४७७ १४)

अधर सुरंग अमिय रस भरे, बिम्ब सुरंग लाजि बन फरे ।
फूल दुपहरी जानहु राता फूल झरहिं जब जब कहु बाता ।
हीरा लेहि सो बिद्रुम धारा बिहँसत जगत होइ उजियारा ।
(१०६ १३)

छिपि सक जनु मोंस न लागा, दुइ चाँद मलिनि मोंस जस लागा ।
जब फिरि चली अपछरा पाउँ आहरि इंद्र फेरि जस काँटे ।
(४८४ १२)

मधुप गंध लेहि संग बसाहीं मधुकर लागि लेहिं संग फिराहीं ।
लंक सिंहनी सारंग नैनी हंस गामिनी कोकिल बैनी ।

नख शिख के लिए प्रयुक्त यह सभी उपमान पूर्णतः परम्परागत हैं । मध्यकालीन और परवर्ती काव्य में यह उपमान बराबर इसी रूप में प्रयुक्त होते रहे हैं । नरपति नाल्ह ने बीसलदेव रासो में मुख के लिए चन्द्र दाँतों के लिए दाड़िम गति के लिए गयंद और वाणी के लिये कोकिला को प्रयुक्त किया है

दंत दाड़िम कुली की सी ।
मुखी अमृत बोल्यो बाली के बोल ।
ससि वदनी जो ग्यो गज गयंद ।
आउड़िया रतनालिया ।
चौंहटा आस्ते भमर भभाय ।[1]

छिताईवार्ताकार भी कहता है—

कुटिल केस सिर सोहइ बास चन्द कपारि अलि मधुकर भास ।
मोती माँग भरन की बार रत्न सीस सम तिलक लिलार ।
सरद सोम ससि बदन प्रकास भरत चाप सम भृकुटि तासु ।
मधु लावत सोहइ लोल उपइ कंचन तिलो कपोल ।[2]

यहाँ भी केशों के लिए भौंरों मुख के लिए चन्द्र आदि उपमानों की योजना है जो जायसी में भी इसी रूप में मिल जाती है इस कारण इसे परम्परागत कहा जा सकता है ।

मंझन ने भी इन उपमानों का इसी रूप में प्रयोग किया है । उसने केशों को सर्प ललाट को दूज का चाँद आदि आदि कहा है :

1 बीसलदेव रास : [illegible]
2 छिताई वार्ता : [illegible]

समकगाहि परतिख मनियारे भरत भरे बिसहर हतियारे ।[1]

निहकलंक ससि मुख निसारा औ अंध तीन भवन उजियारा ।[1]

सूर तुलसी आदि में भी यह उपमान ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। इस प्रकार नखशिख वर्णन में प्रयुक्त जायसी के प्रायः सभी उपमानों को परम्परागत कहा जा सकता है।–

जायसी ने प्रेमी के लिए भ्रमर और पतंग के रूपक का बहुधा प्रयोग किया है। रत्नसेन के लिए यह बिम्ब बहुप्रयुक्त है

हीरामनि जो कंवल बखाना सुनि राजा होइ भंवर भुलाना ।
(२४ १)

मालति लागि भंवर जस होई होइ बाउर निसरा बुधि खोई ।
कहेसि पतंग होहि धनि लेऊं सिंघल दीप जाइ जिउ देऊं ।
(१७८, १४)

तुम्ह नित नयन पतंग कै करा सिंघल दीप आइ उड़ि परा ।
(३०७ ४)

प्रेमी के लिए पतंग और भ्रमर के यह उपमान परम्परागत हैं। प्रायः सभी प्रेमाख्यानक काव्यों और इतर साहित्य में इसका पर्याप्त प्रयोग हुआ है। सारस चातक और चकोर आदि के उपमान भी परम्परागत हैं। प्रेमी के लिए यह साहित्यिक परम्परा द्वारा स्वीकृत प्रतीक है। जायसी ने इनका बराबर प्रयोग किया है

जानसि सबै अवस्था मोरी, जस बिछुरी सारस कै जोरी ।
(४०८ ४)

मैन रात निसि मारग जागे चढ़ित चकोर जागु ससि लागे ।
(१९७ ६)

सूरज परस दरस की ताईं चितवै चंद चकोर की नाईं ।
(१७८ ७)

तुलसी ने भक्त और प्रेमी के लिए चातक का उल्लेख किया है जो पर्याप्त प्रसिद्ध है

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास ।
एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास ।

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्रेमी के लिए चातक या चकोर परम्परा द्वारा स्वीकृत उपमान थे।

जायसी ने प्रेमी के लिए पानी से वियुक्त विरहाग्नि में तपती हुई मछली का रूपक दिया है

१ मधुमालती : संकलन संख्या ८२
२ वही संख्या ८९

जल बिछोह-जस मीन दुहेला, जस तुम काढ़ि पयोनिधि मेहु मेला ।

। (२०० १)

(यह उपमान भी साहित्यिक परम्परा द्वारा स्वीकृत हो चुका था। मधुमालतीकार मंझन में यह उपमान आया है

मधुमालति मुख कुंवर निहारति देखि जस भयउ लीन ।
तारायन कुंवर जिय तलफति जिमि जल बिछुरे मीन ।[1]

नरपति नाल्ह ने भी यह उपमान दिया है—

राज निराहल छोय पड़यो ।
च्यारि पहर मोही नू मीजी मन ।
जइस मरमी ज्यू माछली ।
जिव जांयु तिम जलह आपि ।[2]

दुःखा दास के ज्ञानायन में भी यह है। विरह पीड़िता मैना के लिए कवि कहता है

निस दिन भूखी प्यास ले प्यासी रोइ रोइ छिन छिन होइ बिनासी ।
मोर मोर कहि छिन छिन भावै धवर बचन हुए मुखहि न आव ।
पति त अब ही रैन बुझाई जस मछरी बिन नीर मुरछाई ।[3]

जायसी ने षड्ऋतु में वर्षा और बादलों के अनेक सम्बद्ध चित्र दिये हैं जो साहित्यिक परम्परा से गृहीत हैं।

चढ़हि आइ सूरहि अहुठा देखत अंध गगन घन घटा ।
चमकहि बरन सो बीजु समाना, गाल गाजहि दुन्दुभि निसाना ।
बरसहि सेल बान घन घोरा धीरज धीर न बांधहि तोरा ।
(६११, ८-९)

चित्रावली के लेखक उसमान ने भी इस बिम्ब को इसी संदर्भ में प्रस्तुत किया है

बर्षा ऋतु जनु सावन घटा चमकहि बरन सेल ज्यों छटा ।
बाज बुंद जनु घन घहराई, सेत पताका बग पांति सोहाई ।
जहं तहं माथ ते चुए चूरा रवि घटा जनु कुहुक मयूरा ।
दामिन दीठि पंवारी करनी धावहि जनु सरप सो चली ।
मिलि सब चलहि तुरगम अली पोन असवार घटा जनु चली ।[4]

जायसी ने प्रेमी को मरजिया के रूपक से प्रस्तुत किया है जो प्रेम समुद्र में डूब कर प्रेम रूप मोती प्राप्त करता है

1. मधुमालती : मंझन, पृ. २०
2. बीसलदेवरासो : नरपति नाल्ह, पृ. ४८
3. पोहपावती : दुःखा दास, सं. वासुदेवशरण, पृ. ४८
4. चित्रावली : उसमान, पृ. ६०

नव अमोल तेहि तालहि दिनहिं बरहिं जनु दीप।
जो मरजिया होइ तेहि सो पावहिं वह सीप।

(११, ८-९)

मझन ने भी मधुमालती में इस रूपक को प्रेमी के लिए प्रयुक्त किया है, जो जायसी के रूपक के परम्परागत होने का प्रतीक है

बिरह समुद्र अगाह अति जब जानै सब कोइ।
मानिक सो लै उबरै जो मरजीवा होइ।[1]

जायसी ने मलिन या विरह व्यथित नायिका के लिए राहु ग्रस्त चन्द्र का रूपक दिया है

ओसहु बिरह न छाँड़ै भा ससि गहन गरास।
नखत चहुँ दिसि रोवहिं अँधियर धरति अकास।

(२४९, ८-९)

चाँद जैस धनि उजियारि अही। भा पिउ रोस गहन अस गही।

(८९, १)

यह रूपक भी परम्परागत है प्रायः सभी प्रेमाख्यानकों व परवर्ती और समासामयिक साहित्य में यह बिम्ब मिल जाता है। छिताई वार्ता में छिताई के विरह व्यथित रूप के लिए कहा गया है

पातसाहि जिय अति पछताई सिर नीचो मुखकमल कुम्हलाई।
बदन मलिन देखियै क्याहु जनु ससि गगन ग्रस्यौ राहु।[2]

पदमावत कार मुल्ला दाउद भी मैना के लिए कहते हैं

मना बास बिन जो कही सुनत चांद राहु धर गही।
मुनेउ दुख मिति बिपत जो ग्रहा पै सो जोतिकार होइ रहा।[3]

बीसलदेव रासो में भी यह उपमान आया है

चंद बदन दीठी धन माहु, जीव हरण जाणी गलीयो छै राहु।[4]

स्पष्टतः जायसी का यह उपमान भी परम्परा ग्रस्त है।

जायसी ने कुछ स्थल पर चौगान का बिम्ब दिया है। मुखस्थल मैदान है, चांद डंडा है और सिर गेंद है, शाह और गोरा—बादल इस खेल के खिलाड़ी हैं। चित्रावली में भी यह उपमान आया है।

साह [illegible] बाजर अंकु, हाथ लेइ चौगान।
हृदय आउ जो आपुन, यहि मोह मैदान।[5]

---

१ मधुमालती : दोहा [illegible]
२ छिताईवार्ता : [illegible]
३ चंदायन : मुल्ला दाउद [illegible]
४ बीसलदेव रासो : [illegible]
५ चित्रावली : [illegible]

संभवतः यह बिम्ब सामयिक था क्योंकि चारउजानी में भी किंचित भाव परिवर्तन के साथ यह आया है

> बरहु मानसा हमारी मौह कोमिए सुरत कोलिए बीयान।
> फनहुव मे कोकिला साया तब मयन भया मैदान।[1]

समष्टि में यह सभी—मसतिया और उसस इतर बिम्ब साहित्यिक परम्परा से गृहीत हैं क्योंकि यह सभी काव्यों में उसी रूप में प्राप्त हो जाते हैं।

४—फारसी मसनवियों और इतर साहित्य से

जायसी मुसलमान था और सूफी था इस कारण फारसी मसनवियों का उस पर विशेष प्रभाव पड़ा था। यद्यपि फारस में लिखी गई फारसी मसनवियों से वह विशेष परिचित रहा होगा ऐसी कल्पना नहीं की जा सकती परन्तु भारत में लिखी गई फारसी मसनवियों का उसको ज्ञान था यह स्वीकार किया जा सकता है। यह ज्ञान सूफी परम्परा द्वारा ही उसे प्राप्त हुआ था।

फारसी साहित्य से जायसी के बिम्बों का उद्गम खोजना एक अत्यन्त दुष्कर कार्य हो गया है क्योंकि हिन्दी साहित्य को अभी तक उसका विशेष परिचय नहीं है। हिन्दी फारसी मसनवीकार की कृति का अनुवाद हिन्दी साहित्य में नहीं है यहां तक कि मध्यकालीन साहित्य का बहुत अंशों में प्रभावित करने वाले अमीर खुसरो से भी हिन्दी पाठक विशेष परिचित नहीं हैं। किसी का व्यक्तिगत रूप में अध्ययन अभी तक उपलब्ध नहीं है सामूहिक रूप से सूफी मसनवीकारों का परिचय तसव्वुफ और सूफी मत-साधना और साहित्य आदि कुछ पुस्तकों में मिल जाता है पर विशिष्ट न होने के कारण यह हमारे विशेष उपयोग का नहीं रहा है उसमें सूफी मसनवियों की परम्परा में आने वाले फारसी कवियों का नाम परिचय पाया जा सकता है। मसनवियों के विषय में कुछ विशेष उसमें नहीं है। इस प्रकार हिन्दी साहित्य एक प्रकार से सूफी मसनवियों और इतर साहित्य से अपरिचित ही है। इस कारण ही जायसी के बिम्बों में सूफी मसनवियों के प्रभाव को स्पष्ट करना अत्यन्त कठिन हो गया है। हिन्दी में कोई अनुवाद उपलब्ध न होने के कारण भाषा समस्या भी बहुत बड़ी बन गई है। यहां जायसी के कुछ बिम्बों का उद्गम फारसी मसनवियों में खोजा गया है। जो मुख्यतः बड़े ही अनुवादों की सहायता से है।

जैसा पहले कहा जा चुका है जायसी को फारस में लिखी गई फारसी मसनवियों का ज्ञान था यह अनुमान नहीं किया जा सकता सम्भवतः भारत में लिखी गई फारसी मसनवियों से भी वह परिचित न रहा हो परन्तु सूफी साहित्य की अपनी परम्परा थी जिसमें पूर्ववर्ती कथा मसनवियों—के प्रभाव से उसका जायसी अवश्य परिचित रहा होगा। उसकी प्रतीक पद्धति पूर्णतः फारसी मसनवियों में गृहीत है। कथा पर इस प्रकार आधारित या प्रतीकात्मकता का सहारे पग पर किसी आध्यात्मिक तत्व को देने का सर्वप्रथम प्रयास फारसी के ११ वी सदी के प्रौढ़ और प्रथम 'सूफी कवि सनाई' इस परवेअत्तीन मशाइख

१ पदमावत ... का ... १ ... १०१

से किया था। अत्तार ने अपने 'मन्तिकुत्तैर' में पक्षियों की कथा द्वारा साधक के मार्ग की कठिनाइयों और चरम लक्ष्य तक पहुंचने का वर्णन किया है।[1] सूफियों की अन्योक्ति की यही परम्परा जायसी तक चली आई है। सूफिया के सुरा, प्रिय, केश, मस्ती आदि[2] के प्रतीकों का प्रयोग भी सूफी प्रमाख्यानकों में बराबर मिलता है। जायसी भी इससे अछूते नहीं रहे हैं। उनमें भी सूफी प्रतीक योजना का बराबर प्रयोग हुआ है। यहां हम उनके कुछ बिम्बों पर फारसी काव्यो मुख्यतः मसनवियों के प्रभाव का विवेचन करेंगे।

जायसी ने अनेक स्थलों पर पद्मावती के लिए चन्द्र उपमान का प्रयोग किया है। सिद्ध और नाथ साहित्य में चन्द्र के प्रति जो धारणा है वह जायसी के चन्द्र—उपमान में सर्वत्र नहीं है, कहीं कहीं ही वह साधनात्मक प्रतीक के रूप में आता है वह मुख्यत सौन्दर्य की अनुभूति कराने के लिए है। इस धारणा में उस पर सूफी साहित्यिक मान्यताओं का प्रभाव भी रहा है। हिन्दी साहित्य में यद्यपि चन्द्र उपमान का बहुतायत से प्रयोग हुआ है। पर वह केवल मुख के लिए है, समग्र नायिका के लिए नहीं। जायसी ने दोनों ही रूपों में इसे लिया है। जिसमें समग्र नायिका के लिए ही इसका प्रयोग मुख्य और अधिक है। फारसी साहित्य म यह उपमान बराबर प्रयुक्त हुआ है। अमीर खुसरो ने अपनी मसनवी—'देवल रानी—खिज्र खाँ' में इस रूपक का प्रयोग देवलरानी के लिए किया है। देवल रानी मानो चांद थी जिसमें सारे संसार की ज्योति आकर समा गई थी आदि[3] आदि कवि ने उसकी उपमा सितारा से भी दी है।[4] जायसी ने इस उपमान का बहुधा प्रयोग किया है। रूप वर्णन म अनेक स्थलों पर इसका प्रयोग मिल जाता है। जैसे

घरी तीर सब कोचक भारी सरवर मंह पैठी सब बारी ।
सरवर नहिं समाइ संसारा चांद नहाइ पैठि लेइ तारा ।
पदुमावति सों झरोखे आई निहकलंक जस ससि देखराई ।
ततखन राघी दीन्ह असीसा जगहुं चंद चकोर मुख दीसा ।

---

१ सूफीमत—साधना और साहित्य : रामपूजन तिवारी पृ ३६४
२ तसव्वुफ और सूफीमत : चन्द्रबली पांडेय पृ १०५ ??
३ दोरोश्ना अहाल प र बरे रोज मदे मु असराम आन्म फरोज
फन० सूर कि सिर्र शाम् दा अफ्तदार मजा गुम शू म दरनामा रा भर
म मूर अफ्ता धे ता । नदर आमाअ तुमरा वर ५ई वना बरर
नहे दुरती र बान फ्स सूरे आसर हु भीरा नागद र आँ सूरदार
तिवर वे रे सूर म समा मोरा फतने जो फसाने परियस मोरा
सके हम्र अकार के दर हफ्त परदा म सुरने भरमसिता पर हफ्ता पर दा
हवन र मा दिना फ्ते : परिचय, पृ० ५७ व [illegible]
४. न पर मने नई पाराय ६म धान ५ई दूर में दर। द दराने दर शिताल।
वही पृ ६१

पहिरे ससि नखतन्ह क मारा, धरती सरग भयउ उजियारा।
(४२१ १३)

मैं निसि ससि चौराहुर चढ़ी सोरह करा जैस बिधि गढ़ी।
बिहँस झरोखे आइ सरेखी निरख साहि दरपन महँ देखी।
होतहि दरस परस भा लोना धरती सरग भयउ सब सोना।
(५६६ २४)

चाँद संपूरन जनु होइ तपी पारस रूप दरस भैं छपी।
(५७१ ६)

इन प्रयोगों से प्रतीत होता है कि जायसी सूफी परम्परा में प्रयुक्त चन्द्र के इन प्रयोगों से अवश्य परिचित और प्रभावित रहा हुआ।

जायसी ने सृष्टि के लिए दर्पण का उपमान लिया है जिसमें सर्वत्र पद्मावती के रूप का प्रतिबिम्ब पड़ता है वह कहता है

कहा मानसर चाहु सो पाई पारस रूप इहाँ लगि आई।
भा निरमर तेन्ह पायन्ह परसें, पावा रूप रूप के दरसें।× ×
पाए रूप रूप जस चहे ससि मुख सब दरपन होइ रहे।
(६५ १-७)

सृष्टि को दर्पण करने की यह धारणा मधुमालती आदि सूफी प्रेमाख्यानकों में भी प्राप्त है। मंझन कहता है

दोसर न कतहूँ तुम जोरा दरपन सिस्टि रूप मुख तोरा।[1]
तोर रूप तिरभुवन अँजोरा सकल सिस्टि मुख दरपन तोरा।[2]

इन उपमानों का मूल भी सूफी मसनवियां ज्ञात होती हैं। सूफियों ने माना कि सृष्टि दर्पण के सदृश है जिसमें परमात्मा के गुण प्रतिबिम्बित होते हैं। जामी कहता है 'तुम परम सत्ता हो और सभी कुछ मरीचिका मात्र है यद्यपि तुम्हारी सृष्टि की सभी वस्तुएं एक हैं। सम्पूर्ण सृष्टि को मुग्ध करने वाला तुम्हारा सौन्दर्य अपनी पूर्णता को प्रकाशित करने के लिए हजार दर्पणों में प्रतिभासित होता है। लेकिन वह एक ही है।'[3] सम्भवतः विचारों के साथ साथ यह उपमान भी जायसी ने सूफी मसनवियों से ग्रहण किया था।

प्रेम के लिए प्रयुक्त जायसी का अमर बेल का बिम्ब भी परम्परागत है। जायसी प्रेम को अमर बेल कहता है जो एक बार लग जाने पर फिर नहीं मरती जो प्रेमी ही पर बढ़ कर छा जाती है और किसी दूसरे को नहीं पनपने देती। इसके साथ अपार दुःख बढ़ता ही जाता है।

१ मधुमालती। मंझन पृ० ८
२ वही ६० ११
३ दि पिरोती हिस्ट्री आफ पर्शिया। ई० जी० ब्राउन पृ० ५४१

प्रीति बेलि जनि अरुझै कोई, अरुझै मुए न छूटै सोई।
प्रीति बेलि ऐसे तनु डाढ़ा पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि सग विरह अपारा सरग पतार जरै तेहि झारा।
प्रीति बेलि कोह अम्मर बोई दिन दिन बाढ़ै छीन न होई।
प्रीति अकेली बेलि चढ़ छावा दोसरि बेलि न पलुहै पावा।

(२१४ ३-७)

यही मान्यता इसी रूप में फारसी काव्यों में भी पाई है। सियर अल-औलिया में कहा गया है कि 'सुल्तान मशायख ने कहा कि इश्क मुहब्बत का आखिरी दर्जा है और मुहब्बत इश्क का पहला दर्जा है'। और कहा कि इश्क 'इश्का' से लिया गया है। यह इश्का एक घास है जो बाग़ों में उगती है और दरख्त पर चढ़ जाती है। पहले अपने बीज को जमीन में सख्त करती है। फिर उसकी शाखें निकलती हैं और दरख्त पर लिपट जाती हैं और इस तरह ऊपर तक जाती हैं। यहां तक कि पूरे दरख्त को ढक लेती है और उसको इस तरह शिकंजे में पकड़ लेती है कि दरख्त की रगों में तरी बाकी नहीं रहती। हर हवा जो उसके (इश्क के) मार्ग से होकर उस दरख्त को पहुंचती है दरख्त को बरबाद करती है यहां तक कि वह दरख्त खुश्क हो जाता है।' इश्का के यही गुण अमर बेल में हैं इससे जायसी ने उन्हीं विचारों को इश्का से न लेकर अमर बेल के रूप में कल्पित कर लिया है पर इस कल्पना का मूल इश्का की यही भावना रही है। इश्का फारस प्रदेश की एक परोपजीवी घास है और अमर बेल भारत की। उनमें नामों के अतिरिक्त विशेष अन्तर नहीं है। जायसी ने केवल नाम परिवर्तन करके इस बिम्ब को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

जायसी द्वारा प्रयुक्त फुलवारी का उपमान भी फारसी काव्य परम्परा से गृहीत ज्ञात होता है। सामूहिक सौन्दर्य की अनुभूति कराने के लिए हिन्दी साहित्य में फुलवारी का उपमान कहीं नहीं आया है। फारसी और उर्दू में अवश्य कवियों को बगीचा और चमन से विशेष प्रेम रहा है। जायसी ने भी सामूहिक सौन्दर्य का रूप बनाने वाला यह उपमान फारसी काव्य परम्परा से ग्रहण किया है उसने सखियों के लिए फुलवारी शब्द का प्रयोग बार-बार किया है

(मरा) [illegible] आखिर [illegible] [illegible]
[illegible] (का मा) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] दरख्त [illegible]
[illegible]
दरख्त [illegible] दरख्त
[illegible] दरख्त [illegible]
सियर अल औलिया पृ० ३५१

यह फुलवारी सो ओहि की दासी, कहँ वह केत भँवर सँग बासी।

(५६ २)

दवँन सहाय चली फुलवारी, फर फूलन्ह के इच्छा बारी।

(१८६ २)

खुसरो ने भी इस उपमान का प्रयोग किया है। सामूहिक सौन्दर्य की अनुभूति दवल रानी खिज्र खाँ में इसी प्रकार कराई गयी है।[1] यहाँ उसका रूप पूर्णतः जायसी के इस छंद की भाँति है

एक दिवस कौमिंग तिथि आई, मान सरोवर चली अन्हाई।
पदुमावति सब सखीं बोलाईं, जनु फुलवारि सबै चलि आईं।
कोइ चंपा कोइ कुंद सहेली, कोई सु केत करना रस बेली।
कोई सु गुलाल सुदरसन राती, कोई बकौरि बकचुन बिहँसाती।
कोइ सु मौलसरि पुहुपावती, कोई जाही जूही सेवाती।

(५६ १-७)

अमीर खुसरो ने अध्यात्म में वन जीवन को विशेष रूप से प्रभावित किया था। जायसी ने सम्भवतः वन जीवन के साथ ही खुसरो से इस बिम्ब को ग्रहण किया था। फुलवारी की यह कल्पना समस्त फारसी साहित्य में बहुलता से आई है। जायसी में इसका ग्रहण परम्परागत ही कहा जायगा।

जायसी ने गुरु के लिए 'दिय' का बिम्ब लिया है। उन्होंने गुरु को संसार मार्ग को प्रकाशित करने वाला दीपक कहा है। आखिरी कलाम में वह कहता है

मानिक एक पायउँ उजियारा, सैयद असरफ पीर पियारा।
जहाँगीर चिश्ती निरमरा, कुल जग माँ दीपक बिधि धरा।

(आ ६)

मुहम्मद साहब के लिए भी इस बिम्ब का प्रयोग हुआ है

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा, नाम मुहम्मद पूनिउँ करा।
प्रथम जोति बिधि तेहि कै साजी, औ तेहि प्रीति सिहिट उपराजी।
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा, भा निरमल जग मारग चीन्हा।

---

[1] [illegible]

प्रीति बेलि जनि अरुझै कोई, अरुझै मुए न छूटै सोई।
प्रीति बेलि ऐसे तनु डाढ़ा पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि संग बिरह अपारा सरग पतार जरै तेहि मारा।
प्रीति बेलि कोइ अम्मर बोई दिन दिन बाढ़ै छीन न होई।
प्रीति अकेली बेलि चढ़ छावा दोसरि बेलि न पसरै पावा।

(२५४ १-७)

यही मान्यता इसी रूप में फारसी काव्यों में भी पाई है।[1] सियर अल-औलिया में कहा गया है कि 'सुल्तान मशायख ने कहा कि इश्क मुहब्बत का आखिरी दर्जा है और मुहब्बत इश्क का पहला दर्जा है'। और कहा कि इश्क 'इश्का' से लिया गया है। यह इश्का एक बेल है जो बागों में उगती है और दरख्त पर चढ़ जाती है। पहले अपने बीज को जमीन में सख्त करती है। फिर उसकी शाखें निकलती हैं और दरख्त पर लिपट जाती हैं और इस तरह ऊपर तक जाती हैं। यहाँ तक कि पूरे दरख्त को ढक लेती है और उसको इस तरह शिकंजे में पकड़ लेती है कि दरख्त की रगों में तरी बाकी नहीं रहती। हर हवा जो उसके (इश्क के) नाम से होकर उस दरख्त को पहुँचती है दरख्त को बरबाद करती है यहाँ तक कि वह दरख्त खुश्क हो जाता है।' इश्का के यही गुण अमर बेल में हैं इससे जायसी ने उन्हीं विचारों को इश्का म न रखकर अमर बेल के रूप में कल्पित कर लिया है पर इस कल्पना का मूल इश्का की वही भावना रही है इश्का फारस प्रदेश की एक परोपजीवी बेल है और अमर बेल भारत की। उनमें नामों के अतिरिक्त विशेष अन्तर नहीं है। जायसी ने केवल नाम परिवर्तन करके इस बिम्ब को ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया है।

जायसी द्वारा प्रयुक्त फुलवारी का उपमान भी फारसी काव्य परम्परा से गृहीत प्रतीत होता है। सामूहिक सौन्दर्य की अनुभूति कराने के लिए हिन्दी साहित्य में फुलवारी का उपमान कहीं नहीं आया है। फारसी और उर्दू में अवश्य कवियों को बगीचे और चमन से विशेष प्रेम रहा है। जायसी ने भी सामूहिक सौन्दर्य को हृदय बनाने वाला यह उपमान फारसी काव्य परम्परा से ग्रहण किया है उसने सखियों के लिए फुलवारी शब्द का प्रयोग बार-बार किया है

(फ़ार्सी) [illegible] मुहब्बत [illegible]
[illegible] (तर्जुमा) [illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] दरख्त [illegible]
[illegible]
[illegible] दरख्त
[illegible] दरख्त [illegible]
[illegible] सियर अल औलिया पृ० [illegible]

जो न होत अस पुरुष उजियारा सूझ न परत पंथ अँधियारा।
(११ १४)

तब भा पुनि अंकूर सिरजा दीपक निरमला
रचा मुहम्मद नूर जगत रहा उजियार होइ।
(पद २)

यह बिम्ब भी परम्परागत है। फारसी साहित्य में यह उपमान बराबर प्रयुक्त होता रहा है। खुसरो ने अपने मसनवी मतलउल अनवार में पैगम्बर के लिए शमा का रूपक दिया है। जो दीपक का ही एक रूप है। पैगम्बर शमा है जो संसार को प्रकाश देता है।[1] यही मान्यता जायसी में भी इसी रूपक में दी है जिससे यह परम्परागत कहा जा सकता है।

आँसू के लिए मोतियों का उपमान भी जायसी ने जब-तब प्रयुक्त किया है। यह भी फारसी साहित्य-परम्परा से गृहीत है

नैनन्ह ढरहिं मोति औ मूँगा अस गुर खाइ रहा होइ गूँगा।
(१२५ २)

फारसी के प्रभाववश उसमें रक्त के आँसुओं का उल्लेख भी बहुत है जिनकी समता उसने माणिक्य आदि से की है। फारसी साहित्य परम्परा के कवि अमीर खुसरो में भी यह उपमान प्रयुक्त हुआ है। वह रोते हुए नेत्रों को मोती उगलते हुए सागर कहता है।[2] स्पष्ट यह उपमान भी परम्परागत है।

समष्टि में जायसी का फारसी साहित्य विशेषतः जो फारस में लिखा गया से विशेष परिचय नहीं था परन्तु सूफी संप्रदाय में आकर और जन जीवन से प्राप्त कर जायसी ने कुछ उपमानों को फारसी सूफी काव्यों की परम्परा से विचारों के साथ-साथ ज्यों का त्यों ग्रहण कर लिया। इन उपमानों की संख्या यद्यपि बहुत नहीं है परन्तु यह जायसी पर पड़े परम्परागत प्रभावों का पर्याप्त विश्लेषण कर सकते हैं।

अंत में कहा जा सकता है कि जायसी ने परम्परा का सफल प्रयोग किया है। उसने अपनी मौलिकता से अनेक नवीन उपमानों की योजना की है परन्तु परम्परा के प्रति विद्रोह उसमें नहीं था। उसने पर्याप्त परम्परागत उपमानों का प्रयोग किया है जो उसके व्यक्तित्व का परिचय भी देते हैं।

नवीन बिम्ब

परम्परागत होने के उपरान्त भी कवि की बिम्बयोजना पूर्णतः रूढ़ नहीं होती उसमें नवीनता के तत्त्व भी सहज समाहित रहते हैं। कवि की कल्पना दृष्टि कहीं तो

---

१ मू कि [illegible] वारे [illegible] निमायन [illegible]।
मतला : [illegible] पृ [illegible]

२ [illegible] दर [illegible] दुर्दाना व मौवाद [illegible]।
दिल [illegible] दरपाद [illegible] गौहर [illegible]।
[illegible] : परिषद्, पृ० [illegible]।

सादृश्य के लिए नवीन उपमानों को लाती है और कहीं प्राचीन उपमानों को नवीन संदर्भ में प्रयुक्त करके उनमें नवीनता की सृष्टि करती है। जायसी के उपमानों में भी पर्याप्त नवीनता है।

किसी कवि के नवीन उपमानों की खोज करना अत्यन्त कठिन कार्य है क्योंकि कवि से पूर्व रचे गये सभी काव्यों का अध्ययन करना प्रायः असम्भव है। उससे पूर्व के अनेक ग्रंथ अप्राप्य हैं और अनेक लुप्त हैं इस स्थिति में समस्त पूर्ववर्ती काव्य परम्परा से परिचित न होने के कारण उसमें प्राप्त सभी नवीन बिम्बों की खोजना अत्यन्त दुष्कर है। अतः यहां नवीन बिम्बों की मात्र सम्भावना ही की जा सकती है। जायसी से पूर्ववर्ती किसी ग्रंथ में यह उपमान नहीं आया ऐसा प्रमाण और विश्वास पूर्वक कहना असम्भव है। अतः यहां प्राप्त साहित्य और सम्भावनाओं के आधार पर ही जायसी की बिम्बगत नवीनताओं का अध्ययन किया जायगा।

प्रचलित काव्य-परम्परा से काफी दूर और अछूते होने के कारण जायसी में बिम्बगत नवीनताएं अधिक आई हैं। उसने अनेक नवीन उपकरणों का प्रयोग किया है और अनेक प्राचीन उपकरणों से नवीन भाव व्यंजना की है। इस प्रकार कहीं तो नवीन वस्तुएं सामने आती हैं तो कहीं उनके नवीन प्रयोग। इस प्रकार जायसी की बिम्बगत नवीनता को हम दो रूपों में देख सकते हैं एक तो वस्तु की नवीनता दूसरी प्रयोग की नवीनता।

१—वस्तु की नवीनता

जायसी उत्कृष्ट कल्पना दृष्टि का सहृदय कवि था। साहित्यिक परम्पराओं से यद्यपि वह भली भांति परिचित था परन्तु उनसे इतना अधिक प्रभावित नहीं था कि उसकी कल्पना दृष्टि परम्परा के अतिरिक्त किसी अन्य तत्व को देख न पाती। उसने जीवन का समग्रता और रागात्मकता के साथ अध्ययन किया था-फलतः उसके काव्य में जीवन के अनेक पहलू अनेक रूप सामने आये हैं जो प्राचीन परम्पराओं में नहीं थे।

वनस्पतीय बिम्बों में जायसी ने टेसू के फूलों, पत्तों बीज के अकुरित होने भूमि आदि के अनेक नवीन बिम्ब दिये हैं। रंग और आकार साम्य के आधार पर योगियों के कलंक के लिए टेसू के फूलों का उपमान प्रयुक्त हुआ है टेसू की व्यापकता और रंग से कलंक की विशालता और योगियों के देखए कष्टों की अनुभूति कराई गई है

चमक कनक जोगिन्ह कर के भेसा तन थेपू।
कोइ बीज बाढ़ु दिति जामहु फूला टेसू।

(३१४ ८-९)

पत्तों का प्रयोग भी द्रष्टव्य है पीले पत्ते विरहिणी और पीड़ा व नाम प्रसार

बिधर पात दुख झरे निपाते, सुख पाखों उपने होइ राते ।
(१८३ ७)

सम्भवतः में जायसी की दृष्टि पलाश वृक्ष पर भी गई है । उसमे पतंग को द्रव्य-हीन पुरुष कहा है जिसका बल रूपी पत्तियों का सौन्दर्य समाप्त हो चुका हो और अब वह मात्र ठूंठ रह गया हो—

> सांठ रहे सुधीनता मिसठै सापरि सुख ।
> बिनु धन पुरुष पलास ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पे सुख ।
> (४२० ८-९)

विरह दग्ध अलाउद्दीन के लिए भी एक नवीन वनस्पतीय बिम्ब दिया है । विरह दग्ध अलाउद्दीन को वह पृथ्वी में तप्त बीज कहता है जो रानी की सुदृष्टि की वर्षा से अंकुरित हो सकता है

> तपै बीज जस धरती सुख विरह के घाम ।
> कब सुदिस्टि के बरिसै तन तिनवर होइ जाम ।
> (५९१ ८ ९)

कवि ने रानी नागमती के लिए आषाढ़ मास मे पल्लवित होने वाली भूमि का बिम्ब दिया है जो नवीन है ।

समय और मौसम मे जायसी के सभी बिम्ब नवीन प्रतीत होते हैं । जायसी ने युद्ध के लिए होली का रूपक दिया है जो नवीन है

> दुवहि कस कसम निसारे माठ मंजीठ जानु रन ढारे ।
> खेलि फाग सेंदुर छिरिआवा चांचरि खेलि आगि रन लावें ।
> हस्ती घोर आइ जो दूका, उठे देह तिन्ह लहिर भभूका ।
> (६११ ५-७)

मौसम सम्बन्धी दूसरा बिम्ब आषाढ़ मास का है । राजा रत्नसेन के चित्तौड़ लौटने को कवि ने आषाढ़ मास का आगमन कहा है जो नवीन

> पलटा के पुरुषारथ राजा जस असाढ़ आवे घर साजा ।
> देखि सो छाह भई जग छाहा हरित मिया बोलेउ जग मांहा ।
> छेन पूरि धाए घन घोरा रहस चाऊ बरिसै चहुं ओरा ।
> धरती सरग सब होइ मेरावा भरि भरि पोखर ताल तलावा ।
> लहक उठा सब सुभिमा गामा ठावहिं ठाँव दूब अस जामा ।
> दादुर मोर कोकिला बोले हुते अमोल बोल सब बोले ।
> (४२५ १-७)

सुखात्मक अनुभूति को व्यक्त करने के लिए प्रयुक्त आषाढ़ का यह समग्र बिम्ब पद्मावतकार की नवीन वस्तु-चयन की प्रवृत्ति का परिचायक है ।

पशु-पक्षियों में यद्यपि कवि की विशेष रुचि नहीं है परन्तु कुछ नवीन पक्षियों का काव्य से परिचय उसने अवश्य कराया है । वह नवीन पक्षी हैं कंकुम माही गरुड़

ादि। कर्जुन का उल्लेख जायसी के किसी पूर्ववर्ती काव्य में नहीं मिलता। कर्जुन के ीवन भर विरही रह कर स्वत ज्वाला उत्पन्न कर जल जाने के धर्म के कारण कवि राजा के लिए इसका प्रयोग किया है। जायसी ने काव्य परम्परा से अपरिचित ाहीपशु का उल्लेख भी किया है। साही के अगणित काँटों से भरे शरीर को रूप के ारम्भ कवि बाणों से बिद्ध गढ़ के लिए देता है

सनत गगन जस देखिय घने तस मढ़ छूटहिं बानन्ह हने।
जानहु देखि साहि क राजा गढ़ भा गदर फुलाए पाँखा।

(२७४ ४२)

यहाँ गदर का प्रयोग भी नवीन है। कवि ने जल जीव मगर का भी एक चित्र ्या है। समुद्र में पद्मावती के विलय हो जाने के पश्चात कवि निरपस समुद्र को ्मगर कहता है जो जीव को खाने के बाद किनारे आकर निश्चिंत लेट जाता है

लील रहा अब ढीलि होइ पेटि पदारथ मेलि।
को उजियार करै जग झाँपा चन्द उपेलि।

(४६० ८-९)

लोक जीवन से गृहीत उपमानों का प्रयोग भी जायसी की नवीनता है। उसने ोबी रस्सी मेंड़ भाड़ में भुनते चने आदि के बड़े व्यंजक बिम्ब दिये हैं जो सर्वथा नवीन हैं। अश्रु बरसाते हुए नेत्रों के लिए उसने धोबी का बिम्ब दिया है जो वस्तु को ्ष्य बना देता है। उसने रहँट की घरी का बिम्ब भी दिया है। क्षण-क्षण पानी ोलने के व्यापार के कारण उसे श्वास के साम्य के लिए लिया है और क्षणिकता के कारण उसे जीवन के सादृश्य के लिए प्रयुक्त किया गया है

मुहम्मद जीवन जल भरन रहँट घरी की रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।

(४२ ८१)

विरहिणी रानी के लिए कवि ने भाड़ में भुनते चने का रूप दिया है उसकी विरह व्यथा में दग्ध अवस्था इससे अनुभूतिगम्य बन गई है। कवि ने मेंड़ का रूपक भी दिया है। उसकी पानी को रोकने की शक्ति के आधार पर इसका निर्माण हुआ है

बिरह दगधि हिय कर भरसायू, लहर बुन्द हुति कीन्ह भपायू।
धाता समुद यहि नहि बांधा, मैं होइ मेड़ भाव सिर काँधा।

(३०१ ,४२)

जीवन सम्बन्धी अनेक बिम्ब भी कवि ने प्रयुक्त किए हैं उसने मिट्टी के बर्तन, टठियार, कुम्हार रसायन सम्बन्धी धातु बनाने की क्रिया योगीसिद्ध ज्ञान सम्बन्धी, मैना सम्बन्धी बिम्ब दिए हैं जो कि नवीन हैं। मिट्टी के बर्तनों से कवि ने जीवन की नश्वरता व क्षणिकता की व्यंजना की है। परसराम में वह कहता है।

तस देखा मैं यह संसारा जस सब धोवा भई कोहारा।
कहुँ मांस पोत भरि धरई कहूँ मांस जो गोबर भरई।
(भग ४८)

रानी के लिए कवि ने ठठियार, माटी रसम पानी का बिम्ब दिया है जो नवीन है। कवि ने रसायनशास्त्र के बिम्ब भी दिये हैं उसकी सलोनी आदि क्रियाओं को वह बराबर प्रयुक्त करता है। यह काव्य परम्परा में एक नवीन उपकरण है

चंपावति जो रूप उत मोहा पदुमावति क जोति मन छोहा।
भै चाहै असि कथा सलोनी मिटी न जाइ लिखी जस होनी।
(३० १२)

—शराब बनाने का बिम्ब भी विरह व्यथा के लिए दिया गया है

बिरहैं बगय कीन्ह तन भाठी हाड़ जराइ दीन्ह जस काठी।
नैन नीर सो पोतो किया तस मद चुवा बरै जनु दिया।
(१५४ ५-७)

कवि ने बालस्थल के लिए स्याम (सीरिया)—रूमा (कुस्तुन्तुनिया) व भरद्वल की पहाड़ियों के बिम्ब दिये हैं जो नवीन हैं—

के कालिजरी बिरहु सताइ चली पयाग अरइल बिच आई।
(११४ ६)

सेना के प्रयाण का बिम्ब कवि ने अपनी अनुकरण वृत्ति के लिए दिया है जो नवीन है। दुल्हा पाहुना आदि भी पद्मावतकार ने प्रयुक्त किये हैं जो कवि की बिम्बगत नवीन वस्तु चयन की प्रवृत्ति का स्पष्टीकरण करते हैं।

समष्टि में जायसी में बिम्ब रूप में पर्याप्त नवीन उपकरणों का प्रयोग हुआ है। उसन लोक जीवन से संबंधित अनेक बिम्ब दिये हैं जो सभी काव्य परम्परा से अपरिचित होने के कारण नवीन कहे जा सकते हैं।

२ प्रयोग की नवीनता

जायसी ने प्राचीन उपकरणों का नवीन प्रयोग भी किया है। अनेक उपमान जो निरन्तर काव्य परम्परा में प्रयुक्त होते रहते हैं उनको भी कवि ने नये संदर्भों में प्रयुक्त किया है और उनसे नवीन भाव-व्यंजना की है। यह उपमान भी प्रयाग की नवीनता के कारण नवीन उपमान कहे जा सकते हैं।

असीम उपमानों में कवि ने समुद्र को बहुलायत से प्रयोग किया है। प्राचीन भावों के अतिरिक्त इसको नवीन सादृश्यता के लिए भी लाया गया है। उन्मत्तता और हिलोरों के कारण इसे यौवन का उपमान बनाया गया है।

तोर यौवन जस समुद हिलोरा, देख देख जिउ बूड़ै मोरा।
(३९९ ९)

जस जल भरे समुद सब गगन धरति मिलि एक।
धनि जोबन औगाह महँ दे बूड़त पिउ टेक।
(३४६ ८६)

विशालता के आधार पर शाह की असूझ सेना का उपमान भी समुद्र ही है। सरोवर से कवि ने हर्ष भाव की व्यंजना कराई है जो नवीन है

बिरह अगस्तो बिसमी भयऊ सरवर हरष सूखि सब गयऊ।
(२८७ ४)

छाड़ि गयहु सरवर महँ मोही सरवर सूखि गयऊ बिनु तोही।
केलि जो करत हंस उड़ि गयऊ बिनसर प्रीत सो बैरी भयऊ।
(३५३ २३)

जायसी ने नदी को भी चंचलता और उन्मत्तता के कारण यौवन का उपमान बनाया है यह भी सम्भवतः नदी का नवीन प्रयोग है।

जायसी में सूर्यास्त और सूर्योदय के बहुत अधिक और भाव व्यंजक बिम्ब दिए हैं सम्भवतः प्रयोग की दृष्टि से यह उपमान इस रूप में पहले कभी नहीं आये हैं। जायसी के काव्य में सूर्योदय से ऐश्वर्य तेज आदि की अनुभूति हुई है और सूर्यास्त से दुःख निराशा और पीड़ा की। सूर्यास्त के बिम्ब इस प्रकार हैं

राज पाव कर बरगहु सब दुम्ह सौं उजियार।
बैठ जोग रस लागहु कै न बसहु अंधियार।
(१२६ ८-९)

जाहु सूर बिन अथवा आहु रवि ससि बूड़ि।
जाहु आँखि बिन दीपक जाहु आनि हम चूड़ि।
(१९९ ८९)

जायसी ने मेघ उपमान को भी नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। मेघ की क्षणिकता के आधार पर वह इसे संसार में क्षणिक अस्तित्व रखने वाला झूठ कहता है। झूठ भी मेघ की भाँति क्षण भर में विलीन हो जाता है

यह संसार झूठ थिर नाहीं उठत मेघ जिउ जाहि बिलाहीं।
(अख २१)

जायसी ने ईश्वर-कर्त्ता को भी मेघ कहा है जिसकी परछाहीं पृथ्वी पर पड़ती है जो यथार्थ प्रतीत होती है पर उसकी यथार्थता भ्रम के कारण है उसी की मनि से परछाहीं प्रतिभासित होती है। संसार में व्याप्त भी परमात्मा रूपी मेघ की परछाहीं है। उसकी मनि से संसार प्रतिभास होता है

वै सब किछु करता किछु नाहीं जैसे चलै मेघ परछाहीं।
(अख १)

जायसी ने रूप के आधार पर [illegible] आदर्श [illegible] है। जायसी बिम्बों के यह सभी नवीन प्रयोग हैं।

वनस्पतीय बिम्बों में कवि ने फूल और काँटे के उपमान से नवीन भाव-व्यंजना की है। काँटा यहां कविता रूपी फूल के साथ सदा रहने वाली दरिद्रता का प्रतीक बन गया है

कहे लच्छि बाउर मति संगी कांटई कुलिस पुहुप के सगी।
(४४६ ७)

पशु पक्षियों में कवि ने प्रधानतः रूढ़ उपमानों को ही प्रयुक्त किया है। परन्तु कहीं-कहीं उनमें नवीन अर्थ व्यंजना भी आई है। बिल्ली पद्मावत में मृत्यु का प्रतीक बन गई है सर्वप्रथम सुग्गे के संदर्भ से मृत्यु को बिल्ली कहा गया है पर कालान्तर में यह प्रतीक बन गई है यह प्रयोग नवीन है। राक्षस के छलपूर्ण व्यवहार को दृश्य बनाने के लिए बगुले का बिम्ब लिया है जो नवीन प्रयोग है। जायसी ने पतिंगा उपमान को भी नवीन अर्थों में प्रस्तुत किया है। युद्ध की अग्नि में साहस पूर्वक जल जाने वाले हिन्दू सैनिकों के लिए यह पतिंगा उपमान को लाया है

रतनसेन है जौहर साजा हिंदुह माँह बड़ बड़ राजा।
हिंदुन्ह केर पतिंग कर लेखा, धीरे परहिं आगि जहु देखा।
(५२ ४५)

जायसी ने रानी नागमती के लिए सर्प उपमान का प्रयोग किया है जो एक नवीनता है यद्यपि उसका आधार उसका प्रतीकात्मक रूप और कुछ पंक्तों में नागमती नाम में 'नाग' शब्द का आना है परन्तु फिर भी प्रयोग की दृष्टि से यह एक नवीनता ही कही जायगी। नाग के बड़े समग्र चित्र नागमती के लिये प्रयुक्त हुए हैं—

नागमती कहूं अगम जनावा गै सो तपनि बरखा रितु आवा।
अहीं जो भुई नागनि जसि तचा बिछ पायें तन मह मैं सचा।
सब दुख जबु केंचुली गा छूटी अति निसरी जैस बीर बहूटी।
(४२१ ११)

जायसी ने जीवन के अनेक उपकरणों को भी नवीन सदर्भों में प्रयुक्त किया है। दीपक काव्य में एक बहु प्रयुक्त उपमान है जायसी ने उसे रूढ़ अर्थों में प्रयोग करने के साथ-साथ नवीन रूपों में प्रयोग किया है। वह दीपक को ज्ञान के लिए लाए हैं। जो संसार के अंधकार को दूर कर प्रकाश फैलाता है। चित्रमूर्ति कागज की पुतली स्वर्ण चित्र कपूर आदि जीवन संबंधी वस्तुएं भी नवीन अर्थों में ली हैं। कागज की पुतली का प्रयोग कबीर और 'उसमान'[१] ने भी किया है पर वहां उससे जीवन की असारता व्यक्त की गई है। जायसी ने मूर्छिता रानी के सोते सौन्दर्य को व्यक्त करने के लिए कागज की पुतली का प्रयोग किया है

कागर पुतरी जैस सरीरा पवन उड़इ परा मंझ नीरा।
उड़हिं झकोरि लहरि जलभीजी तबहूँ रूप रंग नाहीं छीजी।
(१६८, २१)

---

१ चित्रावली उसमान, पृ २४

कवि ने रानी के लिए चित्र-मूर्ति का उपमान भी दिया है। चित्र का उपमान [प्रा]ई वार्ताकार ने चित्रकारों के लिए दिया है[1] पर जायसी ने इसे मूर्छित रानी [के] लिए दिया है

मुरछि परी पदुमावति रानी कंह जिउ कंह पिउ आखै न बानी।
जानु चित्र मूरति गहि लाई पाहन परी रही तस ठाई।
(३६७ १२)

स्वर्ण—चित्र उपमान का प्रयोग जल में तैरने स्वर्णवर्णी पक्षियों के लिए हुआ [है] जो नवीन प्रयोग है।

प्रायः काव्य में मुख्यतः यह प्रयोग ही है परन्तु एक स्थान पर कवि ने बानी के [लि]ए खड्ग उपमान का नवीन प्रयोग किया है

कवि क जीभ खड्ग हिरवानी एक दिसि आग दोसर दिसि पानी।
(८०२ ५)

तलवार में शांति और युद्ध दोनों की शक्ति होती है कवि की कविता में भी [यु]द्ध और शांति दोनों का निवास है इसी आधार पर जायसी ने इसे प्रयोग किया है।

वाद्ययंत्रों में कवि ने सारंगी उपमान का नवीन प्रयोग किया है। विरह [वे]दना रानी के लिए वह सारंगी को लाया है जिससे सदैव प्रिय नाम की धुन उठती है

हाड़ भए सब किंगरी नसें भईं सब ताँति।
रोवँ रोवँ तन धुनि उठे कहौं बिथा केहि भाँति।
(३६१ ८-९)

मनबहलावों में कवि ने शतरंज और चौगान को महत्व से लिया है। इन सबके अतिरिक्त उनमें नवीन अर्थ व्यंजना भी हुई है। शतरंज के पैदल (मोहरा) को वह प्रेम लोभी शाह अलाउद्दीन के लिए प्रयोग करता है

पेम क लुबुध पयादे पाऊ चलै सौंह ताके फरजाऊ।
(५९७ ५)

उनके सामने शतरंज खेलते और दर्पण में प्रतिबिम्ब देखने के लिए दर्पण को सामने के आधार पैदल मोहरे की उपमा में दृष्ट हो गये हैं। जायसी ने चौगान को भी प्रेम सौन्दर्य के संदर्भ में रखा है जो नवीन है। इसके अतिरिक्त कवि ने बिजली, दाम्य, कपूर, तेल आदि को भी क्रमशः हाथ बदन दांत और रानी के नवीन संदर्भों में प्रयोग किया है। प्राचीन उपमानों के ये सभी नवीन प्रयोग कवि की कल्पना की उत्कृष्टता और सूक्ष्मता का परिचय देते हैं।

कवि द्वारा सादृश्य के लिए प्रयुक्त नवीन उपकरण और अन्य उपकरणों के नवीन प्रयोग कवि की कल्पना दृष्टि की सम्पन्नता के परिचायक हैं।

---

१ दिव्यदे वार्ता : नवकपाटम में अनुप्रयास पृष्ठ १ १०

समष्टि में कवि की बिम्ब योजना का परीक्षण अनेक दृष्टियों से करने के उपरान्त कवि की मूर्ति-विधायनी कल्पना की उत्कृष्टता को स्वीकार किया जा सकता है। उसकी उपमान योजना की सफलता बिम्बगत अनेक गुणों के आधार पर की जा सकती है उसकी उत्तेजकता तीव्रता नवीनता औचित्य कथा में योगदान आदि अनेक गुणों के कारण सफल कहा जा सकता है। परन्तु अनेक कारणों से उनकी उपमान योजना कहीं कहीं असफल भी हो गई है। उसमें भावानुपकारकता अनौचित्य आदि अवगुण आ गये हैं। जायसी सूफी कवि था। साहित्यिक परम्पराओं से भी उसका अच्छा परिचय था। इस कारण उसमें अनेक परम्परागत उपमान आ गये हैं। उसमें फारसी मसनवियों भारतीय प्रेमाख्यानकों साहित्यिक व सिद्ध नाथों की परम्परा से गृहीत उपमान सहज ही खोजे जा सकते हैं। परन्तु प्राचीन और परम्परागत उपमानों का सम्यक प्रयोग करने के साथ-साथ उसने नवीन उपमानों का बहुतायत से प्रयोग किया है। यह नवीनता सादृश्य के लिए नवीन उपकरणों का चयन और रूढ़ उपमानों के नवीन प्रयोग दोनो रूपों में देखी जा सकती है। समष्टि में जायसी की समस्त बिम्ब योजना उसकी कल्पना दृष्टि की परिचायक है।

अध्याय ७

बिम्ब एवं भावों के सम्बन्ध का विचार

प्रस्तुत अध्याय में जायसी के बिम्बों के सन्दर्भ से उनके विचारों एवं भावों का अध्ययन किया जायगा। यहाँ बिम्ब में भाव की आवृत्तियों उनके कारण बिम्बों द्वारा मान्यताओं का प्रकाशन और पद्मावत की रूपक योजना पर विचार प्रस्तुत किये जायेंगे।

१ विशिष्ट स्थलों पर बिंब का प्रयोग और उसका कारण

प्रत्येक कवि नाटककार या महाकाव्यकार अपने कृतित्व में बिम्बों का प्रयोग करता है और बहुतायत से करता है परन्तु यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक कवि उन्हीं निश्चित घटनाओं स्थलों और निश्चित भावों में बिम्बों का सर्जन करे वरन् बिम्बों के स्वरूप और उसके प्रयोग के स्थल का चयन उसकी अपनी रुचि के आधार पर होता है। यह मानदण्ड प्रत्येक कवि में भिन्न भिन्न होता है। कोई कवि उदय होते या अस्त होते सूर्य को देखकर अनेक रूपों की कल्पना करता है और अपने काव्य में बिंबों में उसकी अभिव्यक्ति करता है पर कोई कवि साधारण शब्दों में बस कह भर जाता है। रीतिकालीन कवि उषा संध्या रात्रि आदि का कोई चित्र नहीं देते थे पर छाया वादी कवि उसको मानवीकरण रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक सा समझते हैं। मध्य कालीन कवि समाज के मध्यम या निम्न वर्ग की ओर दृष्टिपात भी नहीं करते थे पर निराला भिखारी मजदूरिनी आदि तक का चित्र देना चाहते हैं। जायसी पद्मा वती के बिम्बों में अलौकिकता का अनुपम आभास देते हैं पर उसी प्रेमाख्यानक परम्परा के मंझन मधुमालती का एक भी ऐसा चित्र नहीं देते जहाँ लोकोत्तरता की अस्पष्ट छाया भी पड़ती हो। यह भिन्नता प्रत्येक युग और प्रत्येक कवि में देखी जा सकती है। इसका प्रमुख कारण है, वैयक्तिक भिन्नता जो उनके संस्कार, रुचि वैविध्य विचार, भावनात्मक प्रसार, जीवन के साथ तादात्म्य करने की क्षमता आदि अनेक कारणों से उत्पन्न होती है।

प्रत्येक कवि के लिए यह आवश्यक नहीं कि वह एक निश्चित भाव में निश्चित सीमा तक या निश्चित वातावरण में निश्चित स्थिति तक भाव विभोर हो सके वरन् प्रत्येक कवि के भाव और सीमाएँ भिन्न होती हैं भूषण जैसे वीर रस में ही बिम्ब दे सके और मतिराम बिहारी आदि केवल शृंगार में इसका कारण उनके हृदयगत, प्रधान भाव की भिन्नता है। वस्तुतः कवि का 'प्रकृतिस्थ भाव' जिसमें उसे जीवन में

सबसे अधिक प्रभावित किया है या सबसे अधिक अनुभव उसने किया है उसको काव्य में भी भाव विभोर कर सकता है और अनायास ही उससे सुन्दर बिम्बों की सर्जना करवा सकता है। इसी प्रकार वही घटनाएं परिस्थितियां और वातावरण उससे काव्य में भी बिम्ब प्रस्तुत करवाते हैं। जिनसे जीवन में भी कवि ने रागात्मक सम्बन्ध स्थापित किया है जिसका उसने तीव्रता से अनुभव किया हो अथवा जिसने उसके मानस पटल पर एक अमिट चिन्ह बनाया हो। इस तरह उसकी कथा में बिंबों का प्रयोग उसके प्रकृतिस्थ भाव और रागात्मक सम्बन्ध के आधार पर हम कवि के व्यक्तित्व की कल्पना सहज ही कर सकते हैं। उसके बिम्बों के प्रयोग स्पष्ट करते हैं कि वह निराशावादी है या आशावादी है मुक्तभोगी है या प्रेम पीरसे पीड़ित है भौतिकतावादी है या रहस्यवादी भक्त है अथवा साधक आदि। प्रस्तुत अध्ययन में हम जायसी में बिंबों के प्रयोग के आधार पर उसकी रागात्मकता एवं उसके व्यक्तित्व के स्वरूप का अध्ययन करेंगे।

जायसी ने उन्हीं स्थलों पर एवं उन्हीं भावों के संदर्भ में श्रेष्ठ और अधिक बिम्ब दिये हैं जिससे उसके जीवन की कुछ विशेष निकटता थी। बिम्बों के उत्कृष्ट प्रयोग द्वारा उसने किन्हीं विशेष घटनाओं को इसीलिए प्रधानता दी कि उनका उसने जीवन में तीव्रता से अनुभव किया था और उन घटनाओं ने उसके जीवन को एक अमिट स्मृति तीव्रतम अनुभूति दी थी। पद्मावत की कथा में विशिष्ट स्थलों पर प्रयुक्त बिंब इसको स्पष्ट करते हैं। पद्मावत की कथा के अनुसार निम्नांकित स्थलों पर जायसी ने सफल और उत्कृष्ट बिम्बों का प्रयोग किया है।

(१) द्वीप वर्णन में और वहाँ के ताल तालाबों वापी मानसरोवर आदि के वर्णन में।

(२) पद्मावती के जन्म के समय।

(३) पद्मावती का सखियों के साथ मानसरोवर गमन और स्नान पर।

(४) नागमती द्वारा अपने सौन्दर्य के विषय में पूछे गये प्रश्न के उत्तर स्वरूप सुग्गे के उत्तर के समय।

(५) सुग्गे द्वारा राजा के समक्ष पद्मावती की चर्चा करते समय और नख शिख का वर्णन करने में।

(६) प्रेम पूरित विरही राजा की अवस्था के वर्णन में।

(७) राजा के देश से प्रस्थान करते समय।

(८) समुद्र वर्णन में।

(९) राजा के सिंहलद्वीप आगमन पर द्वीप का स्वरूप वर्णित करने में।

(१०) राजा के दर्शन के उपरान्त पद्मावती का प्रेम उत्पन्न होने पर विरहिणी रानी के वर्णन में।

(११) राजा का संदेश लेकर आये सुग्गे के आगमन पर रानी की प्रसन्नता के वर्णन में।

(१२) बसन्त वर्णन में।

(१३) महादेव द्वारा गढ़ के वर्णन में।

(१४) रत्नसेन और पद्मावती के विवाह के वर्णन में।

(१५) संयोग के समय षट् ऋतु वर्णन में।

(१६) नागमती के विरह-वर्णन में।

(१७) पक्षी द्वारा राजा को सन्देश देते समय नागमती व समस्त देश की निराशा व दुःख के वर्णन में।

(१८) समुद्र यात्रा में राक्षस के आगमन पर।

(१९) नाव डूब जाने पर पाटे के सहारे सागर में बहती रानी के वर्णन और उसके विरह का वर्णन करने में।

(२०) रत्नसेन के चित्तौड़ आगमन पर नागमती की प्रसन्नता और सपत्नी के प्रति द्वेष का वर्णन करने में।

(२१) राघव चेतन द्वारा प्रथम दर्शन पर रूप वर्णन और अलाउद्दीन के समक्ष पद्मावती का रूप वर्णन करने के समय।

(२२) बादशाह की चढ़ाई और राजा के युद्ध के समय।

(२३) बादशाह को गढ़ दिखाने के समय।

(२४) इस मित्रता पर गोरा बादल के क्रोध और विवशता के वर्णन में।

(२५) राजा और बादशाह के शतरंज खेलने और पद्मावती के झरोखे से झाँकने व बादशाह की अवस्था के वर्णन करने में।

(२६) रत्नसेन के बन्धन पर नागमती और पद्मावती के विरह वर्णन में।

(२७) पद्मावती का गोरा बादल को दुःख प्रकट करना व गोरा बादल का आश्वासन देना।

(२८) गोरा बादल के युद्ध के समय।

(२९) रत्नसेन के आगमन पर पद्मावती के पुनः मिलन के समय।

(३०) राजा की मृत्यु और दोनों रानियों के विलाप और दुःख वर्णन करने में।

इन बिम्बों के प्रयोग के स्थलों को देखने से स्पष्ट होता है कि जायसी ने मुख्यतः रति सौन्दर्य विरह प्रेम और करुणा एवं शान्ति के स्थलों पर अच्छी बिम्ब योजना की है। इनमें विरह वर्णन में सबसे अधिक और उत्कृष्ट बिम्ब हैं। भावों के आधार पर बिम्बों के अध्ययन में भी हमने देखा था कि जायसी ने विरह और संयोग शृंगार में सबसे अधिक बिम्ब दिये थे यहाँ भी यथावस्तु में भी वह शृंगार—संयोग और वियोग के स्थलों पर ही उत्कृष्ट बिम्ब योजना करता प्रतीत होता है वस्तुतः प्रेम या शृंगार जायसी का सर्वोत्कृष्ट भाव है जायसी का हृदय उसमें सबसे अधिक रमता है और वही जायसी के सबसे निकट भी है। विरह और प्रेम के स्थलों पर हुई

पहिरे ससि नखतन्ह कै मारा धरती सरग भयऊ उजियारा।
(४५१ १)

और

का बरनौ आभरन उर हारा ससि पहिरे नखतन्ह कै मारा।
चीर चार औ चन्दन चोला हीर हार नग लाग अमोला।
(२११ १२)

नखत्रों के अतिरिक्त चाँद को नखत मंडल की पृष्ठभूमि में भी चित्रित किया गया है। मिलनोपरान्त रानी के पास जिज्ञासा वश समस्त रनिवास इस प्रकार बैठा है जैसे नखत मण्डल ससि को घेरे हुए हो

सब रनिवास बैठ चहु पासा ससि मंडल जनु बैठ अकासा।

इस पृष्ठभूमि के अतिरिक्त भी जायसी ने केवल चाँद के रूप में पद्मावती का उल्लेख किया है। कहीं कहीं उसे लोकोत्तर सौन्दर्य कहीं निष्कलंकता कहीं ग्रहण ग्रस्त मलिनता का रूप दिया है। सर्वप्रथम मान सरोवर खंड में पद्मावती का चन्द्र रूप आया है

सरवर तीर पदुमिनि आई खोंपा छोर केस मोकराई।
ससि मुख अंग मलैगिरि रानी नागन्ह झाँपि लीन्ह अरघानी।
ओनए मेघ परी जग छाँहा ससि कै सरन लीन्ह जनु राहाँ।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा लै निसि नखत चाँद परगसा।
भूल चकोर दिस्टि तहु लाना, मेघ घटा महँ चंद दिखावा।
सरवर रूप बिमोहा हिया हिलोर करेई।
पाँव छुवै मकु पावौं एहि मिसु लहरै देई।
(९१ १-७)

यहाँ कवि की दृष्टि पद्मावती के चन्द्र रूप के साथ उसके प्रभाव पर भी गई है। यहाँ पद्मावती के रूप की लोकोत्तरता का प्रतिपादन है। सम्भवतः यहाँ कवि के मन में चन्द्र के प्रकाश से पूर्णिमा के दिन ज्वार आ जाने की कल्पना रही है। यही पूरा चित्र कवि यहाँ प्रस्तुत करना चाहता है जिसे हम रूप की लोकोत्तरता के अन्तर्गत रखते हैं। पूर्णिमा के चन्द्र के रूप में पद्मावती की कल्पना कई स्थलों पर हुई है

तेहि मंडल मूरत मैं देखी बिनु तन बिनु जिय जाइ बिसेखी।
चाँद संपूरन जनु होइ तपी पारस रूप दरस दै छपि।
(३७१ ५ १)

और

पदुमावती भै पूनिउ कला चौदह चाँद उई सिंहला।
(११८ २)

ख

पदुमावति जौ संवरै लीन्ही पूनिउ राति दैउ अस कीन्ही।
(२६७ १)

राजा की मृत्यु के उपरान्त वही पूर्णिमा के चाँद सदृश रानी अमावस्या के कारण मलिन हो जाती है

सूरज छपा रैनि होइ गई पूँनिउ ससि सो अमावस भई।
(६४८ २)

पद्मावती के कलंक रहित सौन्दर्य को भी निष्कलंक चन्द्र के सदृश बताया गया है। संयोग के उपरान्त मलिन हुई रानी के लिए जायसी ने चन्द्र का रूपक दिया है

चाँद जैस धनि हुति परगासी सहस करा होइ सुरुज गरासी।
तेहि की झार गहन अस गही भ निरमल मुख जोति न रही।
(१२८ ४ ५)

सौन्दर्य की कांति अथवा प्रकाश के लिये भी चाँद उपमान लाया गया है। जायसी की कल्पना है कि पद्मावती प्रकाशवान चन्द्र है जिसके आलोप अथवा अदृश्य होने से संसार में अंधकार छा जाता है। समुद्र में पद्मावती के डूब जाने पर राजा कहता है

लीन रहा मन लीन होइ वेटि पदारथ मोलि।
को उजियार करै जग झाँपा चाँद जोति।
(४०१ ८-९)

दूती कुमुदनी भी रानी से कहती है

कुमुदनी कंठ लागी सुठि रोई पुनि लै रोग बारि मुख धोई।
तू ससि रूप जगत उजियारी मुख न झाँपु निसि होइ अंधियारी।
(४०८ ८ ९)

यहाँ एक ओर रानी के अपूर्व सौन्दर्य की व्यंजना होती है दूसरी ओर उसकी लोकोत्तरता आत्मप्रकाश के अभाव में संसार के प्रकाश अथवा अन्धकार की अभिव्यंजना भी होती है। इसी कारण यह रूपक विशेष सफल है।

स्पष्ट है कि जायसी ने चन्द्र का रूपक पद्मावती के लिए अनेक रूपों और अनेक रूपों में लिया है। यहाँ ध्यान देने की बात है कि चन्द्र का यह रूपक कवि की अपनी कल्पना को ही अधिक प्रस्तुत करता है किसी विशेष परम्परा को नहीं। इसके निर्माण में कवि के अनेक संस्कारों अनेक प्रभावों एवं अनेक विचारों का योगदान है। हमारे साहित्य में चन्द्र उपमान एक बहु प्रयुक्त रूढ़ उपमान है परन्तु जायसी में उसका प्रयोग रूढ़ है। हमारे साहित्य में वह सदैव से नायिका के केवल मुख का उपमान रहा समग्र नायिका का नहीं। परन्तु जायसी ने पद्मावती के मुख के लिए ही रूढ़ नहीं रहा है वरन् उसकी कल्पना में पद्मावती स्वयं चन्द्र का रूप है। यह कवि

पहिरै ससि नखतन्ह कै मारा धरती सरग भयउ उजियारा ।
(४५१ १)

और

का बरनौं आभरन अरु हारा ससि पहिरे नखतन्ह कै मारा ।
चीर चारु औ चन्दन चोला हीर हार नग लाग अमोला ।
(२९९ १२)

नक्षत्रों के अतिरिक्त चांद को सखि मंडल की पृष्ठभूमि में भी चित्रित किया गया है। मिलनोपरान्त रानी के पास जिज्ञासा वश समस्त रनिवास इस प्रकार बैठा है जैसे शशि मण्डल शशि को घेरे हुए हो

सब रनिवास बैठ चहु पासा ससि मंडल जनु बैठ अकासा ।

इस पृष्ठभूमि के अतिरिक्त भी जायसी ने केवल चांद के रूप में पद्मावती का उल्लेख किया है। कहीं कहीं उसे लोकोत्तर सौन्दर्य कहीं निष्कलंकता कहीं ग्रहण ग्रस्त मलिनता का रूप दिया है। सर्वप्रथम मान सरोदक खंड में पद्मावती का चन्द्र रूप आया है

सरवर तीर पदुमिनि आई खोंपा छोरि केस मोकराई ।
ससि मुख अंग मलैगिरि रानी नागन्ह झांपि लीन्ह अरघानी ।
ओनए मेघ परी जग छांहा ससि कै सरन लीन्ह जनु राहा ।
छपि गै दिनहि भानु कै दसा लै निसि नखत चांद परगसा ।
भूल चकोर दिस्टि तहु लावा, मेघ घटा मंह चांद दिखावा ।
सरवर रूप बिमोहा हिया हिलोर करेई ।
पांव छुवै मकु पावौं यहु मिसु लहरैं लेई ।
(६१ १-७)

यहां कवि की दृष्टि पद्मावती के चन्द्र रूप के साथ उसके प्रभाव पर भी गई है। यहां पद्मावती के रूप की लोकोत्तरता का प्रतिपादन है। सम्भवतः यहां कवि के मन में चन्द्र के प्रकाश से पूर्णिमा के दिन ज्वार आ जाने की कल्पना रही है। यही पूरा चित्र कवि यहां प्रस्तुत करना चाहता है जिसे हम रूप की लोकोत्तरता के अन्तर्गत रखते हैं। पूर्णिमा के चन्द्र के रूप में पद्मावती की कल्पना कई स्थानों पर हुई है

तेहि मंडल पूरन मैं देखौं बिनु तन बिनु जिय जाय बिसेखौं ।
चांद संपूरन जनु होइ तपी पारस रूप दरस दै छपि ।
(५७१ २६)

और

पदुमावती भै पूनिउ कला चौदह चांद उई सिंहला ।
(३६८ २)

ख

पदुमावति की संवरि सोम्ही, पु निब राज दैय अस दीन्हों।

(२६७ १)

राजा की मृत्यु के उपरान्त वही पूर्णिमा के चांद सदृश रानी अमावस्या के कारण मलिन हो जाती है

सूरज छपा रैनि होइ गई पू निउ ससि सो अमावस भई।

(६४८ २)

पद्मावती के कलंक रहित सौन्दर्य को भी निष्कलंक चन्द्र के सदृश बताया गया है। संयोग के उपरान्त मलिन हुई रानी के लिए जायसी ने चन्द्र का रूपक दिया है

चांद जैस धनि बैठ तरासी सहस करा होइ सुरुज गरासी।
तेहि की झार गहन अस गही भ निरंग मुख जोति न रही।

(३२८ ४ ५)

सौन्दर्य की कांति अथवा प्रकाश के लिए भी चांद उपमान लाया गया है। जायसी की कल्पना है कि पद्मावती प्रकाशवान चन्द्र है जिसके आलोप अथवा अदृश्य होने से संसार में अंधकार छा जाता है। समुद्र में पद्मावती के डूब जाने पर राजा कहता है

जौन रहा जग दीप होइ पैठि पतारह बेलि।
को उजियार करै जग आंधा चांद उपेलि।

(४ १ ८ ६)

दूती कुमुदनी भी रानी से कहती है

कुमुदनी कंठ लागी सुठि रोई पुनि लै रोय बारि मुख धोई।
ए ससि रूप जगत उजियारी मुख न झांपु निसि होइ अंधियारी।

(४०८ ८ ६)

यहां एक ओर रानी के अपूर्व सौन्दर्य की व्यंजना होती है दूसरी ओर उसकी ज्योतिर्मय आत्मप्रकाश के अभाव में संसार के अज्ञान अथवा अन्धकार की अभिव्यंजना भी होती है। इसी कारण यह रूपक विशेष सक्षम है। स्पष्ट है कि जायसी ने चन्द्र का रूपक पद्मावती के लिए अनेक स्थलों और अनेक रूपों में दिया है। यहां ध्यान देने की बात है कि चन्द्र का यह रूपक कवि की अपनी कल्पना को ही अधिक प्रस्तुत करता है किसी विशेष परम्परा को नहीं। इसके निर्माण में कवि के अनेक संस्कारों अनेक प्रभावों एवं अनेक विचारों का योगदान है। हमारे साहित्य में चन्द्र उपमान एक बहु प्रयुक्त रूढ़ उपमान है परन्तु जायसी में उसका प्रयोग रूढ़ है। हमारे साहित्य में वह सदैव से नायिका के केवल मुख का उपमान रहा समग्र नायिका का नहीं। परन्तु जायसी ने पद्मावती के मुख के लिए ही चन्द्र नहीं कहा है वरन् उसकी कल्पना में पद्मावती स्वयं चन्द्र का रूप है। यह कवि

की मौलिकता है। जैसा पहले कहा जा चुका है कवि की इस मौलिकता इन नवीन उद्भावनाओं का कारण उसके कई संस्कार विचार और प्रभाव हैं यह उन सबका एक मिश्रित निर्माण है।

मूलतः यह भी चन्द्र सूर्य के विराट रूपक का एक अंश है। योगियों और सिद्धों की परम्परा में ही सूर्य चन्द्र पुरुष और स्त्री के उपमान बने हैं अन्यथा ऐसा कहीं नहीं हुआ है। जायसी ने उसके प्रतीकों की इस परम्परा से प्रभावित होकर अपने काव्य में इनका स्त्री पुरुष के रूप में (पद्मावती व रत्नसेन) प्रयोग कर दिया है। परन्तु उसका व्यक्तित्व सिद्ध और योगियों की भाँति रूक्षता की ओर उन्मुख न होकर सरसता का प्रतिपादक था वह सच्चे अर्थों में कलाकार कवि था इसी कारण उसने अपनी उत्कृष्ट कल्पना के द्वारा इसे केवल योगियों और सिद्धों की रूढ़ परम्परा के रूप में प्रयोग न करके उसमें सरसता लोकोत्तरता और सौन्दर्य का समावेश किया। उसकी नक्षत्र और चन्द्र की कल्पना जो पद्मावती और उसकी सखियों के लिए काव्य में बार-बार आई है उसके कलाकार रूप को प्रकट करती है जिसमें पृष्ठभूमि के प्रति उसका मोह उसकी नायिका के रूप सौन्दर्य लावण्य को पृष्ठभूमि के विरोध (कन्ट्रास्ट) या उसके संदर्भ में रखकर कई गुना बढ़ा देता है। चन्द्र और तारागणों के नदी में स्नान करने का दृश्य स्वर्गिक लगता है। सारा आकाश ही पृथ्वी पर उतर आया है। इस पृष्ठभूमि के कारण पद्मावती के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि हुई है। रत्नसेन के रूप में सूर्य को मान के अन्तर्गत भी कवि की कलाकार वृत्ति का परिचय मिलता है। उसका मूल यद्यपि चन्द्र सूर्य के विराट रूपक में ही है परन्तु उसके प्रयोग ने उसे नवीन बना दिया है। राजा की महत्ता उसके प्रेम का प्रकाश आदि उससे ध्वनित हुए हैं।

पद्मावती की चन्द्र के रूप में कल्पना एक ओर कवि की मौलिकता को प्रकट करती है दूसरी ओर उसके विचारों का भी सम्यक विवेचन प्रस्तुत करती है। इसका मूल भी सिद्ध योगियों के प्रभाव से गृहीत उस रूपक में है पर जायसी ने उसका जैसा प्रयोग कम किया है। इस बिम्ब को जायसी ने अपना मनचाहा मौलिक रूप दिया है। चन्द्र सदैव से ही प्रेम का प्रतीक रहा है। पाश्चात्य और प्राच्य दोनों ही साहित्यों में अपनी स्निग्धता और शीतल सौन्दर्य के कारण यह जीवन की मनोरम वृत्तियों का प्रतीक है। यह रूप सौन्दर्य और प्रेम का एक आदर्श रहा है। जायसी के प्रेम का आदर्श भी चन्द्र है

> रहै जो पिय के आयसु औ बरतै होइ हीन।
> सोइ चाँद अस निरमर जरम न होइ मलीन।
>
> (६० ८-२)

सम्भवतः रूप सौन्दर्य और प्रेम का आदर्श दिखाने के लिए ही जायसी ने पद्मावती के लिए यह रूपक दिया है। जायसी के दिए हुए रूपक के अनुसार भी

पद्मावती को जीवन की ऊर्ध्वगामी मंगलकारी वृत्ति कहा जा सकता है जो स्वयं ब्रह्म स्वरूप है। चन्द्र के रूप में कवि की पद्मावती विषयक लोकोत्तर भावना का भी सुन्दर प्रकाशन हुआ है। चन्द्र रूपी रानी का सरोवर पर जाना और सरोवर का उद्वेलित होना यह उसके पाँव का स्पर्श करना चाहता है सब कवि की लोकोत्तर भावना का परिचय देते हैं जो रूपक अथवा बिम्ब द्वारा ही प्रकट हुई है। समष्टि में चन्द्र सूर्य का रूपक कथा व सुगठित और विचारों की परम्परा से पुष्ट है। यह कवि के सौन्दर्य सर्जन और सिद्धान्तों की शक्ति दोनों को ही प्रकट करता है। रूपक अपने समग्र स्वरूप में बड़ा विराट् है और अंश रूप से अनेक तथ्यों का प्रकाशन करते हुए भी एक ही मूल उद्गम से निसृत है। वस्तुत यह जायसी के विचारों और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से एक बड़ा (कम्प्लेक्स इमेज) मिश्रित रूपक है।

(२) ज्योति के बिम्ब

जायसी ने पद्मावती के लिए ज्योति के बिम्बों को अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है। पद्मावती के लिए दीपक सूर्य-किरण चन्द्र सूर्य बिजली आदि उपमान बराबर ही प्रयुक्त हुए हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि जायसी ने नागमती के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखते हुए भी एक ही स्थल पर उसके लिए ज्योति या प्रकाश का कोई रूपक नहीं दिया है। इससे प्रकट होता है कि जायसी ने पद्मावती के ये प्रकाश के बिम्ब सप्रयोजन रखे हैं चाहे यह प्रयोजन कवि के सम्मुख वैसा स्पष्ट न रहा हो जैसे उसके सिद्धान्त कथानक आदि परन्तु उसके मानस में इसका रूप अवश्य ही बड़ा स्पष्ट रहा होगा। जायसी ने पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक अथवा आत्मा या ब्रह्म का रूप माना है। उसके प्रकाश के बिम्ब उसके इस स्वरूप का आभास देते हैं विश्व के सभी साहित्यों और सभी धर्मों में ब्रह्म अथवा विराट् अनन्त शक्ति के स्वरूप के लिए केवल एक ही रूप एक ही चित्र सामने आता है और वह है—अनन्त प्रकाश का। संभवतः सभी दार्शनिकों अथवा धार्मिकों जिन्होंने इस अनन्त तत्व को देखने की कामना की उसे केवल अपार ज्योति के रूप में देख पाए। वैदिक काल से आज तक के सभी साधक उस अनन्त तत्व को ज्योति रूप ही मानते आए हैं। भारतीय धर्मों आदि में भी यही मान्यता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' हमारा वेदवाक्य है। उपनिषद् वेदान्त आदि में भी यही कहा गया है। हमारे आराध्य देवता अथवा महान पुरुष के सिर के चारों ओर बना तेजोमय चक्र भी इसी कारण है सम्भवतः वह उनके अनन्त ज्योति के अंश का प्रतीक है। इस्लाम मत के अनुयायी मूसा भी नूर पर अनन्त प्रकाश के ही कायल हुए थे।

आधुनिक युग का कवि वर्ड्सवर्थ भी कल्पना के लिए उस ज्योति की कल्पना करता है जो न पृथ्वी पर है न समुद्र में।[१] कल्पना की अनुभूति करने वाला कवि

---

१ The light that never was on sea or land—quoted by C M Bowra —Inspiration and poetry p 12

की मौलिकता है। जैसा पहले कहा जा चुका है कवि की इस मौलिकता इन नवीन उद्भावनाओं का कारण उसके कई संस्कार विचार और प्रभाव हैं यह उन सबका एक मिश्रित निर्माण है।

मूलतः यह भी चन्द्र सूर्य के विराट रूपक का एक अंश है। योगियों और सिद्धों की परम्परा में ही सूर्य चन्द्र पुरुष और स्त्री के उपमान बने हैं अन्यथा ऐसा कहीं नहीं हुआ है। जायसी ने उसके प्रतीकों की इस परम्परा से प्रभावित होकर अपने काव्य में इनका स्त्री पुरुष के रूप में (पद्मावती व रत्नसेन) प्रयोग कर दिया है। परन्तु उसका व्यक्तित्व सिद्ध और योगियों की भाँति रूढ़ता की ओर उन्मुख न होकर सरसता का प्रतिपादक था वह सच्चे अर्थों में कलाकार कवि था इसी कारण उसने अपनी उत्कृष्ट कल्पना के द्वारा इसे केवल योगियों और सिद्धों की रूढ़ परम्परा के रूप में प्रयोग न करके उसमें सरसता लोकोत्तरता और सौन्दर्य का समावेश किया। उसकी नक्षत्र और चन्द्र की कल्पना जो पद्मावती और उसकी सखियों के लिए काव्य में बार-बार आई है उसके कलाकार रूप को प्रकट करती है जिसमें पृष्ठभूमि के प्रति उसका मोह उसकी नायिका के रूप सौन्दर्य लावण्य को पृष्ठभूमि के विरोध (कन्ट्रास्ट) या उसके संदर्भ में रखकर कई गुना बढ़ा देता है। चन्द्र और तारागणों के नदी में स्नान करने का दृश्य 'स्वर्गिक' लगता है। सारा आकाश ही पृथ्वी पर उतर आता है। इस पृष्ठभूमि के कारण पद्मावती के सौन्दर्य में अपूर्व वृद्धि हुई है। रत्नसेन के रूप में सूर्य को मान के अन्तर्गत भी कवि की कलाकार वृत्ति का परिचय मिलता है। उसका मूल यद्यपि चन्द्र सूर्य के विराट रूपक में ही है परन्तु उसके प्रयोग ने उसे नवीन बना दिया है। राजा की महत्ता उसके प्रेम का प्रकाश आदि उससे ध्वनित हुए हैं।

पद्मावती की चन्द्र के रूप में कल्पना एक ओर कवि की मौलिकता को प्रकट करती है दूसरी ओर उसके विचारों का भी सम्यक विवेचन प्रस्तुत करती है। इसका मूल भी सिद्ध योगियों के प्रभाव से गृहीत उस रूपक में है पर जायसी ने उसका वैसा प्रयोग कम किया है। इस बिम्ब को जायसी ने अपना मनचाहा मौलिक रूप दिया है। चन्द्र सदैव से ही प्रेम का प्रतीक रहा है। पाश्चात्य और प्राच्य दोनों ही साहित्यों में अपनी स्निग्धता और शीतल सौन्दर्य के कारण यह जीवन की मनोरम वृत्तियों का प्रतीक है। यह रूप, सौन्दर्य और प्रेम का एक आदर्श रहा है। जायसी के प्रेम का आदर्श भी चन्द्र है

रहै जो पिउ के आयसु औ बरतै होइ लीन।
सोइ चाँद अस निरमर, जरम न होइ मलीन।

(६० ८-९)

सम्भवतः रूप सौन्दर्य और प्रेम का आदर्श दिखाने के लिए ही जायसी ने पद्मावती के लिए यह रूपक लिया है। जायसी के लिए हुए रूपक के अनुसार भी

पद्मावती को जीवन की ऊर्ध्वगामी मंगलकारी वृत्ति कहा जा सकता है जो स्वयं ब्रह्म स्वरूप है। चन्द्र के रूप में कवि की पद्मावती विषयक लोकोत्तर भावना का भी सुन्दर प्रकाशन हुआ है। चन्द्र रूपी रानी का सरोवर पर आना और सरोवर का उद्वेलन मानो वह उसके पांव का स्पर्श करना चाहता है सब कवि की लोकोत्तर भावना का परिचय देते हैं जो रूपक अथवा बिम्ब द्वारा ही प्रकट हुई है। समष्टि में चन्द्र सूर्य का रूपक कथा से सुगठित और विचारों की परम्परा से पुष्ट है। यह कवि के सौन्दर्य सृजन और सिद्धान्तों की शक्ति दोनों को ही प्रकट करता है। रूपक अपने समग्र स्वरूप में बड़ा विराट है और अंश रूप से अनेक तथ्यों का प्रकाशन करते हुए भी एक ही मूल उद्गम से निसृत है। वस्तुतः यह जायसी के विचारों और अभिव्यक्ति दोनों ही दृष्टियों से एक बड़ा (कम्प्लेक्स इमेज) मिश्रित रूपक है।

(२) ज्योति के बिंब

जायसी ने पद्मावती के लिए ज्योति के बिंबो को अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है। पद्मावती के लिए दीपक सूर्य-किरण चन्द्र सूर्य बिजली आदि उपमान बराबर ही प्रयुक्त हुए हैं। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि जायसी ने नागमती के प्रति हार्दिक सहानुभूति रखते हुए भी एक ही स्थल पर उसके लिए ज्योति या प्रकाश का कोई रूपक नहीं दिया है। इससे प्रकट होगा है कि जायसी ने पद्मावती के ये प्रकाश के बिम्ब सप्रयोजन रखे हैं चाहे यह प्रयोजन कवि के सम्मुख वैसा स्पष्ट न रहा हो जैसे उसके सिद्धान्त कथानक आदि परन्तु उसके मानस में इसका रूप अवश्य ही बड़ा स्पष्ट रहा होगा। जायसी ने पद्मावती को बुद्धि का प्रतीक अथवा आत्मा या ब्रह्म का रूप माना है। उसके प्रकाश के बिंब उसके इस स्वरूप का आभास देते हैं विश्व के सभी साहित्यों और सभी दर्शनों में ब्रह्म अथवा विराट अखण्ड शक्ति के स्वरूप के लिए केवल एक ही रूप एक ही चित्र सामने आया है और वह है—अनन्त प्रकाश का। संभवतः सभी दार्शनिकों अथवा धार्मिकों जिन्होंने इस अखण्ड तत्व को देखने की कामना की उसे केवल अखण्ड ज्योति के रूप में देख पाए। वैदिक काल से आज तक के सभी मानव उस अखण्ड तत्व को ज्योति रूप ही मानते आए हैं। भारतीय धर्मों आदि में भी यही मान्यता है। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय' हमारा वेदवाक्य है। उपनिषद वेदान्त आदि में भी यही कहा गया है। हमारे प्रत्येक देवता अथवा महान पुरुष के सिर के चारों ओर बना तेजोमय वृत्त भी इसी कारण है सम्भवतः वह उनके अखण्ड ज्योति के अंश का प्रतीक है। इस्लाम मत के अनुयायी मूसा को तूर पर अखण्ड प्रकाश के ही दर्शन हुए थे।

आधुनिक युग की कवि वर्डसवर्थ भी अमरत्व के लिए उस ज्योति की कल्पना करता है जो न पृथ्वी पर है न समुद्र में।[1] अमरत्व की अनुभूति करने वाला कवि

[1] The light that never was on sea or land—quoted by C.M Bowra
—Inspiration and poetry p 12

हेनरी वेघन भी कहता है

I saw Eternity the other night
Like a great Ring of pure and endless light
All calm as it was bright,
And round beneth it time in hours days years
Driven by the spheres
Like a vast shadow mov d in which the world
And all here train were hurl d.[1]

संभवतः परमात्मा के ज्योति स्वरूप होने की यह कल्पना प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में है और रही है। इस तरह यह धारणा एक लोक परम्परा है। जायसी ने भी परमात्मा के ज्योति रूप होने का यह विचार अपने संस्कारों में पाया होगा। उनके संस्कारों के अतिरिक्त भी सूफी धर्म जिसके सिद्धान्तों को उन्होंने अपने जीवन के सबसे निकट पाया था में भी परमात्मा की कल्पना ज्योति के रूप में की गई है। खुदा का नूर अथवा प्रकाश मुसलमानों का एक आदरणीय शब्द है। कुरान में भी खुदा को प्रकाश रूप कहा गया है। कुरान कहता है 'वह परमात्मा आकाश और पृथ्वी की ज्योति है। आले में रखे हुए दीपक की भाँति उसका प्रकाश है। वह दीपक एक शीशे के भीतर है और वह शीशा मानो एक चमकता हुआ सितारा है परमात्मा जिसे चाहता है अपनी ज्योति की ओर अग्रसर करता है।'[2] जायसी की पद्मावती विषयक ज्योति रूप की कल्पना सूफी धर्म से भी प्रभावित रही है कुछ सूफी धर्म के बिम्बों का जायसी ने ज्यों का त्यों प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त जायसी स्वयं भी पद्मावती के लिए जो कि उनके मत से ब्रह्म का प्रतीक है ज्योति के उपमान ही चुन पाये हैं। ज्योति के बिम्बों में सर्वाधिक प्रयुक्त बिम्ब चन्द्र का है, जो रूप की अपूर्वता के साथ साथ लोकोत्तरता की रक्षा भी करता है। चन्द्र के बिम्ब का अध्ययन पहले ही सूर्य चन्द्र के संदर्भ में हो चुका है अतः यहाँ इसका विवेचन व्यर्थ होगा। प्रस्तुत अध्ययन में हम ज्योति के अन्य रूपों दीपक सूर्य सूर्य किरण और बिजली आदि का अध्ययन करेंगे।

जायसी ने पद्मावती को दीपक रूप में प्रस्तुत किया है। दीपक के रूप में वह इस्लाम की उस धारणा के बहुत निकट है जिसके अनुसार परमात्मा या खुदा के प्रकाश को आले में रखे हुए दीपक की भाँति कहा गया है, दीपक के ऊपर शीशा है इस कारण यह अस्पष्ट है केवल हम ज्योति का आभास ही कर सकते हैं दीपक का नहीं। जायसी की पद्मावती भी जन्म से पूर्व अप्रत्यक्ष ब्रह्म के रूप में माँ के उदर में प्रविष्ट हुई, उसकी ज्योति भी जननी के हृदय में उसी भाँति प्रकाशित होती है जिस भाँति

१ H. vaughan Inspiration and poetry, C. M Bowra p. 10
२ सूफी मत साधना और साहित्य : रामपूजन तिवारी, पृ २४६

बिम्ब एवं भावों के समन्वय का विचार

आँचल की ओट से दीपक का प्रकाश—

जस आँचल पुर होइ तासू दिन दिन हिय होइ परगासू।
जस अंचल झीने महँ दिया तस उजियार देखावै हिया।

(१० ६ ७)

यहाँ भी वही अस्पष्ट बाह्य का आभास है जो दीपक के रूप में है वह दर्शन से छिपा हुआ है इसी प्रकार केवल ज्योति के आभास से हम पद्मावती की लोकोत्तरता को ग्रहण कर सकते हैं। दीपक की ज्योति स्पष्ट रूप में ब्रह्म अथवा परमात्मा का प्रतीक है जिसे जायसी ने पद्मावती के परमात्मा रूप का आभास देने के लिए प्रस्तुत किया है। सम्भवतः कवि के मानस में यह धार्मिक रूप चित्र रहा हो और कवि ने उससे प्रभावित होकर ही यह बिम्ब दिया हो, क्योंकि सम्पूर्ण पद्मावत में किसी अन्य स्थल पर पद्मावती के लिए दीपक का बिम्ब नहीं आता है। कवि ने यहाँ पद्मावती की लोकोत्तरता का आभास देने के लिए धार्मिक रूप चित्र का प्रयोग किया है।

पद्मावती के लिए सूर्य और सूर्य किरण का उपमान भी आया है। सूर्य किरण का चित्र केवल एक बार है और सूर्य का केवल दो बार है। पर यह सभी पद्मावती के लोकोत्तर स्वरूप का आभास देने के कारण जायसी के विचारों को पुष्ट करते हैं। सूर्य भी ज्योति स्वरूप होने से ब्रह्म या परमात्मा या आत्मा का प्रतीक बन गया है। उसका प्रकाश भी आत्मप्रकाश की भाँति सर्वत्र फैला दिखाई देता है। जन्म के समय पद्मावती के लिए कवि ने सूर्य किरण का रूपक दिया है। सूर्य किरण के सदृश पद्मावती के पृथ्वी पर अवतरित होने के साथ ही सर्वत्र प्रकाश छा गया।

भए दस मास पूरि भै घरी। पदुमावति कन्या औतरी।
जानहु सुरुज किरिन हुति काढ़ी। सुरुज करा घटी वह बाढ़ी।
भा निसि माहँ दिन क परगासू। सब उजियार भयउ कबिलासू।

(११ १ १)

हीरामन द्वारा पद्मावती का रूप वर्णन सुनकर भी राजा को प्रतीति हुई मानो सूर्य उदय हो गया हो और सर्वत्र प्रकाश छा गया हो।

सुनि सुरूप सुरति वह रानी। चित महँ लागि चित्र होइ रही।
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी। सब घट पूरि हिये परगसी।

(६६ २ १)

ऐसे लोकोत्तर प्रकाश के समक्ष संसार के अन्य रूप ज्योतिहीन दृष्टिगत होने लगते हैं।

उदय सूर जस देखिअ चाँद छपै तेहि धूप।
ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति के रूप।

(६१ ८-९)

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूर्य अथवा सूर्य किरण के ये रूपक पद्मावती के लोकोत्तर स्वरूप को प्रकट करते हैं और जायसी की कथा की प्रतीकात्मकता को पुष्ट

हेनरी वेघन भी कहता है

> I saw Eternity the other night
> Like a great Ring of pure and endless light
> All calm as it was bright
> And round beneth it time in hours days years
> Driven by the spheres
> Like a vast shadow mov d in which the world
> And all here train were hurl d.[1]

संभवत: परमात्मा के ज्योति स्वरूप होने की यह कल्पना प्रत्येक देश और प्रत्येक जाति में है और रही है। इस तरह यह धारणा एक लोक परम्परा है। जायसी ने भी परमात्मा के ज्योति रूप होने का यह विचार अपने संस्कारों में पाया होगा। उनके संस्कारों के अतिरिक्त भी सूफी धर्म जिसके सिद्धान्तों को उन्होंने अपने जीवन के सबसे निकट पाया था में भी परमात्मा की कल्पना ज्योति के रूप में की गई है। खुदा का नूर अथवा प्रकाश मुसलमानों का एक आदरणीय शब्द है। कुरान में भी खुदा को प्रकाश रूप कहा गया है। कुरान कहता है 'वह परमात्मा आकाश और पृथ्वी की ज्योति है। आले में रखे हुए दीपक की भाँई उसका प्रकाश है। वह दीपक एक शीशे के भीतर है और वह शीशा मानो एक चमकता हुआ सितारा है परमात्मा जिसे चाहता है अपनी ज्योति की ओर अग्रसर करता है।'[2] जायसी की पद्मावती विषयक ज्योति रूप की कल्पना सूफी धर्म से भी प्रभावित रही है कुछ सूफी धर्म के बिम्बों का जायसी ने ज्यों का त्यों प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त जायसी स्वयं भी पद्मावती के लिए जो कि उनके मत से ब्रह्म का प्रतीक है, ज्योति के उपमान ही चुन पाये हैं। ज्योति के बिम्बों में सर्वाधिक प्रयुक्त बिम्ब चन्द्र का है जो रूप की अपूर्वता के साथ साथ लोकोत्तरता की रक्षा भी करता है। चन्द्र के बिम्ब का अध्ययन पहले ही सूर्य चन्द्र के संदर्भ में हो चुका है अत: यहां इसका विवेचन व्यर्थ होगा। प्रस्तुत अध्ययन में हम ज्योति के अन्य रूपों दीपक सूर्य सूर्य किरण और बिजली आदि का अध्ययन करेंगे।

जायसी ने पद्मावती को दीपक रूप में प्रस्तुत किया है। दीपक के रूप में यह इस्लाम की उस धारणा के बहुत निकट है जिसके अनुसार परमात्मा या खुदा के प्रकाश को आले में रखे हुए दीपक की भांति कहा गया है, दीपक के ऊपर शीशा है इस कारण वह अस्पष्ट है, केवल हम ज्योति का आभास ही कर सकते हैं, दीपक का नहीं। जायसी की पद्मावती भी जन्म से पूर्व अपाण्ड ब्रह्म के रूप में मां के उदर में प्रविष्ट हुई उसकी ज्योति भी जननी के हृदय से उसी भांति प्रकाशित होती है जिस भांति

१ H. vanghan Inspiration and poetry C. M Bowra p. 10
२ सूफी मत साधना और साहित्य रामपूजन तिवारी पृ १४६

आँचल की ओट से दीपक का प्रकाश—

जस आँचल पुर होइ तासू दिन दिन हिय होइ परगासू।
जस अंचल झीने महं दिया तस उजियार देखावै हिया।
(५० ६-७)

यहाँ भी यही अस्पष्ट ब्रह्म का आभास है जो दीपक के रूप में है वह दर्पण से ढका हुआ है इसी प्रकार केवल ज्योति के आभास से हम पद्मावती की लोकोत्तरता को ग्रहण कर सकते हैं। दीपक की ज्योति स्पष्ट रूप से ब्रह्म अथवा परमात्मा का प्रतीक है जिसे जायसी ने पद्मावती के परमात्मा रूप का आभास देने के लिए प्रस्तुत किया है। सम्भवतः कवि के मानस में यह धार्मिक रूप चित्र रहा हो और कवि ने उससे प्रभावित होकर ही यह बिम्ब दिया हो क्योंकि सम्पूर्ण पद्मावत में किसी अन्य स्थल पर पद्मावती के लिए दीपक का बिम्ब नहीं आया है। कवि ने यहाँ पद्मावती की लोकोत्तरता का आभास देने के लिए धार्मिक रूप चित्र का प्रयोग किया है।

पद्मावती के लिये सूर्य और सूर्य किरण का उपमान भी आया है। सूर्य किरण का बिंब केवल एक बार है और सूर्य का केवल दो बार है। पर यह सभी पद्मावती के लोकोत्तर स्वरूप का आभास देने के कारण जायसी के विचारों को पुष्ट करते हैं। सूर्य भी ज्योति स्वरूप होने से सहज ही परमात्मा या आत्मा का प्रतीक बन गया है। उसका प्रकाश भी आत्मप्रकाश की भाँति सर्वत्र फैला दिखाई देता है। जन्म के समय पद्मावती के लिए कवि ने सूर्य किरण का रूपक दिया है। सूर्य किरण के सदृश्य पद्मावती के पृथ्वी पर अवतरित होने के साथ ही सर्वत्र प्रकाश छा गया।

भए दस मास पूरि भै घरी पदुमावति कन्या औतारी।
जानहु सुरुज किरन हुति काढ़ी सुरुज करा घटी वह बाढ़ी।
भा निसि माहँ दिन क परगासू सब उजियार भयउ कबिलासू।
(५१ ११)

हीरामन द्वारा पद्मावती का रूप वर्णन सुनकर भी राजा को प्रतीति हुई मानो सूर्य उदय हो गया हो और सर्वत्र प्रकाश छा गया हो।

गुरु सुरंग मूरति वह कही चित्त महँ लागि चित्र होइ रही।
जनु होइ सुरुज आइ मन बसी सब घट पूरि हिये परगसी।
(१६ २१)

ऐसे लोकोत्तर प्रकाश के समक्ष संसार के अन्य रूप रूपहीन दृष्टिगत होने लगते हैं।

उगत सूर जस देखिअ चाँद छपै ओहि धूप।
ऐसे सबै जाहि छपि पदुमावति के रूप।
(१५, ८-९)

इस प्रकार स्पष्ट है कि सूर्य अथवा सूर्य किरण के ये रूपक पद्मावती के लोकोत्तर स्वरूप को प्रकट करते हैं और जायसी की कथा की प्रतीकात्मकता को पुष्ट

करते हैं। ज्योति के बिम्बों से सदैव ही इन विचारों का प्रकटीकरण होता है। चन्द्र रूप में भी उसका प्रकाश सर्वव्यापी है। राघव चेतन उसके रूप से धरती से स्वर्ग तक ज्योति का आभास करता है। और बादशाह अलाउद्दीन भी दर्पण में पद्मावती का प्रतिबिम्ब पाकर समस्त संसार को प्रकाशित और स्वर्णवर्ण का समझने लगता है।

> भे निसि ससि धौराहर चढ़ी सोरह कला जैस बिधि गढ़ी।
> बिहँसि झरोखे आइ सरेखी निरखि साहि दरपन महँ देखी।
> होतहि दरस परस भा लोना धरती सरग भयउ सब सोना।
> (५९९ १४)

पद्मावती के लिए एक स्थल पर बिजली का रूपक भी आया है, राघव चेतन उसको महल रूपी गगन में चमकती हुई बिजली के सदृश पाता है

> आजी राघो चेतनि धौराहुर कै पास।
> पलौ न जानै हिरदै बिजुरी बसै अकास।
> (४५० ८ ६)

यहाँ यद्यपि कवि का कलाकार रूप प्रमुख है परन्तु यहाँ वह मुख्यतः उसकी दीप्ति से प्रभावित है। लोकोत्तरता का वैसा आभास यहाँ नहीं है परन्तु ज्योति स्वरूप होने के कारण यह भी उसी शृंखला की एक कड़ी है।

समष्टि में जायसी के ज्योति के सभी बिम्ब पद्मावती के आत्मारूप को प्रकट करते हैं। कवि इन बिम्बों में अवश्य ही परम्पराओं और संस्कारों से प्रभावित रहा है परन्तु उसकी कल्पना का भी इसमें योगदान है। वस्तुतः स्वयं जायसी भी अन्य दार्शनिकों आदि की भाँति आत्मा के प्रतीक पद्मावती के लोकोत्तर रूप के लिये प्रकाश अथवा ज्योति के अतिरिक्त और कोई बिम्ब कल्पित नहीं कर पाया है। ज्योति के बिम्ब जायसी की कथा की रूपकात्मकता के सुदृढ़ सोपान हैं।

(३) कमल का बिंब—

जायसी ने कमल का बिम्ब पद्मावती के लिये अनेक स्थलों पर दिया है। कमल एक अत्यन्त प्राचीन उपमान है और कुछ पंथों में जड़ अथवा मृत उपमान हो चुका है पर नवीन प्रयोगों के द्वारा वह आज तक जीवित बना हुआ है। आज का कवि भी कमल को उसी सौन्दर्यपूर्ण दृष्टि से देखता है जिस दृष्टि से कालिदास या बाल्मीकि ने देखा है परन्तु उनके दृष्टिकोणों में अन्तर आ चुका है। जायसी ने भी इस परम्परागत उपमान अथवा बिंब को अनेक स्थलों पर प्रयुक्त किया है।

मध्यकालीन साहित्यिक और धार्मिक परम्परा में 'कमल' का बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान था। सिद्ध और नाथ योगियों ने इसका बड़ा प्रचार कर रखा था। इनके अनुसार कमल 'सहस्रदल कमल' का वाचक था जो वहाँ त्रिकुटी के मध्य में स्थित है और वहाँ सहस्रार चक्र में अमृत का वास है। सहस्रदल कमल तक पहुँचना ही योगी की परम अवस्था थी, यहीं उसका लक्ष्य होता था। जायसी ने यद्यपि सिद्ध और नाथ

योगियों से बहुत कुछ ग्रहण किया परन्तु कमल शब्द के विषय में ऐसा नहीं कहा जा सकता । कमल का प्रयोग साहित्यिक परम्परा से गृहीत किया गया है । कमल का बिब उनकी अपनी कल्पना थी । यद्यपि कहीं कहीं जायसी के प्रयोग से ऐसा प्रतीत होता है कि उनका कमल का बिब पद्मावती के आत्म तत्व को प्रकट करता है परन्तु उनके अन्य प्रयोग इसे प्रमाणित नहीं कर पाते । एक स्थान पर जायसी कहते हैं

कहूँ हाथ मन सरवर, हिया कँवल तेहि माँह ।
नैनन्ह जानहु निअरै, कर पहुँचत अवगाह ।
(१८१ ८-९)

यहाँ कमल को हृदय अथवा आत्मा का प्रतीक बनाया है । इससे भ्रम हो सकता है कि सम्भवतः कवि के अवचेतन में कमल आत्मा का प्रतीक ही बन गया है और इसी कारण वह बार बार पद्मावती के लिए कमल के बिम्ब का प्रयोग करता है परन्तु पद्मावती के लिए प्रयुक्त कमल के अन्य सभी बिम्ब इस तथ्य की तनिक भी पुष्टि नहीं करते । अतः कमल के बिम्ब के पीछे चाहे कोई भी परम्परा या कोई भी कारण रहा हो पर सिद्ध और नाथ योगियों की परम्परा नहीं थी बिम्बों के प्रयोग के आधार पर यह स्पष्ट कहा जा सकता है ।

वस्तुतः जायसी ने यह बिब प्राचीन साहित्यिक परम्परा से ग्रहण किया है । साहित्यिक परम्परा में सदैव से ही कमल सौन्दर्य और प्रेम के लिए ग्रहण किया गया है । जायसी ने भी सौन्दर्य और प्रेम की प्रतीति कराने के लिए इस रूपक का प्रयोग किया है । पद्मावती का प्रेम और सौन्दर्य दोनों इस रूपक में प्रकट हुए हैं । पद्मावती के प्रेम की अभिव्यक्ति अनेक स्थलों पर इसी बिम्ब के द्वारा हुई है । प्रिय के वियोग में रानी मलिन और कृश हो जाती है । जायसी ने उसके लिए सूर्य के प्रकाश से रहित कमल बेल का उपमान दिया है ।

जो सूरज सिर ऊपर आवा, तब सो कँवल सुख पात ।
नाहिं त भरे सरोवर, सूखे पुरइन पात ।
(६४० ८-९)

कमल वस्तुतः प्रेम की अनन्यता का प्रतीक है ।

सुभर सरोवर हंस चल घटतहिं गएउ बिछोहू ।
कँवल प्रीत नहीं परिहरै सूखि पंक बरु होइ ।
(५१० ८-९)

विरहिनी रानी के प्रेम को कमल अथवा कमल पत्र के सदृश कहा गया है जो निरन्तर जल में रहने पर भी उसका भोग नहीं करता निर्लिप्त व तन्मय रहता है । राजा के वियोग में रानी भी सूख सरोवर में कमलदल की भाँति निर्लिप्त रहती है

जैस कवंल सुरुज के आसा नीर कंठ लहि मरै पियासा।
बिसरा भोग सेज सुख बासू जहाँ भँवर सब तहाँ हुलासू।
(२२६ २१)

प्रिय वियोग में वह प्रिय सान्निध्य की कामना करती है जिससे प्रेम रस पाकर मुरझाई कमल बेल भी पल्लवित हो सकती है।

कवंल जो बिगसा मानसर छारहि मिलै सुखाइ।
अबहुँ बेलि फिरि पलुहै जौ पिय सींचहि आइ।
(३५४ = ९)

जायसी ने कमल के इन्हीं रूपों तक अपने को सीमित नहीं रखा है वरन् अपनी कल्पना से उसमें विकास भी किया है। रत्नसेन को सूर्य रूप में प्रस्तुत करके कमल और सूर्य के रागात्मक सम्बन्ध द्वारा पद्मावती और रत्नसेन के प्रेम को व्यंजित किया है। कमल और सूर्य का यह रागात्मक सम्बन्ध भी परम्परा से प्राप्त हुआ है परन्तु कवि ने इसके द्वारा प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करके इसे नवीन रूप दिया है। पद्मावती और रत्नसेन के मिलन पर कवि ने पद्मावती के प्रेम को सूर्य के प्रकाश से प्रस्फुटित हो जाने वाले कमल के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है

मनिक मजारन जोत जो होती धुनतहि रतन भरी सुख जोती।
जानहुँ सुरुज कीन्ह परगासू, दिन बहुरा भा कंवल बिगासू।
(४१८ १२)

मिलन पर इस प्रकार के बिम्ब बार बार आये हैं—

छिपा न रहै सुरुज परगासू देखि कंवल मन भया हुलासू।
(२७६, २)

अथवा

नलिनि निकंद कीन्ह अकूर उठा कंवल जगवा सुनि सूर।
पुहुप पूरि संवारे पाता पुनि बिधि आन धरा सिर छाता।
(११८ १४)

पद्मावती की मूर्छित अवस्था पर भी सखियां सूर्य रूपी रत्नसेन के जागृत हो जाने के कारण उसे प्रस्फुटित होने के लिये कहती हैं

कवंल करी तु पदुमिनि गै निसि भयउ बिहान।
अबहु न संपुट खोलहिं, जो रे उठा जग भान।
(२५० ८ ९)

प्रेम का प्रतीक यह बिम्ब कवि के कलाकार रूप के कारण है।

कमल का बिम्ब एक और रूप में भी आया है। जायसी पृष्ठभूमि के प्रति सदैव सचेष्ट हैं पृष्ठभूमि में वस्तु का सौन्दर्य उभर कर आता है इसका जायसी को खूब ज्ञान है। अतः पद्मावती के कमल रूप की उत्कृष्टता को प्रदर्शित करने के

लिए यह सखियों के लिये उपमान आया है। कुमुदों के बीच में खिला हुआ एक कमल अपने रूप और सौन्दर्य से कहीं अधिक आकर्षित करता है। जायसी ने अनेक स्थलों पर यह समग्र रूपक प्रस्तुत किया है

औ दीन्हीं सब संग सखी सहेली। जो संग करहिं रहस रस केली।
सबै नवल पिय संग न सोई। कंवल पास जनु बिगसाई कोई।
(५४ १-७)

और

भाभि पियाइ सखी मुई कोई, पदुमिनि आनु कमंल संग कोई।

जायसी ने कमल के समग्र रूपक जिसमें प्रेम का व्यंजक कमल उसका प्रिय सूय को इस रूपक को पुष्ट करता है और समग्रता का द्योतक कुमुद आदि के पूरे तत्वों का भी एक स्थल पर प्रयोग किया है

पवन शरीवर सखि कंवल कुमुद तराई पास।
तू रवि उवा सो भंवर होइ, पवन मिला ला बास।
(१६०, ८-६)

यहां समग्रता की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति है। कमल के इतने अधिक बिम्ब देने का सम्भवतः एक का न और भी है। जायसी को अपने पात्रों के नामों से बड़ा मोह है। अधिकतर नामों को वह श्लेष के रूप में प्रयोग करता है। 'रतन' और 'नाम' को लेकर उसने अनेक श्लेषात्मक बिम्ब दिये हैं। सम्भवतः पदमावती में 'पदम' शब्द के कारण कवि कमल की ओर इतना आकृष्ट है। अनेक स्थलों पर कथा भाग में भी कवि पदमावती के लिये 'कमल' शब्द का प्रयोग कर गया है।

समष्टि में कमल का बिंब जायसी की प्रेम और सौन्दर्य विषयक धारणाओं को स्पष्ट करता है। साथ ही कवि की उत्कृष्ट कला का भी (पृष्ठभूमि के कारण) परिचय देता है और कवि के नाम के प्रति मोह को भी स्पष्ट करता है।

(४) इन्द्र का बिंब

जायसी का इन्द्र का बिम्ब बहु आवृत्त बिम्ब है। जायसी ने यह बिम्ब राजा के लिये दिया है, राजा चाहे वह रत्नसेन हो या पदमावती का पिता या रत्नसेन का पिता प्रत्येक सुख समृद्धि से परिपूर्ण राज्य का राजा उसकी दृष्टि में इन्द्र है। इसी कारण शाह अलाउद्दीन के वीर्य और प्रताप का बखान करते हुए भी कवि उसके राज्य के प्रपीड़ित होने के कारण उसके लिये इन्द्र का बिंब प्रस्तुत नहीं कर सका। सुराज्य का राजा ही वस्तुतः उसकी दृष्टि में राजा है और वही इन्द्र का भी उपमेय बन सकता है, क्रूर शासक नहीं।

राजा के लिये इन्द्र की यह कल्पना बड़ी प्राचीन है। पृथ्वी के राजा के लिये 'नरेन्द्र' शब्द न जाने कब से प्रचलित रहा है। देवताओं का राजा इन्द्र होने के कारण मानवों के राजा को भी 'नरेन्द्र' समझने की कल्पना चल पड़ी। वाल्मीकि रामायण में भी इन्द्र की कल्पना राजा के लिये पाई है।

मतेभ्यश्चाप्यधीरस्य मे वाप्ये बल दीनात्तवासिनः ।
उपासांचक्रिरे सर्वे तं देवा वासवं यथा ।[1]

वस्तुतः इन्द्र की उपमा राजा के शौर्य प्रताप वीरता सौन्दर्य सबको एक साथ प्रकट कर देती है इस कारण भारतीय जनमानस में भी यह धारणा बस गई है। जायसी ने अपने समाज और अपने संस्कारों से ही इस कल्पना को लिया होगा। इन्द्र का बिम्ब जायसी के सिद्धान्तों विचारों आदि का कोई विशेष प्रकाशन नहीं करता फिर भी इस बिम्ब की अनेक बार आवृत्ति हुई है और 'राजा' के लिए कवि केवल यही एक बिम्ब दे सका है। परन्तु यह बिंब केवल रत्नसेन या पद्मावती के पिता गन्धर्व सेन के लिए ही प्रयुक्त हुआ है। अलाउद्दीन बादशाह के लिए जायसी ने एक बार भी यह कल्पना सामने नहीं रखी है। स्पष्टतः योग्य राजा के लिए यह कल्पना कवि को अपने संस्कारों में ही प्राप्त हुई थी। इन्द्र की यह कल्पना रत्नसेन के प्रतीकात्मक अर्थ में विशेष सहायता नहीं करती। यों हो सकता है मन जो रत्नसेन है वह इन्द्रियों का स्वामी है देवताओं के स्वामी होने के साम्य के कारण कवि इन्द्र को रत्नसेन के लिये लाया हो जिससे प्रतीकात्मक अर्थ 'मन' की पुष्टि होती है। परन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता कि कवि जान बूझ कर इसे विशिष्ट अर्थ में लाया है। वरन् कवि इसको अत्यन्त सहज रूप से केवल राजा (नरेन्द्र) के कारण लाया है। इंद्र के रूपक का समग्र रूप भी है जहां कविलास अप्सराओं ऐरावत आदि की भी कल्पना है। यह प्रतीकात्मक अर्थ में किसी भी रूप में सहायक नहीं हो सकते यह कवि की संस्कार प्राप्त धारणा का स्वरूप ही प्रकट करते हैं।

जायसी ने अनेक स्थलों पर राजा को इन्द्र और राजनगरी को कविलास कहा है। कविलास कैलाश शब्द का रूप है जो महादेव का निवास माना जाता है, जायसी ने स्वर्ग के अर्थों में इस शब्द को लिया है। गंधर्वसेन का वर्णन करते हुए कवि कहता है

का राजा हौं बरनौं तासू सिंघलदीप आहि कविलासू। × ×
गंधर्व सेन तहां बड़ राजा अछरन्हि मांह इन्द्र विधि साजा।
(२६ १५)

गंधर्वसेन का कोप इन्द्र के समान है जोगियों से रुष्ट होकर वह इन्द्र की भांति दलबल सज्जित करवाता है

छत्रन्ह सरग छाइगा सूरज गयउ अलोपि।
दिनहिं रात अस देखिअ, चढ़ा इन्द्र अस कोपि।
(२४१ ८-९)

जायसी ने रत्नसेन के लिए भी इन्द्र का उपमान दिया है। पद्मावती के मिलन के अवसर पर कवि कहता है कि आज रत्नसेन रूपी इन्द्र अप्सरा से मिलने

1 रामायण ५, ९-२६

आया है और सारे कविलास (राज नगरी) में गान हो रहे हैं। इस रूप में राजा स्वर्ग से बारात सजाकर लाया है।

आजु इन्द्र होइ आएउँ, लै बरात कविलास।
आजु मिलै मोहि अपछरी पुजै मन कै आस।
(२८२ ८-९)

अप्सरा रूपी पद्मावती के पास होने से उसे प्रतीत होता है मानो स्वर्ग ही उसके अधिकार में आ गया है।

तहँ पाउँरि पदुमावति रतनसेन के पास।
जानौ सरग हाथ जनु आए औ पाओ कविलास।
(२८९ ८-९)

पद्मावती की कल्पना अनेक स्थलों पर अप्सरा के रूप में हुई है। इससे उसके रूप सौन्दर्य का भी अच्छा आभास हो जाता है।

हेरत भौंहि लोग मोहि पाछे जनु फिरि चली अपछरा काढ़ै।
(१९६ १)

पद्मावती की सखियाँ भी स्वर्ग की असंख्य अप्सराएं प्रतीत होती हैं—

(१) काम कटाछ हरे चित हरनी, एक एक तें आगरि बरनी।
जानहु इन्द्र लोक तें काढ़ी पाँतहिं पाँत भये सब ठाढ़ी।
(२५० ६-७)

(२) लै सँग सखी कीन्ह तहँ फेरा, औगिहँ आइ जनु अपछरिन्ह घेरा।
(१९४ ९)

(३) वे कविलास सुनी अपछरी कँह हुत आईं परमेसरी।
(१६० ३)

यहाँ तक कि पद्मावती और नागमती का द्वन्द्व भी कवि को ऐसा प्रतीत होता है मानो अप्सराएं अखाड़े में लड़ रही हों। इसी कल्पना को पूर्ण करने के लिए कवि ने गढ़ के हाथियों को ऐरावत हाथी कह दिया है

सात सहस हस्ती सिंघली जिमि कविलास ऐरावति बली।
(२१ ३)

जायसी ने राजनगरी को स्वर्ग कहा है जिससे यह समस्त उपकरण उसके पूरे चित्र को सामने रख देते हैं। राजनगरी को कम से कम १० स्थलों पर कविलास अर्थात् स्वर्ग कहा गया है। राजनगरी की सभी अमराइयाँ ताल तालाब रत्नजटित महल ऊँचे ऊँचे धौराहर कवि को कविलास का स्मरण करा देते हैं। कुछ स्थल उल्लेखनीय हैं

(१) ऊँच पँवरि ऊँच अवासा, जनु कविलास इन्द्र कर बासा।
राउ रंक सब घर घर सुखी, जो देखा सो हँसता मुखी। ××

सब चौपारिन्ह चन्दन खंभा ओठँगि सभापति बैठे सभा।
जनु सभा देवतन्ह कै जुरी परी दिस्टि इन्द्रासन पुरी।
धौरहि पंच सँवारहि जस सिवलोक अनूप।
घर घर नारी पदुमिनी मोहहिं दरसन रूप।

(१२, १-७)

(२) जबहिं दीप नियरावा जाई, जनु कविलास नियर भा आई। × ×

(२० १)

(३) ताहि मंदिर अस देखा जस कबिलास अनूप।
जाकर अस धौराहर सो रानी केहि रूप।

(२२५, ८-९)

(४) जहि गढ़ ऊपर जगमगति देखी इन्द्र पुरी सौ आन बिसेखी।
ताल तलाव सरोवर भरे और अंबराऊ चहुं दिसि फरे।

(२२४ १२)

(५) × × × × बिधिस परा सिंहल कबिलासू।
दै जो मेघ गढ़ लागि अकासा बिजुरी कै न कोट चहुं पासा।
तेहि पर ससि जो कचपचिन्ह भरा, राज मंदिर सोने नग जरा।
और जो नखत चहूंसि चहुं पासा सब रानिन्ह के आहिं अवासा।

(१६ ४-७)

(६) राजसभा पुनि देख बईठी, इन्द्र सभा जनु परि गई डीठी।

(४७ १)

(७) साजा राज मंदिर कबिलासू सोने कर सब पुहुमि अकासू।

(४८ १)

(८) गहवर नैन आए भरि आंसू, छाड़ब यह सिंघल कबिलासू।

(१७८ २)

(९) सात खंड साती कबिलासा का बरनी जस उत्तम बासा।
हीरा ईंट कपूर गिलावा, मलयागिरि चंदन सब लावा।

इन उद्धरणों में कवि की कल्पना कहीं समग्र रूप में आई है जहां अप्सराओं आदि सबका उल्लेख है कहीं अंश रूप में आई है जहां कवि केवल कबिलास ही प्रस्तुत करके रह जाता है। वस्तुतः यह अंश भी उसकी समग्र कल्पना को इंगित करते हैं। यह कल्पना स्पष्ट रूप से पुरानी परम्पराओं और संस्कारों से कवि को प्राप्त हुई है। रत्नसेन पद्मावती सखियां राजनगरी सभी उसकी कल्पना में स्वर्ग और स्वर्ग के वासी हैं। यह कल्पना अपनी समग्रता में कवि के व्यक्तित्व—उसके संस्कारों एवं परम्पराओं की अच्छी व्यंजक है यहां कवि की अपनी मौलिकता का भी योग रहा है।

५) सरोवर का बिंब—

सरोवर का बिम्ब भी जायसी के प्रिय बिम्बों में से एक है। जायसी ने पद्मावत में छः बार इसका प्रयोग किया है। जायसी का सरोवर, प्रेम और सुख का प्रतीक। सर्वत्र प्रेम (वियोग) सुख आदि के प्रसंगों में इसका उल्लेख हुआ है। मुसलमानी परम्परा में सरोवर का प्रयोग बड़ा प्राचीन है सम्भवतः जायसी भी इससे कुछ अंशों प्रभावित रहा हो। सरोवर सूफी काव्यों में प्रेम का प्रतीक है। जायसी के परवर्ती सूफी कवियों में यह प्रेम का ही प्रतीक है।[1]

वियोग व्यथित और सन्तप्त हृदय के लिए जायसी ने अक्सर ग्रीष्म की ज्वाला से सूखे और दरारें पड़े हुए सरोवर का चित्र दिया है। नागमती विरह में कहती है

सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ कै बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवंगरा मेरवहु एका।
(३२४ १-७)

पद्मावती के विरह वर्णन में सरोवर का पूरा चित्र सामने आता है जहां सूखे सरोवर को छोड़कर सुख और प्रसन्नता का हर विहग उड़ जाता है

नीर गंभीर कहाँ हो पिया। तुम्ह बिनु फाटै सरोवर हिया।
गयउ हेराइ जिउ कै हाथा। चला सरोवर लीन्ह न साथा।
चरत जो पंखि केलि कै नीरा। नीर घटै कोउ आव न तीरा।
कंवल सूखि पंखुरी बिहरानी, गलि गलि होइ मिलि छार भुरानी।
बिरह रेति कंचन तन लावा। चून चून कै खेह मिलावा।
कनक जो कन कन होइ बिहराई, पिय पै छार समेटै आई।
बिरह पवन वह छार सरीर। लागहु आनि मिला वहु नीर।
(२८२ १७)

पद्मावती के रूप को देखकर मोहित और आश्चर्य चकित वियोगी के रूप में राघव चेतन के लिए भी कवि ने यही रूपक लिया है। पद्मावती मिलन के उपरान्त राजा से अपना पूर्व विरह निवेदित करती है यहां सरोवर सुख और आनन्द का प्रतीक बन कर प्रस्तुत हुआ है

छाड़ि गएउ सरवर महं मोही, सरवर सूख गयउ बिनु तोही।
केलि जो करत हंस उड़ि गयऊ। दिनअर मीत सो बैरी भयऊ।
गई नीर तजि पुरइन पाता। कुमुद सूख सिर रहा न छाता।
भयउ मीन तन तलफै लागा। बिरह आइ बैठ होइ कागा।
(६५३ २५)

---

1. जायसी के परवर्ती सूफी कवि डा० सरला शुक्ला, पृ० २१

अन्यत्र भी सरोवर सुख का प्रतीक बना है

विरह अगस्ती बिसमौ भयऊ सरवर हरख सूखि सब गयऊ।
(२४० ४)

सुख और समृद्धि का प्रतीक धारण होने के कारण जायसी ने राजा रत्नसेन के लिए भी सरोवर शब्द का प्रयोग किया है

पदुमावति मन आहि जो झूरी।
सुनत सरोवर हिय गा पूरी।
(१३८ १)

इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि जायसी का यह बिंब बहुत अर्थों में उनकी कल्पना की मौलिकता को प्रदर्शित करता है सरोवर प्रेम सुख व आनन्द का प्रतीक रूप बन कर आया है।

समष्टि मे यह सभी परम्परित बिंब जायसी की उत्कृष्ट कल्पना के परिचायक तो है ही उसके विचारों संस्कारों और परम्पराओ का भी अच्छा परिचय प्रस्तुत करते है। अपने सन्दर्भ म अनेक विचारों और धारणाओं को रखने के कारण इनका महत्व काव्य म विशिष्ट है। विचारों का संसर्ग इन परम्परित बिंबों की एक विशेषता है जो काव्य की कथा उसके रूपक और कवि क विचारों सिद्धान्तों आदि मे विशिष्ट महत्व रखती है।

बिंबों द्वारा भावों और विचारों का प्रकाशन

बिंबों द्वारा जायसी के विचारों एवं भावों का बड़ा स्पष्ट परिचय मिल जाता है। भावों एवं विचारों को प्रदर्शित करने वाले बिंब कवि के कथ्य से कहीं अधिक अंतर हात हैं। कवि भावों एवं विचारों (ऐबस्ट्रैक्ट आइडस) को बिंबों के माध्यम से ही प्रकट करता है बिंब में गृहीत वस्तुओं के प्रति उसका अपना झुकाव (ऐटीच्यूड) उसके विचारों और सिद्धान्तों को पुष्ट करता है। बिंब द्वारा यह भी ज्ञात हो जाता है कि वह भाव के किस विशेष अंश किस विशेष तत्व को अधिक महत्व देता है। उदाहरण क लिए संसार विषयक कवि जायसी की मान्यताएं उसके बिम्बों मे प्रकट हुई है। उसक बिंबों मे जिस धारणा को प्रतिपादित किया हो वस्तुत वही धारणा उस विचार के विषय में कवि के मानस में रही है। संसार के प्रति अनेक कवियों के अनेक प्रकार के दृष्टिकोण रहे है। किसी ने उस जीवन को रागस्थली माना है किसी ने आनन्द का गृह किसी म दुःख का सागर पर जायसी क बिंब प्रदर्शित करत है कि कवि ने सुख दुःख की दृष्टि से संसार को नही देखा है। उसकी दृष्टि एक दार्शनिक की दृष्टि रही है संसार में आनन्द के अन्वेषक की नहीं। फलत उसने समस्त बिंब संसार की क्षणिकता अस्थिरता आदि को प्रतिपादित करते हैं। बुलबुले कुम्हार के बर्तन आदि के रूपकों द्वारा यह अनित्यता व क्षणभंगुरता प्रतिपादित की गई है। स्पष्ट है कि कवि के सभी विचार, और बिंबों के द्वारा प्रकट होते हैं। यह हम जायसी की कुछ प्रमुख मान्यताओं का बिंब के आधार पर अध्ययन करेंगे।

(१) गुरु की महत्ता

जायसी ने जीवन के समुद्र को पार करने के लिए गुरु की कृपा आवश्यक समझी है। गुरु की महिमा सर्वविदित है। मध्यकालीन परम्पराओं में प्रायः सभी ने गुरु को विशेष महत्त्व दिया गया है। कबीर ने भी गोविंद से अधिक गुरु को माना था। जायसी ने भी जीवन के अँधेरे पथ को प्रशस्त करने के लिए गुरु रूपी दीपक का प्रकाश अनिवार्य माना है। पद्मावत में अपने गुरु सैयद असरफ जहाँगीर की प्रशस्ति में वह कहते हैं

सयद असरफ पीर पियारा तिह मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
लेसा हिया पेम कर दिया उठी जोति भा निरमर हिया।

(१८ १२)

दीपक की ज्योति जिस प्रकार अन्धकार को प्रकाशित करके मार्ग दर्शन करती है उसी प्रकार गुरु की कृपा ज्योति भी जीवन के अन्धकार को दूर करके ईश्वर प्राप्ति का मार्ग प्रशस्त करती है। आखिरी कलाम में भी जायसी ने कहा है

मानिक एक पायउ उजियारा सैयद असरफ पीर पियारा।
जहाँगीर चिस्ती निरमरा, कुल जग मा दीपक बिधि धरा।

(आ ६)

गुरु ईश्वर रूप होता है इसीलिए जायसी उसे ऐसा दीपक बताते हैं जिसे स्वयं ईश्वर ने प्रज्वलित करके संसार के अज्ञानान्धकार को दूर करने के लिए रखा है।

जायसी ने गुरु के लिए नाविक का रूपक भी लिया है वह अपने शिष्य को पापों का समुद्र पार करा कर ईश्वर तक ले जाता है कवि के अनुसार वही जीवन का कर्णधार है

खार समुद पाप मोर मेला, बोहित धीन्हु धरम कहु खेला।
तन्ह मोर करिया पौड़ कर गहा पावउ तीर घाट जौ अहा।
जौ कहुँ भास होहिं अवगाहा गुरुहि देखि तौ पावइ पारा।

(१८ ४६)

अखरावट में भी कवि ने यही रूपक फिर लिया है—

कही सरीअत चिस्ती पीर उधरित असरफ औ जहाँगीर।
तेहि के नाव चढ़ा हौं धाई देखि समुद जल जिउ न डराई।
जेहि के ऐसन खेवक भला जाई उतर निरभय सो चला।
राह हकीकत परै न चूकी पैठि मारफत मार बुड़की।
ढूँढि उठै लेइ मानिक मोती जाइ समाइ जोति महँ जोती।

जेहिं कहँ उन्ह अस नाव चढ़ावा, कर गहि तीर खेइ लेइ आवा।
(अख २६)

जायसी ने गुरु को प्रकाश स्वरूप होने के कारण और जीवन के अन्धकार को प्रकाशित करने के कारण चन्द्र कहा है स्वयं गुरु भी उतना ही निर्मल और निष्कलंक है जितना चांद

जहाँगीर वो चिस्ती निहकलंक जस चांद।
ओइ मखदूम जगत के हौं उन्ह के घर बांद।
(११ ८१)

स्पष्ट है कि जायसी अपने गुरु सैयद अशरफ जहाँगीर का बड़ा आभार मानते हैं। उनकी कृपा से ही वह पाप का खारा समुद्र पार कर सके और उनकी ज्योति से ही जीवन को प्रकाशित कर सके। गुरु मोहदी या मेंहदी के विषय में भी कवि की यही मान्यता रही है। यहां यद्यपि कवि रूपक को समग्रता से प्रस्तुत नहीं कर सका है पर ज्योति या प्रकाश से मार्ग दर्शन होने का उल्लेख उसके हृदयस्थ पूरे रूपक का आभास देता है

पा-पाएउं गुरु मोहदी मीठा पंथ मिला सो दरसन दीठा।
(अख २७)

जायसी ने गुरु की उपमा खम्भ से भी दी है। खम्भ की भांति गुरु भी संसार रूपी छत के टिकने के लिए दृढ़ स्तम्भ है उनके अभाव में संसार की छत के धराशायी होने की सम्भावना है। इसी से संसार में गुरु का अस्तित्व होना ही चाहिये

दीन्ह जोति औ रूप गुसाई, कीन्ह खांभ दुइ जगत केराई।
दुहु खंभ टेकि सब मही दुहु के भार सिस्टि थिर रही।
(११ १७)

यह बिंब जायसी की गुरु विषयक दृढ़ आस्था का परिचय देता है। जायसी गुरु को ही शिष्य का सर्वस्व कहते हैं। जैसा गुरु चाहता है वैसा शिष्य करता है इस विचार को कवि ने काठ के घोड़े के माध्यम से दिया है। शिष्य काठ का घोड़ा है जो गुरु रूपी चालक के संकेतों पर नाचता है

गुरु मोरे मोरें हित दीन्ह तुरंगहि ठाठ।
भीतर करै डोलावै बाहर नाच काठ।
(२४५ ८-९)

अनुकरण वृत्ति होने के कारण गुरु को जायसी कछुवा और शिष्य को मछली कहता है शिष्य सदैव गुरु का अनुकरण करता है

चेला परहिं न छाड़हिं पाछू, चेला मंछ गुरु जस काछू।
(२१८ ५)

गुरु का रूप चेले के हृदय में सदैव विद्यमान रहता है चित्र की भांति वह जम जाता है। जैसे कोई दृश्य देखने पर उसका रूप हृदय पर अंकित हो जाता है। उसी प्रकार चेले के हृदय पर गुरु का रूप अंकित रहता है।

गुरु चेले को अपने अनुरूप बना लेता है जैसे भृंगि पतिंगे को भी गुंजार करना सिखा देती है। इसी प्रकार गुरु असमूझ शिष्य को भी ज्ञान सिखा देता है

तबह एक होइ रहा अकेला गुरु जस भृंगि फनिग जस चेला।
भृंगि ओहि पांखहि पै लेई एकहि बार छाड़ जिउ देई।
ताकहु गुरु करै असि माया नव अवतार देइ नै काया।
(१८२ १-७)

गुरु के अभाव में शिष्य भटकता है वही उसका मार्ग दर्शक है परन्तु शिष्य में कोई गुण न हो ऐसा नहीं है। जायसी शिष्य की पात्रता को भी स्वीकार करते हैं। गुरु शिष्य के हृदय में ईश्वर प्रेम की चिन्गारी रख देता है पर उसको प्रज्वलित कर अग्नि रूप में ज्ञान देना तो चेले पर ही निर्भर करता है। इसी कारण जायसी कहते हैं

गुरु बिरह चिनगी जो मेला, जो सुलगाइ लेइ सो चेला।
(१२२ ६)

इस प्रकार जायसी ने गुरु की ज्योति और मार्ग दर्शन के लिए दीपक चन्द्र संसार में दृढ़ता के लिये खम्भ मार्ग दर्शन कराने के लिए नाविक विशेषत्व के लिए अछूते काठ के घोड़े के चालक आदि के रूपक दिए हैं जो जायसी की गुरु महत्ता को स्पष्ट करते हैं। इन बिम्बों से स्पष्ट है कि जायसी गुरु को साधना का परम अवलम्ब जीवन का अस्तित्व बनाए रखने वाला जीवन को ऊर्ध्वगामी पथ की ओर ले जाने वाला जीवन के अन्धकार को प्रकाश देने वाला शिष्य को आत्मज्ञान कराने वाला अपने अनुरूप बना देने वाला मानते हैं। जायसी के बिम्ब उनके गुरु विषयक विचारों को पूर्णता से स्पष्ट करते हैं निम्नांकित तालिका से उनके बिम्ब व विचारों को और स्पष्टता से समझा जा सकता है

	बिम्ब	व्यंग्य अर्थ	निष्कर्ष
१—	दीपक	अन्धकार को दूर कर प्रकाश (ज्ञान) प्रदान करना।	१ गुरु शिष्य के अज्ञानांधकार को हटा कर आत्म ज्योति देता है।
२—	नाविक	संसार के समुद्र को पार करा कर ईश्वर के पास दूसरे किनारे तक ले जाता है।	२ गुरु संसार के पाप पुण्यों को पार कराकर शिष्य को ईश्वर अथवा आत्मा

			का ज्ञान कराता है।
	[illegible]	योगम की स्थिरता व सगुर का अवलम्ब है।	ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग अर्थात् जीवन में साधना का अवलम्ब गुरु है।
[illegible]	[illegible]	अपने अनुचर शिष्य को काउ के घोड़े का मार्ग दर्शन कराता है।	शिष्य में वह आत्मा रूप में स्थित रहता है उसी के संकेतों पर शिष्य चलता है।
[illegible]	[illegible]	मछली को मार्ग दर्शन कराता है।	जिस प्रकार मछली कछुए का अनुसरण करती है उसी प्रकार शिष्य भी गुरु का करता है।
१—	५ २	पतिंगों (शिष्य) को अपनी कृपा से स्व रूप कर लेता है। अर्थात् शिष्य को ज्ञान देता है।	शिष्य को आत्म ज्ञान दिला कर अपने जैसा ज्ञानी या साधक बना लेता है।

है अन्यथा जीवन व्यर्थ है। यही विचार उपरोक्त छन्द की उपमा से व्यक्त किया गया है। प्रेम के लिये जायसी ने दीपक का रूपक दिया है क्योंकि प्रेम जीवन का प्रकाश है। प्रेमी हृदय उस प्रकाश से निर्मल हो जाता है और संसार का समस्त रहस्य उसके सम्मुख एक खुली पुस्तक की तरह स्पष्ट हो जाता है। प्रेम का दीपक ही संसार के अंधेरे रास्ते को उजला बनाता है। उसी के द्वारा मनुष्य ज्ञानी बनता है

जैसा हिया पेम कर दिया उठी जोति भा निरमर हिया।
मारग हुत अंधियार असूझा भा अंजोर सब जाना बूझा।
(१२ ८१)

परमात्मा का अस्तित्व होते हुए भी प्रेम के अभाव से मानव उसके स्वरूप का आभास नहीं प्राप्त कर पाता। प्रेम ही हमको परमात्मा का ज्ञान कराता है दीपक का बिम्ब यही विचार प्रकट करता है। वस्तु का अस्तित्व होते हुए भी दीपक के प्रकाश के अभाव में हम उसे नहीं देख सकते और प्रकाश होते ही देखने लगते हैं यही भाव प्रेम पर आरोपित है।

जायसी की मान्यता है कि प्रेम जीवन का ऐसा भाव है जिसके समक्ष अन्य सभी भाव दब जाते हैं ईर्ष्या द्वेष आदि प्रेम के क्षेत्र में पल्लवित नहीं हो सकते। प्रेम जीवन की अपराजेय शक्ति है उसके सम्मुख अन्य कोई भाव स्थिर नहीं रह सकता। प्रेम के इस एकछत्र साम्राज्य को जायसी अमर बेल के रूपक से प्रस्तुत करते हैं, जो अपने साथ किसी अन्य बेल को पनपने नहीं देती—

प्रीति बेलि जेइं अमर बोई दिन दिन बाढ़ै छीन न होई।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ छावा, दोसर बेलि न पसरै पावा।
(२६४ ६-७)

प्रेम का भाव उस बेल की भांति है जिसमें फंसकर व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो सकता

प्रीति बेलि जनु अरुझै कोई, अरुझे मुए न छूटै सोई।
प्रीति बेलि ऐसे तनु डाढ़ा पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि संग बिरह अपारा सरग पतार जरै तेहि झारा।
(२६४ ३ ५)

यहां प्रेम की तीव्रता और विरह की अनिवार्य उपस्थिति भी ध्वनित है प्रेम सहज नहीं है वह कष्ट की साधना है।

जायसी प्रेम को अपार अथाह और गहरा मानते हैं जिसमें डूबकर निस्तार सम्भव नहीं। प्रेम को वह समुद्र कहते हैं जिसमें एक बार अवगाहन करके फिर पार पाना कठिन है

पेम समुंद जो अस अवगाहा, बूडै जगत न पावै थाहा।
(पद १२)

			का ज्ञान कराता है।
३—	खम्भ	जीवन की स्थिरता व संसार का अवलम्ब है।	ईश्वर की प्राप्ति के मार्ग अर्थात् जीवन में साधना का अवलम्ब गुरु है।
४—	काठ के घोड़े का का चालक	अपने अनुसार शिष्य रूपी काठ के घोड़े का मार्ग दर्शन कराता है।	शिष्य में वह आत्मा रूप में स्थित रहता है उसी के संकेतों पर शिष्य चलता है।
५—	कछुवा	मछली को मार्ग दर्शन कराता है।	जिस प्रकार मछली कछुए का अनुसरण करती है उसी प्रकार शिष्य भी गुरु का करता है।
६—	भृंगि	पतिंगों (शिष्य) को अपनी कृपा से स्व रूप कर लेता है। अर्थात् शिष्य को ज्ञान देता है।	शिष्य को आत्म ज्ञान सिखा कर अपने जैसा ज्ञानी या साधक बना लेता है।

(२) प्रेम और वियोग

प्रेम जायसी की काव्य साधना का मूल स्वर और प्राण तत्व है। प्रेम के अभाव में जीवन की कल्पना ही असम्भव है। प्रेमहीन जीवन को कवि छार रास कहता है—

मानुस प्रेम भयउ बैकुंठी नहिं तो क्हा छार एक मुठी।
(१६६ २)

जायसी के काव्य का सिद्धान्त वाक्य है। जीवन में प्रेम और वियोग ही सबसे बड़ी उपलब्धियां हैं। सभी सूफियों की भांति जायसी भी प्रेम को परमावश्यक मानते हैं सूफी सिद्धान्तों से परिपक्व होकर उनकी कल्पना ने इसमें बड़ा विकास किया है।

बिम्ब के माध्यम से उनकी प्रेम विषयक मान्यताएं अनेक स्थलों पर प्रकट हुई हैं। उनकी दृष्टि में प्रेम ही वह तत्व है जो जीवन को स्वर्गिक आनन्द से भर देता

है अन्यथा जीवन व्यर्थ है। यही विचार उपरोक्त छन्द की उपमा से व्यक्त किया गया है। प्रेम के लिये जायसी ने दीपक का रूपक दिया है क्योंकि प्रेम जीवन का प्रकाश है। प्रेमी हृदय उस प्रकाश से निर्मल हो जाता है और संसार का समस्त रहस्य उसके सम्मुख एक खुली पुस्तक की तरह स्पष्ट हो जाता है। प्रेम का दीपक ही संसार के अँधेरे पन्थ का उजाला बनाता है। उसी के द्वारा मनुष्य ज्ञानी बनता है

जैसा हिया प्रेम कर दिया उठी जोति भा निरमल हिया।
मारग हुत अंधियार असूझा भा अंजोर सब जाना बूझा।
(१२ ८ ६)

परमात्मा का अस्तित्व होते हुए भी प्रेम के अभाव से मानव उसके स्वरूप का आभास नहीं प्राप्त कर पाता। प्रेम ही हमको परमात्मा का ज्ञान कराता है दीपक का बिम्ब यही विचार प्रकट करता है। वस्तु का अस्तित्व होते हुए भी दीपक के प्रकाश के अभाव में हम उसे नहीं देख सकते और प्रकाश होते ही उसको जानते हैं यही बात प्रेम पर आरोपित है।

जायसी की मान्यता है कि प्रेम जीवन का ऐसा भाव है जिसके समक्ष अन्य सभी भाव दब जाते हैं ईर्ष्या द्वेष आदि प्रेम के क्षेत्र में पल्लवित नहीं हो सकते। प्रेम जीवन की अपराजेय शक्ति है उसके सम्मुख अन्य कोई भाव स्थिर नहीं रह सकता। प्रेम के इस एकछत्र साम्राज्य को जायसी अमर बेल के रूपक में प्रस्तुत करते हैं, जो अपने साथ किसी अन्य बेल को पनपने नहीं देती—

प्रीति बेलि कै अमर को बोई दिन दिन बाढ़ै छीन न होई।
प्रीति अकेलि बेलि चढ़ छावा दोसर बेलि न सँचरै पावा।
(२४ ६-७)

प्रेम का भाव उस बेल की भाँति है जिसमें फंसकर व्यक्ति कभी मुक्त नहीं हो सकता

प्रीति बेलि जनु अरुझै कोई अरुझे मुए न छूटै सोई।
प्रीति बेलि ऐसे तनु डाढ़ा पलुहत सुख बाढ़त दुख बाढ़ा।
प्रीति बेलि संग बिरह अपारा सरग पतार जरै तेहि झारा।
(२२४ १ ५)

यहाँ प्रेम की तीव्रता और विरह की अनिवार्य उपस्थिति भी व्यंजित है प्रेम सहज नहीं है वह कष्ट की साधना है।

जायसी प्रेम को अपार, अथाह और गहरा मानते हैं जिसमें डूबकर निस्तार सम्भव नहीं। प्रेम वह समुद्र गहन है जिसमें एक बार अवगाहन करके फिर पार पाना कठिन है

पेम समुद्र जो अति अवगाहा बूड़ै जगत न पावै थाहा।
(मत १२)

जायसी प्रेम की साधना को सहज नहीं वरन कष्ट की साधना मानते हैं इसी लिए वह सहज सुलभ नहीं है। जायसी के मत से जो जीवन में अपार दुख और कष्ट सहते हैं वही प्रेम को प्राप्त कर सकते हैं। प्रेम को वह मधु सदृश्य कहते हैं मधु को मधुमक्खियों के दशनों का अपार कष्ट सहने पर ही पाया जा सकता है प्रेम भी इस प्रकार कष्टकारी साधना का परिणाम है। जायसी कहते हैं

दुख भीतर जो प्रेम मधु राखा गंजन मरन सहै सो चाखा।

(६८ १)

जायसी के प्रेम के प्रतीक भ्रमर चातक दीपक की वर्तिका और पतिंगा हैं जो निरंतर पीड़ा और व्यथा को ही प्रेम के नाम पर सहन करते हैं। दीपक की वार्तिका जो अग्नि में निरंतर जलती रहती है भ्रमर जो रात्रि में कमल में बंद होकर प्राण तक कष्ट डालने की क्षमता रखते हुए भी कमल पत्रों को काट कर अपने को मुक्त नहीं कर पाता

भवर जाम पै कवंल पिरीती वहं मह बिथा पैम की जोती।

(१४२ ४)

और सीप जो जल में रह कर भी स्वाति के एक बूंद जल की आस में प्यासी रहती है—जायसी के प्रेम के उत्कृष्ट स्वरूप हैं। इन रूपकों से प्रकट है कि जायसी प्रेम को भोग-विलास नहीं वरन् साधना समझते हैं ऐसी साधना जिसमें प्रेमी प्रिय के लिए अपना तन-मन-सर्वस्व सब अर्पित करने को तत्पर रहता है। प्रेम की साधना सहज नहीं अत्यंत कठिन है। उनका प्रेम वियोग का ही दूसरा नाम है।

प्रेम के साथ-साथ प्रेमी और प्रिय के सम्बन्ध म भी जायसी की स्पष्ट मान्यताएं हैं जो रूपकों में प्रकट हुई हैं। जायसी के मत से प्रेमी साधक का आदर्श रूप है जो प्रिय क स्वरूप में स्वयं को लुप्त कर देता है। जो प्रम में आत्मविस्मृत हो जाता है। जायसी प्रेमी को पानी कहते हैं जो जिस रंग में मिलता है उसी रंग का हो जाता है। प्रेमी भी अपनत्व को छोड़कर प्रिय के स्वरूप में ही विलीन हो जाता है

जेहि जिय पैम पानि भा सोई जेहि रंग मिलै तेहि रंग होई।

(२४१ १)

प्रेमी प्रिय के संकेतों पर ही जीवन व्यतीत करता है सांसारिक प्रभावों से वह परे हो जाता है संसार के लिये वह बहरा और अंधा होता है। उसके हृदय में सदैव प्रिय विद्यमान रहता है इसीलिए जायसी प्रेमी को काठ का घोड़ा बताते हैं जो प्रिय के संकेतों पर ही चलता है।

प्रेम क लुबुध बहिर औ अंधा, नाच कोड जानहु सब धंधा।
जानहु काठ नचावै कोई जो जिय नाच न परगट होई।

(२२७ ५६)

प्रेम अपार दुःख और पीड़ा का स्वरूप है परन्तु प्रेमी को यह स्वर्ग-पाताल तक दग्ध कर देने वाला विरह दुःख कारक नहीं होता प्रेमी इसमें भी अपार आनंद की अनुभूति करता है और सदैव इसी पीड़ा से पीड़ित होना चाहता है। इसीलिए नागमती के लिए भाड़ में भुनते चने का बिम्ब दिया गया है

लागेउ जरै जरै जस भारू फिर फिर भूँजसि तजहि न बारू ।
(१५४ १)

यह मान्यता वैष्णव भक्तों की नहीं है वरन् साधक सूफी संतों की है। जो प्रेम की साधना करते हैं। अनेक कष्ट सह कर ही प्रेमी उसे प्राप्त कर सकता है उस कष्ट में भी वह आनन्द की अनुभूति करता है। भाड़ में भुनने चने के बिम्ब से इसी बात को स्पष्ट किया गया है। जायसी की मान्यता है कि प्रेम को साधना से पा सकते हैं लोभ से नहीं। भोग विलास में लिप्त अलाउद्दीन का प्रेम साधक का प्रेम नहीं था उसकी दृष्टि लोभी की थी उस प्रेम सुख के लिए प्रेम कभी सुलभ नहीं अलाउद्दीन का पूरा चरित्र इसको स्पष्ट करता है। प्रेम लोभी शाह के लिए कवि ने प्यारे का उपमान दिया जिसमें प्रेम का अशुद्ध रूप प्रकट हुआ है

पेम क लुबुध पयारे पाऊ, धसै सोइ धाई लोनहाऊ ।
(१६० २)

जायसी का प्रिय भी लौकिक नहीं वरन् अलौकिक है। सभी सूफियों की भांति वह किसी पार्थिव रूप का प्रेमी न होकर अतीन्द्रिय और अपार्थिव का प्रेमी है जिसके प्रकाश से सारा जग प्रकाशित हो जाता है और जिसके बास अरुमे से समस्त संसार में अंधेरा छा जाता है

बेनी छोरि झार जौ केसा रैनि होइ जग दीपक लेसा ।
सिर हुंत लोहरि परई भुइँ बारा सगरे देस होइ अंधियारा ।
(४७ १२)

प्रिय के साक्षात्कार हो जाने पर सर्वत्र उसका रूप ही दृष्टिगत होता है उसके आलोक से ही प्रकाश और अंधकार का अस्तित्व है।

निष्कर्ष रूप में जायसी का प्रेम विषयक दृष्टिकोण साधनात्मक है। प्रेम को वह जीवन के लिए अनिवार्य मानते हैं। प्रेम विहीन मानव उनकी दृष्टि में एक मुट्ठी धूल से अधिक कुछ नहीं है। परन्तु यह प्रेम सहज सुलभ नहीं है वरन् मधु की भांति अत्यंत कष्ट सहने के पश्चात इसकी प्राप्ति होती है। इसीलिए वियोग प्रेम का एक आवश्यक तत्व है। जहाँ प्रेम का साम्राज्य होता है वहाँ ईर्ष्या द्वेष आदि का कोई स्थान नहीं रहता। भ्रमर बेल के रूपक से यही भाव ध्वनित है। समष्टि में जायसी के बिम्ब प्रेम विषय उसके उदात्त और साधनात्मक दृष्टिकोण को स्पष्ट करते हैं। प्रेमी और प्रिय की मान्यताएं भी बिम्बों में प्रकट हुई हैं। उनका प्रेमी साधक का स्वरूप है और प्रिय स्वयं ईश्वर का। निम्नांकित सारिणी द्वारा उनके प्रेम विषयक विचारों का स्पष्टीकरण किया जायगा

बिम्ब	व्यंग्यार्थ	निष्कर्ष
१—दीपक	जीवन को प्रकाशित करता है और अपने आलोक से परमात्म ज्ञान कराता है।	प्रेम जीवन के अंधेरे को दूर कर ज्ञान का प्रकाश देता है और इस प्रकाश में ईश्वर की प्राप्ति कराता है।
२—अमर बेल	एकछत्र साम्राज्य रखती है अन्य भावों को पनपने नहीं देती।	प्रेम अपने से विलग किसी भाव को उत्पन्न नहीं होने देता सदैव अकेला ही विस्तार प्राप्त करता है।
३—बेल	व्यक्ति को अपने में फंसा लेती है उससे मुक्त होना असम्भव है।	प्रेम में व्यक्ति अपनत्व को खो देता है प्रेम से विलग नहीं रह सकता वरन् अधिकाधिक फंसता जाता है।
४—समुद्र	अत्यन्त गहरा और विशाल होता है।	प्रेम अत्यंत गहन विस्तारमय एवं अनंत होता है वह असीम है।
५—मधु	अत्यन्त कष्ट साध्य व अतीव मधुर भी है।	प्रेम यद्यपि मधुर है पर सहज सुलभ नहीं है वह कष्ट की साधना है।
६—पानी	सहज ही अपनत्व को विस्मृत कर देता है दूसरे रंग का हो जाता है।	प्रेमी आत्म विस्मृत हो प्रिय के स्वरूप में लीन हो जाता है।
७—काठ का घोड़ा	दूसरे के संकेतों पर चलता है अपना अस्तित्व नहीं होता।	प्रेमी प्रिय की इच्छा अनिच्छा पर अपना अपनत्व भूल कर निर्भर रहता है।
८—प्यादा	शतरंज का एक मोहरा जो सीधा चलता पर दायें बायें मारता है	प्रेम सीधी सरल स्वरूप है छल पूर्ण है।
९—ज्योति	अपने आप में समस्त प्रकाश की द्योतक है संसार उसमें ही प्रकाशित है।	प्रिय ज्योति रूप अर्थात् परमात्म रूप है वह अनंत और अखंड का अंश है।

(३) संसार

संसार विषयक उनका दृष्टिकोण प्रायः बिम्बों के माध्यम से ही प्रकट हुआ है। संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण प्रतिबिम्बवादियों से मिलता जुलता है। क्षणभंगुरता और अनित्यता के कारण वह संसार को असार मानते हैं। कबीर की भांति वह

जीवन को बुलबुला मानते हैं जो क्षण भर के अस्तित्व के बाद विलीन हो जाते हैं हर क्षण एक बुलबुला आता है एक जाता है

पानी महँ जस बुल्ला तस यहु जग उतराई।
एकहि आवत देखिय, एक है जात बिलाई।
(मध १२)

क्षण भंगुरता की व्यंजना के लिए एक अन्य बिम्ब भी आया है वह है रहँट की घरिया का। जीवन रहँट की घरिया है जो एक क्षण पानी से भर कर आती है दूसरे क्षण खाली होती है। पानी भरी घरिया का एक क्षण एक जीवन है जो दूसरे ही क्षण अंत को प्राप्त हो जाता है

मुहम्मद जीवन जल भरन रहँट घरी की रीति।
घरी जो आई ज्यों भरी ढरी जनम गा बीति।
(४२ ८६)

जायसी की मान्यता है कि जीवन क्षणिक सुख का नाम है जीवन में लिप्त होकर मानव सुख भोग करता है पर वह क्षणिक है, अतः स्वप्न एक ही है। इस कारण जीवन स्वप्नवत है। स्वप्न में कल्पना का सुख संसार क्षणिक होता है स्वप्न के समाप्त होते ही मनुष्य फिर यथार्थ के कटु संसार में आ जाता है। इस प्रकार क्षणिक सुख प्रदान करने वाला यह संसार भी स्वप्न ही है

यहु संसार सपन कर लेखा बिछुरि गये जानहु नहिं देखा।
(११२ ३)

अन्यत्र भी कहा गया है

यहु संसार सपन कर लेखा, मांगत बदन नैन भरि देखा।
(आ ११)

जीवन की क्षणिकता का प्रतिपादन कवि ने कुम्हार के मिट्टी के बर्तन के बिम्ब से किया है। संसार का निर्माता ईश्वर कुम्हार है, जो मनुष्य रूपी बर्तनों का निर्माण करता है। कच्ची मिट्टी के ये बर्तन क्षण भर अपना अस्तित्व रख कर कभी भी समाप्त हो सकते हैं। अखरावट में कवि कहता है

माटी कर तन भांडा, माटी महँ नव खंड।
जे केउ खेलै माटि महँ माटी प्रेम प्रचंड।
(अख २१)

व

जस कांची है सब महँ भी तस जानहि सोइ।
हौं कोंहार कर माटी जो चाहे सो होइ।
(अख १७)

मिट्टी के बर्तन की यह कल्पना पद्मावत में भी मनुष्यों के लिए आई है। कवि उनकी क्षणिकता का स्मरण करा कर उन्हें जाग्रत होने के लिए कहता है। संसार

के नश्वर स्वरूप ने कवि को सर्वाधिक उद्वेलित किया है उसने स्थल स्थल पर बुलबुले घरिया मिट्टी के बर्तन आदि से इस क्षणिकता को रूप दिया है।

कवि की मान्यता है कि कच्ची मिट्टी के इन पात्रों में विधि ने पदार्थ भी भिन्न भिन्न भरे हैं। संसार में सभी मानव एवं ईश्वर का निर्माण होकर भी एक समान नहीं है। प्रत्येक में कुछ गुण अवगुण वैवत्व दानवत्व है यह प्रवृत्तियां भी ईश्वर का निर्माण हैं वस्तुत विधि ने ही उन्हें अलग अलग प्रकार से निर्मित किया है

तस देखा मैं यह संसार जस सब भांडा बहु कोहार।
कहुं मास कांव भरि धरई कहुं मांस को ओवर भरई।
(मत ४८)

यहां बिम्ब द्वारा जीवन की विविधता व्यंजित है।

कवि की मान्यता है कि संसार का रचियता ईश्वर है और उसके प्रत्येक निर्माण में निर्माता का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्राणी मात्र में भेद के बीच एक वही अभेद तत्व है। प्रत्येक हृदय दर्पण है जिसमें एक सत्ता का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है

जस दरपन महं दरसन देखा हिय निरमल तेहि मंह जग देखा।
(मत १५)

इसी विचार को प्रकट करने के लिए कवि ने दूध में निहित घी समुद्र में छिपे रत्न आदि के उपमान दिये हैं

दूध मांझ जस घीउ है समुद्र मांह जस मोति।
नैन मींजि जो देखहु, चमकि उठै तसि जोति।
(मत १५)

समष्टि में जायसी के उपमान उसकी मान्यताओं को स्पष्टता से प्रतिपादित करते हैं। संसार की क्षणिकता स्वप्नवत सुख उनको अधिक प्रभावित करते हैं संसार के प्रति उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। प्रतिबिंबवादियों की भांति वह संसार को ईश्वर का स्वरूप मानते हैं। ईश्वर अपने हर निर्माण में निहित है हिरण्मय पात्र से उसका मुख ढका हुआ है पर फिर भी उसका आभास होता है। संसार का प्रत्येक कण उसको प्रकट करता है जैसे अनेक दर्पणों में एक ही वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो। परन्तु संसार में ईश्वर का वह बिंब सर्वत्र एक सा नहीं पड़ता। कहीं दानवी प्रवृत्तियां उभरती हैं तो कहीं मानवी। यह अन्तर स्वयं विधि ने उत्पन्न किया है पात्रों की पात्रता के अनुसार उन्हें भिन्न भिन्न बनाया गया है। स्पष्ट है कि कवि जीवन को क्षणिक और असत् मानता है, संसार में ईश्वर सर्वोपरि और सर्वत्र व्याप्त है उससे ही जीवन गतिशील है।

बिंब	व्यंग्यार्थ	निष्कर्ष
१ बुलबुला	क्षणिक अस्तित्व रखता है पल-पल में आता-जाता है।	संसार क्षणभंगुर है एक पल का जीवन है। एक क्षण जन्म और दूसरे क्षण मरण।

२ परिछा	एक पल में सम्पूर्ण होकर दूसरे पल खाली हो जाती है।	संसार क्षणिक है। जीवन अस्तित्व कुछ पलों का ही है।
३ स्वप्न	क्षणिक सुख देता है और असत है।	संसार क्षणिक सुख देता है और असत है सत नहीं है।
४ मिट्टी का बर्तन	कुम्हार गढ़ कर मनमाने रूप में ढालता है और कभी भी टूट सकते हैं।	संसार में विविधता है शुभ अशुभ, वैभव दारिद्रय सब है वह क्षणिक भी है, कभी भी जीवन समाप्त हो सकता है।
५ दर्पण	दर्पण अन्य वस्तु को प्रतिबिम्बित करता है।	संसार में उस एक निर्माता का रूप झलकता है। वह संसार में सर्वव्यापी है।
६ दूध	घी दूध में अदृश्य रूप से छिपा रहता है।	संसार में वह अदृष्ट है पर उसकी सत्ता है अवश्य।
७ समुद्र	समुद्र में रत्न छिपे रहते हैं।	ब्रह्म संसार में अदृश्य है।

(४) ईश्वर

जायसी के ईश्वर विषयक विचार भी अनेक बिम्बों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। जायसी ने सभी रहस्यवादियों एवं दार्शनिकों की भांति ब्रह्म को ज्योति रूप माना है उसको दीपक के चित्र द्वारा प्रस्तुत किया है जिससे संसार का अंधेरा प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा नांव महुम्मद पूनिउ करा।
प्रथम जोति विधि तेहि के साजी औ तिन्ह पिरीत सिस्ट उपराजी।
दीपक लेसि जगत कहँ दीन्हा भा निरमल जग मारग चीन्हा।
जो न होत अस पुरुष उजियारा, सूझ न परत पंथ अंधियारा।

(११ १४)

अन्यत्र भी दीपक के प्रकाश से उस ब्रह्म की ज्योति का आभास कराया गया है। अखरावट में कवि कहता है

तब भा पुनि अंकूर सिरजा दीपक निरमला।
रचा महुम्मद सूर जगत रहा उजियार होइ।

(अख २)

ब्रह्म ज्योति रूप है उसके कारण ही संसार प्रकाशमान है। ब्रह्म की ज्योति के अभाव में वस्तुतः संसार अंधकारमय ही रहता है नैनों में जो ज्योति आई है वह भी उसी के कारण है। जायसी उसे बिजली की रोशनी के सदृश मानते हैं जो अंधकार में कौंध कर वस्तु का दर्शन करा जाती है, ईश्वर भी अपने प्रकाश से संसार का ज्ञान कराता है

के नश्वर स्वरूप ने कवि को सर्वाधिक उद्वेलित किया है उसने स्थल स्थल पर बुलबुले, घरिया मिट्टी के बर्तन आदि से इस क्षणिकता को रूप दिया है।

कवि की मान्यता है कि कच्ची मिट्टी के इन पात्रों में विधि ने पदार्थ भी भिन्न भिन्न भरे हैं। संसार मे सभी मानव एक ईश्वर का निर्माण होकर भी एक समान नहीं है। प्रत्येक में कुछ गुण अवगुण देवत्व दानवत्व है यह प्रवृत्तियां भी ईश्वर का निर्माण है वस्तुत विधि ने ही उन्हें अलग अलग प्रकार से निर्मित किया है

तस भेवा मैं यह संसार जस सब भांडा गढ़ै कोंहार।
कहुं मांझ खांड भरि धरई कहुं मांझ को गोबर भरई।
(अख ४८)

यहां बिम्ब द्वारा जीवन की विविधता ध्वनित है।

कवि की मान्यता है कि संसार का रचयिता ईश्वर है और उसके प्रत्येक निर्माण मे निर्माता का प्रतिबिम्ब पड़ता है। प्राणी मात्र म भेद के बीच एक वही अभेद तत्व है। प्रत्येक हृदय दर्पण है जिसमें एक सत्ता का प्रतिबिम्ब दिखाई देता है

जस दरपन मंह दरसन देखा हिय निरमल तेहि महं जग देखा।
(अख १५)

इसी विचार को प्रकट करने के लिए कवि ने दूध में निहित घी समुद्र में छिपे रत्न आदि के उपमान दिये हैं

दूध मांझ जस घीउ है समुद माहं जस मोति।
नैन मींजि जो देखहु, चमकि उठै तसि जोति।
(अख १५)

समष्टि में जायसी क उपमान उसकी मान्यताओं को स्पष्टता से प्रतिपादित करते हैं। संसार की क्षणिकता स्वभावत मुख उनको अधिक प्रभावित करते हैं संसार क प्रति उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक है। प्रतिबिम्बवादियों की भांति वह संसार को ईश्वर का स्वरूप मानता है। ईश्वर अपने हर निर्माण में निहित है हिरण्मय पात्र से उसका मुख ढका हुआ है पर फिर भी उसका आभास होता है। ससार का प्रत्येक कण उसको प्रकट करता है जैसे अनेक दर्पणों मे एक ही वस्तु का प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो। परन्तु संसार में ईश्वर का यह बिंब सर्वत्र एक सा नही पड़ता। कहीं दानवी प्रवृत्तियां उभरती हैं तो कहीं मानवी। यह अन्तर स्वयं विधि ने उत्पन्न किया है, पात्रों की पात्रता के अनुसार उन्हें भिन्न भिन्न बनाया गया है। स्पष्ट है कि कवि जीवन को क्षणिक और असत् मानता है, संसार मे ईश्वर सर्वोपरि और सर्वत्र व्याप्त है उससे ही जीवन गतिशील है।

बिंब	व्यापार्थ	निष्कर्ष
१ बुलबुला	क्षणिक अस्तित्व रखता है, पल-पल में आता-जाता है।	संसार क्षणभंगुर है एक पल का जीवन है। एक क्षण जन्म और दूसरे क्षण मरण।

२ बरिसा	एक पल में जलपूर्ण होकर दूसरे पल खाली हो जाती है।	संसार क्षणिक है। जीवन अस्तित्व कुछ पलों का ही है।
३ स्वप्न	क्षणिक सुख देता है और असत है।	संसार क्षणिकसुख देता है और असत है सत नहीं है।
४ मिट्टी का बर्तन	कुम्हार गढ़ कर मनमाने रूप में ढालता है और कभी भी टूट सकती है।	संसार में विविधता है गुण अवगुण देवत्व दानवत्व सब है वह क्षणिक भी है, कभी भी जीवन समाप्त हो सकता है।
५ दर्पण	दर्पण अन्य वस्तु को प्रति बिम्बित करता है।	संसार में वह एक निर्माता का रूप झलकता है। वह संसार में सर्वव्यापी है।
६ दूध	घी दूध में अदृश्य रूप से छिपा रहता है।	संसार में वह अदृष्ट है पर उसकी सत्ता है अवश्य।
७ समुद्र	समुद्र में रत्न छिपे रहते हैं।	ब्रह्म संसार में अदृश्य है।

(४) ईश्वर

जायसी के ईश्वर विषयक विचार भी उनके बिम्बों के माध्यम से प्रकट हुए हैं। जायसी ने सभी रहस्यवादियों एवं दार्शनिकों की भांति ब्रह्म को ज्योति रूप माना है, उसको दीपक के बिम्ब द्वारा प्रस्तुत किया है जिससे संसार का अंधेरा प्रकाश में परिवर्तित हो जाता है

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा । नाम मुहम्मद पूनिउं करा ।
प्रथम जोति बिधि तेहि के साजी । औ तेहि प्रीति सिस्टि उपराजी ।
दीपक लेसि जगत कहं दीन्हा । भा निरमल जग मारग चीन्हा ।
जौं न होत अस पुरुष उजियारा, सूझ न परत पंथ अंधियारा ।
(११ १४)

अन्यत्र भी दीपक के प्रकाश से उस ब्रह्म की ज्योति का आभास कराया गया है। अखरावट में कवि कहता है

सब भा पुनि अपूर तिरहा दीपक निरमला ।
रचा मुहम्मद सूर, जगत रहा उजियार होइ ।
(अख २)

ब्रह्म ज्योति रूप है उसके कारण ही संसार प्रकाशमान है। ब्रह्म की ज्योति के अभाव में सम्भवतः संसार अंधकारमय ही रहता है नेत्रों में जो ज्योति आई है वह भी उसी के कारण है। जायसी उसे बिजली की रोशनी के सदृश मानते हैं जो अंधकार में कौंध कर वस्तु का दर्शन करा जाती है ईश्वर भी अपने प्रकाश से संसार का ज्ञान कराता है

जा बिनु पिऊ तन जस अंधियारा, जो नहिं होत नयन उजियारा।
वहै जोति नैनन्ह मंह आवै चमक उठै जस बीजु दिखावै।

(मत्र २९)

कवि कहता है कि चांद सूर्य रात्रि दिवस प्रात संध्या—सब उसके हर्ष विषाद जागरण-निद्रा आदि के स्वरूप हैं

चांद सुरुज दुनौ सुर चलहिं, सेत सियार नखत झिलमिलहिं।
जागत दिन निसि सोवत मांझा हरख भोर बिसमय होइ सांझा।

(मत्र ६)

जायसी की मान्यता है कि संसार के प्रत्येक कण में उस अनन्त ब्रह्म का अस्तित्व है परन्तु वह भौतिक संसार में प्रत्यक्ष नहीं है उसका रूप स्थूल नहीं वरन सूक्ष्म है। वह दृष्टिगत नहीं होता पर उसको अनुभूत किया जा सकता है। कवि इस विचार को प्रतिपादित करने के लिए फूल की गंध का उपमान देता है जो अदृश्य है सूक्ष्म है साथ ही आभासित भी होती है

जस तन तस यह धरती जस मन तैस अकास।
परम हंस तेहि मानस जैस फूल महं बास।

(मत्र १४)

ब्रह्म अदृश्य होने के कारण कभी मानव के छोटे हाथों के समीप नहीं रहता। उसका आभास होता है पर उसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। इसके लिए भी कवि पुष्प गंध की उपमा देता है जो परमात्मा की अदृश्यता दूरत्व और सूक्ष्मता को प्रकट करती है

पुहुप बास जस हिरदय रहा नैन भरि पूरि।
नीअर तें पुठि नीअरे, ओहट तें पुठि दूरि।

(मत्र ४१)

संसार में सर्वत्र उसकी सत्ता व्याप्त है पर वह प्रकट नहीं है। उसका अस्तित्व प्रत्येक पदार्थ में निहित है उसी प्रकार जिस प्रकार दूध में घी और काठ में अग्नि। यहां उसकी अनिवार्य सत्ता और अप्रत्यक्ष रूप व्यंजित है :

तुम्हहिं मंह मन रूप जस काया में ओझ।
काठी मांझ अगिनि जस दूध मांझ जस घीऊ।

(मत्र १०)

ईश्वर का रूप संसार में नाना रूपों में भासित होता है जीवन का समस्त व्यापार उसी के संकेतों पर चलता है। जायसी ने ईश्वर के इस कर्ता रूप को प्रदर्शित करने के लिए बड़ा व्यंजक बिम्ब दिया है। वह संसार और ब्रह्म का मेघ और उसकी परछाईं के द्वारा प्रस्तुत करता है

वे सब किछु करता किछु नाहीं।
जैसे चले मेघ परछाहीं।

(आख १)

मेघ की परछाहीं मेघ का अनुसरण करती है। वह गतिमान प्रतीत होती है पर उसकी गति का कारण मेघ है उसके अस्तित्व में स्वयं यह विशेषता नहीं है। इसी प्रकार सृष्टि का प्रत्येक कण गतिशील भासित होता है पर उसकी गति उसके अपने अस्तित्व के कारण नहीं है वरन् ब्रह्म के कारण है, वही सब कर्मों का कर्ता है। इस बिम्ब में ईश्वर का कर्ता रूप बड़ी स्पष्टता से प्रकट हुआ है।

समष्टि में यह बिम्ब जायसी के ईश्वर विषयक मान्यताओं को स्पष्टता से प्रदर्शित कर देते हैं। ईश्वर का अनुपम प्रकाश अगोचरता सर्वव्यापी रूप सृष्टि के प्रत्येक कर्म में कर्ता रूप आदि समस्त विचार कवि ने बिम्बों द्वारा स्पष्ट किये हैं। निम्नांकित तालिका से यह बात और अधिक स्पष्ट हो सकती है

बिम्ब	अर्थव्याप	निष्कर्ष
१—दीपक	संसार के अंधकार को दूर कर प्रकाश देता है उस प्रकाश से व्यक्ति निर्मल होता है।	ईश्वर प्रकाश स्वरूप है उसकी कृपा से व्यक्ति आत्मज्ञान प्राप्त करता है जीवन का अंधकार दूर करता है।
२—प्रकाश	अंधकार को दूर कर यथार्थ अवस्था अर्थात सत्य का दर्शन कराता है।	ईश्वर असत अज्ञान आदि को दूर करके व्यक्ति को आत्मज्ञान सत्य आदि का रूप दिखाता है।
३—पुष्पगंध	वायवीय सूक्ष्म अप्रत्यक्ष अदृष्ट होती है पर गोचर है अनुभूति की जा सकती है।	ईश्वर अदृश्य अप्रत्यक्ष और सूक्ष्म है। यद्यपि वह अरूप है परन्तु सृष्टि के कण कण से उसका आभास मिलता है।
४—अग्नि	काठ में अग्नि अदृश्य रहती है। पर उसका अस्तित्व है अवश्य।	ईश्वर सृष्टि के कण कण में व्याप्त है वह दृष्टिगत नहीं होता है पर उसका अस्तित्व कण कण में निहित है।
५—घी	दूध में घी निहित है। पर दृष्टिगत नहीं होता।	ईश्वर सर्वव्यापी है उसका रूप छिपा रहता है।

६—मेघ	मेघ आकाश में चलता है पर उसकी परछाहीं जल पर पड़ती है। मेघ से ही उसकी परछाहीं है	ईश्वर से ही जीव का अस्तित्व है उसी के इंगितों पर मनुष्य चलता है वही सबका कर्ता है।

(५) जीव

जायसी के जीव सम्बन्धी विचार मुख्यतः अखरावट में प्रकट हुए हैं। पद्मावत में कथा संकुलता के कारण उतना अवकाश नहीं था पर अखरावट मुख्यतः उनके दर्शन की ही अभिव्यक्ति है। पद्मावत में प्रेमी जीव और प्रिय ईश्वर का स्थानापन्न है अतः जीव विषयक मान्यताएं प्रधान रूप से प्रेमी तत्व को स्पष्ट करती हैं, जीव और ईश्वर के सम्बन्धों पर भी उनसे सम्यक प्रकाश पड़ता है। प्रेमी विषयक मान्यताओं की पिछले पृष्ठों में विस्तृत चर्चा हो चुकी है वही सम्बन्ध जो प्रेमी और प्रिय का है जीव और ब्रह्म का भी माना जा सकता है। अब पुन: उस की चर्चा यहां अनावश्यक है। यहां उससे इतर विचारों को देखा जायगा।

जायसी सृष्टि के प्रत्येक तत्व में ईश्वर का निवास मानते हैं यद्यपि जीव और ब्रह्म अभिन्न नहीं हैं पर जीव में ब्रह्म का आभास सदैव मिलता रहता है। पुष्प गंध काठ में छिपी अग्नि आदि की उपमाएँ जीव में स्थित ब्रह्म की परोक्षरता एवं व्यापी सत्ता की ही व्यंजना करती हैं। जीव में प्रच्छन्न इस अगोचर ब्रह्म का वह भाव उप मानों से भी स्पष्ट करते हैं। वह कहते हैं कि बूंद में समुद्र के समान प्रत्येक अंश में अथवा सृष्टि के प्रत्येक कण में वह महासत्ता निहित है। जीव पानी की एक बूंद है जिसमें सागर के तत्व हैं जो सागर की क्षमता रखती है

> बूंदहि समुंद समान यह अचरज कासौं कहौं।
> जो हेरा सो हेरान मुहम्मद आपुहि आप मँह।
>
> (पद ७)

संसार में जीव का अपनी सत्ता प्रकट करने के लिए शरीर रूपी आवरण की आवश्यकता होती है। जायसी कहते हैं कि यह शरीर एक सराय के समान है जिसमें आत्मप्रकाश या ब्रह्म प्रकाश फैला रहता है। परन्तु पार्थिव शरीर को सदैव मृत्यु का भय रहता है कभी भी मृत्यु का एक झोंका आकर ब्रह्म प्रकाश के दीप को बुझा सकता है और सराय फिर अंधेरी हो सकती है

> तन सराय मन जानहु दिया। आसु तेल दम बाती किया।
> दीपक मंह विधि जोति समानी। आपुहि बरै बाति निरबानी।
> निघटै तेल झूरि भई बाती। गा दीपक बुझि अंधियर राती।
>
> (पद ११)

आयु समाप्त हो जाने अथवा मानव शरीर के ब्रह्म प्रकाश के अभाव में निर्जीव हो जाने का भाव सराय के इस बिम्ब से बड़ी स्पष्टता से प्रकट हुआ है। जीव की

स्थिति ब्रह्म का स्थान आदि सभी विचार इसमें प्रत्यक्ष हो उठे हैं। जायसी ब्रह्म को जीव में प्रच्छन्न रूप से स्वीकार करते हैं इसलिए जीव की स्थिति को नित्य मानते हैं परन्तु जीव को अभिव्यक्ति देने वाला पिंड उनकी दृष्टि से अनित्य है। स्पष्ट है कि जायसी के जीव रूपी विचारों में उसकी नित्यता परमात्मा के अंश रूप होने की भावना परमात्मा में विस्मृत हो जाने की भावना प्रधान है जिन्हें सराय पानी की बूंद आदि के रूपकों द्वारा व्यक्त किया गया है।

बिंब	व्याख्या	निष्कर्ष
१—पानी की बूंद	पानी की बूँद समुद्र से विलग होते हुए भी उसी का एक अंश है उसी में समा जाती है।	जीव का अस्तित्व यद्यपि भिन्न है पर वह ब्रह्म का एक अंश है और अंत में उसी में लीन हो जाता है।
२—सराय	शरीर रूपी सराय में जीव रूपी दीपक ब्रह्म प्रकाश करता है, समय के झोंके से दीपक बुझ जाता है, शरीर निर्जीव हो जाता है और जीव ब्रह्म में अर्थात् दीपक की ज्योति परम ज्योति में विलीन हो जाती है।	जीव से शरीर का अस्तित्व है पर शरीर की तरह वह अनित्य नहीं है। समय के साथ शरीर समाप्त हो जाता है पर जीव अपने उसी अनंत रूप में जाकर मिल जाता है समाप्त नहीं होता। जीव अन्ततः परमात्मा का ही एक अंश है।

(६) दान

जायसी दान को अत्यंत आवश्यक समझते हैं। दान सम्बन्धी मान्यताओं का भी बिम्ब के माध्यम से स्पष्ट अध्ययन किया जा सकता है। पद्मावत में तीन स्थलों पर दान की महिमा का वर्णन है। अखरावट और आखिरी कलाम में ऐसा कोई प्रसंग ही नहीं आया है।

दान को जायसी जीवन का सार मानते हैं। पार्थिव शरीर से मनुष्य दान जैसा अपार्थिव कर्म करता है जो कभी भी नष्ट नहीं होता। व्यक्ति के समाप्त हो जाने पर भी उसके दान के कारण उसकी कीर्ति बनी रहती है। इस रूप में वह दान को जीवन का कपूर कहते हैं जिसकी गंध पदार्थ के समाप्त हो जाने पर भी विद्यमान रहती है। दान कीर्ति कभी क्षय को प्राप्त नहीं होती

बरनहिं दान बेद बिधि कहा। दान मोख होइ बोल न रहा।
दान आहि सब दरब कपूर। दान लाभ होइ बाँचै मूर।
(१८७ १४)

दान ही जीवन को ज्योतित करता है। दीपक की भांति वह संसार मार्ग को प्रकाशित करता है, जिससे जीवन यात्रा सहज हो जाती है। जहाँ शरीर रूपी गृह में

दान का दीपक जहाँ प्रज्वलित होता वहाँ पाप और अपयश के चोर गृह के धन को चुरा ले जाते हैं

दिया करै आगे उजियारा जहाँ न दिया तहाँ अँधियारा।
दिया मदिर निसि करै अजोरा दिया नाहि घर मूसहि चोरा।
(१८५ ६६)

दान के इस दीपक से ही जीवन का पथ आलोकित है अन्यथा सर्वत्र अधकार छा जाता है। रत्नसेन की दान वृत्ति न होने से कवि ने उसके पथ में आंधी और तूफान का उल्लेख किया है। दान के दीपक के बुझ जाने पर कवि कहता है—

दिया बुत सत न रहा हुत निरमल जेहि रूप।
बहु आंधी उड़ि जाइ कर मारि किया अंधकूप।
(३६३ ८६)

दान का दीपक ही रूप की उज्ज्वलता और प्रकाश प्रदान करता है। यहाँ दीपक के बिम्ब द्वारा कवि की दान विषयक भावनाएं प्रकट हुई हैं दीपक का प्रकाश जितना आवश्यक और जितना लाभकारी है दान भी उतना ही अनिवार्य व लाभदायक है। दीपक के बुझ जाने पर छा जाने वाला अंधकार पाप और बुराइयों के अंधकार अर्थात अज्ञान को प्रकट करता है। निम्न तालिका से इन बिम्बों के संदर्भ में विचारों की सम्यक विवेचना हो जाती है

बिंब	व्याख्यार्थ	निष्कर्ष
१—कपूर	पदार्थ के क्षय हो जाने पर भी सुगन्ध बनी रहती है सुगन्ध अदृश्य और अमर है।	दान जीवन का सुगंधि तत्व है जीवन समाप्त हो जाने पर भी दान की कीर्ति व्यक्ति को अमर बना देती है।
२—दीपक	दीपक ससार के अंधकार को दूर कर प्रकाशवान बनाता है।	दान असत वृत्तियों को दूर करता है और उदात्त भावों से जीवन को पूरित कर देता है।

(७) द्रव्य

द्रव्य अथवा धन संबधी मान्यताओं की अभिव्यक्ति भी जायसी के बिम्बों द्वारा ही हुई है। अखरावट और आखिरी कलाम में द्रव्य की कहीं चर्चा नहीं है पद्मावत के कथा संदर्भ कहीं कहीं कवि ने द्रव्य विषयक विचार को प्रस्तुत किया है।

जायसी जीवन यापन करने के लिए द्रव्य को अत्यत आवश्यक समझते हैं। द्रव्य के न होने पर अत्यन्त श्रेष्ठ पुरुष भी संसार में उपेक्षणीय समझा जाता है। द्रव्य की चकाचौंध से मणि रत्नों के बीच पड़ा गुणी गुग्गा को संसार उपेक्षणीय समझ रहा था। जायसी ने द्रव्य के कारण गुण की उपेक्षा गुग्गे के प्रसग मे प्रतिपादित की है। गुग्गे को वह प्रकार का पतंगा कहते हैं जो यों तो सुन्दर तितली का कैटर पिलर होता है पर कुरूपता के कारण उपेक्षित होता है गुणी गुग्गा भी बाहरी चकाचौंध मे उपे

चित्र समझा गया है

> देखें लाय हाट सें खोही मोल रतन मानिक जहं होई।
> सुआ को पूँछ पतिंग मनारे, चलन देख आछे मन मारे।
> (७६ २१)

इस तरह स्पष्ट है कि जीवन को अच्छी प्रकार जीने के लिए द्रव्य आवश्यक है। जायसी द्रव्य को व्यक्ति की बाह्य विशेषता आकर्षक रूप सज्जा समझते हैं। यह बाह्य सौन्दर्य समाप्त हो जाने पर व्यक्ति उसी प्रकार निकृष्ट और भद्दा प्रतीत होता है जितना पत्तियों झड़ जाने पर पतंग वृक्ष

> ठाढ़े रहे सुचीनता जितहीं आपरि मूल।
> जिमु गम पुरुष पतंग ज्यों ठाढ़ ठाढ़ पै सूल।
> (४२० ८६)

पतंग वृक्ष का समस्त सौन्दर्य उसकी पत्तियों में निहित होता है। उनके झड़ जाने पर वह एक ठूठ मात्र रह जाता है जो भद्दा और उपेक्षणीय होता है। द्रव्य से रहित व्यक्ति भी इस भद्दे और उपेक्षणीय ठूठ की भांति होता है। व्यक्ति का बाह्य सौन्दर्य धन ही है।

जायसी जीवन यापन के लिए धन का आवश्यक तो मानते हैं पर व्यक्ति की सत्ता धन से ऊंची न उठे यह उन्हें स्वीकार नहीं है। वह धन के उपभोग को उचित बताते हैं पर उससे आगे भी जीवन के विकास का मार्ग है जिसके लिए द्रव्य को छोड़ देना चाहिए। वह कहते हैं

> कहेनह की न लेना की गाढ़ा देना मरत चूक के छाढ़ा।
> (४११ ६)

मानो धन कोई अमर वधू है जिसका उपभोग उचित है पर जिस पर पूर्ण अनुरक्ति उचित नहीं है। अतः द्रव्य का उपभोग करके भी उससे निलिप्त रहना चाहिए। यहां एक शब्द 'चूक के छाढ़ा' से बिम्ब द्वारा धन के उपयोग परन्तु त्याग की भावना बड़ी सुन्दरता से व्यंजित हुई है। धन संबधी जायसी की सभी मान्यताएं बिम्ब के द्वारा प्रकट हुई हैं। मनार के पतंगे और पतंग वृक्ष द्वारा वह निर्धन व्यक्ति की निकृष्टता और उपेक्षित अवस्था को व्यक्त करते हैं और चूंकि के छाढ़ा से उसके सीमित उपभोग की मान्यता को व्यक्त करते हैं

बिम्ब	भावार्थ	निष्कर्ष
१—मनार का पतंग	धनहीन व्यक्ति मनार का पतंग है जो अन्तर में सुन्दर होते हुए भी बाह्य सौन्दर्य के अभाव से उपेक्षणीय समझा जाता है।	धन व्यक्ति का सौन्दर्य है गुणी व्यक्ति भी धन के अभाव में उपेक्षित होते हैं।

२—पतंग वृक्ष	समस्त सौन्दर्य बाह्य रूप अर्थात् पत्तियों में है। पत्ररहित होने पर वह निकृष्ट लगता है।	मन बाह्य रूप सच्चा है। मनहीन व्यक्ति संसार में कुरूप और निकृष्ट समझे जाते हैं।
३—नगरवधू	उपभोग उचित है पर उसका भार नहीं उठाया जा सकता।	मन का भोग उचित है पर आसक्ति अनुचित है। इसकी सीमाएं हैं।

इस समग्र अध्ययन के पश्चात् हम यह कह सकते हैं कि जायसी की सभी प्रमुख धारणाएं बिम्ब के माध्यम से अभिव्यक्त हुई हैं और बिम्ब के अध्ययन से ही उन्हें उचित रूप से समझा जा सकता है। विचार और भाव अमूर्त होने के कारण प्रेषणीय बनने के लिए सदैव बिंब का माध्यम चुनते हैं। इस कारण बिम्बों के अध्ययन से ही भावों और विचारों को समझ कर कवि के चिंतन का सम्यक ग्रहण किया जा है। उपरोक्त विवेचन में जायसी के चिन्तन पर सम्यक प्रकाश पड़ा है और उसका विश्लेषण भी हुआ है।

बिंब एवं पद्मावत का रूपक (Allegory)

जायसी के पद्मावत के संदर्भ में उसके रूपक (Allegory) की चर्चा करना भी अनिवार्य सा है। काव्य का महत्व उसके अभाव में बहुत कम रह जाता है। पद्मावत का रूपक एक ओर काव्य की दार्शनिक पृष्ठभूमि को तो पुष्ट करता ही है दूसरी ओर जायसी पर पड़े सूफी सिद्धान्तों के समस्त प्रभावों को भी स्पष्ट करता है।

जायसी के आलोचकों ने अभी तक उसके रूपक पर अन्योक्ति अथवा समासोक्ति के अन्तर्गत काफ़ी विचार विमर्श किया है और इस विचार-विमर्श के अनेक परिणाम भी प्रस्तुत किये हैं। आचार्य शुक्ल जी से लेकर आज तक जायसी के सभी आलोचकों के लिए पद्मावत की रूपक योजना चर्चा का एक प्रमुख विषय बनी रही है। कुछ विद्वानों ने उसे अन्योक्ति माना कुछ ने समासोक्ति और इसके विपरीत किसी ने उसके अन्तर्गत किसी सांकेतिक अर्थ होने की सम्भावना तक को न माना। प्रमुख रूप से उसको समासोक्ति के रूप में महत्व दिया गया। डा० सूर्यकान्त शास्त्री के द्वारा प्रस्तुत मान्यता कि पद्मावत की समस्त कथा एक अन्योक्ति है आज निरा धार सिद्ध हो चुकी है। उसके विषय में अब कुछ कहना आवश्यक नहीं है। समासोक्ति रूप में उसे शुक्ल जी माताप्रसाद जी चन्द्रबली पांडे डा० वासुदेवशरण डा० बलदेव और शिवसहाय पाठक आदि ने मान्यता दी है और पद्मावत की कथा में किसी सांकेतिक अर्थ को अंशतः स्वीकार कर लिया है। परन्तु उसकी रूपक योजना के संबंध में फिर भी फिर भी भिन्न मत रहे हैं। कुछ व्यक्तियों ने उसके रूपक को महत्व दिया जैसे शुक्ल जी आदि ने और इसके विपरीत कुछ विद्वानों ने स्पष्ट कहा कि 'पद्मावत की कथा न रूपक के रूप में अपना कोई अर्थ रखती है न अन्योक्ति के रूप में अपना

कोई अस्तित्व ।[1] हिन्दी आलोचना के क्षेत्र में मुख्यतः जायसी के आलोचकों में इन तथ्यों-रूपक और समासोक्ति-को लेकर बड़ा मतभेद बना हुआ है। कुछ व्यक्ति उसके रूपक और समासोक्ति दोनों को मान्यता देते हैं और कुछ उसके रूपक को अस्वीकार करते हुए केवल समासोक्ति को मान्यता देते हैं अर्थात् उसके किन्हीं स्थलों पर निहित सांकेतिक किंवा अलौकिक अर्थ को मानते हुए भी जायसी द्वारा प्रस्तुत उस सांकेतिकता को अस्वीकार करते हैं जिसे कवि स्वयं पद में इन शब्दों में प्रकट कर गया है

> मैं एहि अरथ पंडितन्ह बूझा कहा कि हम्ह किछु और न सूझा ।
> चौदह भुवन जो तर उपराहीं ते सब मानुष के घट माहीं ।
> तन चितउर मन राजा कीन्हा हिय सिंघल बुधि पदुमिनी चीन्हा ।
> गुरु सुआ जेइ पंथ दिखावा गुरु बिनु जगत को निरगुन पावा ।
> नागमती यह दुनिया धंधा बांचा सोइ न ऐहि चित बंधा ।
> राघव दूत सोइ सैतानू, माया अलाउदीन सुलतानू ।
> प्रेम कथा ऐहि भाँति बिचारहु बूझि लेहि जो बूझहि पारहु ।

इस छन्द को अनेक विद्वानों ने मुख्यतः माताप्रसाद गुप्त वासुदेवशरण अग्रवाल शिवसहाय पाठक आदि ने प्रक्षिप्त माना है। इसके अन्तर्गत दिये गये रूपक से अनेक विद्वान-डा० बड़थ्वाल डा० ए० जियर्सन शिरेफ आदि असहमत हैं। उनके अनुसार ताले की यह कुंजी उसमें ठीक नहीं बैठती ।[2]

इसके विपरीत शुक्ल जी चन्द्रबली पाण्डेय आदि रूपक से सहमत हैं और उन्होंने इस छंद को प्रामाणिक भी माना है। जायसी के बिम्ब विधान द्वारा उसके रूपक का परीक्षण करने पर हमको पाण्डेयजी और शुक्ल जी का मत ही अधिक समीचीन जान पड़ा है। पद्मावत के अन्तर्गत यद्यपि अन्योक्ति नहीं है परन्तु उसके अन्तर्गत रूपक योजना अवश्य है। जिसे कवि ने बराबर अपने पात्रों एवं घटनाओं के वर्णनों में ओतप्रोत किया है। परन्तु कहीं-कहीं रूपक को वह किन्हीं विशिष्ट कारणों से वैसा नहीं प्रस्तुत कर सका है जैसा उसके मस्तिष्क में था। कवि भी किन्हीं संदर्भों में एक व्यक्ति है जो समाज परम्परा संस्कार विचार आदि के पाशों में बंधा रहता है। जायसी के रूपक का टूटा-फूटा दिखना उसकी इस व्यक्तिगत विवशता का ही परिणाम है। अस्तु, जायसी ने अपनी कृति में कोई रूपक योजना की है या नहीं और उसका रूप क्या है ? इसका परीक्षण उसके बिम्बों के आधार पर भी किया जा सकता है।

---

१ पदमावत का काव्य सौन्दर्य : शिवसहाय पाठक पृ० ३२६

२—I doubt very much wether he (the poet) had any definite allegory presents to his mind through out, the key which he gives us in the first stanza of the envoy does not by any means fit the lock-padmavati. A G Shireph p. 8.

बन कवि की मानसी सृष्टि का प्रमुख भाग है। वह उसके अंतर का अच्छा साक्ष्य देता है। यहां हमारा यही प्रयत्न है। नीचे कथा के पात्रों के लिए जो बिंब प्रयुक्त हुए हैं उनके आधार पर कवि की पात्रों के प्रति आस्था का पता लग जाता है। यहां सर्वप्रथम पद्मावती का अध्ययन अपेक्षित है।

(१) पद्मावती

पद्मावती को जायसी ने बुद्धि अथवा आत्मा का प्रतीक माना है। वही वह लक्ष्य है जिसके लिए रत्नसेन रूपी मन व्याकुल होकर नागमती रूपी गोरख धंधे को छोड़कर निकल पड़ता है। पद्मावती आत्मा अथवा परमात्मा का प्रतीक है। यहां यह देखना है कि पद्मावती के रूप चित्रों अथवा बिम्बों में जायसी की यह मान्यता कहां तक प्रकट हुई है।

पद्मावती के लिए अधिकांशतः ज्योति या प्रकाश के बिम्ब आये हैं जो परमात्म तत्व को प्रकट करते हैं। हम पहले ही ज्योति अथवा प्रकाश के बिम्बों का अध्ययन प्रस्तुत कर चुके हैं। यहां संक्षेप में ही उस पर प्रकाश डाला जायगा। ईश्वर या ब्रह्म के लिए सभी देशों के साहित्य एवं दर्शन में ज्योति या प्रकाश का उपमान कल्पित है। यह एक सार्वजनीन उपमान है जिसे सभी ने इसी रूप में सहज ही स्वीकार कर लिया है। सूफी सिद्धान्तों में भी परम तत्व को ज्योति स्वरूप माना गया है यह पहले ही कहा जा चुका है। पद्मावती भी जायसी के मानस में प्रकाश का रूप लेकर ही बैठी है अनेक स्थलों पर कवि ने उसे ऐसे रूप में प्रस्तुत किया है जो उसके ब्रह्म स्वरूप को स्पष्ट करते हैं। कवि ने अनेक स्थलों पर उसके रूप की लोकोत्तरता द्वारा अथवा प्रकाश के प्रसारण द्वारा उसके ब्रह्म स्वरूप की व्यंजना करायी है। वहां उसका व्योम ज्योति के उल्लेख से उसके परमात्मा रूप को प्रकट करना ही रहा है अन्यथा परम्परा का पालक कवि जायसी मुख की दीप्ति प्राप्ति के लिए स्वीकृत चांद और सूर्य के उपमान को केवल मुख के लिए न देकर समस्त पद्मावती के लिए क्यों देता? इसके मूल में उसकी रूपक की मान्यता निहित है। जायसी के मानस में पद्मावती का रूप है। जो स्वयं प्रकाश या ज्योति का स्वरूप है। इसीलिए पद्मावती का मुख ही केवल चांद या सूर्य नहीं है वरन् समग्र पद्मावती रानी सूर्य और चांद के प्रकाश की भांति प्रकाशमयी है। अनेक स्थलों पर उसके रूप की लोकोत्तर व्यंजना हुई है जहां ब्रह्म प्रकाश की भांति उसका प्रकाश भी समस्त पृथ्वी पर फैलता दिखाई देता है। उसके जन्म के अवसर पर ही कवि संसार में प्रकाश के अवतीर्ण होने की कल्पना करता है जिससे समस्त सिंहल गढ़ प्रकाशित हो जाता है

भए दस मास पूरि भै घरी पदुमावति कन्या औतरी।
जानहु सुरुज किरन हुति काढ़ी सुरुज कला घटि वह बाढ़ी।
भा निसि माँह दिन क परगासू सब उजियार भयऊ कबिलासू।
(५१ १)

इसी प्रकार मानसरोदक खंड एवं नखशिख खंड में उसके रूप की लोकोत्तर व्यंजना उसके परमात्म स्वरूप को प्रकट करने के लिए है। मानसरोदक पर कवि कहता है कि उसका अतीन्द्रिय रूप देखकर स्वयं सरोवर उसके पाव छूने के लिए उन्नत हिलोरें लेता रहा

सरवर तीर पदुमिनि आई खोंपा छोरि केस मोकराई।
ससि मुख अंग मलैं गिरि रानी नागन्ह झांपि लीन्ह अरघानी। × ×
सरवर रूप बिमोहा हिए हिलोर करेइ।
पाव छुवै मकु पावौं येहि मिसु लहरैं देइ।
(६१ १७)

रूप की यह लोकोत्तरता उसके सांकेतिक अर्थों को ध्वनित करती है। अन्यत्र रूप वर्णन में भी कवि कहता है।

पहिरे ससि नखतन्ह कै मारा, धरती सरग भएउ उजियारा।
(४२१ ३)

उसके रूप से संसार में प्रकाश फैल जाने की यह कल्पना उसके सांकेतिक अर्थों को प्रतिपादित करती है। ऐसे लोकोत्तर वर्णनों के लिए पाठक जी ने कहा है कि कई बार प्रसंग आने पर उसने (कवि ने) जब लौकिक रूप के माध्यम से अलौकिक सौन्दर्य की ओर इशारा किया है तो ऐसे स्थलों में अप्रस्तुत इशारा ही प्रधान हो जाता है और प्रस्तुत प्रसंग गौण हो जाता है। यह काव्यगत दोष है।[1] यहां पाठक जी जिस लोकोत्तर व्यंजना को काव्यगत दोष कहते हैं मेरे मत में वह जायसी का महान महत्वपूर्ण गुण है जो जायसी के सूफी दार्शनिक के स्वरूप को सामने रखता है और उसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता है। पद्मावती का लोकोत्तर स्वरूप उसके परमात्म तत्व को प्रकट करने के लिए ही है। यहां ध्यान देने योग्य बात यह है कि कवि नागमती के प्रति सहानुभूति और सहृदयता रखते हुए भी उसके रूप की एक स्थल पर भी लोकोत्तर व्यंजना नहीं कर सकता है जब कि वह भी पद्मावत के प्रमुख पात्रों में ही है। नागमती कवि की सहृदयता का प्रमाण है। उसका विरह वर्णन हिंदी साहित्य की एक महत्वपूर्ण विभूति है फिर भी कवि के हृदय में उसका वह लोकोत्तर रूप नहीं है जो पद्मावती का है। नागमती के प्रति कवि उदासीन नहीं है वह पूर्ण सहृदयता से उसको प्रस्तुत करता है पर नागमती के लिए परमात्मा का स्वरूप होने की मान्यता न होने के कारण रूप वर्णनों में सर्वत्र ज्योति और प्रकाश के बिम्बों का अभाव है। एक भी स्थल पद्मावत में ऐसा नहीं है जिसमें नागमती के ज्योति रूप का उल्लेख या उसके प्रकाश के प्रसारण का उल्लेख हो। कारण स्पष्ट ही है पद्मावती कवि के मानस में ब्रह्म की प्रतीक है जो स्वतः ही ज्योति या प्रकाश से समन्वित है। और इसके विपरीत नागमती जीवन का लौकिक पक्ष है जो जीवन के अंधकार पक्ष की

[1] शिवसहाय पाठक : पदमावत का काव्यसौन्दर्य

प्रस्तुत करती है मोरख पंथे में यह तेज यह प्रकाश कहां ? पद्मावत के दो प्रमुख नारी पात्रों में रूप का यह भेद कवि के मस्तिष्क में निहित रूपक का ही परिणाम है। एक के रूप की सर्वत्र लोकोत्तर व्यंजना और दूसरी में उसका नितान्त अभाव रूपक योजना के कारण ही है।

पद्मावती के प्रकाश या ज्योति के बिम्ब इस्लामी विचारधारा का प्रतिबिम्ब भी करते हैं जिसे सूफियों ने भी अपनाया था। यह विचारधारा परमात्मा के 'नूर' मानने की है। परमात्मा का प्रकाश इस्लाम धर्म और सूफी सिद्धान्तों दोनों में स्वीकृत है। जायसी ने भी पद्मावती को अल्लाह के नूर के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रथम बार बसंत पूजा के समय रानी के लोकोत्तर स्वरूप को देखकर राजा का मूर्छित हो जाना राघव का झरोखे पर से रानी को देखकर आत्म विस्मृत होना और शाह का भी रानी का प्रतिबिम्ब देखकर मूर्छित होना रूप की लोकोत्तरता को ध्वनित करता है। प्रति बिम्ब में ध्यान पाकर शाह की अवस्था जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं

भै निसि ससि धौराहर चढ़ी सोरह करा सहस बिधि मढ़ी।
बिहंसि झरोखे आइ सरेखी निरखि साहि दरपन मह देखी।
होतहि दरस परस भा लोना धरती सरग भयउ सब सोना।
(३६६ २४)

इस अलौकिक प्रकाश का दर्शन पाकर शाह मूर्छित हो जाता है। वस्तुत यह घटनाएँ जायसी के मानस में बैठी उस इस्लामी विचारधारा की प्रतीक है जिसके अनुसार मूसा को तूर पर्वत पर खुदा के अलौकिक 'नूर' के दर्शन हुए वे तूर पर्वत उस अलौकिक प्रकाश में जलकर भस्म हो गया और मूसा उस रूप को देख सकने की क्षमता न रखने के कारण मूर्छित हो गये थे अभिप्राय में यह कि ईश्वर का आलोक देख सकने की क्षमता साधारण जन में नहीं है, यही मान्यता जायसी ने इन घटनाओं से प्रकट की है। इससे पद्मावती का ब्रह्म रूप स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में पद्मावती के ज्योति या प्रकाश रूप होने की कल्पना रूप की लोकोत्तर अभिव्यंजना मानसरोदक आदि के प्रसंग उसके ब्रह्म रूप को प्रकट करते हैं। इन बिंबों से वह परमात्म तत्त्व का प्रतीक ही प्रतीत होती है और इनसे पद्मावत के रूपक में निहित उसके सांकेतिक अर्थ की पुष्टि होती है।

२—रत्नसेन

पद्मावत की कथा का दूसरा प्रमुख पात्र है रत्नसेन। रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है और अपनी पहली स्त्री नागमती को छोड़कर पद्मावती को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करता है। सांकेतिक अर्थों में जायसी ने उसे मन कहा है और उसके गढ़ को तन। मन (राजा) के निवास स्थान चित्तौड़गढ़ को तन मानने में तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि वही राजा का निवास है, और यों भी जायसी ने गढ़ को शरीर अथवा काया के रूप में देखा है:

गइ तस बाँक बैसि तोरि कम्पा परिस बैगु न मोहि क छाया।
(२१२ १)

रत्नसेन भी मन का प्रतीक स्वयं ही बन जाता है। पद्मावती रूपी ब्रह्म की प्राप्ति पर सभी सांसारिक प्रलोभनों (नागमती) को छोड़ देता है और साधना के दुर्गम स्थलों को पार करता ब्रह्म का सान्निध्य पाने के लिए चल देता है। यही ब्रह्म को पाने की मन की कठिन साधना है। मार्ग के कष्ट—तूफान आँधी आदि—मन की दृढ़ता की परीक्षा के हेतु हैं। इस प्रकार रत्नसेन की मन की प्रतीकात्मक स्थिति स्पष्ट है।

राजा के मन के प्रतीकात्मक अर्थ को स्पष्ट करने में उसका अपना चरित्र बड़ा सहायक है। मन रूप में वह मानव का प्रतीक है जो निम्न (दुनिया तथा—नागमती) और ऊर्ध्व (ब्रह्म पद्मावती) प्रवृत्तियों के बीच सदैव द्वन्द्वात्मक स्थिति में रहता है। गुरु (सुग्गे) द्वारा ब्रह्म (पद्मावती) का ज्ञान प्राप्त करके (रूप वर्णन सुनकर) वह उसकी ओर उन्मुख हो जाता है और अनेक कष्ट सहकर उसे प्राप्त करता है परन्तु पुनः वही मन (राजा) दुनिया के मोह व प्रपंच (नागमती) का क्षीण सा आह्वान (पक्षी द्वारा संदेश पाकर) पाकर उसी में लिप्त होना उसको ही पाना चाहता है। उसकी यह भ्रमात्मक स्थिति मन के अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा स्पष्टीकरण करती है। कभी वह ब्रह्म (पद्मावती) को पाकर अनहलक की स्थिति में ज्ञान का प्रकाश और ब्रह्म (पद्मावती) को माया कहने लगता है और इसके विपरीत कभी सांसारिक मोह की सुधि करते ही उसकी अवस्था नागिन के डसे व्यक्ति सी हो जाती है। इस स्थिति में ब्रह्म भी उसे भूल जाता है

तन सिंघल मन चितउर बसा। जिउ बिसंभार नागु नागिनि डसा।
बेधि नारि हुति पूर्ख आविस बसाव जिमि मिल।
रस उतरा तो बढ़ा बिस न तोहि चित न मित।
(१०६ ७-६)

मन रूपी राजा की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति बिम्ब द्वारा प्रकट हुई है और राजा के प्रतीकात्मक अर्थ को पुष्ट करती है। यहाँ जायसी ने ब्रह्म प्राप्ति (पद्मावती से विवाह हो जाने) के पश्चात उसका गौरवपूर्ण (नागमती) के प्रति मोह प्रदर्शित किया है जो अनुचित—सा प्रतीत होता है परन्तु हो सकता है कि कवि की धारणा हो कि मन सदैव चंचल है उसका रूप भ्रम प्रधान है द्वन्द्वात्मक है स्थैर्य उसमें नहीं है और इसीलिए कवि ने उसका यह रूप रखा है। मन के द्वन्द्वात्मक रूप पर ही उसका विशेष ध्यान रहा हो। अन्तिम रूप से यहाँ कुछ कहना कठिन है।

रत्नसेन की यह द्वन्द्व प्रधान स्थिति जहाँ उसके प्रतीकात्मक अर्थ को स्पष्ट करती है वहाँ सूफी मान्यता के अनुसार मनुष्य के स्वरूप को भी प्रकट करती है।

सूफी मान्यता के अनुसार मनुष्य सांत और अनंत का मिश्रित रूप है। उसमें मृत्यु और अमृत्यु दोनों तत्वों का समावेश है। एक ओर वह मानव है और उसमें देवत्व

प्रस्तुत करती है गोरख धर्म में यह तेज यह प्रकाश कहां ? पद्मावत के दो प्रमुख नारी पात्रों में रूप का यह भेद कवि के अन्तर्मन में निहित रूपक का ही परिणाम है। एक के रूप की सर्वत्र लोकोत्तर व्यंजना और दूसरी में उसका नितान्त अभाव रूपक योजना के कारण ही है।

पद्मावती के प्रकाश या ज्योति के बिम्ब इस्लामी विचारधारा का प्रतिनिधित्व भी करते हैं जिसे सूफ़ियों ने भी अपनाया था। यह विचारधारा परमात्मा के 'नूर' मानने की है। परमात्मा का प्रकाश इस्लाम धर्म और सूफी सिद्धान्तों दोनों में स्वीकृत है। जायसी ने भी पद्मावती को अल्लाह के नूर के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रथम बार बसंत पूजा के समय रानी के लोकोत्तर स्वरूप को देखकर राजा का मूर्छित हो जाना राघव का झरोखे पर से रानी को देखकर आत्म विस्मृत होना और शाह का भी रानी का प्रतिबिम्ब देखकर मूर्छित होना रूप की लोकोत्तरता को ध्वनित करता है। प्रतिबिम्ब में दर्शन पाकर शाह की अवस्था जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं

मैं निसि ससि चौराहर चढ़ी सोरह करा सहूस विधि गढ़ी।
बिहँसि झरोखे आइ सरेखी निरखि साहि दरपन महं देखी।
होतहिं दरस परस भा लोना, धरती सरग भयउ सब सोना।
(४६१ २४)

इस अलौकिक प्रकाश का दर्शन पाकर शाह मूर्छित हो जाता है। वस्तुतः यह घटनाएँ जायसी के मानस में बैठी उस इस्लामी विचारधारा की प्रतीक है जिसके अनुसार मूसा को तूर पर्वत पर खुदा के अलौकिक 'नूर' के दर्शन हुए थे तूर पर्वत उस अलौकिक प्रकाश में जलकर भस्म हो गया और मूसा उस रूप को देख सकने की क्षमता न रखने के कारण मूर्छित हो गये थे समष्टि में यह कि ईश्वर का आलोक देख सकने की क्षमता साधारण जन में नहीं है, यही मान्यता जायसी ने इन घटनाओं से प्रकट की है। इससे पद्मावती का ब्रह्म रूप स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में पद्मावती के ज्योति या प्रकाश रूप होने की कल्पना रूप की लोकोत्तर अभिव्यंजना, मानसरोदक आदि के प्रसंग उसके ब्रह्म रूप को प्रकट करते हैं। इन बिंबों से वह परमात्म तत्त्व का प्रतीक ही प्रतीत होती है और इनसे पद्मावत के रूपक में निहित उसके सांकेतिक अर्थ की पुष्टि होती है।

२—रतनसेन

पद्मावत की कथा का दूसरा प्रमुख पात्र है रत्नसेन। रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है और अपनी पहली स्त्री नागमती को छोड़कर पद्मावती को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करता है। सांकेतिक अर्थों में जायसी ने उसे मन कहा है और उसके गढ़ को तन। मन (राजा) के निवास स्थान चित्तौड़गढ़ को तन मानने में तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि वही राजा का निवास है और यों भी जायसी ने गढ़ को शरीर अथवा काया के रूप में देखा है।

एहु तन थोक जैसि तोरि काया परिहरि देहु न मोहि क छाया ।
(२१२ १)

रत्नसेन भी मन का प्रतीक सहज ही बन जाता है। पद्मावती रूपी ब्रह्म की आशा पर सभी सांसारिक प्रसंगों (नागमती) को छोड़ देता है और साधना के दुर्गम स्थलों को पार करता ब्रह्म का नैकट्य पाने के लिए चल देता है। यही ब्रह्म को पाने की मन की कठिन साधना है। मार्ग के कष्ट–तूफान आँधी आदि–मन की दृढ़ता की परीक्षा के हेतु हैं। इस प्रकार रत्नसेन की मन की प्रतीकात्मक स्थिति स्पष्ट है।

राजा के मन के प्रतीकात्मक अर्थ को स्पष्ट करने में उसका अपना चरित्र बड़ा सहायक है। मन रूप में वह मानव का प्रतीक है जो निम्न(दुनिया धंधा-नागमती) और ऊर्ध्व (ब्रह्म पद्मावती) प्रवृत्तियों के बीच सदैव द्वन्द्वात्मक स्थिति में रहता है। गुरु (सुग्गे)द्वारा ब्रह्म(पद्मावती)का ज्ञान प्राप्त करके(रूप वर्णन सुनकर)वह उसकी ओर उन्मुख हो जाता है और अनेक कष्ट सहकर उसे प्राप्त करता है परन्तु पुन वही मन (राजा) दुनिया के मोह व प्रपंच (नागमती) का क्षीण सा आह्वान (पक्षी द्वारा संदेश पाकर) पाकर उसी में लिप्त होना उसको ही पाना चाहता है। उसकी यह भ्रमात्मक स्थिति मन के अन्तर्द्वन्द्व का अच्छा स्पष्टीकरण करती है। कभी वह ब्रह्म (पद्मावती) को पाकर अनलहक की स्थिति में स्वयं को प्रकाश और ब्रह्म(पद्मावती) को छाया कहने लगता है और इसके विपरीत कभी सांसारिक मोह की सुधि करते ही उसकी अवस्था नागमति के लिये व्याकुल सी हो जाती है। इस स्थिति में ब्रह्म भी उसे भूल जाता है

तन सिंघल मन चितउर बसा जिउ बिसँभार जनु नागिनि डसा ।
कैसि नारि हुति पूछे नागमति बचन बिसि मित ।
रत उतरा सो बाहा बिस न बोहि बित न मित ।
(३७१ ७-९)

मन रूपी राजा की यह द्वन्द्वात्मक स्थिति बिम्ब द्वारा प्रकट हुई है और राजा के प्रतीकात्मक अर्थ को पुष्ट करती है। यहाँ जायसी ने ब्रह्म प्राप्ति (पद्मावती से विवाह हो जाने) के पश्चात उसका गोरखधंधे (नागमती) के प्रति मोह प्रदर्शित किया है जो अनुचित-सा प्रतीत होता है, परन्तु हो सकता है कि कवि की धारणा हो कि मन सदैव चंचल है उसका रूप भ्रम प्रधान है द्वन्द्वात्मक है स्थैर्य उसमें नहीं है और इसीलिए कवि ने उसका यह रूप रखा है। मन के द्वन्द्वात्मक रूप पर ही उसका विशेष ध्यान रहा हो। अन्तिम रूप से यहाँ कुछ कहना कठिन है।

रत्नसेन की यह द्वन्द्व प्रधान स्थिति जहाँ उसके प्रतीकात्मक अर्थ को स्पष्ट करती है वहाँ सूफी मान्यता के अनुसार मनुष्य के स्वरूप को भी प्रकट करती है।

सूफी मान्यता के अनुसार मनुष्य मौत और अमत का मिश्रित रूप है। इसमें मृत्यु और अमृत्यु दोनों तत्वों का समावेश है। एक ओर वह मानव है और उसमें देवत्व

प्रस्तुत करती है गोरख पंथ में वह तेज यह प्रकाश कहां ? पद्मावत के दो प्रमुख नारी पात्रों में रूप का यह भेद कवि के अन्तर्मन में निहित रूपक का ही परिणाम है। एक के रूप की सदैव लोकोत्तर व्यंजना और दूसरी में उसका नितान्त अभाव रूपक योजना के कारण ही है।

पद्मावती के प्रकाश या ज्योति के बिम्ब इस्लामी विचारधारा का प्रतिनिधित्व भी करते हैं जिसे सूफियों ने भी अपनाया था। यह विचारधारा परमात्मा के 'नूर' मानने की है। परमात्मा का प्रकाश इस्लाम धर्म और सूफी सिद्धान्तों दोनों में स्वीकृत है। जायसी ने भी पद्मावती को अल्लाह के नूर के रूप में प्रस्तुत किया है। प्रथम बार बसंत पूजा के समय रानी के लोकोत्तर स्वरूप को देखकर राजा का मूर्छित हो जाना राघव का झरोखे पर से रानी को देखकर आत्म विस्मृत होना और शाह का भी रानी का प्रतिबिम्ब देखकर मूर्छित होना रूप की लोकोत्तरता को ध्वनित करता है। प्रति बिम्ब में दर्शन पाकर शाह की अवस्था जायसी इस प्रकार प्रकट करते हैं

मैं निसि ससि चौराहर चढ़ी सोरह करा सहस विधि गढ़ी।
बिहंसि झरोखे आइ सरेखी निरखि साहि दरपन मंह देखी।
होतहि दरस परस भा लोना, धरती सरग भयउ सब सोना।
(६६१ २४)

इस अलौकिक प्रकाश का दर्शन पाकर शाह मूर्छित हो जाता है। वस्तुत यह घटनाएँ जायसी के मानस में बैठी उस इस्लामी विचारधारा की प्रतीक हैं जिसके अनुसार मूसा को तूर पर्वत पर खुदा के अलौकिक 'नूर' के दर्शन हुए थे तूर पर्वत उस अलौकिक प्रकाश में जलकर भस्म हो गया और मूसा उस रूप को देख सकने की क्षमता न रखने के कारण मूर्छित हो गये थे समष्टि में यह कि ईश्वर का आलोक देख सकने की क्षमता साधारण जन में नहीं है। यही मान्यता जायसी ने इन घटनाओं से प्रकट की है। इससे पद्मावती का ब्रह्म रूप स्पष्ट हो जाता है।

संक्षेप में पद्मावती के ज्योति या प्रकाश रूप होने की कल्पना रूप की लोकोत्तर अभिव्यंजना, मानसरोदक आदि के प्रसंग उसके ब्रह्म रूप को प्रकट करते हैं। इन बिंबों से वह परमात्म तत्त्व का प्रतीक ही प्रतीत होती है और इनसे पद्मावत के रूपक में निहित उसके सांकेतिक अर्थ की पुष्टि होती है।

२—रत्नसेन

पद्मावत की कथा का दूसरा प्रमुख पात्र है रत्नसेन। रत्नसेन चित्तौड़ का राजा है और अपनी पहली स्त्री नागमती को छोड़कर पद्मावती को प्रयत्न पूर्वक प्राप्त करता है। सांकेतिक अर्थों में जायसी ने उसे मन कहा है और उसके गढ़ को तन। मन (राजा) के निवास स्थान चित्तौड़गढ़ को तन मानने में तो कोई आपत्ति हो ही नहीं सकती क्योंकि वही राजा का निवास है और यों भी जायसी ने गढ़ को शरीर अथवा काया के रूप में देखा है।

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी
देह गेह नेह जानि जैसे घन-दामिनी।
सोवत सपनेहु सहै संसृति संताप रे
बूड्यो मृगबारि खायो जेवरी के साँप रे।'[1]

और

मैं अपराध सिंधु करुनाकर जानत अन्तरजामी।
तुलसीदास भव-व्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपु गामी।'[2]

सूरदास में भी संसार को सर्प मानने की कल्पना आई। भारतीय दर्शन और योग आदि में भी यह कल्पना बराबर रही है। संसार को सभी ने सर्पवत् निस्सीम और उपेक्षणीय माना है। जायसी के मानस में इन मान्यताओं का किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ा होगा जिससे उन्होंने नागमती के भोगवादी रूप को प्रकट करने के लिए अनेक स्थलों में नाग के रूपक प्रस्तुत किये हैं

१—जेहि दिन कहँ हौं निति डरौं रैन छिपावौं सूर।
लै चहै दीन्ह कवँल कहँ मो कहँ होइ मँजूर।
(८२ ८-६)

२—नागमती नागिनि बुधि ताऊ, सुआ मँजूर होइ नहिं काऊ।
(८६)

३—मोहि तोहि कारन भई मैं बारा रही नाग होइ पवन अधारा।
बिरह मँजूर नाग वह नारी तू मजार कर वेगु गोहारी।
(३६८)

संसार अथवा जीवन के मोह जाल और प्रपंच की प्रतीक होने के कारण सुआ उसकी निंदा करता है और बाज की स्तुति करता है

का तू उहि सिंघल की नारी दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी।
पुहुप सुगंध सो तिन्ह कै काया जहाँ माथ का बरनौं पाया।
(८४ ६-७)

जायसी के मानस में नागमती का सर्प भी कहा ही गया है। नागमती का यह रूप बहुत अंशों में उसके सांकेतिक अर्थों को ध्वनित करता है।

नागमती को दुनिया धंधा न मानने के पक्ष में उसके विरह वर्णन की विशदता और गंभीरता को दिया जाता है। नागमती का विरह वर्णन अद्वितीय है और वह पूर्णतः लौकिक अर्थों को ध्वनित करता है। यह विरह वर्णन रूपात्मक अर्थों व भेद भाव की सहायता नहीं लेता ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। परन्तु एक प्रश्न यहाँ उठ सकता है कि कवि ने नागमती का इतना विशद और करुण विरह वर्णन क्यों

---

[1] विनय पत्रिका : तुलसी, पृ० १३१
[2] विनय पत्रिका : तुलसी, पृ० [illegible]

का निवास है तो दूसरी ओर उसी में वात्सल्य का अंश भी प्रकट हो उठता है। प्रेम से परिवत होकर ही वह अपने स्थूल सीमा भाव से मुक्ति पाता है। प्रेम की साधना से मानवी और दैवी स्वरूप के बीच का अन्तर समाप्त हो जाता है।[1] कहना न होगा कि रत्नसेन का चरित्र सूफी मान्यता की मनुष्य विषयक धारणा के बहुत निकट है यद्यपि उसके लिए कोई बिम्ब ऐसा नहीं आया है जो उसके प्रतीकात्मक अर्थ को स्पष्ट करे पर प्रस्तुत रूप विधान में प्रयुक्त उसकी अवस्था का वर्णन उसके भ्रमपूर्ण रूप को प्रकट करता है। वह प्रेममार्ग का पथिक है और सदैव ऊर्ध्व और निम्नगामी प्रवृत्तियों के मध्य झूलता है। समष्टि में रत्नसेन जायसी के सांकेतिक अर्थों की बहुत अर्थों में रक्षा करता है।

३—नागमती

पद्मावत का तीसरा प्रमुख पात्र है नागमती। नागमती राजा रत्नसेन की पहली रानी है जिसे त्याग कर राजा पद्मावती को प्राप्त करता है। नागमती को जायसी ने गोरख धंधा कहा है। गोरखधंधा अर्थात जीवन की सांसारिक वृत्तियां मोह प्रपंच आदि। यह मन को सदैव अपने मोह से जकड़े रहता है। उसको केवल जीवन में लीन किये रहते हैं और व्यक्ति के ऊर्ध्व विकास अर्थात परमात्मा की प्राप्ति में बाधा डालते हैं।

नागमती का ऐसा रूप पद्मावत में कहीं भी स्पष्ट कथन द्वारा प्रकट नहीं हुआ है। पाठकों की सहानुभूति बराबर नागमती के साथ बनी रहती है। इसलिए बहुत से विद्वानों ने उसे रूपकार्थ का अंग माना है। परन्तु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर पद्मावत कार की नागमती उसके रूपक के सर्वथा विपरीत नहीं है। वह किन्हीं अंशों में रूपक को पुष्ट करती है और उसी सांकेतिक अर्थ की व्यंजना करती है जिसे जायसी ने अंतिम छन्द में प्रस्तुत किया है।

गोरखधंधे के रूप में नागमती मन रूपी राजा को भ्रमित करती है और पद्मावती रूपी ब्रह्म की प्राप्ति के प्रेम मार्ग में बाधा डालती है। जब राजा नागमती रूपी गोरखधंधे को त्यागकर प्रेम मार्ग पर अग्रसर हुआ है तभी वह पद्मावती रूपी ब्रह्म को प्राप्त कर सका है। नागमती के लिए कवि ने अनेक स्थलों पर नाग उपमान दिया है जो उसकी सांकेतिकता को ध्वनित करता है। नाग उपमान पद्मावती के केशों के लिए भी आया है परन्तु नागमती के समग्र रूप के लिए आया है। नागमती के लिए प्रयुक्त यह उपमान उसके नाम में आए 'नाग' शब्द के कारण भी संभव हुआ है पर यह कवि की रूपक योजना में भी सहायता करता है। जीवन के जंजाल प्रपंच आदि की निम्न प्रवृत्तियां नाग के बिम्ब से ध्वनित हैं। 'नाग' उपमान बराबर जीवन के जंजाल के लिए प्रयुक्त होता रहा है। तुलसी ने संसार को सर्प माना है

१ पदमावत की टीका की भूमिका : डा. वासुदेव शरण अग्रवाल पृ. ४१

जागु जागु जीव जड़ जोहै जग जामिनी
देह गेह नेह जानि जैसे घन-दामिनी।
सोवत सपनेहु सहै संसृति संताप रे
बूड्यो मृगवारि खायो जेवरी के साँप रे।[1]

और

मैं अपराध सिंधु करुनाकर जानत अंतर-जामी।
तुलसीदास भव-व्याल ग्रसित तव सरन उरग रिपु गामी।[2]

सूरदास में भी संसार को सर्प मानने की कल्पना आई। भारतीय दर्शन और योग मार्ग में भी यह कल्पना बराबर रही है। संसार को सभी ने सर्पवत निंदनीय और उपेक्षणीय माना है। जायसी के मानस में इन मान्यताओं का किसी न किसी रूप में प्रभाव पड़ा होगा जिससे उन्होंने नागमती के गोरखधंधे के रूप को प्रकट करने के लिए अनेक स्थलों में नाग के रूपक प्रस्तुत किये हैं

१—जेहि दिन कहँ हौं नित डरौं रैन छिपावौं सूर।
लै चहँ दीन्ह कवँल कहँ, मो कहँ होइ मंजूर।

२—नागमती नागिनि बुधि ताऊ, सुआ मंजूर होइ नहिं काऊ।
(८१ ८१)

३—तेहि लोहि कारन गई मैं बारा पुनि नाग होइ पवन अपारा।
(८६)
बिरह मंजूर नाग वह नारी तू मजार करु बेगि गोहारी।
(१६८)

संसार अथवा जीवन के मोह जाल और प्रपंच की प्रतीक होने के कारण सुग्गा उसकी निंदा करता है और ब्रह्म की स्तुति करता है

का पूछहु सिंघल की नारी दिनहिं न पूजै निसि अँधियारी।
पुहुप सुगंध सो तिन्ह कै काया जहाँ माथ का बरनौं पाया।
(८४ ६-७)

जायसी के मानस में नागमती का वर्ण भी काला ही गया है। नागमती का यह रूप बहुत अंशों में उसके सांकेतिक अर्थों को ध्वनित करता है।

नागमती को दुनिया धंधा न मानने के पक्ष में उसके विरह वर्णन की विशदता और गंभीरता को दिया जाता है। नागमती का विरह वर्णन अद्वितीय है और वह पूर्णतः लौकिक अर्थों को ध्वनित करता है। यह विरह वर्णन रूपात्मक अर्थों में लेश मात्र भी सहायता नहीं देता ऐसा अनेक विद्वानों का मत है। परन्तु एक प्रश्न यहाँ उठ सकता है कि कवि ने नागमती का इतना विशद और करुण विरह वर्णन क्यों

[1] विनय पत्रिका : तुलसी पृ १३३
[2] विनय पत्रिका तुलसी, पृ १ ८

किया ? पद्मावती के संदर्भ में भी विरह का अवकाश था पर वहां उसकी लेखिनी का वैभव कुंठित क्यों है ? कथा के स्थूल में विरह के अनेक स्थल थे पर कवि ने नागमती को इतना व्यापकत्व क्यों दिया है ? यह ठीक है कि कवि विरह का मुख्यतः प्रेम पीर का कवि है और बहुत अंशों में परम्परा पालन के लिए उसने इतना विस्तृत वर्णन किया है पर यह विशदता पद्मावती के विरह वर्णन में भी तो आ सकती थी ? उसके विरह के कई स्थल आए हैं पर वह न मर्मस्पर्शी है न विशद सम्भवतः कवि जानबूझ कर उसकी उपेक्षा कर गया है। कवि के मानस में पद्मावती ब्रह्म स्वरूप है एवं वह स्थितिप्रज्ञ है। मन (रत्नसेन) के प्रति वैसा लगाव उसमें नहीं हो सकता जैसा नागमती (मोह प्रपंच का) है क्योंकि वह स्वयं जीवन का जाल गोरख धंधा है। पद्मावती बहुत अंशों में लोकोत्तर है सुख-दुख विरह संयोग आदि से उसका वैसा मोह नहीं है राजा का वियोग पद्मावती को इतना व्यथित नहीं करता जितना नागमती को। प्रेम की भावना नागमती में अधिक है प्रेम की भावना नागमती में अधिक है प्रेम की पीड़ा उसे ही अधिक पीड़ित करती है। जायसी के प्रेम का आदर्श नागमती है पद्मावती नहीं।

समष्टि में कहा जा सकता है कि नागमती रूपक में निहित अर्थ को यद्यपि सर्वत्र व्यक्त नहीं करती उससे इतर भी उसका उज्ज्वल रूप दृष्टिगोचर होता है पर वह रूपकार्थ के एकदम विरोध में भी नहीं है और कुछ अंशों में रूपक का निर्वाह उसके द्वारा होता है।

(४) हीरामन

हीरामन तोते को जायसी के सांकेतिक अर्थों में गुरु माना गया है। गुरु का सूफी सिद्धान्तों में बड़ा महत्त्व है। वही परमात्मा के प्रेम की चिनगारी शिष्य के हृदय में प्रज्वलित करता है। उसके सहारे ही शिष्य ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। जायसी स्पष्ट कहते हैं

गुरु बिनु जगत को निरगुन पावा।

हीरामन में गुरु की यह सब विशेषताएं आरोपित हैं। वह रत्नसेन का पथ प्रदर्शक है। वह उसे पद्मावती रूपी ब्रह्म का ज्ञान कराता है और उसके हृदय में ब्रह्म को पाने की लालसा की चिनगारी डाल देता है तदनन्तर ब्रह्म का मार्ग उसको प्राप्त करने की युक्ति भी वही बताता है। शिष्य को ब्रह्म से मिलाने के लिए वही अधिक प्रयत्नशील है। वह पद्मावती (ब्रह्म) का संदेश (किंवा आदेश) रत्नसेन (साधक) तक पहुंचाता है। समग्र कथा में इस प्रकार तोते का रूप गुरु का ही है। परन्तु उसके लिए प्रयुक्त बिम्ब योजना में प्रतीकात्मक अर्थों की व्यंजना अभिव्यक्ति भी नहीं है। स्वयं जायसी ने गुरु के लिए दीपक माणिक आदि के बड़े उदात्त उपमान दिये हैं पर हीरामन के लिए ऐसा कोई बिम्ब प्रस्तुत नहीं हुआ है जो उसके गुरु रूप की व्याख्या करे। परन्तु घटना क्रम में उसके महत्त्व को देखते हुए उसे गुरु रूप में निःसंकोच स्वीकार किया जा सकता है। इस प्रकार हीरामन सांकेतिक अर्थों को प्रकट करता है।

(५) बादशाह

पद्मावत का एक अन्य पात्र शाह अलाउद्दीन है, वह रूपलोभी है और रत्नसेन की पत्नी को प्राप्त करने की निम्नतीय चेष्टाएं करता है। सांकेतिक अर्थों में वह माया का प्रतीक है। परन्तु कथा की घटनाओं और बिम्बों में वह कहीं ऐसे अर्थ को ध्वनित नहीं करता। उसके लिए वह प्रयुक्त बिम्ब सूर्य है जो उसके माया रूप की व्यंजना में लेशमात्र भी सहायता नहीं करता। इस प्रकार बादशाह का सांकेतिक अर्थ माया नितांत असंगत प्रतीत होता है।

(६) राघव चेतन

राघव चेतन चित्तौड़ का निष्कासित व्यक्ति है जो शाह को पद्मावती का रूप सौन्दर्य सुनाकर चित्तौड़ पर चढ़ाई के लिए आमंत्रित करता है। पद्मावतकार ने अपने रूपक में उसे दूत कहा है। माया (शाह) को मन (राजा) को भ्रमित करने के लिए आवाहन करने के कारण वह दूत अथवा शैतान को प्रतीत होता है परन्तु ब्रह्म और जीव (पद्मावती व रत्नसेन) के मिलन के पश्चात उसकी उपस्थिति की कोई उपयोगिता प्रतीत नहीं होती। राघव चेतन का पद्मावत में विशेष उल्लेख नहीं है। जायसी ने उसके लिए एक भी उल्लेखनीय बिम्ब नहीं दिया है। कुछ रूप चित्र अवश्य हैं जो पद्मावती के रूप के प्रति उसकी आसक्ति, मूर्छित होने की अवस्था को प्रकट करते हैं। उसके बिम्बों में उसके सांकेतिक अर्थों की तनिक ध्वनि भी नहीं है समष्टि में वह शैतान या दूत का प्रतीक नहीं प्रतीत होता।

इसके अतिरिक्त अन्य गौण पात्र भी हैं जिनका रूपक में उल्लेख नहीं है न ही वह किसी प्रकार की सांकेतिकता को प्रकट करते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार प्रतीत होता है कि पात्रों एवं कथा में कुछ अंश तो रूपकात्मकता की पुष्टि करते हैं पर इसके विपरीत कुछ अंश ऐसे हैं जो काव्य के समग्र रूपकार्थ को समझने में बाधा डालते हैं। और उसका सांकेतिक रूप विशृंखलित हो जाता है।

पद्मावती यद्यपि बिम्बों की दृष्टि से एक लोकोत्तर पात्र प्रतीत होती है और उसकी घटनाएं आदि भी उसे लोकोत्तरता प्रदान करती हैं परन्तु उसके अनेक रूप ऐसे हैं जो उसे एकदम लौकिक बना देते हैं। पद्मावती का विवाह रत्नसेन से मिलन, नागमती से विवाद राजा के मरणोपरान्त विलाप आदि से अलौकिकता की गंध भी नहीं आती। रत्नसेन और पद्मावती का मिलन उस स्तर का नहीं है जिस स्तर का ब्रह्म जीव का हो सकता था, कवि ने वहां एक भी लोकोत्तर अथवा आध्यात्मिक संकेत नहीं दिया है। वह अत्यन्त सामान्य स्तर पर साधारण स्त्री पुरुष का मिलन ही प्रतीत होता है। उसे योग आदि की वार्ता के प्रसंग से रस और कर दिया गया है। पद्मावती व नागमती का विवाद भी आध्यात्मिकता के विपरीत है। रत्नसेन के बंदी होने व मरण के उपरान्त पद्मावती का विलाप भी इसी प्रकार का है। यद्यपि कवि ने

पद्मावती का वियोग नागमती की अपेक्षा कम दिखाया है पर वह भी उसकी आध्यात्मिकता के पक्ष में नहीं है। इस प्रकार अनेक रूपों में पद्मावती की सांकेतिकता में असंगतियां प्रतीत होती हैं। उसके कमल आदि के बिम्ब भी उसे लौकिक ही प्रकट करते हैं आध्यात्मिक नहीं।

नागमती के 'नाग' आदि के कुछ उपमानों को छोड़कर सामान्यतः वह एक आदर्श प्रेममयी नारी प्रतीत होती है। वह एक आदर्श गृहिणी और आदर्श प्रेमिका लगती है गोरख धंधा कम ही लगती है। पाठक की भावनाएं भी उसके साथ गोरखधंधे जैसी नहीं रहती हैं वरन् पाठक की सहानुभूति बराबर नागमती के साथ रहती है। पद्मावती की अपेक्षा नागमती अधिक सरस है हृदय को मोहित करने की अधिक सामर्थ्य रखती है जो उसके सांकेतिक अर्थों के विपरीत है।

इसी प्रकार राजा रत्नसेन के लिए प्रयुक्त बिम्बों में उसका अन्य रूप भी सामने आता है वह है एक तेजवान शौर्यपूर्ण और प्रतापी राजा का। राजा के लिए बहु प्रयुक्त उपमान सूर्य और इन्द्र हैं जो राजा के तेज प्रताप और रूप की दीप्ति के लिए आये हैं। इन्द्र का बिम्ब पौराणिक है जो उसके परम्परागत सार्वभौम रूप को प्रकट करता है। राघव चेतन अलाउद्दीन बादशाह आदि के प्रतीकात्मक अर्थों में भी अनेक असंगतियां पड़ जाती हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

वस्तुतः जायसी के पात्रों के दो रूप हमारे समक्ष आते हैं जहां एक में वह प्रतीकात्मक अर्थ को प्रकट करते हैं और दूसरे में कथा के लौकिक अर्थ में सहायक होते हैं। पद्मावत में अनेक पात्र और अनेक स्थल ऐसे हैं जिनकी प्रतीकात्मकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पद्मावती का बहुत रूप रत्नसेन रूपी मन का दुनिया धंधे (नागमती) को त्यागकर प्रेम मार्ग की साधना-सम्मत प्रतीकात्मक अर्थों के पोषक हैं। परन्तु कुछ विद्वानों ने इस प्रतीकात्मकता को अस्वीकार किया है। डा० बच्चनसिंह ने लिखा है कि नागमती को दुनिया धंधा मानना सर्वथा असंगत है हम तो नागमती की अवहेलना कर पद्मावती के प्राप्त करने के प्रयत्न को उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से नाथपंथी मत्स्येन्द्रनाथ को सिंहल जाकर पद्मिनी स्त्रियों के जाल में पड़ जाने को यह पतन है उत्थान नहीं।[१] परन्तु इस प्रकार की मान्यताएं उचित नहीं हैं, यह कवि के प्रति अन्याय है। जायसी की प्रतीकात्मकता कुछ अंशों में काव्य में पूरी उतरती है। यद्यपि स्थल-स्थल पर उसका रूप विशृंखलित हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूपक कवि के मानस में था पर वह काव्य में उसका सम्यक निर्वाह नहीं कर सका। प्रतीकात्मकता के अनुसार पद्मावती और रत्नसेन के मिलन के उपरान्त कथा को समाप्त हो जाना चाहिए था पर ऐसा नहीं होता कथा बहुत आगे तक चलती है और कवि उसमें इतिहास का समावेश भी कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी की प्रतीकात्मकता की कुछ सीमाएं हैं जो उसकी सांकेतिकता को

१ उद्धृत डा० श्री शिवसहाय पाठक : पद्मावत का काव्य सौन्दर्य

पूर्णतः प्रतिपादित नहीं करती है।

परन्तु कवि की इन सीमाओं और रूपक की असमर्थता के भी अनेक कारण हैं जिनको समझ लेना आवश्यक है। वस्तुतः कवि का व्यक्तित्व मिश्रित (कम्प्लेक्स) होता है। वह दार्शनिक ज्योतिषी रहस्यवादी गणितज्ञ सभी हो सकता है। कवि सिर्फ कवि नहीं है वरन् वह अपने समाज परिस्थितियों संसार और स्वयं अपने व्यक्तित्व का एक मिश्रित प्रकाशन होता है। अतः काव्य में केवल कवि रूप का आग्रह अनुपयुक्त है। जायसी भी ऐसे ही मिश्रित रूप में हमारे सामने आया है। जायसी बहुश्रुत था अतः भिन्न-भिन्न मत भिन्न भिन्न विचार उसमें एक साथ प्रकट हुए हैं। रूपक की असमर्थता बहुत कुछ इसी के कारण है। जायसी एक ओर तो सूफी मसनवियों के प्रभाव से कथा में रूपक देना चाहता है दूसरी ओर वह लोककथाओं के प्रभाव से प्रेम कथा भी देना चाहता है और रूपक से कथा को विकृत करना भी उसे अभीप्सित नहीं है वह कथा को बराबर सरस बनाये रखता है। उसका सहृदय कवि सरस व प्रभावपूर्ण घटनाओं को किसी मूल्य पर भी छोड़ना नहीं चाहता चाहे उससे रूपक क्यों न विकृत हो जाये। पद्मावती की विदा का प्रसंग ऐसा ही है। रहस्यवादी कवि रूपक को भूल कर स्वयं रम जाता है और नवीन उद्भावनाएं करने लगता है जो रूपक की विरोधी होती हैं।

जायसी का एक अन्य रूप इतिहासकार का है। यद्यपि वह घटनाओं का ब्यौरा मात्र देने वाला इतिहासकार नहीं है पर कवि होते हुए भी वह इतिहास की उपेक्षा नहीं कर पाया है। इसी कारण बादशाह को माया कहते हुए भी कवि उसके प्रति वैसे भाव व्यक्त नहीं कर पाया है। जैसे माया के प्रति होने चाहिए। बादशाह एक वीर्यवान और प्रतापी राजा के रूप में ही हमारे सम्मुख आता है क्रूर और उपेक्षणीय व्यक्ति के रूप में नहीं। कारण कि कवि की सामान्य रुचि जो लोक सामान्य में व्याप्त उसके शौर्य और प्रताप के कारण बनी थी शाह की उपेक्षा नहीं कर सकी। पद्मावती व रत्नसेन का प्रतीकात्मक अर्थ भी इतिहास के आ जाने से समाप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि पद्मावत की कथा का इतिहास उसकी रूपकात्मकता की सबसे बड़ी अड़चन है। इतिहास की अवहेलना करना कवि को इष्ट नहीं था न सम्भव हो सकता था इस कारण वह अपने रूपक को समग्र रूप में प्रस्तुत नहीं कर सका है।

बिम्बों के अध्ययन से तो यह प्रकट होता है कि पद्मावती और रत्नसेन के मिलन तक ही काव्य में कवि की रुचि रही है उत्तरार्द्ध में तो वह कथा को पूरा करने का प्रयत्न करता प्रतीत होता है। पूर्वार्द्ध में ही अधिक और प्रभावशाली बिम्ब योजना है। उत्तरार्द्ध में कवि की रुचि का क्षय होने से उसकी कल्पना भी सुप्त-सी हो गई जान पड़ती है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की यह बिम्ब योजना की भिन्नता प्रकट करती है कि संभवतः कवि को सिद्धान्तों का प्रकाशन ही कथा के माध्यम से

पद्मावती का वियोग नागमती की अपेक्षा कम दिखाया है पर वह भी उसकी आध्यात्मिकता के पक्ष में नहीं है। इस प्रकार अनेक रूपों में पद्मावती की सांकेतिकता में असंगतियां प्रतीत होती हैं। उसके कमल आदि के बिम्ब भी उसे लौकिक ही प्रकट करते हैं आध्यात्मिक नहीं।

नागमती के नाग' आदि के कुछ उपमानों को छोड़कर सामान्यतः वह एक आदर्श प्रेममयी नारी प्रतीत होती है। वह एक आदर्श गृहिणी और आदर्श प्रेमिका लगती है गोरख धंधा कम ही लगती है। पाठक की भावनाएं भी उसके साथ गोरखधंधे जैसी नहीं रहती हैं वरन् पाठक की सहानुभूति बराबर नागमती के साथ रहती है। पद्मावती की अपेक्षा नागमती अधिक सरस है हृदय को मोहित करने की अधिक सामर्थ्य रखती है जो उसके सांकेतिक अर्थों के विपरीत है।

इसी प्रकार राजा रत्नसेन के लिए प्रयुक्त बिम्बों में उसका अन्य रूप भी सामने आता है वह है एक तेजवान शौर्यपूर्ण और प्रतापी राजा का। राजा के लिए बहु प्रयुक्त उपमान सूर्य और इन्द्र हैं जो राजा के तेज प्रताप और रूप की दीप्ति के लिए आये हैं। इन्द्र का बिम्ब पौराणिक है जो उसके परम्परागत आदरणीय रूप को प्रकट करता है। राघव चेतन अलाउद्दीन बादशाह आदि के प्रतीकात्मक अर्थों में भी अनेक असंगतियां रह जाती हैं जिनका उल्लेख पहले किया जा चुका है।

वस्तुतः जायसी के पात्रों के दो रूप हमारे समक्ष आते हैं जहां एक म प्रतीकात्मक अर्थ को प्रकट करते हैं और दूसरे में कथा के लौकिक अर्थ में सहायक होते हैं। पद्मावत में अनेक पात्र और अनेक स्थल ऐसे हैं जिनकी प्रतीकात्मकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। पद्मावती का बुद्धि रूप रत्नसेन रूपी मन का दुनिया धंधे (नागमती) को त्यागकर प्रेम मार्ग की साधना-सदृश्य प्रतीकात्मक अर्थों के द्योतक हैं। परन्तु कुछ विद्वानों ने इस प्रतीकात्मकता को अस्वीकार किया है। डा० बड़थ्वाल ने लिखा है कि नागमती को दुनिया धंधा मानना सर्वथा असंगत है हम तो नागमती की अवहेलना कर पद्मावती के प्राप्त करने के प्रयत्न को उसी दृष्टि से देखते हैं जिस दृष्टि से नाथपंथी मछन्दरनाथ को सिंहल जाकर पद्मिनी स्त्रियों के जाल में पड़ जाने को यह पतन है उत्थान नहीं।[1] परन्तु इस प्रकार की मान्यताएं उचित नहीं हैं, यह कवि के प्रति अन्याय है। जायसी की प्रतीकात्मकता कुछ अंशों में काव्य में पूरी उतरती है। यद्यपि स्थल-स्थल पर उसका रूप विशृंखलित हो गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि रूपक कवि के मानस में था पर वह काव्य में उसका सम्यक निर्वाह नहीं कर सका। प्रतीकात्मकता के अनुसार पद्मावती और रत्नसेन के मिलन के उपरान्त कथा को समाप्त हो जाना चाहिए था पर ऐसा नहीं होता कथा बहुत आगे तक चलती है और कवि उसमें इतिहास का समावेश भी कर देता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि जायसी की प्रतीकात्मकता की कुछ सीमाएं हैं जो उसकी सांकेतिकता को

१ सन्दर्भ द्र० श्री शिवसहाय पाठक : पदमावत का काव्य सौन्दर्य

पूर्णतः प्रतिपादित नहीं करती है।

परन्तु कवि की इन सीमाओं और रूपक की असमर्थता के भी अनेक कारण हैं जिनको समझ लेना आवश्यक है। वस्तुतः कवि का व्यक्तित्व मिश्रित (कम्प्लेक्स) होता है। वह दार्शनिक ज्योतिषी रहस्यवादी पण्डित सभी हो सकता है। कवि सिर्फ 'कवि' नहीं है वरन् वह अपने समाज परिस्थितियों संसार और स्वयं अपने व्यक्तित्व का एक मिश्रित प्रकाशन होता है। अतः काव्य में केवल कवि रूप का आग्रह अनुपयुक्त है। जायसी भी ऐसे ही मिश्रित रूप में हमारे सामने आता है। जायसी बहुश्रुत था अतः भिन्न-भिन्न मत भिन्न भिन्न विचार उसमें एक साथ प्रकट हुए हैं। रूपक की असमर्थता बहुत कुछ इसी से कारण है। जायसी एक ओर तो सूफी मसनवियों के प्रभाव से कथा में रूपक देना चाहता है दूसरी ओर वह लोककथाओं के प्रभाव से प्रेम कथा भी देना चाहता है और रूपक से कथा को विकृत करना भी उसे अभीप्सित नहीं है वह कथा को बराबर सरस बनाये रखता है। उसका सहृदय कवि सरस व प्रभावपूर्ण घटनाओं को किसी मूल्य पर भी छोड़ना नहीं चाहता चाहे उससे रूपक क्यों न विकृत हो जाये। पद्मावती की विदा का प्रसंग ऐसा ही है। रहस्यवादी कवि रूपक को भूल कर स्वयं रम जाता है और नवीन उद्भावनाएं करने लगता है जो रूपक की विरोधी होती हैं।

जायसी का एक अन्य रूप इतिहासकार का है। यद्यपि वह घटनाओं का ब्योरा मात्र देने वाला इतिहासकार नहीं है पर कवि होते हुए भी वह इतिहास की उपेक्षा नहीं कर पाया है। इसी कारण बादशाह को माया कहते हुए भी कवि उसके प्रति वैसे भाव व्यक्त नहीं कर पाया है। जैसे माया के प्रति होने चाहिए। बादशाह एक शौर्यवान और प्रतापी राजा के रूप में ही हमारे सम्मुख आता है क्रूर और निन्दनीय व्यक्ति के रूप में नहीं। कारण कि कवि की सामान्य रुचि को लोक सामान्य में व्याप्त उसके शौर्य और प्रताप के कारण कभी भी शाह की उपेक्षा नहीं कर सकी। पद्मावती व रत्नसेन का प्रतीकात्मक अर्थ भी इतिहास के आ जाने से समाप्त हो जाता है। इस प्रकार प्रतीत होता है कि पद्मावत की कथा का इतिहास उसकी चमत्कारमयता की सबसे बड़ी अड़चन है। इतिहास की अवहेलना करना कवि को इष्ट नहीं था न सम्भव हो सकता था इस कारण वह अपने रूपक को समग्र रूप से प्रस्तुत नहीं कर सका है।

बिम्बों के अध्ययन से तो यह स्पष्ट होता है कि पद्मावती और रत्नसेन के मिलन तक ही काव्य में कवि की रुचि रही है उत्तरार्द्ध में तो वह कथा को पूरा करने का प्रयत्न करता प्रतीत होता है। पूर्वार्द्ध में ही अधिक और प्रभावशाली बिम्ब योजना है। उत्तरार्द्ध में कवि की रुचि का क्षय होने से उसकी कल्पना भी सुप्त-सी हो गई जान पड़ती है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध की यह बिम्ब योजना की भिन्नता प्रकट करती है कि संभवतः कवि को सिद्धान्तों का प्रकाशन ही कथा के माध्यम से

अभीप्सित था। उत्तरार्द्ध में घटनाएं अपेक्षाकृत जल्दी-जल्दी आई हैं और वह वर्णनात्मक (डिस्क्रिप्टिव) न होकर कथात्मक (नरेटिव) हो गई है। इससे कवि की रूपक के प्रति रुचि प्रकट होती है। इसी कारण कुछ विद्वानों ने पूर्वार्द्ध के स्थलों तक ही रूपक योजना मानी है।

जायसी के आलोचकों ने उनकी रूपक योजना पर विभिन्न मत प्रकट किये हैं। डा० कमल कुलश्रेष्ठ ने लिखा कि 'सम्भवतः यह व्याख्या कवि ने काव्य लिखने के बाद कर दी है। काव्य रचना करते समय उसके मस्तिष्क में यह रूपक नहीं था।'[1] और शिवसहाय पाठक ने लिखा कि पद्मावत में न कोई धार्मिक सिद्धान्त प्रतिपादन प्रमुख विषय बनाया गया है और न उसमें किसी रूपक का आरोप किया गया है। भार तीय चिन्ता धारा में उसके साहित्यिक सौन्दर्य का मूल्यांकन होना चाहिए। इतिहास धार्मिक सिद्धान्त या किसी रूपक के रूप का आरोप उसके प्रति अन्याय होगा। उसका सम्पूर्ण सौन्दर्य काव्य का है वह कवि मुहम्मद जायसी' के अन्तर की सर्वोत्तम अभिव्यक्ति है।'[2] परन्तु यह मत पूर्णरूपेण तर्क सम्मत नहीं है। जायसी के काव्य में रूपक योजना अवश्य है पर वह उसका रूप पूर्णतः नहीं दे पाया है जिसके कारणों का उल्लेख किया जा चुका है। पद्मावती का ज्योति का बिम्ब नागमती का नाग का बिम्ब राजा की द्वन्द्वात्मक स्थिति का बिम्बात्मक वर्णन आदि कथा के ऐसे रूप हैं जिसके कारण उसकी रूपक योजना को स्वीकार करना पड़ता है। यद्यपि सर्वत्र बिम्बों ने रूपकात्मकता की रक्षा नहीं की है और रूपक को विशृंखलित कर दिया है फिर भी बिम्ब की दृष्टि से कथा में रूपक का स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। समग्रता न होने से यह रूपक अन्योक्ति की श्रेणी में तो नहीं आता पर समासोक्ति इसे अवश्य ही कह सकते हैं। समष्टि में कवि के बिम्ब उसकी कथा की रूपकात्मकता को अंश रूप में सिद्ध करते हैं।

समष्टि में इस अध्याय में हमने जायसी के बिम्बों के माध्यम से उनके विचारों एवं भावों अथवा सिद्धान्तों को समझने का प्रयत्न किया है। सर्वप्रथम उन स्थलों का परीक्षण है जिसमें कवि ने सर्वाधिक और मर्मस्पर्शी बिम्ब दिए हैं और उनका कारण क्या है? जायसी ने संयोग वियोग करुण और शान्त स्थलों पर सबसे अधिक सफल बिम्ब योजना की है। इससे कवि के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता है। इस विशिष्ट प्रकार की बिम्ब योजना से सिद्ध होता है कि जायसी का प्रधान रूप प्रेम पीर के गायक कवि का है और फिर उसके व्यक्तित्व में सूफी साधक का रूप प्रधान है। उसने उन्हीं स्थलों पर बिम्ब योजना उत्कृष्ट की है जो उसके व्यक्तित्व से मेल खाते हैं अथवा जिनमें उसकी रुचि है और जो उसके अधिक निकट हैं।

जायसी के कुछ बिम्ब बहु आवृत्त हैं उनमें विचारों की एक सघन परम्परा है

---

१ मलिक मुहम्मद जायसी : डा० कमल कुलश्रेष्ठ, पृ० ४

२ पद्मावत का काव्य सौन्दर्य : शिवसहाय पाठक, पृ० २१२

जो उसके चिन्तन को स्पष्ट करती हैं। ये पद्मावत के प्रमुख बिम्ब हैं जो बहुधा एक ही पात्र और एक घटना के लिए आते रहे हैं। इनमें चन्द्र और सूर्य ज्योति कमल और इन्द्र के बिम्ब प्रधान हैं।

बिम्बों द्वारा जायसी के भावों विचारों एवं सिद्धान्तों का भी अच्छा प्रकाशन हुआ है। जायसी की प्रमुख मान्यताओं जो मुख्यतः गुरु प्रेम संसार ईश्वर, जीव ज्ञान द्रव्य आदि विषयक हैं का अध्ययन बिम्ब योजना के द्वारा किया गया है।

अन्त में पद्मावत की रूपक योजना का बिम्बों के माध्यम से अध्ययन है जिसमें रूपक का अस्तित्व होते हुए भी उसकी बिम्बात्मकता पर दृष्टि जाती है। रूपक योजना कवि के मानस में थी पर उसका सम्यक प्रकाशन नहीं हो सका है जिसके अनेक कारण हैं। उसमें उसके इतिहासकार लोक कथाकार और सहृदय कवि के रूपों की प्रमुखता है। समष्टि में जायसी की बिम्ब योजना उसके विचारों एवं भावों का सम्यक प्रकाशन करती है। बिम्ब योजना से भाव और विचारों का सम्बन्ध अत्यन्त निकट का है।

अध्याय ८

मध्यकालीन बिम्ब योजना और जायसी

कवि एक सामाजिक प्राणी है। काव्य में वह अपने समय अपने समाज और और अपनी परिस्थितियों को प्रतिबिम्ब करता है। इसीलिए काव्य का युगानुकूल विभाजन किया जा सकता है। परन्तु काव्य में कवि के केवल बाह्य जीवन की झलक ही नहीं मिलती वरन् उसमें कवि का अन्तर भी स्पष्ट होता है उसकी रुचि-रुझानों संस्कारों भावनाओं आदि की व्यक्तिगत विशिष्टताओं का प्रकाशन भी रहता है। और इस कारण एक ही समय परिस्थिति या समाज का प्रतिनिधित्व करने पर भी काव्य विशिष्ट हो जाते हैं। उनकी यह विशिष्टता कवि के आंतरिक और बाह्य जीवन की झांकी उसके बिम्ब-विधान से मिलती है। एक युग के होने पर भी सभी कवि एक से नहीं होते उनमें कुछ मूलभूत भिन्नताएं होती हैं जो उनकी अभिव्यक्ति को निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं। इन मूलभूत भिन्नताओं का प्रकाशन काव्य में बिम्बों द्वारा होता है।

मध्यकालीन कवि यद्यपि एक ही प्रकार की सगुण या निर्गुण की भक्ति परम्परा को लेकर चले हैं और एक ही प्रकार के समय और परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं फिर भी सूर तुलसी कबीर और जायसी आदि में कुछ मूलभूत विशिष्टताएं हैं जिन्होंने उनके काव्यों को विशिष्ट अर्थात भिन्न बनाया है। उनकी भावनाएं, उनके विचार और उनकी अभिव्यक्ति—सभी उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने ढंग की हैं। उनके काव्य के बिम्ब उनकी विशिष्टता या उनके व्यक्तित्व के प्रकाशक हैं। उसी प्रकार जायसी के बिम्ब उनके काव्य की भांति विशेष प्रकार के हैं, जो विशेषरूप अथवा व्यक्तित्व को भी प्रकट करते हैं। यहां हम मध्यकाल के कुछ प्रमुख कवियों के साथ जायसी के बिम्बों और उसके निष्कर्षों का अध्ययन करेंगे। मध्यकाल के ये प्रमुख कवि हैं—कबीर सूर, तुलसी देव बिहारी मतिराम और घनानन्द।

कवि के बिम्बों का तुलनात्मक अध्ययन कई आधारों पर किया जा सकता है। इनमें प्रथम है

१—बिम्ब की उपात्त वस्तु

बिम्ब के चयन का क्षेत्र कवि की रुचि-रुझानों की वैयक्तिकता के कारण भिन्न हो जाता है। सभी कवि एक ही वस्तु के चित्र नहीं देते और देते भी हैं तो

उनमें गुण-धर्म आदि के आधार पर भिन्नता आ जाती है। अर्थात् एक ही वस्तु को वह भिन्न २ रूपों में प्रस्तुत करते हैं। जिस जीवन को कवि ने व्यतीत किया है और जिसका उस पर प्रभाव पड़ा है वह जाने अनजाने उसके काव्य को प्रभावित करता रहता है। कवि उसी वस्तु को बिम्ब के द्वारा प्रस्तुत करता है जिससे उसके हृदय का रागात्मक सम्बन्ध होता है अथवा जिसने उसको जीवन में भी प्रभावित किया है। इस प्रकार कवि के बिम्ब उसके जीवन के परिचायक होते हैं।

मध्ययुगीन बिम्ब-योजना में जायसी के बिम्बों का स्थान विशिष्ट है। उनके बिम्बों की उपादान वस्तु उनके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। यही बात कबीर तुलसी, सूर, बिहारी आदि के विषय में भी कही जा सकती है। उनकी उपादानवस्तु उनके ज्ञानी भक्त श्रृंगारी आदि रूपों को स्पष्टतः प्रकट करती है। सभी मध्यकालीन कवियों में जायसी का बिम्ब चयन विशिष्ट है जो उनके प्रेमी हृदय की अभिव्यंजना करता है। उनमें मुख्यतः कमल भ्रमर, दीपक-पतंग मालती भ्रमर सीप स्वाति चातक-स्वाति आदि के बिम्ब बहुतायत में लिये हैं जो सब प्रेम व्यापार के कारण गृहीत हैं। इनका प्रेम उनके नायक—नायिका पर आरोपित है। जायसी का प्रेमी हृदय सर्वत्र प्रेम की अनुभूति करता है। कुएँ पर पड़ी रस्सी उस विरहिणी के एकाकीपन की प्रतीक प्रतीत होती है सरोवर का फटना उस प्रेमी हृदय की विदीर्ण अवस्था का संकेत करता है और जीर्ण-शीर्ण पीत-पत्र या डाल से टूटा हुआ पत्ता भी उसे प्रेमी के पीड़ित और कुंठित हृदय का आभास देता है। भ्रमर पतंग आदि परम्परागत प्रेम प्रतीक हैं जायसी ने उन्हें खूब प्रयुक्त किया है पर साथ ही उसने जीवन के अनेक अन्य व्यापारों से भी प्रेम का संकेत पाया है जो उसके जीवन में प्रेम की प्रधानता को प्रकट करता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उसके प्रेम में विरह या पीड़ा की प्रधानता है जिसके कारण वह सृष्टि में विरह का प्रभाव ही अधिक लक्षित कर सका है संयोग ने कवि को कम प्रभावित किया है इसलिए संयोग सूचक बिम्ब भी उसमें कम आये हैं।

इसके विपरीत कबीर आदि संत कवियों का बिम्ब चयन उनके आध्यात्मिक पक्ष को स्पष्ट करता है। कबीर ने नाथ और सिद्ध सम्प्रदायों के परम्परागत प्रतीकों का बहुतायत से प्रयोग किया है जो उनके ज्ञानी संत के रूप को अभिव्यक्त करते हैं। उनके अन्य प्रतीकों व बिम्बों में भी अध्यात्म—ज्ञान की प्रधानता रही है। 'नलिनी' उनके काव्य में आत्मा का प्रतीक है:

काहे री नलिनी तू कुम्हलानी तेरे नाल सरोवर पानी।
जल में उतपति जल में बास जल में नलिनी तोर निवास।
ना जल तपति न ऊपर आगि तोर हेतु कहु कासनि लागि।[1]

१ कबीर ग्रंथावली

अध्याय ८

मध्यकालीन विम्ब योजना और जायसी

कवि एक सामाजिक प्राणी है। काव्य में वह अपने समय अपने समाज और और अपनी परिस्थितियों को प्रतिबिम्ब करता है। इसीलिए काव्य का युगानुकूल विभाजन किया जा सकता है। परन्तु काव्य में कवि के केवल बाह्य जीवन की झलक ही नहीं मिलती वरन् उसमें कवि का अन्तर भी स्पष्ट होता है उसकी रुचि-अरुचियों संस्कारों भावनाओं आदि की व्यक्तिगत विशिष्टताओं का प्रकाशन भी रहता है। और इस कारण एक ही समय परिस्थिति या समाज का प्रतिनिधित्व करने पर भी काव्य विशिष्ट हो जाते हैं। उनकी यह विशिष्टता कवि के आंतरिक और बाह्य जीवन की झांकी उसके बिम्ब-विधान से मिलती है। एक युग के होने पर भी सभी कवि एक से नहीं होते उनमें कुछ मूलभूत भिन्नताएं होती हैं जो उनकी अभिव्यक्ति को निरन्तर प्रभावित करती रहती हैं। इन मूलभूत भिन्नताओं का प्रकाशन काव्य में बिम्बों द्वारा होता है।

मध्यकालीन कवि यद्यपि एक ही प्रकार की सगुण या निर्गुण की भक्ति परम्परा को लेकर चले हैं और एक ही प्रकार के समय और परिस्थितियों का प्रतिनिधित्व करते हैं फिर भी सूर तुलसी कबीर और जायसी आदि में कुछ मूलभूत विशिष्टताएं हैं जिन्होंने उनके काव्यों को विशिष्ट अर्थात भिन्न बनाया है। उनकी भावनाएं, उनके विचार और उनकी अभिव्यक्ति—सभी उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने ढंग की हैं। उनके काव्य के बिम्ब उनकी विशिष्टता या उनके व्यक्तित्व के प्रकाशक हैं। इसी प्रकार जायसी के बिम्ब उनके काव्य की भांति विशेष प्रकार के हैं, जो विशेषत्व उनका व्यक्तित्व को भी प्रकट करते हैं। यहां हम मध्यकाल के कुछ प्रमुख कवियों के साथ जायसी के बिम्बों और उसके निष्कर्षों का अध्ययन करेंगे। मध्यकाल के ये प्रमुख कवि हैं—कबीर सूर, तुलसी देव बिहारी मतिराम और घनानन्द।

कवि के बिम्बों का तुलनात्मक अध्ययन कई आधारों पर किया जा सकता है। इनमें प्रथम है

१—बिंब की उपास वस्तु

बिम्ब के चयन का क्षेत्र कवि की रुचि-अरुचियों की वैयक्तिकता के कारण भिन्न हो जाता है। सभी कवि एक ही वस्तु के चित्र नहीं देते और देते भी हैं तो

उनमें गुण-धर्म आदि के आधार पर भिन्नता आ जाती है। अर्थात् एक ही वस्तु को वह भिन्न २ रूपों में प्रस्तुत करते हैं। जिस जीवन को कवि ने व्यतीत किया है और जिसका उस पर प्रभाव पड़ा है वह जाने अनजाने उसके काव्य को प्रभावित करता रहता है। कवि उसी वस्तु को बिम्ब के द्वारा प्रस्तुत करता है जिससे उसके हृदय का रागात्मक सम्बन्ध होता है अथवा जिसने उसको जीवन में भी प्रभावित किया है। इस प्रकार कवि के बिम्ब उसके जीवन के परिचायक होते हैं।

मध्ययुगीन बिम्ब-योजना में जायसी के बिम्बों का स्थान विशिष्ट है। उनके बिम्बों की उपात्त वस्तु उसके व्यक्तित्व का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। यही बात कबीर, तुलसी, सूर, बिहारी आदि के विषय में भी कही जा सकती है। उनकी उपात्तवस्तु उनके ज्ञानी भक्त शृंगारी आदि रूपों को स्पष्टतः प्रकट करती है। सभी मध्य-कालीन कवियों में जायसी का बिम्ब चयन विशिष्ट है जो उनके प्रेमी हृदय की अभि-व्यंजना करता है। उसने मुख्यतः कमल-भ्रमर, दीपक-पतंग मालती भ्रमर और स्वाति चातक-स्वाति आदि के बिम्ब बहुतायत से दिये हैं जो सब प्रेम व्यापार के कारण गृहीत हैं। इनका प्रेम उसके नायक—नायिका पर आरोपित है। जायसी का प्रेमी हृदय सर्वत्र प्रेम की अनुभूति करता है। कुएं पर पड़ी रस्सी उसे विरहिणी के एकाकीपन की प्रतीक प्रतीत होती है सरोवर का फटना उस प्रेमी हृदय की विदीर्ण अवस्था का संकेत करता है और जीर्ण-शीर्ण पीत-पत्र या डाल से टूटा हुआ पत्ता भी उसे प्रेमी के पीड़ित और दुखित हृदय का आभास देता है। भ्रमर, पतंग आदि परम्परागत प्रेम प्रतीक हैं जायसी ने उन्हें खूब प्रयुक्त किया है पर साथ ही उसने जीवन के अनेक अन्य व्यापारों से भी प्रेम का संकेत पाया है जो उसके जीवन में प्रेम की प्रधानता को प्रकट करता है। यहां यह उल्लेखनीय है कि उसके प्रेम में विरह या पीड़ा की प्रधानता है जिसके कारण वह सृष्टि में विरह का प्रभाव ही अधिक लक्षित कर सका है, संयोग ने कवि को कम प्रभावित किया है इसलिए संयोग मूलक बिम्ब भी उसमें कम पाये हैं।

इसके विपरीत कबीर आदि संत कवियों का बिम्ब चयन उनके आध्यात्मिक रूप को स्पष्ट करता है। कबीर ने नाथ और सिद्ध सम्प्रदायों के परम्परागत प्रतीकों का बहुतायत से प्रयोग किया है जो उनके ज्ञानी संत के रूप को अभिव्यक्त करते हैं। उनके अन्य प्रतीकों व बिम्बों में भी अध्यात्म—ज्ञान की प्रधानता रही है। 'नलिनी' उनके काव्य में आत्मा का प्रतीक है:

> काहे री नलिनी तू कुम्हलानी तेरे नाल सरोवर पानी।
> जल में उतपति जल में बास जल में नलिनी तोर निवास।
> ना जल तपति न ऊपर आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।[1]

---

१ कबीर ग्रंथावली

यहाँ उसका गुरुभावना पल्लवित होगा—सब उन्हें जीव के आध्यात्मिक व्यापार प्रतीत हुए हैं सम्भवतः जायसी की कल्पना यहाँ उस पर प्रेम—पीर या विरह व्यथा का आरोपण करती परन्तु कबीर के काव्य में उसके व्यक्तित्व के अनुकूल उसका रूप आध्यात्मिक हो गया है। यह बिम्ब चयन उसके सन्त या ज्ञानी के रूप को प्रकट करता है।

तुलसी का हृदय एक भक्त कवि का हृदय है पर वह सूर के भक्त हृदय से भिन्न है। तुलसी जहाँ वैदिक संस्कृति का ज्ञाता और पंडित है वहाँ सूर मुख्यतः भाव विभोर भक्त ही है। जायसी के बिंब विधान से इन दोनों कवियों का बिंब विधान पृथक है। तुलसी ने ज्ञानी और पंडित होने के कारण अपने धार्मिक ज्ञान का परिचय अपने बिंब चयन में भी दिया है। यहाँ इन कवियों के बिंब चयन का विस्तार से वर्णन करना तो कठिन होगा क्योंकि उनका क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। अत केवल एक भाव या वस्तु के वर्णन के बिंब-चयन का परीक्षण कर उनकी तुलना की जायसी और उनके निष्कर्ष निकाले जा सकेंगे यहाँ हम सभी कवियों के रूप वर्णन विषयक बिम्बों को ही लेंगे और उनकी भिन्नता पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे।

तुलसी राम और सीता का रूप वर्णन इस प्रकार करते हैं

दूलह राम सीय दुलही री।
घन दामिनि बर-बरन हरन मन सुन्दरता नखसिख निबही री।
ब्याह विभूषन बसन-विभूषित सखि अवली लखि ठगि सी रही री
जीवन-जनम लाहु लोचन फल है इतनोइ लह्यो आजु सही री।
सुखमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मयन अमियमय कियो है दही री।
मथि माखन सिय राम सँवारे सकल भुवन छबि मनहु मही री।
तुलसिदास जोरी देखत सुख-सोभा अतुल न जात कही री।
रूप रासि बिरंचि बिरंचि मनो, सिला लवनि रति-काम लही री।[1]

सूर ने कृष्ण का रूप वर्णन इस प्रकार किया है—

देखो माई सु दरता को सागर।
बुधि बिबेक बल पार न पावत मगन होत मन नागर।
तनु अति स्याम अगाध अम्बु निधि कटि पट पीत तरंग।
चितवत चलत अधिक रुचि उपजत भवर परत सब अंग।
कनक कलित मनिमय आभूषन मुख श्रम कन सुख देत।
जनु जलनिधि मथि प्रकट भयो ससि श्री अरु सुधा समेत।
देखि सरूप सकल गोपीजन रहीं बिचारि बिचारि।
तदपि सूर तरि सकी न सोभा रही प्रेम पचि हारि।[2]

---

१ गीतावली : पृ० १६६-२७०, पद १४

२ सूरसागर : पृ० ४०३, द० स्कन्ध, पद ११२४

और जायसी इस प्रकार

मैं निसि ससि औराहर चढ़ी सोरह करा बेंसि बिधि गढ़ी।
बिहँस झरोखे आई सरेखी निरख साहि दरपन मह देखी।
होतहि दरस परस भा लोना धरती सरग भयऊ सब सोना।
(२६६ ७ ५)

यहाँ तुलसी सूर और जायसी मे बाह्य रूप से कोई विशेष अन्तर नहीं जान पड़ता परन्तु उनका बिम्ब विधान उनकी आंतरिक विशेषताओं को प्रकट कर देता है। तुलसी के रति और काम के उपमान उनके धर्म—पंडित रूप को प्रकट करते हैं। यह उपमान तुलसी ही दे सकते थे जायसी नहीं क्योंकि रति—काम आदि देवी देवताओं की जो धार्मिक मान्यता उन्हें प्राप्त थी वह जायसी में न थी। उसका ब्रह्म निर्गुण है। तुलसी का माखन और मट्ठे का रूपक भी उनके भक्त रूप को प्रकट करता है वह राम को परम ब्रह्म मानते हैं और समस्त संसार उनकी दृष्टि में हेय निकृष्ट है इस रूपक से यही प्रतिपादित होता है। इसके विपरीत जायसी प्रतिबिम्बवाद के निकट है वह संसार में सर्वत्र उसका (ब्रह्म का) आलोक विकीर्ण होता हुआ देखता है। उनके प्रकाश से सारा संसार उजासा हो जाता है। इसीलिए वह पद्मावती को शशि कहते हैं। सूरदास मुख्यतः भाव विभोर कवि हैं उनसे सौन्दर्य व्यंजक उपमान लिये हैं और अन्त तक वह भक्ति भाव में अवगाहन करते प्रतीत होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि तीनों कवियों का रूप चयन उनके विचारों के चयन के आधार पर भिन्न हो जाता है। सूर और भक्ति के अधिक निकट हैं उनमें वैदिक संस्कार हैं इसीलिए वह रति काम भक्ति-ज्ञान आदि के उपमान बराबर लाते रहे हैं। जायसी भी यद्यपि भक्त हैं परन्तु रूप इन निर्गुण भक्तों से बहुत भिन्न है वह मुख्यतः सूफी साधक हैं।

तुलसी ने मनु और शतरूपा के लिए मानस में भक्ति और ज्ञान का उपमान दिया है

बसहिं तहाँ मुनि सिद्ध समाजा तँह हिय हरषि चलेउ मनु राजा।
पंथ जात सोहहिं मति धीरा ग्यान भगति जनु धरे सरीरा।[1]

ये उपमान उन पर पड़े वैदिक धर्म के संस्कारों को अभिव्यक्त करते हैं इसके विपरीत जायसी मुसलमान था और उसने इस्लाम धर्म और कुरान से प्रभाव ग्रहण किये हैं उसके उपमान इसका प्रमाण देते हैं पद्मावती के समय वह कहता है

जस औधान पूरि होइ तासू दिन दिन हिए अधिक परगासू।
जस अंचल झीने महँ दिया तस उजियार देखावै हिया।
(५० ६-७)

यहाँ कुरान की उस मान्यता का प्रभाव है जिसके अनुसार परमात्मा का प्रकाश आले में रखे दीपक की भाँति है। और वह दीपक एक शीशे के भीतर है।

---

[1] रामचरितमानस तुलसी बालकांड पृ १४४

तुलसी यह बिम्ब कभी नहीं दे सकता था। जायसी के बिम्ब चयन की यह विशेषता है जो उसके व्यक्तित्व के कारण है।

शृंगारी कवि देव मतिराम बिहारी आदि हृदय से शृंगार प्रिय हैं। जीवन में भी सौन्दर्य और शृंगार के वर्णन ही अधिक करते हैं। उनका स्वरूप जायसी की भांति प्रेमी या साधक का नहीं है जो सर्वत्र विरह की अनुभूति या अलौकिक प्रकाश की छाया पाता है वरन् वह शृंगारिक है और मुख्यतः जीवन के बाह्य सौन्दर्य के उपासक हैं। उनका बिम्ब चयन इसको स्पष्ट करता है। अभी हमने भक्त कवियों के रूप वर्णन में गृहीत उपमानों के आधार पर उनके अन्तर को स्पष्ट किया था वहां भी रीति कवि का रूप वर्णन द्रष्टव्य है। आचार्य देव विरह व्यथित नायिका का स्वरूप इस प्रकार प्रस्तुत करते हैं

सखी के सकोच गुरु सोच मृग लोचनि
रिसानी पिय सों जो उन नेकु हँसि छुयो गात।
देव वै सुभाय मुसिकाय उठि गये यहां
सिसकि सिसकि निसि खोइ रोय पायो प्रात।
कौन जानै री बीर ! बिनु बिरही बिरह व्यथा
हाय हाय करि पछितासि न कछू सुहात।
बड़े बड़े नैनन सों आंसु भरि भरि ढरि
गोरो गोरो मुख आज ओरो सो बिलानो जात।[1]

यहां कवि ने क्षीण सौन्दर्य होते मुख के लिए ओले के घुलने का बिम्ब दिया है जो केवल बाह्य रूप साम्य को ही प्रकट करता है। इसके विपरीत जायसी की दृष्टि प्रेमी की दृष्टि है शृंगारी की नहीं इसलिए सम्भवतः वह ऐसे स्थलों पर रूप के क्षीण होने तक ही न सीमित रहती वरन् हृदयगत भावनाओं का उल्लेख भी करती। परन्तु देव की शृंगारिकता उनको हृदय तक नहीं जाने देती। जायसी में विरह का कोई स्थल ऐसा नहीं है जहां उनके प्रेम पीड़ित हृदय की छाया न हो। उनके विरह के समस्त उपमान रीतिकवियों के विरुद्ध रूप साम्य पर आधारित न होकर मुख्यतः धर्म साम्य पर आधारित हैं। *स्पष्टतः जायसी का बिम्ब चयन* उनके प्रेम पीर के ज्ञाता सूफी साधक स्वरूप से प्रभावित है और इसी कारण अन्य समस्त मध्यकालीन कवियों से पृथक है।

जायसी के बिम्ब चयन में एक अन्य तत्व भी बड़ा स्पष्ट है वह है उनके बिम्बों में उनके ग्रामीण हृदय की झलक। पद्मावत में जायसी ने अनेक ऐसे उपमान दिए हैं जो प्रकट करते हैं कि जायसी ग्रामीण जीवन से और गांव के वातावरण से बहुत अधिक प्रभावित थे। उन्होंने रस्सी जोमाती धार, रहंट की घरी सरोवर कुम्हार के

१ देव उद्धृत : हिन्दी साहित्य का इतिहास शुक्ल पृ० २३७-३८

वर्षन आदि के इतने समग्र और व्यापक बिम्ब दिये हैं जिससे उनके प्रति कवि के विशेष आकर्षण का भान होता है। सूरदास को छोड़कर अन्य किसी मध्यकालीन कवि में ऐसी बिम्ब योजना नहीं है। सूरदास में गाँव और मुख्यतः अहीरों के जीवन से उठाए गए अनेक उपमान मिल जाते हैं जिसका कारण कवि की उनके प्रति रागात्मकता भी है और कृष्ण के जीवन के प्रसंग में उनके उल्लेख की आवश्यकता भी। कृष्ण स्वयं ग्वाल थे अतः कवि ने उनके जीवन को समग्रता से प्रस्तुत कर सकने के लिए उनका 'पय पान पशु...' आदि रूप दिये हैं साथ ही यह उनके ग्रामीण जीवन से प्रभावित हृदय का प्रकाशन भी है। उनके नायक स्वयं ग्रामीण थे अतः ग्राम जीवन के उपमान आदि प्रस्तुत करने में सूर को यह अनुकूलता मिल गई है कि जिसने स्वर्ण में गंध का काम किया है। परन्तु जायसी को अपने वर्ण्य विषय के कारण यह अनुकूलता न मिल सकी इसलिए उन्होंने स्थल-स्थल पर विरह व्यथिता रानी नागमती के लिए भी ग्रामीण उपमान दिए हैं। उनके बारहमासे नैनों को उसने मांहुट गौरव खोलाती बार कहा है और उसके भग्न हृदय के लिए फटते हुए सरोवर के तल को सामने लाया है

सरवर हिया घटत निति जाई। टूक टूक होइ होइ बिहराई।
बिहरत हिया करहु पिउ टेका। दीठि दवँगरा मेरवहु एका।
(३५४ ६-७)

जायसी में इस प्रकार के अपरिष्कृत ग्रामीण जीवन से गृहीत अनेक उपमान मिल जाते हैं।

जायसी के बिलकुल विपरीत हैं रीतिकाल के कवि। उनके वर्णनों में उनके नागरिक और दरबारी जीवन की छाया स्पष्ट मिलती है। उन्होंने सम्भवतः एक भी ग्रामीण उपमान अपने काव्य में नहीं दिया होगा। उनके नायक-नायिका की भाँति उनके उपमान भी राजसी ही हैं राजघरानों और दरबारों से उनका सीधा सम्बन्ध है। यहाँ बिहारी का एक पद द्रष्टव्य होगा। कवि अपनी नायिका का सौन्दर्य इस प्रकार वर्णित करता है

सहज सेत पचतोरिया पहिरत अति छबि होति।
जल चादर के दीप लौं जगमगाति तन जोति।[1]

सहज श्वेत पंचतोलिया साड़ी पहनने से उसकी छवि कुछ विशेष हो जाती है। जल चादर के पीछे रखे हुए दीपकों की भाँति उसके तन की ज्योति जगमगाती है। यहाँ जल चादर के पीछे रखे हुए दीपकों का उपमान बड़ा सचित्र और व्यंजक है, साथ ही यह कवि के दरबारी जीवन का सुन्दर स्वरूप भी है। जल चादर का अर्थ रत्नाकर जी इस प्रकार देते हैं। 'जल चादर—वाटिकाओं के उद्यान में किसी किसी ऊँचे स्थान से जल का झीना तथा विस्तृत प्रवाह गिराया जाता है। यह जल चादर

१ बिहारी रत्नाकर : सं० रत्नाकर पृ० [illegible] पं० [illegible]

कहलाता है। किसी-किसी जल चादर के पीछे गवाक्ष बनाकर दीपकों की पंक्तियाँ सजा दी जाती हैं। रात्रि के समय जल चादर के पीछे से यह जगमगाती हुई दीपावली बड़ी शोभा देती है। इसी दीपावली को बिहारी ने 'जल चादर के दीप' कहा है।[1] यह दृश्य अवश्य ही कवि बिहारी ने कभी अपने आश्रयदाता राजा के महल या उद्यान में देखा होगा और उससे झिलमिलाते सौन्दर्य की अपूर्व अनुभूति की होगी जो काव्य में उसकी नायिका के रूप का सादृश्य बनकर आ गई है। राजसी जीवन से अनभिज्ञ कवि इस प्रकार की बिम्ब योजना कर ही नहीं सकता। जायसी में कुछ बिम्ब राजसी जीवन के लिये हैं पर वे बड़े सामान्य हैं। यह चित्र उस जीवन के भोक्ता के नहीं केवल दूर खड़े दर्शक के चित्र ही प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए तिलक की उपमा सिंहासनासीन राजा से दी गई है :

तेहि लिलाट पर तिलक बईठा। दुइज पाट जानहु ध्रुव डीठा।
कनक पाट जनु बैठेउ राजा। सबै सिंगार अत्र लै साजा।
(१०१ ५६)

यह राजसी जीवन का एक अत्यन्त सामान्य चित्र है। जो केवल राजसी जीवन के भोक्ता की ही कल्पना में आ सकता हो सामान्य प्राणी की नहीं ऐसा नहीं है। कोई भी सामान्य दर्शक ऐसी कल्पना कर सकता है। जायसी में सेना आदि के कुछ बिम्ब ऐसे भी हैं जो उनके विशिष्ट ज्ञान का परिचय देते हैं परन्तु प्रधानतः वह ग्रामीण हैं और राजसी जीवन से उनका कोई निकट परिचय नहीं है। मध्यकालीन बिम्ब योजना से इसी कारण उनका विभेदत्व है।

जायसी का बिम्ब विधान पर्याप्त परम्परागत है। मध्यकालीन सभी कवि परम्परा के समर्थक हैं। परम्परागत उपमानों का सभी कवियों ने पर्याप्त प्रयोग किया है। मुख्यतः जो कवि साहित्य शास्त्र व प्राचीन संस्कृत और हिन्दी साहित्य से परिचित रहे हैं उनमें परम्परागत उपमानों का बाहुल्य है। देव और बिहारी ने प्राचीन परम्पराओं से पर्याप्त उपमान ग्रहण किये हैं। बिहारी में आर्या सप्तशती गाथासप्तशती और अमरुकशतक के बहुत से उपमान ज्यों के त्यों मिल जाते हैं। डा॰ पद्मसिंह शर्मा कमलेश इस विषय में पर्याप्त संकेत दे चुके हैं। सूर और तुलसी ने भी प्राचीन परम्पराओं और साहित्यिक कृतियों से पर्याप्त ग्रहण किया है। कबीर ने भी सिद्ध और नाथ साहित्य से बहुत से उपमान और प्रतीक ग्रहण किये हैं। गोरखबानी के कुछ ज्यों के त्यों अनुवाद कबीर में मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए गोरखनाथ जी का एक पद लीजिये

गगन मंडल में औंधा कूआ तहाँ अमृत का बासा।
सगुरा होइ सो भरि भरि पीवै निगुरा जाइ पियासा।[2]

---

१ वही
२ गोरखबानी : सं॰ पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल, पृ ४ संख्या २३

इसी भाव को इन्हीं जैसे शब्दों में कबीर ने भी लिया है

आकासे मुख औंधा कुआँ पाताले पनिहारि।
ताका पानी को हंसा पीवै, बिरला आदि बिचारि।[1]

यहाँ शून्य या ब्रह्म रंध्र के लिए आकाश मंडल सहस्रार चक्र के लिए औंधा कुआँ आदि प्रतीक कबीर ने गोरखनाथ जी से ग्रहण किये हैं। इन सभी कवियों की भाँति जायसी ने भी परम्पराओं का बराबर प्रयोग किया है। उनमें प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं लोककथाओं और फारसी मसनवियों आदि से गृहीत अनेक बिम्ब मिल जाते हैं। परन्तु यदि मध्यकालीन कवियों में परम्परायुक्त बिम्ब विधान करने वाले कवियों को लिया जाय तो उनमें भी जायसी का स्थान उल्लेखनीय होगा। जायसी ने वस्तुएं यद्यपि परम्परा से गृहीत की हैं परन्तु उनको अपनी कल्पना द्वारा नवीन परिधान दिये हैं। उनके चित्रों में उनकी स्वानुभूति की झलक सर्वत्र प्राप्त होती है। उनके सूर्य चाँद सरोवर आदि के उपमान ऐसे ही हैं। मधुमालतीकार मंझन ने भी विरह व्यथित हृदय के लिए सरोवर के फटने का रूपक लिया है।

जेहि संताप दुख कत लगि मैं जग जीवत रहाहि।
जिमि सर जल बिनु अवधि उरज फाटि मरि जाय।[2]

और जायसी ने भी

सरवर हिया घटत नित जाई। टूटि टूक होइ होइ बेहराई।
बिहरत हिया करहि पिउ टेका। दीठि दवंगरा मेरवहु ऐका।
(३२४ ६ ७)

परन्तु दोनों ही कवि की सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि और कल्पना की समृद्धता के कारण पर्याप्त भिन्न हो गये हैं। सरोवर सूफी काव्य में प्रेम का प्रतीक है जायसी ने भी उसे इसी रूप में लिया है परन्तु उनकी कल्पना ने इसका सर्वथा नवीन ढंग से प्रणयन किया है। उन्होंने मुख्यतः ग्रामीण उपमान और ग्रामीण मुहावरों से बिम्ब विधान कराया है जो काव्य में नवीन प्रतीत होते हैं। इस प्रकार उनका बिम्ब विधान अन्य मध्यकालीन कवियों से भिन्न परम्परागत होते हुए भी पर्याप्त स्वतन्त्र है।

समष्टि में जायसी का बिम्ब चयन उनकी अपनी विशेषताओं के कारण विशिष्ट प्रकार का है और सभी मध्यकालीन कवियों से भिन्न है। उनका व्यक्तित्व एक प्रेमी सहृदय का था जिसने उनके काव्य में प्रेम और विरह विषयक उपमानों का बाहुल्य कर दिया है। इसके अतिरिक्त वह एक सहृदय ग्रामीण हृदय रखते थे जिसने उनके बिम्ब विधान को बराबर प्रभावित किया है। ग्रामीण उपमान जितने जायसी में हैं उतने किसी अन्य कवि में नहीं हैं। सूर और घनानन्द में मुख्यतः ग्रामीण लोकोक्तियों का प्रयोग है ग्रामीण उपमानों का नहीं। परम्परा का प्रभाव भी जायसी के

---

१ कबीर साखी सार : सं० लालकमल शास्त्री व रामसिंह पृ० ६९, सं० ७२

२ मधुमालती मंझन संपादक माताप्रसाद गुप्त, सं० २६

बिम्ब विधान पर है जो न्यूनाधिक रूप में प्रत्येक मध्यकालीन कवि पर लक्षित होता है। परन्तु यह घनानन्द की भांति साहित्यिक परम्पराओं के अधिक निकट न होने के कारण पर्याप्त परम्परामुक्त भी हैं।

(२) बिम्बगत संवदना—

बिम्ब की सफलता का अन्य बहुत अंशों में उसकी संवेदना प्रदान करने की शक्ति पर निर्भर करता है। काव्य में दृश्य स्पर्श घ्राण स्वाद अन्य सभी संवेदनाएं मिल जाती हैं। परन्तु जीवन में नेत्र-व्यापार की प्रधानता होने के कारण दृष्टि-परक बिम्ब सबसे अधिक प्राप्त होते हैं।

मध्यकालीन कविता में भी दृष्टिपरक बिंब सबसे अधिक प्राप्त होते हैं। रूप रंग से पूरित चित्रों के लिए सूर बिहारी और जायसी आदि का नाम उल्लेखनीय है। तुलसी में भी दृश्य चित्रों की प्रधानता है परन्तु उनमें केवल रूप है रंग नहीं है। उनके अधिकांश चित्र केवल रेखाचित्र हैं रूप का वह बाहुल्य रंगों की वह चटक उनमें नहीं है जो बिहारी और सूर में है। बिहारी के अधिकांश चित्र आधुनिक चित्रकला के से चटकीले रंगों और क्रियाओं में बने हैं जबकि तुलसी में अधिकांश रेखाएं ही हैं। जायसी में दोनों प्रकार के चित्र उपलब्ध हो सकते हैं। परन्तु उनके अधिकांश चित्र छाया और प्रकाश के द्वारा निर्मित हैं। तुलसी में इस प्रकार के रंगों आदि का उल्लेख बहुत कम है। मुख्यतः उनके चित्रों में रेखाएं मात्र ही स्पष्ट हैं। उदाहरण के लिए

> उदित उदय गिरि मंच पर रघुबर बाल पतंग।
> बिकसे संत सरोज सब हरषे लोचन भृंग।[1]

इस चित्र में केवल रेखाएं ही हैं। कवि चाहता तो इसमें रंग भर सकता था पर उसकी प्रवृत्ति इस ओर नहीं है रंगों का उल्लेख तुलसी ने बहुत कम किया है। प्रकाश और छाया का उल्लेख भी उनमें कम है। इसके विपरीत जायसी के अधिकांश चित्र प्रकाश और छाया द्वारा निर्मित हैं। उनके सूर्योदय और सूर्यास्त के बहु प्रयुक्त बिम्ब हैं जो सदैव प्रकाश और छाया को प्रस्तुत करते हैं। उदाहरण के लिए पद्मावती का रूप वर्णन द्रष्टव्य है

> उग्रत सूर जस देखिए चांद छपै तेहि धूप।
> ऐसे सबै जाहिं छपि पदुमावति के रूप।
>
> (६५ : ८)

यहां कवि ने पद्मावती के जगमगाते सौन्दर्य के लिए सूर्य के उदय होने का रूपक दिया है। साथ ही अन्य रूपों के तारागत छिप जाने अथवा मलिन हो जाने से प्रकाश की अपूर्वता की व्यंजना भी हुई है। जायसी के अधिकांश चित्र इसी प्रकार के हैं यद्यपि रंगों का प्रयोग भी उन्होंने कभी कभी किया है पर इस ओर वे विशेष

---

१ रामचरितमानस बालकांड १ २५७

प्रयत्नशील नहीं हैं। रंगों और वर्णों का बाहुल्य सूर के काव्य में अपने समस्त वैभव के साथ आया है। सूर ने राधा कृष्ण के रूप रंग से पूरित अनेक चित्र दिये हैं। उदाहरणार्थ—

मेरे हिय लागी मन मोहन लै गये री चित-चोरि।
अबही इहि मारग ते निकसे छवि निरखत तृन तोरि।
मोर मुकुट स्रवननि मनि कुंडल उर बनमाल पिछोरि।
दसन चमक अधरन अरुनाई देखत परी ठगोरि।[1]

डा० सावित्री सिन्हा इस पद की रंग योजना का विवेचन करती हुई लिखती हैं, 'मोर-मुकुट के अनेक वर्णों के साथ मणि-कुंडल की आभा तथा सतरंगी वनमाल के साथ पीताम्बर के एक पीत वर्ण की योजना के अनुरूप वर्णों का विन्यास तो है ही ऐसा विश्वास नहीं होता कि सूर की चर्मी आँखों को बहुरंगी वर्णों के सौन्दर्य को निखारने के लिए उसे एक वर्ण की पृष्ठभूमि में रखने का रहस्य भी ज्ञात था।'[2] वस्तुतः सूर की उत्कृष्ट वर्ण योजना उनके कल्पना शील और चमत्कार व्यक्तित्व का अनूठा आभास देती है। जायसी में पृष्ठभूमि से वस्तु को उभारने की कलात्मक प्रयास तो सर्वत्र है पर वह रंगों अथवा वर्णों के आधार पर नहीं है। उनके चित्रों में छाया प्रकाश के चित्रों की ही बहुलता कही जा सकती है।

रीतिकालीन कवियों में भी रंगों की प्रधानता है वरन् रंगों के प्रति उनका विशेष मोह है। बिहारी वा मतिराम सभी रूप के साथ साथ रंगों पर भी विशेष ध्यान देते हैं। रंगों की यह आसक्ति बहुत अंशों में उनके दरबारी जीवन के कारण है। उन्होंने दरबारों में रूप रंग का मन्कीला स्वरूप देखा था। उन्होंने जिस सौन्दर्य का दर्शन जीवन में किया था वह तापस बालाओं का सादा साज सज्जा से रहित सौन्दर्य नहीं था वरन् उसे रंगों आदि के द्वारा (विभिन्न वस्त्रों आदि से) नित्य नया रूप दिया जाता था। इस प्रकार रूप रंग के प्रति उनके हृदय में एक सहज आकर्षक उद्भूत हो गया था जो काव्य में चित्रों के द्वारा प्रकट हुआ है। बिहारी सतसई का प्रथम पद ही देखिये यह रंगों की मोहकता से ओतप्रोत है और बिहारी के राजसी जीवन का मुखर प्रतिबिम्ब है—

मेरी भव बाधा हरौ राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परै स्याम हरित दुति होइ।[3]

राजसी जीवन से दूर तुलसी या जायसी ऐसी कल्पना कर ही नहीं सकते थे। यह कल्पना कवि की अपनी अनुभूति है उसके जीवन का मुखर प्रतिबिम्ब है। इस प्रकार स्पष्ट है कि रीतिकाल के दरबारी कवियों के बिम्ब प्रायः ही रूप रंग से पूरित

१ सूरसागर ? दशम स्कंध संख्या ?
२ ब्रजभाषा के कृष्ण भक्तिकाव्य में अभिव्यंजना शिल्प ? डा० सिन्हा पृ० ?०४
३ बिहारी रत्नाकर दोहा ? पृ० ?

हो गये हैं जो उचित ही है। रीति-कवि घनानन्द के चित्र भी टेक्नीकलर हैं। उनकी रूपरंग की जागरूकता का कारण केवल दरबारी जीवन ही न था बल्कि उनकी नायिका 'सुजान' भी थी। वह रूप रंगों के सौन्दर्य से पूरित एक जीवित व्यक्तित्व थी संभवतः वह नायिका थी। उसका रूप सदैव साज सज्जा रंगों की चटक-मटक से जगमगाता रहता होगा। उसके रूप की यही अनुभूत जगमगाहट कवि ने अपने चित्रों में भी दी है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद-भाय भरी।
  लसति ललित लोल चख तिरछानि में।
छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल
  रस निचुरत मृदु मीठी मुसक्यानि में।
दसन दमक फैलि हियें मोती माल होति
  पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि में।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल
  अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि में।[1]

यहाँ कवि ने नायिका के गौर वर्ण दाँतों की दमक और रूप की जगमगाहट का वर्णन किया है। यह सब दृश्य बिम्ब हैं। रूप की यह अप्रतिम राशि कवि ने स्वयं जीवन में देखी थी यह कोरी कवि कल्पना नहीं है वरन् स्वानुभूति है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्यकालीन कवियों में भक्तिकालीन कवियों की अपेक्षा रीतिकालीन कवियों में रूप रंग के प्रति सजगता अधिक है जो बहुत अंशों में उनके व्यक्तित्व के कारण है। जायसी में उनकी सहृदयता के अनुसार छायात्मक चित्र ही अधिक मिलते हैं। यद्यपि उनमें रंगों की विविधता भी मानसरोदक ताल आदि के वर्णन में मिल जाती है। परन्तु उनके चित्रों में छाया प्रकाश की ही प्रधानता है।

दृष्टि-परक बिम्बों के अतिरिक्त स्पर्श घ्राण श्रवण आदि से सम्बन्धित संवेदनाएं भी मध्यकालीन कविता में मिल जाती हैं परन्तु उनकी संख्या अल्पस्व है। स्पर्श बिम्बों में मुख्यतः सुखद और शीतल स्पर्श का प्रयोग हुआ है जो प्रायः सभी मध्यकालीन कवियों में है। तुलसी ने राम की सीता के सुखद और कोमल स्पर्श का उल्लेख किया है

तहँ तब किसलय सुमन सुहाये। लछिमन रचि निज हाथ डसाये।
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला। तेहि आसन आसीन कृपाला।[2]

बिहारी ने भी यमुना तट के सघन कुंजों की शीतलता का उल्लेख किया है —

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर।[3]

---

१ घनानंद कवित्त : कवित्त संख्या [illegible]
२ रामचरितमानस : अरण्यकांड पृ [illegible]
३ बिहारी रत्नाकर : [illegible]

अर्थात यमुना जी के उस ठौर पर (जहाँ कृष्ण के साथ विविध विहार किये थे) अब भी (उनके उपस्थित न रहने पर भी) मन (उनके स्मरण में निमग्न होकर) वही (जैसा उनकी उपस्थिति में रहता था वैसा ही) हो जाता है (अतः) सघन कुंज की छाया (तथा) सुरभि समीर (जो विरह में दुःखकारक या ताप कारक होते हैं) शीतल (हो जाते हैं) यहाँ कवि ने यमुना जी के वर्णन में उसकी शीतलता व सुरभित समीर का विशेष उल्लेख किया है जो क्रमशः स्पर्श और घ्राण बिम्ब के उदाहरण हैं। प्रायः सभी कवियों में स्पर्शपरक बिम्बों में ऐसे ही स्पर्शों का उल्लेख है। जायसी ने भी सघन अमराइयों की शीतलता का उल्लेख किया है

अवहिं दीप नियरवा आई, जनु कविलास नियर भा आई।
घन अमराउ लाग चहुँ पासा, उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।
तरवर सबै मलयागिरि लाए, भै जग छाँह रैनि होई आए।
मलै समीर सोहाई छाँहा, जेठ जाड़ लागै तेहि माँहा।
(२० १४)

यही प्रवृत्ति मध्यकाल के सभी कवियों में प्रमुख रही है। कठोर स्पर्शों की चर्चा बहुत कम हुई है, सदैव स्निग्ध कोमल मसृण आदि स्पर्श ही उल्लेखनीय रहे हैं। कारण कि सभी मध्यकालीन कवि जीवन के यथार्थ से दूर थे जीवन के हीन और कटु पक्ष पर उनकी दृष्टि कभी गई ही नहीं है। वह सदैव आदर्श वस्तुओं की चर्चा ही करते हैं। अतः कठोर खुरदरे आदि स्पर्श प्रायः मध्यकालीन काव्य में नहीं के बरा बर आये हैं। स्पष्टतः स्पर्शपरक बिम्बों की विविधता के दर्शन मध्यकालीन कविता में नहीं होते।

प्रायः घ्राण और स्वादपरक बिम्बों के विषय में भी यही कहा जा सकता है मधुर गंधों मधुर वर्णों और मधुर स्वादों का उल्लेख ही प्रायः मध्यकालीन कविता में मिलता है। गन्धों में अधिकतर सुगन्धियों चोवा, चन्दन मधुरस आदि का ही उल्लेख है। अधिकतर उबटनों और लेपों की भीनी गंधों का ही उल्लेख है। जायसी ने इस प्रकार की गंधों का सर्वत्र उल्लेख किया है। उनकी नायिका पद्मावती स्वतः ही पद्म-गंध से युक्त है। इस गन्ध से भ्रमर उसके साथ लगे रहते हैं। यही नहीं समस्त पद्मिनी नायिकाओं में कवि ने पद्मगन्ध की कल्पना की है—

पानि भरइ आवहिं पनिहारी, रूप सरूप पदुमिनी नारीं।
पदुम गंध तेन्ह अंग बसाहीं, भंवर लागि तेन्ह संग फिराहीं।
(१९, १२)

बिहारी ने अपनी नायिका के शरीर में केसर की गन्ध का उल्लेख किया—

कंचन—तन धन—बरन, बर रह्यौ रंगु मिलि रंग।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई अंग।[1]

१ बिहारी रत्नाकर, पृ १४८ दोहा ३६६

हो गये हैं जो उचित ही है। रीति-कवि घनानन्द के चित्र भी टेक्नीकलर हैं। उनकी स्मरण की जागरूकता का कारण केवल दरबारी जीवन ही न था बल्कि उनकी नायिका 'सुजान' भी थी। वह रूप-रंगों के सौन्दर्य से पूरित एक जीवित व्यक्तित्व थी संभवतः वह नायिका थी। उसका रूप सदैव साज सज्जा रंगों की चटक-मटक से जगमगाता रहता होगा। उसके रूप की यही अनुभूत जगमगाहट कवि ने अपने चित्रों में भी दी है—

लाजनि लपेटी चितवनि भेद भाय भरी।
        लसति ललित लोल चख तिरछानि में।
छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल
        रस निचुरत मृदु मीठी मुसक्यानि में।
दसन दमक फैलि हियें मोती माल होति
        पिय सों लड़कि प्रेम-पगी बतरानि में।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल
        अंगनि अनंग-रंग ढुरि मुरि जानि में।[1]

यहाँ कवि ने नायिका के गौर वर्ण दाँतों की चमक और रूप की जगमगाहट का वर्णन किया है। यह सब दृश्य बिम्ब हैं। रूप की यह अप्रतिम राशि कवि ने स्वयं जीवन में देखी थी यह कोरी कवि कल्पना नहीं है वरन् स्वानुभूति है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मध्यकालीन कवियों में भक्तिकालीन कवियों की अपेक्षा रीतिकालीन कवियों में रूप रंग के प्रति सजगता अधिक है जो बहुत अंशों में उनके व्यक्तित्व के कारण है। जायसी में उनकी सहृदयता के अनुसार छायात्मक चित्र ही अधिक मिलते हैं। यद्यपि उनमें रंगों की विविधता भी मानसरोवर ताल आदि के वर्णन में मिल जाती है। परन्तु उनके चित्रों में छाया प्रकाश की ही प्रधानता है।

दृष्टि-परक बिम्बों के अतिरिक्त स्पर्श घ्राण श्रवण आदि से सम्बन्धित संवेदनाएं भी मध्यकालीन कविता में मिल जाती हैं परन्तु उनकी संख्या अत्यल्प है। स्पर्श बिम्बों में मुख्यतः सुखद और शीतल स्पर्श का प्रयोग हुआ है जो प्रायः सभी मध्यकालीन कवियों में है। तुलसी ने राम की शैया के सुखद और कोमल स्पर्श का उल्लेख किया है

तह तरु किसलय सुमन सुहाये लछिमन रचि निज हाथ डसाये।
ता पर रुचिर मृदुल मृगछाला तेहिं आसन आसीन कृपाला।[2]

बिहारी ने भी यमुना तट के सघन कुंजों की शीतलता का उल्लेख किया है —

सघन कुंज छाया सुखद सीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै उहि जमुना के तीर।[3]

---

१ घनानंद कवित्त कवित्त संख्या ?
२ रामचरितमानस लंकाकांड पृ ७०८
३ बिहारी रत्नाकर : दोहा ६८१ पृ ? ? ?

अर्थात् यमुना जी के उस तीर पर (जहाँ कृष्ण के साथ विविध विहार किये थे) अब भी (उनके उपस्थित न रहने पर भी) मन (उनके स्मरण में निमग्न होकर) वही (जैसा उनकी उपस्थिति में रहता था वैसा ही) हो जाता है (अत) सघन कुंज की छाया (तथा) सुरभि समीर (जो विरह में दुःखकारक या ताप कारक होते हैं) शीतल (हो जाते हैं) यहाँ कवि ने यमुना जी के वर्णन में उसकी शीतलता व सुरभित समीर का विशेष उल्लेख किया है जो क्रमशः स्पर्श और घ्राण बिम्ब के उदाहरण हैं। प्राय सभी कवियों में स्पर्शपरक बिम्बों में ऐसे ही स्पर्शों का उल्लेख है। जायसी ने भी सघन अमराइयों की शीतलता का उल्लेख किया है

जबहिं दीप नियरावा जाई जनु कबिलास नियर भा आई।
घन अमराउ लाग चहुँ पासा उठै पुहुमि हुति लाग अकासा।
तरवर सबै मलयागिरि लाए, भै जग छाँह रैनि होई आए।
मलै समीर सोहाई छाँहा जेठ जाड़ लागै तेहि माँहा।
(२७ १४)

यही प्रवृत्ति मध्यकाल के सभी कवियों में प्रमुख रही है। कठोर स्पर्शों की चर्चा बहुत कम हुई है सदैव स्निग्ध कोमल मसृण आदि स्पर्श ही उल्लेखनीय रहे हैं। कारण कि सभी मध्यकालीन कवि जीवन के यथार्थ से दूर थे जीवन के हीन और कटु पक्ष पर उनकी दृष्टि कभी गई ही नहीं है। वह सदैव आदर्श वस्तुओं की चर्चा ही करते हैं। अत कठोर खुरदरे आदि स्पर्श प्रायः मध्यकालीन काव्य में नहीं के बरा बर पाये हैं। स्पष्टतः स्पर्शपरक बिम्बों की विविधता के दर्शन मध्यकालीन कविता में नहीं होते।

प्राय श्रवण और स्वादपरक बिम्बों के विषय में भी यही कहा जा सकता है मधुर गन्धों, मधुर वर्णों और मधुर स्वादों का उल्लेख ही प्रधानतः मध्यकालीन कविता में मिलता है। गन्धों में अधिकतर सुगन्धियों चोवा, चन्दन चतुरसम आदि का ही उल्लेख है। अधिकतर उबटनों और मेघों की भीनी गंधों का ही उल्लेख है। जायसी ने इस प्रकार की गंधों का सर्वत्र उल्लेख किया है। उसकी नायिका पद्मावती स्वत ही पद्म-गंध से युक्त है। इस गन्ध से भ्रमर उसके साथ लगे रहते हैं। यही नहीं समस्त पद्मिनी नायिकाओं में कवि ने पद्मगन्ध की कल्पना की है—

पानि भरई आवहिं पनिहारीं रूप सरूप पदुमिनी नारीं।
पदुम गंध तिन्ह अंग बसाहीं भँवर लागि तिन्ह संग फिराहीं।
(१२, १२)

बिहारी ने अपनी नायिका के शरीर में केसर की गन्ध का उल्लेख किया—

कचंन—तन धन—बरन, बर रह्यौ रँगु मिलि रँग।
जानी जाति सुबास ही केसरि लाई रँग।[1]

---

१ बिहारी रत्नाकर : पृ १४२, दोहा ३२८

प्रायः सभी कवियों ने इसी प्रकार की गन्धों का उल्लेख किया है। गन्ध की दृष्टि से जायसी के वर्णन भी विशिष्ट नहीं हैं। मध्यकाल के अन्य सभी कवियों की भाँति वह भी इन सामान्य मधुर गन्धों का उल्लेख ही कर पाये हैं।

ध्वनियों का वैविध्य भी मध्यकालीन कविता में कम ही दिखाई पड़ता है। मुख्यतः बादलों के गम्भीर गर्जन नगाड़ों आदि बाजों के गम्भीर घोषों की ओर ही इन कवियों की दृष्टि अधिक रही है। जायसी ने पक्षियों की बोलियों का उल्लेख प्रायः किया है परन्तु वह अनुरणनात्मक न होने से विशेष सफल नहीं हो पाया है जैसे—

भोर होत बासहिं चुहचूही। बोलहिं पाँडुक एकै तूही।
सारौं सुआ सो रहचह करहीं। गिरहिं परेवा औ करबरहीं।
पिउ पिउ लाग कर पपीहा। तुही तुही कर गुडुरू खीहा।
कुहू कुहू कोइल करि राखा। औ भिंगराज बोल बहु भाखा।
दही दही क महरि पुकारा। हारिल बिनवै आपनि हारा।
कुहुकहिं मोर सुहावन लागा। होइ कोराहर बोलहिं कागा।
(२९ २-७)

यहाँ रहचह करबर कुहू कुहू पीउ कुहू कुहका आदि ध्वनियाँ हैं परन्तु वह ध्वनिपरक बिम्बों का उत्तम रूप नहीं प्रस्तुत करतीं। तुलसी ने भी इसी भाँति ध्वनियों का वर्णन किया है। पंपा सरोवर के वर्णन में वह कहते हैं—

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रसंसा।
नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चंचरीक पटली कर गाना।
सीतल मंद सुगंध सुभाऊ, संतत बहइ मनोहर बाऊ।
कुहू कुहू कोकिल धुनि करहीं। सुनि रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।[1]

यहाँ सरोवर के तट पर जलकुक्कुट, हंस, कोकिल भ्रमर आदि अनेक जीव-जंतुओं की सुखद ध्वनियों का उल्लेख है। प्रायः सभी कवियों में इसी प्रकार के वर्णन हैं। कर्ण कटु ध्वनियों के प्रति इनकी विशेष रुचि नहीं है। तुलसी ने अवश्य युद्ध स्थलों में कर्ण कटु एवं भीषण ध्वनियों की चर्चा की है जैसे—

मत्त-भट, मुकुट-दसकंठ-साहस सघन
शृंग-बिहरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ
सेष संकुचित संकित पिनाकी।[2]

यहाँ हनुमान की भयानक 'हाँक' का वर्णन है जिससे भयभीत होकर धरती डोलन लगती है और दिग्गजों के हाथी चिग्घाड़ने लगते हैं। जायसी ने भीषण ध्वनियों

१ रामचरितमानस। अरण्यकांड पृ. ६४५।
२ कवितावली लंकाकांड पृ. ८४

में केवल मेघ का गर्जन उल्लेख किया है। युद्धस्थलों पर यह ध्वनि बराबर सुनी जा सकती है।

> अस्ट धातु के पौला छूटहि, गिरि पहार पबई सब फूटहि।
>
> फूटई कोट फूट जस सीसा ओदरहि बुरुज परहि कौसीसा।
>
> (५२५ ६ ७)

समष्टि में जायसी अन्य मध्यकालीन कवियों की भांति ध्वनि के केवल सामान्य बिम्ब ही दे सका है। ध्वनि बिम्बों की दृष्टि से मध्यकाल की कविता विशिष्ट नहीं है, जायसी भी सामान्य ही है स्वादपरक बिम्बों का वैविध्य भी मध्यकालीन कविता में नहीं मिलता। किसी भी कवि ने स्वादों का विशेष उल्लेख नहीं किया है। जायसी ने स्वादों में मधु के स्वाद का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है। अमृत का उल्लेख समस्त मध्यकालीन कविता में पर्याप्त मिलता है। तुलसी ने राम सीता तथा अन्य पात्रों के प्रिय वचनों के लिए अमृत का उल्लेख किया है वहां मार्ग में मिलने वाली स्त्रियों के वचनों को भी 'सुधा-रससाने' कहा गया है

> सुनि सुदर बैन सुधारस साने सयानी भानी है जानकी भली।

समष्टि में स्वाद की दृष्टि से मध्यकालीन कविता सामान्य है। जायसी म भी कोइ विशेषता दृष्टिगत नही होती।

मध्यकालीन बिम्बों मे दृश्य बिम्बों की प्रधानता है। जायसी मे भी दृष्टिपरक बिम्बों का बाहुल्य है। जायसी के बिबो की प्रामाणिकता उनकी अपनी विशेषता है, जो किसी अन्य कवि में उपलब्ध नही है। सूर और तुलसी मे प्रायः रेखाओं का उल्लेख है। सूर म वर्णों का समन्वय भी मिल जाता है परन्तु तुलसी में उसका सामान्यत अभाव ही है। रीतिकालीन कविता में रंगों का वैविध्य पर्याप्त प्रकट होता है वह सभी रगो क प्रति सचेष्ट और जागरूक है। परन्तु जायसी का छाया प्रकाश का प्रयोग उनकी अपनी विशेषता है। अन्य संवेदनाओं म मध्यकालीन संवेदनाओं की भांति जायसी का काव्य भी सामान्य है।

२—भाव और बिम्ब

किसी विशेष भाव में बिबों की अधिकता और मार्मिकता उस भाव के प्रति कवि की विशेष रागात्मकता का परिचय देती है। जिस भाव के प्रसंग में कवि अधिक और मार्मिक बिम्ब देता है वही कवि का प्रकृतिस्थ भाव होता है। कवि का उसी भाव मे अधिक गैकट्य होता है और उसी में कवि का हृदय रमण करता है। इस प्रकार बिबों की बहुलता और मार्मिकता कवि की भाव विशेष के प्रति विशेषरुचि की द्योतक है। मध्यकालीन कविता का बिंब विधान कवियों के रागात्मक भावों की विविधता का परिचय देता है।

---

१ कवितावली। अयोध्याकांड, द १४

प्राय: सभी कवियों ने इसी प्रकार की गन्धों का उल्लेख किया है। गन्ध की दृष्टि से जायसी के वर्णन भी विशिष्ट नहीं हैं। मध्यकाल के अन्य सभी कवियों की भाँति वह भी इन सामान्य मधुर गन्धों का उल्लेख ही कर पाये हैं।

ध्वनियों का वैविध्य भी मध्यकालीन कविता में कम ही दिखाई पड़ता है। मुख्यत: वाद्यों के गम्भीर गर्जन नगाड़ों आदि वाद्यों के गम्भीर घोषों की ओर ही इन कवियों की दृष्टि अधिक रही है। जायसी ने पक्षियों की बोलियों का उल्लेख प्राय: किया है परन्तु वह अनुरणनात्मक न होने से विशेष सफल नहीं हो पाया है जैसे—

भोर होत बासहिं चुहचुही बोलहिं पाँडुक एकै तूही।
सारौं सुआ सो रहचह करहिं गिरहिं परेवा औ करबरहिं।
पिउ पिउ लागे करै पपीहा तुही तुही कह गुडुरु खीहा।
कुहु कुहु कोइल करि राखा औ भिंगराज बोल बहु भाखा।
दही दही कै महरि पुकारा हारिल बिनवै आपनि हारा।
कुहुकहिं मोर सुहावन लागा होइ कोराहर बोलहिं कागा।
(२६ २-७)

यहाँ रहचह, करबर कुहु कुहु पीऊ तुह तुहना आदि ध्वनियाँ हैं परन्तु वह ध्वनिपरक बिम्बों का उत्तम रूप नहीं प्रस्तुत करती। तुलसी ने भी इसी भाँति ध्वनियों का वर्णन किया है। पंपा सरोवर के वर्णन में वह कहते हैं—

बिकसे सरसिज नाना रंगा मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा।
बोलत जलकुक्कुट कलहंसा प्रभु बिलोकि जनि करत प्रशंसा।
सब पल्लव कुसुमित तरु नाना चंचरीक पटली कर गाना।
शीतल मंद सुगंध सुभाऊ संतत बहई मनोहर बाऊ।
कुहू कुहू कोकिल धुन करहीं, सुन रव सरस ध्यान मुनि टरहीं।[1]

यहाँ सरोवर के तट पर जलकुक्कुट, हंस कोयल भ्रमर आदि अनेक जीव-जंतुओं की मुखर ध्वनियों का उल्लेख है। प्राय: सभी कवियों में इसी प्रकार के वर्णन हैं। कर्ण कटु ध्वनियों के प्रति इनकी विशेष रुचि नहीं है। तुलसी ने अवश्य कुछ स्थलों में कर्ण कटु एवं भीषण ध्वनियों की चर्चा की है जैसे—

मत्त-भट, मुकुट-दसकंठ-साहस सइल
सृंग-बिद्दरनि जनु बज्र-टाँकी।
दसन धरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ
सेष संकुचित संकित पिनाकी।[2]

यहाँ हनुमान की भयानक 'हाँक' का वर्णन है जिससे भयभीत होकर धरती डोलने लगती है और दिशाओं के हाथी चिंघाड़ने लगते हैं। जायसी ने भीषण ध्वनियों

---

१ रामचरितमानस : अरण्यकांड पृ० ६४७।

२ कवितावली लंकाकांड पृ० ७४

में केवल मध का पर्यंम उल्लेख किया है। पुरुस्पर्शों पर यह ध्वनि बराबर सुनी जा सकती है।

> मस्ट धातु के गोला छूटहि गिरि पहार पर्व्व सब फूटहि।
> फूट कोट फूट जस सीसा ओदरहि बुरुज चरहि कोसीसा।
>
> (५२२ ६ ७)

समष्टि में जायसी अन्य मध्यकालीन कवियों की भांति ध्वनि के केवल सामान्य बिम्ब ही दे सका है। ध्वनि बिम्बों की दृष्टि से मध्यकाल की कविता विशिष्ट नही है जायसी भी सामान्य ही है स्वादपरक बिम्बों का वैविध्य भी मध्यकालीन कविता में नही मिलता। किसी भी कवि ने स्वादों का विशेष उल्लेख नहीं किया है। जायसी ने स्वादों मे मधु के स्वाद का उल्लेख अनेक स्थलों पर किया है। अमृत का उल्लेख समस्त मध्यकालीन कविता में पर्याप्त मिलता है। तुलसी ने राम सीता तथा अन्य पात्रों के प्रिय वचनों के लिए अमृत का उल्लेख किया है यहां मार्ग में मिलने वाली स्त्रियों के वचनों को भी 'सुधा रससान' कहा गया है

> सुनि सु दर बैन सुधारस साने सयानी जानी है जानकी भली।

समष्टि में स्वाद की दृष्टि से मध्यकालीन कविता सामान्य है। जायसी में भी कोई विशेषता दृष्टिगत नही होती।

मध्यकालीन बिम्बों मे दृश्य बिम्बों की प्रधानता है। जायसी मे भी दृष्टिपरक बिम्बों का बाहुल्य है। जायसी के बिंबों की छायात्मकता उनकी अपनी विशेषता है जो किसी अन्य कवि में उपलब्ध नहीं है। सूर और तुलसी मे प्राय रेखाओं का उल्लेख है। सूर में वर्णों का चयन भी मिल जाता है परन्तु तुलसी में उसका सामान्यत अभाव ही है। रीतिकालीन कविता मे रंगों का वैविध्य पर्याप्त प्रकट होता है वह सभी रंगों के प्रति सचेष्ट और जागरूक है। परन्तु जायसी का छाया प्रकाश का प्रयोग उनकी अपनी विशेषता है। अन्य संवेदनाओं मे मध्यकालीन संवेदनाओं की भांति जायसी का काव्य भी सामान्य है।

१—भाव और बिम्ब

किसी विशेष भाव में बिंबों की अधिकता और मार्मिकता उस भाव के प्रति कवि की विशेष रागात्मकता का परिचय देती है। जिस भाव के प्रसंग में कवि अधिक और मार्मिक बिम्ब देता है वहीं कवि का अनुभूतित्व व्यक्त होता है। कवि का उसी भाव मे अधिक नैकट्य होता है और उसी मे कवि का हृदय रमण करता है। इस प्रकार बिंबों की बहुलता और मार्मिकता कवि की भाव विशेष के प्रति विशेषरुचि की द्योतक है। मध्यकालीन कविता का बिंब विधान कवियों के रागात्मक भावों की विविधता का परिचय देता है।

---

१ कवितावली अयोध्याकांड पृ १८

तुलसी सूर, जायसी व कबीर सभी भक्तिकालीन कवि हैं परन्तु प्रकृतिस्वभाव भिन्न होने से उनके काव्य में अनेक बिम्बगत विभिन्नताएं आ गई हैं। कबीर ने सर्वाधिक बिम्ब योजना सम भाव में की है जो उनके रहस्यवादी और संतस्वरूप को प्रकट करती है। उनके बिम्ब सर्वत्र किसी रहस्यात्मक सत्ता अथवा किसी सत्य को प्रकट करते हैं। जैसे निम्न उदाहरण में दुल्हा-दुल्हिन के बिंब द्वारा ब्रह्म और जीव के संबंधों को व्यक्त किया गया है

दुलहनि गावहु मंगलाचार
हम घर आये हो राजा राम भरतार।
तन रत करि मैं मन रत करहूं पंच तत्त बराती।
रामदेव मोरे पाहुने आए मैं जोबन मद माती।

यहाँ विवाह के पूरे रूपक द्वारा ब्रह्म-जीव के संबंध का स्पष्टीकरण हुआ है। कबीर ने सर्वत्र रहस्य व अध्यात्म के जटिल तथ्यों को संवेदनीय बनाने के लिए बिंब का आश्रय लिया है। उनके अधिक और मार्मिक व व्यंजनात्मक बिंब ऐसे ही स्थलों पर आये हैं। जो रहस्य और दर्शन के प्रति उनकी विशेष रागात्मकता का परिचय देते हैं। जायसी ने भी जीवन की क्षणिकता आदि का प्रतिपादन बहुत कुछ कबीर के समान ही किया है। जीवन की अस्थिरता को वह बुलबुले और रहट की घरिया के बिम्ब द्वारा प्रतिपादित करते हैं परन्तु उनका रहस्यवादी कवि का रूप महत्वपूर्ण होते हुए भी प्रधान नहीं है। यही कारण है कि वियोग में प्रयुक्त उनके बिंब अधिक मार्मिक व्यंजक व मात्रा में भी अधिक हैं। वियोग ही उनका प्रधान रस है। कबीर और जायसी के अध्यात्म विषयक बिंबों में भिन्नता भी है। कबीर की बिंब योजना नाथ और सिद्ध साहित्य से बहुत अधिक प्रभावित है अतः उनमें रूक्ष और रुक्ष बिंब बराबर प्रयुक्त हुए हैं जबकि जायसी प्रधानतः विलासी होने के कारण सर्वत्र सरस रहे हैं। हठयोग आदि के उदाहरण उनमें बहुत कम हैं। जायसी और कबीर की रहस्यात्मकता में उनकी बिंब योजना के कारण ही अन्तर आ गया है।

तुलसी मध्यकाल का अकेला ऐसा कवि है जिसका सभी भावों पर समान अधिकार है। तुलसी ने प्रेम घृणा क्रोध निराशा आदि के सभी स्थलों पर उत्कृष्ट और व्यंजक बिंब योजना की है। फिर भी भक्ति का रंग उनमें सबसे गहरा है। शृंगार आदि के स्थलों पर भी उनका भक्त रूप प्रकट हुआ है। उनका प्रकृति वर्णन इसका स्पष्ट संकेत देता है। प्रकृति वर्णन में कवि की दृष्टि उसके सौन्दर्य पर इतनी नहीं रहती, जितनी उससे ध्वनित ज्ञान और भक्ति के संकेत पर। अनेक प्रकृति वर्णनों में उन्होंने ज्ञान और भक्ति-परक बिम्ब दिये हैं। जैसे पम्पा सरोवर के इस वर्णन में—

संत हृदय जस निरमल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी।
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा।

पुरइनि सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म ।
मायाछन्न देखिए जैसे निरगुन ब्रह्म ।[1]

यहाँ सघन पुरइन ढकी मायावेष्टित साधकों की भीड़ और निर्गुण ब्रह्म के बिम्ब उनके ज्ञानी स्वरूप को प्रकट करते हैं। जायसी में ऐसी बिम्ब योजना कहीं नहीं है। वह रहस्यवादी हैं अतः रहस्य और अध्यात्म के संकेत तो उन्होंने दिए पर पांडित्यपूर्ण व धार्मिक कर्मकांडों से संबंधित बिम्बों का उनमें अभाव है। तुलसी की विनयपत्रिका तो उनके भक्त हृदय का ही उद्गार है। उसकी मार्मिक और व्यंजक बिम्ब योजना उनकी भक्तिभाव के प्रति विशेष रागात्मकता की परिचायक है। भक्तिभाव में कवि ने अपने दैन्य जीवन की अशक्त अवस्था और प्रभु की महिमा को बहुधा बिम्ब द्वारा ही प्रकट किया है। जैसे

राम रामु रटु राम रामु रटु राम रामु जपु जीहा ।
राम नाम नव नेह मेह को मन हठि होहि पपीहा ।
सब साधन-फल कूप सरित-सर-सागर सलिल निरासा ।
राम नाम रति स्वाति-सुधा सुभ सीकर प्रेम पियासा ।[2]

व

अबलौं नसानी अब न नसैहौं
रामकृपा भव निसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं ।[3]

भक्ति भाव के यह मार्मिक और व्यंजक उपमान तुलसी के भक्त हृदय के प्रमाण हैं। जायसी इस रूप में तुलसी से एकदम भिन्न हैं। उनका ब्रह्म तुलसी के ब्रह्म की भाँति सगुण न था न ही वह भारतीय धर्म साधना से परिचित थे अतः दैन्य-प्रदर्शन आदि का उनमें अभाव है साथ ही प्रभु के प्रभुत्व का भी अभाव है। वह रहस्यवादी दार्शनिक हैं जो सृष्टि के प्रत्येक कण में उसकी अनुभूति करते हैं और उसके विरह में सृष्टि को पीड़ित देखते हैं। यह उनके बिम्ब विधान की भावगत भिन्नता है जिसने उनके काव्य को पृथक पृथक रूप दिया है। सूरदास भी भक्त कवि हैं। उनमें संयोग—वियोग की भी प्रधानता है। कृष्ण की रूप माधुरी बाल लीला आदि के उन्होंने अनेक व्यंजक बिम्ब दिये हैं। कृष्ण के रूप वर्णन में बिम्बों की बहुलता है और विविधता भी। उन्होंने अनेक परम्परागत उपमानों का ग्रहण किया है साथ ही बहुत से मौलिक उपमान भी दिये हैं। वियोग का क्षेत्र उनका प्रिय है। भ्रमरगीत सूरदास की अत्यन्त उत्कृष्ट काव्य कृति है जिसमें गोपियों के विरह को वाणी मिली है। गोपियों का विरह वर्णन अत्यन्त व्यंजक और मार्मिक

---

१ रामचरितमानस : अरण्यकांड पृ ६४७
विनयपत्रिका : पृ० ७४३ सं ६५ ।
३ वही, पृ० ७६२ सं ७०५

बिंबों के द्वारा हुआ है। विरह में कृष्ण का मनोहर रूप उनकी निष्ठुरता और अपना दुःख भिन्न भिन्न संवेदनीय माध्यमों से स्पष्ट हुआ है। गोपियों के विरह में भ्रमि के माध्यम से कृष्ण और उद्धव पर किये गये व्यंग्यों का प्राधान्य है। कृष्ण के रूप का वर्णन अत्यन्त सुन्दर बिम्बों में प्रस्तुत हुआ है।

> नयनन वहै रूप जौ देख्यौ।
> तौ ऊधो यह जीवन जग को साँचु सफल करि लेख्यो।
> लोचन चारु चपल खंजन मनरंजन हृदय हमारे।
> रुचिर कमल मृग मीन मनोहर, स्वेत अरुन अरु कारे।
> रतन जटित कुंडल श्रवननि वर गंड कपोलन झाईं।
> मनु दिनकर-प्रतिबिम्ब मुकुर महं ढूंढत यह छवि पाई।
> मुरली अधर विकट भौंहें करि ठाढ़े होत त्रिभंग।
> मुक्तमाल उर नीलसिखर तें धंसि धरनी ज्यों गंग।[1]

भ्रमर गीत में व्यंग्य और उपालम्भों का प्राधान्य है। अपनी अपूर्ण प्रीति और कृष्ण की निष्ठुरता का गोपियां खूब उल्लेख करती हैं। जायसी का विरह वर्णन सूर से भिन्न है। जायसी के विरह वर्णन में प्रियतम के रूप का उल्लेख कहीं नहीं है। कारण कि सगुण मार्गियों से भिन्न उनका प्रिय निर्गुण और निराकार है। उसका दृश्य चित्रण-रूप स्मरण-असम्भव है इसके विपरीत गोपियों का कन्हाई को प्रेमी सगुण है। वह निर्गुण का उपहास तक करती हैं। जायसी के विरह वर्णन में सम्भवतः फारसी प्रभाव के कारण भी केवल मात्र प्रेमी की दीन-हीन दशा का चित्रण है प्रिय का नहीं। यह अत्यन्त व्यापक है। सूर के विरह वर्णन में एकान्तिक पीड़ा और मर्मान्तक व्यथा का वह रूप नहीं है जो जायसी में है क्योंकि विरह पीड़िता गोपियां सशक्त हैं और वह अपनी पीड़ा को व्यक्त करने से अधिक कृष्ण को उपालम्भ देने में रुचि रखती हैं। जायसी के प्रेम के प्रतीक पतंगा भ्रमर चातक सारस आदि हैं। सूर ने भी इनको लिया है पर वहां वह जायसी की भांति विरहिणियों से उनका धर्म साम्य नहीं देता वरन् यह कहकर 'कि इन्होंने भी प्रीति करके गलती की'[2] वह कृष्ण की निष्ठुरता और उनके प्रेम को व्यंजित करता है। इसी कारण गोपियों के विरह में व्यापकता और व्यंजकता तो है पर वह गहराई मर्मान्तक पीड़ा की वह अनुभूति नहीं जो नागमती के विरह वर्णन में है। जायसी के दीप की वातिका सरोवर, पतंग भ्रमर, सारस चातक आदि के बिम्ब इस पीड़ा को हृदय बनाते हैं। इन बिम्बों के कारण ही जायसी का विरह वर्णन सूरदास से पृथक और विशिष्ट बन गया है।

---

१ भ्रमरगीतसार पद ४१ सं ७९

२ प्रीति करि काहू सुख न लह्यो

—संक्षिप्त सूरसागर : पृ० ३६८, सं० ७६६

रीतिकालीन कवियों के प्रमुख भाव भी संयोग और वियोग हैं। परन्तु जायसी के बिम्ब उन्हें सबसे विशिष्ट बना देते हैं। रीतिकालीन कवियों ने रूप सौन्दर्य के अनेक उत्कृष्ट बिम्ब दिये हैं उनकी नायिका चन्द्र दीप आदि जैसी ज्योतिमयी है। बिहारी ने अपनी नायिका के लिए अनेक उपमान दिये हैं जैसे—

नीकौ लसतु लिलार पर टीकौ जरितु जराइ।
छबिहिं बढ़ावतु रबि मनौ ससि मंडल में आइ।

और

लसतु सेत सारी ढप्यौ तरल तर्यौना कान।
पर्यौ मनौ सुरसरि सलिल रबि प्रतिबिम्बु बिहान।

यहाँ मुख के लिए चन्द्र का उपमान आया है और टीके के लिए सूर्य व साड़ी से ढके तर्यौने (कान के आभूषण) के लिए गंगा में प्रतिबिम्बित रवि का बिम्ब दिया गया है जो व्यंजक व उत्कृष्ट है परन्तु रूप की इस अधिकता में भी जायसी के बिम्ब इससे विशिष्ट हैं जायसी ने भी पद्मावती के लिए सूर्य चन्द्र दीपक आदि के बिम्ब दिये हैं परन्तु उनमें जो लोकोत्तरता है वह अन्य कहीं लक्षित नहीं होती। जायसी की पद्मावती ब्रह्म का प्रतीक है। उसका रूप अलौकिक है सूर्य रूप में उसका प्रकाश ही संसार में सर्वत्र फैला दिखाई देता है दीपक रूप में वह धरती से लेकर स्वर्ग तक सबको उजाला प्रदान करती है। इस प्रकार एक ही से बिम्ब होने पर भी उनमें प्रयोग की भिन्नता के कारण अन्तर आ गया है। शृंगारी कवियों का सौन्दर्य अत्यन्त स्थूल है। कहीं-कहीं तो वह उपहासास्पद भी बन गया है जैसे इस वर्णन में रूप की अधिकता से सर्वत्र पूर्णिमा होने की बात कही गई है या सौन्दर्य के भार से उसके सीधे न चल सकने की बात कही गई है।

(१) पत्रा ही तिथि पाइयै वा घर कैं चहुँ पास।
नित प्रति पून्यौई रहै आनन ओप उजास।[1]

(२) भूषन भार सँभारिहै क्यौं इहि तन सुकुमार।
सूधे पाइ न धर परत सोभा ही कैं भार।[2]

जायसी में ऐसी उपहासास्पद उक्तियाँ कहीं नहीं आई हैं। जायसी का वियोग वर्णन भी इन कवियों से पृथक है। जायसी के विरह वर्णन में गहराई और गम्भीरता है जबकि इन रीतिकालीन कवियों में न गहराई है न गम्भीरता। उनका वर्णन *विरह-व्यंजना के लिए नहीं है, उसमें विरह का ताप और उसका ऊहात्मक-फुलका रूप ही* सामने आया है। विरह के बिम्बों में रूप की क्षीणता आदि का उल्लेख तो है पर गम्भीरता अर्थात् हृदय गत भावनाओं का चित्रण तनिक भी नहीं है। रीतिकालीन

---

१ बिहारी रत्नाकर दो० १०५, १०६ पृ० ४८
२ बिहारी रत्नाकर सं० ७३ पृ० ३६
३ वही सं० ३११ पृ० १३१

कवियों में घनानंद विरह-वर्णन की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ है। उसकी अनुभूतियां अत्यन्त तीव्र और मार्मिक है। कवि ने विरह में जायसी की भांति स्वानुभूति का चित्रण किया है। उदाहरण के लिए

बिष सौ बिसारुयौ तन कें बिसासी आपधारुयौ।
बाच्यौ हुतो मन तैं सनेंह वजु बेस सों।
घन ताकी ज्वाल में पजरिबौ रे भली भांति।
नीके धाहि प्रसहु प्रवेष-दुख सेस सों।
गए उड़ि तुरत परेव लौं सकल सुख
पर्‌यौ आय औचक बियोग बैरी बेस सों।[1]

यहां वियोग को उस पत्थर के समान बताया गया है जो संयोग सुख के अनेक पक्षियों के बीच अचानक आ पड़ा। संयोग के नाना भाव (पक्षी) जिससे उड़ गये समाप्त हो गये। पीड़ा की यह अनुभूति बहुत अंशों मे नागमती की विरहानुभूति से मिलती है नागमती ने भी सरोवर (सुख) के सूखने (समाप्त होने) के साथ तट पर रहने वाले पक्षियों (सुख के नाना भावों) के उड़ने (समाप्त होने) का उल्लेख किया है। परन्तु घनानंद के विरह वर्णन में वैयक्तिकता अधिक है। रीतिकालीन कवियों से वह इसीलिए विशेष रूप से पृथक है। जायसी के विरह वर्णन में व्यापकता और गहराई विशेष है। जिसके कारण वह सभी मध्यकालीन कवियों से पृथक हो जाते हैं।

समष्टि मे बिम्बगत भावों के आधार पर जायसी का मध्यकालीन बिम्ब योजना में प्रमुख स्थान है। उनके प्रधान भाव वियोग संयोग और श्रम हैं जिनमे वह अन्य कवियों से पृथक और विशिष्ट स्थान रखते हैं।

(४) अमूर्त अथवा मूर्त बिंब विधान

मध्यकालीन कवियों मे प्राय सभी कवियों की प्रवृत्ति मूर्तता की ओर है। उन्होंने मूर्त भावों को तो मूर्त रूप दिया ही है, अमूर्त भावो का भी मूर्तीकरण किया है। जायसी की प्रवृत्ति भी मूर्तीकरण की ओर है। अमूर्त बिम्ब विधान यदि आंशिक रूप से किसी म है भी तो वह है तुलसी। उन पर भक्ति और ज्ञान आदि का पर्याप्त प्रभाव है जिससे वह स्थान-स्थान पर अमूर्त उपमानो के रूप में उलझ स जाय हैं। मनु और शतरूपा के वन प्रस्थान करते समय वह उनके लिए ज्ञान और भक्ति अमूर्त उपमाएं देते हैं

बसहिं तहां मुनि सिद्ध समाजा, तहं हिय हरषि चलेउ मन राजा।
पंथ जात सोहहिं मति धीरा ग्यान भगति जनु धरे सरीरा।[2]

राम की बारात के समय जब मुनिगण आदि के प्रस्थान करते समय भी कवि

---

[1] घनानंद-कवित्त, सं ३०
[2] रामचरितमानस बालकांड

ने ऐसी अमूर्त उपमान योजना की है। वह ब्राह्मणों की पवित्रता के कारण वेद-छंद कहता है

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना।
तिन्ह चढ़ि चले बिप्रबर बृंदा। जनु तनु धरें सकल श्रुति छंदा।[1]

राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न के लिए भी कवि अर्थ धर्म काम मोक्ष अमूर्त उपमान लाया है

रामहि देखि बरात जुड़ानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी।
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी।[2]

अन्यत्र दशरथ के चारों पुत्रों को चारों मोक्ष कहा गया है जो अमूर्त उपमा है

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरें करहिं सुख सेवा।
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी।[3]

तुलसी ने कैकयी के लिए भी निष्ठुरता का अमूर्त उपमान दिया है कवि कहता है कि कैकयी के रूप में स्वयं निष्ठुरता रूपधर कर बैठी थी यहाँ राजा के रूप में साक्षात स्नेह था—

सांझ समय सानंद नृप गयेउ कैकयी गेहु।
गवनु निठुरता निकट किय जनु धरि देह सनेहु।[4]

यहाँ राजा का भी स्नेह अमूर्त उपमान प्रयुक्त हुआ है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तुलसी ने कहीं-कहीं अमूर्त उपमान योजना की है। जायसी में ऐसी उपमान योजना नहीं के बराबर है उन्होंने मृत्यु आदि एक दो ही अमूर्त उपमान प्रयुक्त किये हैं।

अन्य मध्यकालीन कवियों की दृष्टि भी मूर्त उपमानों पर अधिक रही है। अमूर्त उपमानों की परम्परा ही उस काल में नहीं थी और अधिकांश रूप में सगुण भक्त और अधिक स्थूल (कुछ शृंगारी कवियों के) होने के कारण भी मूर्तीकरण की ओर इनका आग्रह अधिक है। अमूर्त वस्तुओं को भी इन्होंने मूर्त बनाकर प्रस्तुत किया है जिससे वह दृश्य होने के साथ-साथ सहज प्रेषणीय हो जाती हैं। जायसी ने प्रेम विरह काम आदि के लिए मधु सरोवर दीपक आदि के मूर्त उपमान दिये हैं। कबीर ने रहस्यात्मक तत्त्वों को संप्रेषणीय बनाने के लिए मूर्त उपमानों द्वारा व्यक्त किया है। संसार में जीव की स्थिति वह एक कमलिनी के माध्यम से व्यक्त करते हैं जिससे वह सहज ग्राह्य हो जाती है

---

१ रामचरितमानस बालकांड पृ १७०
२ वही, पृ १९४
३ वही, पृ ३२४
४ वही, अयोध्याकांड पृ० ३६४

काहे री नलिनी तू कुम्हलानी तेरे नाल सरोवर पानी
जल में उतपति जल में बास जल में नलनी तोर निवास
न जल तपत न ऊपर आग तेरे हेत कहु केसन लाग।
कहै कबीर जे उदिक समान ते नहीं मुए हमारे जान।[1]

जीवन की असारता को बुलबुले प्रभात के तारे के मूर्त उपमानों से व्यक्त किया है। स्पष्टतः कबीर ने अनेक रहस्यपूर्ण आध्यात्मिक तत्त्वों को बिम्ब द्वारा प्रदर्शित किया है। अन्य कवियों ने भी अमूर्त के लिए मूर्त उपमान योजना की है।

रीतिकालीन कवियों और भक्तिकालीन कवियों-सभी में अमूर्त उपमानों का अभाव-सा है परन्तु अमूर्त के लिए मूर्त उपमान उन्होंने पर्याप्त दिये हैं। योग के लिए सूरदास ने जहर का मूर्त उपमान बार-बार दिया है

लोककानि कुल को भ्रम प्रभु मिलि मिलि कै घर बन खेली।
अब तुम सूर खिलावन आए, जोग जहर की बेली।[2]

और

मुक्ति आनि मन्द मैं मेली समुझि सयानप आपनी।
स्रवत सुधा-मुरली के पोषे जोग जहर न खवाव रे।[3]

योग के लिए 'निर्गुन गाठरी'[4] 'ठगौरी'[5] 'खेप'[6] आदि मूर्त उपमान भी बार बार आये हैं। बिहारी घनानंद आदि ने भी अमूर्त वस्तुओं के लिए मूर्त उपमान दिये हैं। विरह को घनानंद ने ऐसे व्यक्ति का रूप दिया है जो विरहिणियों से फाग खेल रहा है—

घर ही घर बीथिन चौचरि दै यह आतिन रंग रचाय रह्यौ।
भरि नैन हिये हरि लुटि संहार तहाँ करि नाक नचाय रह्यौ।
घनआनँद पै बज गोपिनि को मन है सिव लौं जरचार रह्यौ।
सजि फूगो सब चित रावरो हूवै बिरहा नित फाग मचाय रह्यौ।

विरह को उन्होंने सुख के पक्षियों के बीच आ पड़ने वाला पत्थर भी कहा है जिससे सुख के सारे पक्षी उड़ गये हैं। यहां भी अमूर्त सुख और वियोग के लिए क्रमशः पक्षी और पत्थर का मूर्त बिम्ब आया है।[8] घनानन्द ने विरह को समीर और

१ बीजक कबीर
२ भ्रमरगीतसार पृ० [illegible] सं० [illegible]
३ वही, सं० ३१ पृ० [illegible]
४ वही सं० [illegible] पृ० [illegible]
५ वही, सं० २८ पृ० [illegible]
६ वही सं० [illegible] पृ० [illegible]
७. घनानंद कवित्त सं० [illegible]
८. वही

हृदय को पतंग के मूर्त उपमान से भी प्रस्तुत किया है—

बिरह समीर की झकोरनि अधीर नेह—
नीर भीज्यौ जीव, तऊ गुड़ी लौं उड़्यौ रहै ।[1]

विरह को यह नेह-नदी की विषम लहरों और विरह दूर करने के प्रयत्नों को कागज की नाव के मूर्त उपमानों से भी प्रकट करता है—

भए कागद नाव उपाय सबै, घनआनंद नेह-नदी गहरे ।
बिन प्रान संजीवन कौन हरै सजनी बिरहा बिष की लहरे ।[2]

घनानंद में अमूर्त का मूर्तीकरण करने की प्रवृत्ति मध्यकालीन सभी कवियों की अपेक्षा अधिक है । यह घनानंद की शैली का ही एक अंग बन गई है । बिहारी मतिराम आदि में अमूर्त का मूर्तीकरण कम है । कारण कि उनकी दृष्टि स्थूल वस्तुओं पर ही गई है अमूर्त विषयों प्रेम विरह आदि का उन्होंने कम लिया है । उनकी दृष्टि मुख्यतः नायक-नायिकाओं पर ही रही है इस कारण अमूर्त के मूर्तीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता । इसके विपरीत घनानंद में अमूर्त भावों का पर्याप्त वर्णन है इसलिए उनके मूर्तीकरण का प्रयत्न भी बराबर हुआ है जायसी में भी प्रेम विरह आदि का पर्याप्त वर्णन है जिसके कारण अमूर्त के मूर्तीकरण की प्रवृत्ति उनमें पर्याप्त प्रसार पा गई है ।

मध्यकालीन कवियों ने अमूर्त के मूर्त बिम्ब देने के साथ-साथ मूर्त के मूर्त बिम्ब भी बहुत अधिक दिये हैं । रीतिकालीन कवियों की तो यह प्रमुख शैली है । यद्यपि कहीं कहीं उनमें अमूर्त उपमान योजना मिल जाती है जैसे प्रस्तुत स्थल पर मतिराम ने 'सुहास' अमूर्त भाव को 'हंस' मूर्त उपमान से प्रस्तुत किया है—

गोकुल मनत सो आवन मांझ बिसारे पसाह की सांस सुहाई ।
प्यारी के कुसल और लिया को मयासत्य नाम लियो रसिकाई ।

आई चली मुँह में हँसी कोह लिया, पुनि चाप सी भौंहैं चढ़ाई ।
आँखिन तें गिरे आँसु के बूँद, सुहास गयो उड़ि हंस की नाई ।[3]

परन्तु उनमें मूर्त को मूर्त से उपमा देने की प्रवृत्ति ही अधिक है । घनानंद बिहारी देव और सूर तुलसी आदि में ऐसे मूर्त बिम्बों का बाहुल्य है । मूर्त बिम्बों में घनानंद का एक बिम्ब पर्याप्त होगा—

कसको मधुर मादी जाको निज अंग भये
जाहि देख रस हू में कटुता बसति है ।
जाके एक मुख ही तें अमृत निकार लग
यह सरवंग व्यापि भावनि बसति है ।
सु घर सुजान जू सजीवन तिहारो ध्यान
लाखौं कोटि मुनी हूँ लहरि सरसति है ।

---

१ घनानंद कवित्त, सं० १८
२ वही सं० ३९
३ मतिराम हिन्दी साहित्य का अतिहास सुमन में उद्धृत, पृ० ५३५

> यामिनि उदारी भारी सांपिनि निसा बिसारी
> बैरिन अनोखी मोहि डाहन बसत है।[1]

यहा मूर्त रात्रि का प्रभाव और रूप के आधार पर नागिन मूर्त बिम्ब दिया गया है। ऐसी उपमान योजना प्रायः सभी कवियों में बहुलता से है। इस प्रकार स्पष्ट है कि मूर्त उपमान योजना मध्यकालीन कविता की सामान्य प्रवृत्ति है। अमूर्त उपमान योजना कुछ अंशों में तुलसी में ही मिलती है अन्य कवियों म इसका अभाव सा है। अमूर्त की मूर्त उपमान योजना भी मुख्यत जायसी और घनानंद में ही है जो जायसी के काव्य की विशेषता है। मूर्त की मूर्त उपमान योजना सामान्यत सभी में है। जायसी में भी पर्याप्त मात्रा में है।

(५) बिम्बगत गुण

बिम्बगत गुणों के आधार पर भी कवि की विशेषता को परखा जा सकता है। बिम्ब के गुणों का स्थूल विभाजन इस प्रकार है—

(१) व्यंजकता (२) उर्वरता (३) तीव्रता (४) नवीनता (५) परिमितता (६) औचित्य।

(१) व्यंजकता—जायसी के बिम्बों की व्यंजकता की चर्चा पहले ही छठे अध्याय में हो चुकी है। यहां अन्य कवियों के बिम्ब विधान की व्यंजकता के संदर्भ में उनके इस बिम्बगत गुण को देखने का प्रयत्न किया जायेगा।

भक्तिकाल के सूर और तुलसी का बिम्ब विधान व्यंजकता की दृष्टि से समृद्ध है। सूर ने कृष्ण की बाल लीला और रूप वर्णन में ऐसे उपमान दिये हैं जो चित्रात्मक तो पर्याप्त हैं परन्तु व्यंजना उनमें अधिक नहीं है। व्यंजना की दृष्टि से भ्रमर गीत के बिम्ब अत्यन्त सुन्दर हैं। वहां विरह की व्यंजना कभी मधुबन कभी कालिंदी के माध्यम से की है जिसके कारण उन बिम्बों म पर्याप्त व्यंजकता आ गई—

> देखियत कालिंदी अति कारी।
> कहियो पथिक जाय हरि सों ज्यों भई बिरह जुर जारी।
> मानो पलिका पै परी धरनि धंसि तरंग तलफ तनु भारी।
> तटबारू उपचार चूर मनो स्वेद प्रवाह पनारी।
> बिगलित कच कुस कास पुलिन मनो पंकजु कज्जल सारी।
> भ्रमर मनो मति भ्रमत चहुं दिसि फिरत है अंग दुखारी।
> निसदिन चकई—ब्याज बकत मुख किन मानहु अनुहारी।
> सूरदास प्रभु जो जमुना—गति सो गति भई हमारी।[2]

यहां यमुना के ब्याज से गोपियों की व्यथा को प्रस्तुत किया गया है। यहां यमुना का मानवीकरण है जो गोपियों के विरह—विदग्ध रूप को प्रस्तुत करता है। अन्य कवियों में भी व्यंजनात्मकता पर्याप्त है।

---

१ घनानंद क वि स ८३

२ भ्रमरगीतसार सं शुक्ल पृ ९८, सं० १०८

रीतिकाल के शृंगारी कवियों में व्यंजना तो पर्याप्त है पर बिम्बगत व्यंजना रमकता (सजेस्टिवनेस) बहुत कम है। उनके बिम्ब अधिकतर अलंकारों के रूप में आये हैं स्वतन्त्र या मुहावरे के रूप में कम। यत बिम्ब केवल दृश्यता उत्पन्न करते हैं किसी भाव की उत्कृष्ट व्यंजना कम करते हैं। अधिकतर बिम्ब स्थूल सौन्दर्य को प्रतिपादित करते हैं। भाव या किसी गहन विचार का संकेत नहीं देते। इस प्रकार जायसी की बिम्ब योजना की व्यंजकता उनकी एक विशेषता प्रतीत होती है। जायसी रहस्यवादी है और कथा में प्रतीकात्मक अर्थ देने के लिए वह प्रायः ऐसे बिम्ब प्रस्तुत करते हैं जो किसी लोकोत्तर सत्य की व्यंजना करता है। प्रेम प्रसंगों म जहा कवि एकदम लौकिक है वहां भी परिस्थिति आदि के कारण अपूर्व व्यंजनात्मकता आ गई है। व्यंजकता की दृष्टि से समष्टि में मध्यकालीन कविता म जायसी का स्थान महत्वपूर्ण है।

उर्वरता – उर्वरता का गुण संक्षिप्तता पर आधारित रहता है जायसी में अत्यल्प शब्दों में बिंब विधान कराने की प्रवृत्ति है जिसके कारण उसके बिंबों में अपूर्व उर्वरता आ गई है।

भक्तिकाल के कवि सूर तुलसी आदि में भी उर्वरता पर्याप्त मिलती है। तुलसी ने अयोध्याकाण्ड में कैकयी और दशरथ के प्रसंग में अत्यन्त उर्वर बिम्बों की सर्जना की है। परिस्थितिगत वैषम्य के कारण और प्रसग की मार्मिकता के कारण कवि अत्यन्त उत्कृष्ट बिंबो का सर्जन कर सका है उदाहरणार्थ—

> लखें दीखि जरत रिस भारी मनहु रोष तरवारि उघारी।
> मूठि कुबुद्धि धार निठुराई धरी कूबरी सान बनाई।[1]

अर्थात् प्रचण्ड क्रोध म जलती कैकयी तलवार के समान दिखाई दे रही थी जिसकी कुबुद्धि मूठ थी निष्ठुरता धार थी और जो कुबड़ी रूपी सान पर चढ़कर तैज हुई थी। यह बिंब अत्यन्त व्यंजक है कैकयी की घातकता उसकी भयंकरता तलवार के रूपक से स्पष्ट है कुबरी रूपी सान का उल्लेख करके उसकी परिस्थितियों को भी स्पष्ट कर दिया गया है। रामचरितमानस में परिस्थितियों के संदर्भ के कारण उर्वर बिम्बमान योजना प्राप्त हुई है। शृंगारी कवियों के बिम्ब स्थूल होने के कारण अपेक्षाकृत कम उर्वर हैं। वह वस्तु को दृश्य सा बना देते हैं पर हृदय पर उसका एक अमिट प्रभाव नहीं छोड़ते। कुछ ही बिंब ऐसे मिलते हैं। बिहारी के इस दोहे में पर्याप्त उर्वरता है

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहि काल
> अलि कलि ही सों बंध्यो आगे कौन हवाल।[2]

जायसी के बिम्बों में शृंगारी कवियों से अधिक उर्वरता है। मध्यकालीन कवियों में भक्तिकाल के बिंब ही अधिक व्यंजक और उर्वर हैं। जायसी का बिंब विधान भी उर्वरता व व्यंजकता के गुण से ओतप्रोत है।

---

1 रामचरितमानस अयोध्याकांड, पृ० ३९६

2 बिहारी रत्नाकर, पृ० ११ दो० ३८

३—तीव्रता—तीव्रता का गुण बहुत अंशों में व्यंजकता और नवीनता पर आधारित रहता है। संक्षिप्त होने पर बिंब प्रायः तीव्र भावाभिव्यक्ति करते हैं। भाव को तीव्रता प्रदान करने में मध्यकाल के सभी कवियों के बिम्ब न्यूनाधिक रूप में सफल हैं। परम्परा से मुक्त होने के कारण घनानन्द जायसी सूर तुलसी आदि कवियों में बिम्बगत तीव्रता शृंगारी कवियों से अधिक है। शृंगारी कवियों ने प्रधानतः रूप रंग से पूरित स्थूल चित्र दिये हैं जो भाव को संप्रेषणीय बनाकर तत्कालिक प्रभाव डालते हैं और रूप को दृश्य बना देते हैं परन्तु स्थूल होने के कारण उनमें भाव को तीव्र करने की शक्ति अधिक नहीं है। उनका प्रभाव एक लैंडस्केप पेंटिंग को देखकर पड़ने वाला प्रभाव है जबकि जायसी के बिम्बों का प्रभाव एक्सप्रेशनिस्टिक पेंटिंग का प्रभाव है।

४—नवीनता—समस्त मध्यकालीन कविता में बिंबगत नवीनता अधिक नहीं आई है। सभी कवि परम्पराओं के न्यूनाधिक रूप में समर्थक हैं। अपने काव्य में वह प्राचीन उपमानों का बराबर प्रयोग करते रहे हैं। सूर तुलसी आदि सभी में परम्परा ग्रस्त उपमान पर्याप्त रूप से मिल जाते हैं। परन्तु उनके प्रयोग के कारण उनमें रोचकता आ गई है। वह प्राचीन होते हुए भी सरस कल्पना से पूरित हैं। सूरदास का पद द्रष्टव्य है—

हरि जू कि बाल-छवि कहौं बरनि
सकल सुख की सींव कोटि मनोज-सोभा-हरनि।
भुज भुजंग सरोज नैननि बदन बिधु जित लरनि।
रहे बिवरनि सलिल नभ उपमा अपर दुरि डरनि।
मंजु मेचक मृदुल तनु अनु हरत भूषन भरनि।
मनहु सुभग सिंगार सिसु तरु फर्‌यो अद्‌भुत फरनि
चलत पद-प्रतिबिम्ब मनि आँगन घुटुरुवनि करनि।
पुन्य फल अनुभवति सुतहि बिलोकि कै नंद घरनि।
सूर प्रभु की उर बसी किलकनि ललित लरखरनि।

यहाँ परम्परागत उपमानों को कवि ने नवीन रूप में प्रस्तुत किया है। इस प्रकार की बिंब योजना प्रायः सभी कवियों में है। मध्यकाल के कवि परम्परा के पोषक हैं विद्रोही नहीं। फलतः नवीनता के प्रति उनका बलात् आग्रह नहीं है। सहज रूप से उनकी कल्पना ने जो सरस रूप निर्माण कर लिया है उसको ही वे स्वीकृत कर लेते हैं। परम्परा से दूर होने के कारण जायसी और घनानन्द में अपेक्षाकृत नवीन उपमाएं आई हैं। जायसी ने ग्रामीण जीवन से जितने बिंब लिये हैं वह सभी सरस और नवीन हैं। समष्टि में नवीनता की दृष्टि से जायसी सामान्य हैं नवीनता के प्रति उनका आग्रह विशेष नहीं है।

---

१ सूर सागर

८ परिचितता—मध्यकाल के सभी कवियों का बिम्ब विधान नवीनता के अभाव प्रायः के प्रभाव के कारण पाठकों के परिचय की सीमा में ही रहा है। उन्होंने प्राय ऐसे उपमान लिए हैं जो हमारे जीवन के बीच से गृहीत हैं जो कवि के साथ रागात्मक सम्बन्ध रखने के साथ साथ हमारी रागात्मकता के केन्द्र भी हैं। मध्यकाल के सभी उपमानों में यह गुण पर्याप्त है। जायसी के उपमान भी परिचित होने के कारण विशेष ग्राह्य हो सके हैं।

६ औचित्य—मध्यकालीन कविता औचित्य गुण से ओतप्रोत है। केशव के अतिरिक्त प्राय किसी कवि की बिम्ब योजना अनौचित्य के दोष से ग्रसित नहीं है। सूर, तुलसी बिहारी आदि सभी में बिम्ब के समस्त गुणों का उचित सम्मिश्रण मिलता है। जो उनकी कविता को बिम्बगत औचित्य गुण से परिपूर्ण करके विशेष सफल बना देता है। जायसी में औचित्य का सदैव विशेष विचार हुआ है। भाव चरित्र प्रतीकात्मकता सबका विचार उनके बिम्बों में रखा गया है जो औचित्य का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करता है।

संक्षेप में बिम्बगत गुणों के आधार पर जायसी का काव्य अनेक रूपों में अन्य मध्यकालीन कवियों के समान होते हुए भी विशेष है। व्यंजकता उर्वरता और तीव्रता का उसमें अत्यन्त सुन्दर सम्मिश्रण हुआ है जो अन्य मध्यकालीन कवियों के बिम्ब विधान में उसको विशिष्ट बना देता है।

समष्टि में मध्यकालीन बिम्ब विधान में जायसी का स्थान विशेष है। इसकी बिम्बों की उपात्त वस्तु उसके अपने व्यक्तित्व की प्रकाशक है और उसके व्यक्तित्व की विशिष्टता के साथ साथ उसका बिम्ब विधान भी विशेष है। भावों के आधार पर भी जायसी का बिम्ब विधान विशेष कहा जा सकता है। उसने प्रेम और विरह भावों में सर्वाधिक और मार्मिक बिम्ब दिए हैं जो उसके सहृदय प्रेम पीर के ज्ञाता रूप को प्रकट करते हैं। संवेदनाओं की दृष्टि से मध्यकालीन कवियों की भाँति वह सामान्य ही है। दृश्य चित्रों की छाया प्रकाशमय योजना उसकी एक अपनी विशेषता है जो किसी मध्यकालीन कवि में इतनी स्पष्टता से नहीं मिलती। अमूर्त को मूर्त रूप प्रदान करने की विशेषता भी जायसी की अपनी है। भावनाओं का चित्रण करने वाले कलाकार जैसे अन्य एक दो कवियों में भी यह गुण है परन्तु मध्यकाल के सभी कवि सामान्यतः नायक-नायिका तक सीमित रहे हैं उनकी भावनाओं तक नहीं, इस कारण अमूर्त के मूर्तीकरण का प्रश्न ही नहीं नहीं उठता है। उनका आग्रह मूर्तता के लिए विशेष है। जायसी में भी मूर्तता पर पर्याप्त बल दिया गया है। बिम्बगत गुणों का औचित्य पूर्ण आकलन भी जायसी की एक विशेषता है। उसने प्रतीकात्मकता कथा चरित्र प्रसंग आदि सभी तत्वों की रक्षा करते हुए अत्यन्त भाव व्यंजक उपमानों की योजना की है जो उसकी औचित्यगत आग्रहता का स्पष्ट प्रमाण है। समष्टि में जायसी के व्यक्तित्व की भाँति मध्यकालीन कविता में उसका बिम्ब विधान विशिष्ट प्रकार का है।

जायसी का व्यक्तित्व

कवि के व्यक्तित्व का विश्लेषण बाह्य-साक्ष्यों के आधार पर ही नहीं वरन् अन्तर-साक्ष्यों के आधार पर भी किया जा सकता है। इन अन्तर साक्ष्यों में कवि काव्य में स्वयं को ही प्रस्तुत करता है। उसका जीवन समाज उसकी परिस्थितियां उसके संस्कार, उसके रुचि रुझान-सभी उसके बिम्बों से प्रकट हो जाते हैं। इस प्रकार बिम्बों द्वारा हम कवि के व्यक्तित्व की बड़ी स्पष्ट झलक पा सकते हैं उसके जीवन का प्रत्येक संभावित रूप उसके बिम्बों में प्रकट हो जाता है। कवि उन्हीं वस्तुओं के चित्र दे सकता है जिसको उसने जीवन में अनुभूत किया हो। अथवा जिसने उसे प्रभावित किया हो और जीवन के किसी सत्य की अनुभूति कराई हो। बिम्ब की प्रखरता और मार्मिकता उसके मानस के भावों का साक्षात्कार कराती है और उसकी रागात्मक तन्मयता का परिचय देती है। अर्थात् जीवन में उसके स्नेह का प्रसार किन किन क्षेत्रों में कितना कितना हुआ है इसका परिचय उसके बिम्बों द्वारा ही होता है। इस प्रकार कवि के व्यक्तित्व का एक समग्र चित्र बिम्ब द्वारा निर्मित किया जा सकता है। किसी भी कवि के बिम्ब-विधान के अध्ययन से हम उसका आत्मसाक्षात्कार सहज ही कर लेते हैं।

जायसी के बिम्बों में भी उसका व्यक्तित्व निहित है। बिम्ब-विधान के अध्ययन से कवि जायसी का एक चित्र हम कल्पित कर सकते हैं। उसके रुचि रुझानों संस्कारों परंपराओं जीवन स्तर, आदि का अनुमान किया जा सकता है। यहाँ कवि के बिम्बों के अध्ययन से हम उसके व्यक्तित्व के विषय में जो निष्कर्ष निकाल सके हैं उन्हें प्रस्तुत करेंगे।

जायसी के व्यक्तित्व के विषय में उसके आलोचकों ने अभी तक कुछ विशेष नहीं लिखा है। मुख्यतः सभी आलोचक उसके जन्म-मरण के समय का निश्चय करने में ही व्यस्त रहे हैं। उसके वैयक्तिक गुणों की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई है। कुछ आलोचकों ने उसके बहुश्रुत होने की चर्चा अवश्य की है परन्तु वे भी उसके व्यक्तित्व के विषय में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं कह पाये हैं। इस प्रकार जायसी के व्यक्तित्व को समझने में बाह्य साक्ष्य कोई महत्वपूर्ण योगदान नहीं देते। हम उसके व्यक्तित्व का अनुमान केवल उसकी बिम्बगत कल्पना के आधार पर ही कर सकते हैं।

जायसी अत्यन्त कल्पनाशील और संवेदनशील प्राणी थे। उन्होंने पद्मावत अखरावट आदि काव्यों में बिम्बों की एक बड़ी संख्या प्रस्तुत की है जो उनकी कल्पना शीलता का स्पष्ट प्रमाण है। उन्होंने कल्पना के द्वारा प्रायः प्रत्येक पात्र और प्रत्येक भाव के साथ रागात्मक संबन्ध स्थापित किया है। जिसके कारण वह प्रत्येक पात्र के अनुरूप और प्रासंगिक बिम्ब विधान कर सके हैं। जो पात्र की प्रतीकात्मकता चरित्र चित्रण आदि में योग देने के साथ साथ कथा में भी सहायक होते हैं। प्रत्येक भाव और प्रत्येक स्थल पर मार्मिक और व्यंजनापूर्ण बिम्ब-योजना उनकी संवेदनशीलता का भी परिचय देती है।

जायसी के बिम्बों से प्रकट होता है कि वह एक सरल हृदय ग्रामीण थे । गाँवों के दृश्य वातावरण और उपकरण उनके काव्य में बहुतायत से पाये हैं । खेतों और सरोवर, रस्सी-कुएँ, खेत, बाग में घूमते जन, रहट की घरिया आदि के रूपक इतने सजीव हैं कि किसी ग्राम-जीवन से अनभिज्ञ के लिए वह सर्वथा नवीन प्रतीत होते हैं । कवि ने उन्हें इतनी रागात्मकता और उपयुक्तता से प्रस्तुत किया है कि वह सब उसके अनुभव में आये और उसके जीवन में बड़ी निकटता से देखे गये प्रतीत होते हैं । यह सब प्रकट करते हैं कि कवि हृदय से ग्रामीण है । वह ग्रामीण जीवन से बहुत अधिक प्रभावित है । ग्रामीण जीवन के लिए उसके हृदय में एक प्रेम है जिसके कारण वह अपने दैनिक जीवन की वस्तुओं को भी सादृश्य के लिए लाया है । जायसी सम्भवतः किसी सरोवर (पोखर या झील) के किनारे किसी झोपड़ी में रहते होंगे । सरोवर के इतने सुन्दर और सजीव चित्र कवि के बहुत निकट जीवन से बड़ी तन्मयता से देखे हुए प्रतीत होते हैं । कवि ने उसे हर मौसम में हर रूप में देखा था । उसका फूलना, जल देखकर से आ जाने वाली प्रसन्नता, तट पर कलरव करते पक्षी—सभी उसकी बड़ी निकट से देखी गई वस्तु प्रतीत होती हैं । यह किसी दर्शक (विजिटर) की दृष्टि नहीं वरन् वहाँ के निवासी के अनुभव हैं । पोखरी-बार उसकी झोपड़ी के बाहर से उठाई हुई-सी लगती है । ग्रामीण होने के साथ ही जायसी राजसी जीवन से अनभिज्ञ भी था । राजभवनों महलों आदि से उसका कोई परिचय नहीं था । उसके काव्य में राजसी जीवन का कोई मार्मिक चित्र नहीं है जो उसकी राजसी जीवन से घनिष्ठता का परिचय दे । कवि ने राजसी जीवन के जो बिम्ब दिये भी हैं वे अत्यन्त सामान्य हैं जो किसी भी साधारण दर्शक के हो सकते हैं । छत्रधारी राजा आदि के चित्र इसको प्रमाणित करते हैं । उनके चित्रों में रंग-रंग की चटक-मटक का अभाव भी उनके सरल ग्रामीण व्यक्तित्व को प्रकट करता है । उनका राजसी जीवन का केवल सेना के प्रयाण का रूपक मार्मिक है जो उनके विशिष्ट ज्ञान का परिचय भी देता है । हो सकता है सेना के साथ जायसी का कोई सम्बन्ध रहा हो । सम्भवतः सेना में वह कभी रहे हों या सैनिक व्यवहारों को बड़ी निकटता से देखा-सुना हो ।

ग्रामीण होने के साथ साथ जायसी निर्धन भी थे । एक स्थल पर अपनी निर्धनता की उन्होंने बड़ी स्पष्ट अभिव्यक्ति की है ।

जहुँ लछिमि लागर कवि सोई जेहि सरसुती लछिमि किन होई ।
कविता संग दारिद मति भंगी काँटहि कलित कुसुम के संगी ।
(५४१ १-७)

अर्थात् फूल के साथ काँटा इसी प्रकार रहता है जैसे कविता के साथ दरिद्रता । सम्भवतः कवि होने से उन्होंने धनाभाव में दुःखों को सहा हो और कविता व निर्धनता के साथ साथ रहने की यह धारणा बनाई हो । यह मान्यता उनकी निर्धनता का स्पष्ट संकेत देती है । काव्य में धोत (ठेंठा) के प्रति भी जायसी के हृदय में एक मम

है जो उनके व्यक्तित्व का विश्लेषण करता है। उन्होंने अनेक स्थलों पर शीत के भय और उससे बचने के उपाय रूप में सूर्य की गर्मी का उल्लेख किया है

ऐ बग सूर सीऊ मोहि लावा। (५६५, ३)

शीत से भय और उससे बचने का उपाय सूर्य की गर्मी कवि की निर्धनता को व्यक्त करती है। सामान्यतः गम कपड़ों आदि की व्यवस्था से सम्पन्न किसी व्यक्ति के हृदय में यह भय नहीं समा सकता और न उसको दूर करने के उपाय रूप में सूर्य की गर्मी ही उसे आकृष्ट कर सकती है। सम्पन्न कवि ऐसी बिम्ब योजना नहीं कर सकता। यह बिम्ब उसकी निर्धनता के मुखर प्रतिबिम्ब हैं।

निर्धनता की अनुभूति के साथ-साथ कवि ने प्रेम की पीड़ा की अनुभूति भी जीवन में की है। उन्होंने प्रेम को इतना व्यापक रूप दिया है। जो उनके प्रेम भावना के प्रति विशेष आकर्षण को प्रकट करता है। प्रेम को उन्होंने असम्य मधु कहा है। जिससे प्रेम के साथ पीड़ा की अनिवार्यता भी व्यक्त हुई है क्योंकि मधु को मधु मक्खियों के दर्शनों के बाद ही पाया जा सकता है। उनका प्रेम जीवन का सार है। प्रेम विहीन जीवन को वह 'छार' सदृश्य निरर्थक कहते हैं। उनका प्रेम जीवन की साधना भी है। वह सहज सुलभ मात्र भोग विलास नहीं है। विरह उसका एक अनिवार्य अंग है। प्रेम का यह साधनात्मक स्वरूप सम्भवतः उन्होंने सूफी सम्प्रदायों के परिचय में आकर प्राप्त किया था। प्रेम की मार्मिकता अनिवार्यता और पीड़ा को वह जीवन में पहले ही अनुभव कर चुके होंगे। बाद में उनका प्रेम-पीड़ित हृदय सूफी सिद्धान्तों के माध्यम से प्रेम को साधना के अधिक परिष्कृत रूप में व्यक्त कर सका है। प्रेम में विरह की प्रधानता उनके प्रेम पीर के ज्ञाता रूप को प्रकट करती है। विरह में उनके सर्वाधिक और मार्मिक बिम्ब आये हैं। जो विरह से उनके विशेष रागात्मक आकर्षण का संकेत देते हैं। नागमती के विरह में तो कवि के प्रेम-पीड़ित हृदय का स्पष्ट साक्षात्कार ही जाता है। कवि ने इतनी भावनात्मक तन्मयता से उसका वर्णन किया है कि वह कवि की स्वानुभूति प्रतीत होता है। नागमती के विरह का व्यापकत्व और मार्मिकता कवि के प्रेम-पीड़ित रूप की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। काव्य में उन्होंने पुर्नमिलन के अवसर को बड़ी मार्मिकता प्रदान की है जो उनकी पीड़ा को प्रकट करती है पुर्नमिलन के अवसर उसे ही विशेष आकृष्ट कर सकते हैं जिसने मिलन के पश्चात विरह को सहन किया हो अर्थात् विरह की मार्मिक अनुभूति की हो जीवन में सुख-संयोग के भोक्ता को पुर्नमिलन इतना आकर्षित नहीं कर सकता। जायसी ने पुर्नमिलन का कोई स्थल नहीं छोड़ा है सर्वत्र कल्पना का उत्कृष्ट वैभव वहाँ दृष्टिगत होता है। पुर्नमिलन का उन्होंने आषाढ़ बेल के पल्लवित होने, दुर्ग के बाहम टूट कर आकाश के निर्मल होने के अनेक समग्र रूपकों द्वारा प्रस्तुत किया है। जो कवि की विशेषता है। पुर्नमिलन या तो उस आकृष्ट कर सकता है जिसने अपार विरह के बाद इस सुख की अनुभूति की हो या मिलन के पश्चात पुन मिलन जिसकी आकांक्षा जिसका स्वप्न रहा हो। जायसी के लिए दोनों ही रूप

सम्भव हो सकते हैं। जो भी हो जीवन में विरह की मार्मिक अनुभूति उन्हें थी यह स्वीकार किया जा सकता है और सूफी सम्प्रदायों के क्षेत्र में आकर यह अध्यात्म व रहस्यवाद की ओर उन्मुख हो गयी है।

जायसी एक धार्मिक प्राणी थे। मिथन होते हुए भी उन्होंने दान की महिमा को स्वीकार किया है। दान को वह जीवन का दीपक कहते हैं जो अंधेरे पथ को उज्ज्वल बनाकर जीवन को आनन्द अथवा परमानन्द की ओर ले जाता है। उसके प्रकाश के अभाव में जीवन अन्धकार-अज्ञान और कुवृत्तियों में लिप्त हो जाता है। जीवन का सौन्दर्य नष्ट हो जाता है। मिथन होते हुए भी उनकी यह धारणा उनके धर्मभीरु स्वरूप को प्रकट करती है। उनकी धार्मिकता व सम्प्रदाय विषयक दृढ़ता उनकी गुरु-सम्बन्धी मान्यताओं में भी प्रकट हुई है। यह दृढ़ता मध्य काल में सामयिक थी। सूफी सिद्ध-नाथ निर्गुण सगुण—सभी ने इसे एक मत से स्वीकार किया था। जायसी ने भी गुरु को जीवन सागर पार करा देने वाला कर्णधार कहा है। वह पाप के खारे समुद्र का नाविक है।

खार समुद्र पाप मोर मेला बोहित धरम लीन्ह कै चेला।
उन्ह मोर करिया पोढ़ कर गहा पायउँ तीर घाट जो अहा।
जो कहु ग्रहस होइ अपहारा तुरत बेगि सो पावइ पारा। (८ ४ ६)

जीवन में गुरु की स्थिति उनके मत में अनिवार्य है। गुरु को दीपक कहकर उन्होंने इस अनिवार्यता को प्रकट किया है। यह बिम्ब उनकी धार्मिकता व साम्प्रदायिकता को प्रकट करते हैं। गुरु की आवश्यकता धार्मिक या साम्प्रदायिक व्यक्ति को ही मान्य हो सकती है अन्य को नहीं।

जायसी बहुश्रुत थे। जीवन में सम्भवतः वह काफी घूम फिरे थे जिससे विभिन्न प्रकार के व्यक्तियों और विभिन्न प्रकार के जीवनों से उनका परिचय हो गया। मुसलमान होते हुए भी उन्होंने अनेक हिन्दू-कथायें दी हैं जो उनके बहुश्रुत होने का स्पष्ट प्रमाण देती हैं। हिन्दू जीवन के प्रति आदर भी इन लोक कथाओं से प्रकट होता है। फिर भी उनका मुसलमानी संस्कार इन कथाओं के बीच भी प्रकट होता रहा है। उनका मुसलमानी संस्कार कई स्थलों पर प्रकट हुआ है। प्रकृति का रूप वर्णन करते समय उन्होंने इस प्रकार का चित्र दिया है जिससे उनकी मुसलमानी संस्कृति की झलक मिलती है। बसंत वर्णन में कवि कहता है।

रितु पावस बरिसै पिउ पावा सावन भादौं अधिक सोहावा।
कोकिल बैन ऊँच चौबारा हरियर सब देखइ संसारा। (३२७ १ ५)

यहाँ 'हरियर सब देखई संसारा' उस दर्शक की अनुभूति को व्यक्त करता है जिसने कभी मुसलमानी परम्परा के अनुसार गवाक्षों (छतरी) आदि से वर्षा का आनन्द लिया हो और पृथ्वी को हरा भरा देखा हो। मुगल राज परिवारों में रानियाँ आदि वर्षा काल में इसी प्रकार गवाक्षों आदि में बैठ कर प्रकृति निरीक्षण करती थीं व 'हरियर सब देखई संसारा' की अनुभूति भी करती हैं। जायसी इस परम्परा से

अवश्य परिचित रहा होगा। यदि उसने इस तरह गवाक्ष में बैठकर वर्षाकाल की रमणी को न भी देखा होगा तो भी परम्परा से परिचित होने के कारण वह इसकी कल्पना कर सका है। यह मुसलमानी परम्परा उसने अपने हिन्दू-नायक-नायिका पर आरोपित की है जो उसके मुसलमानी संस्कारों के कारण है। इस संस्कार का स्पष्टीकरण पद्मावती के रूप-वर्णन में भी हुआ है। वेणी वर्णन करता हुआ कवि कहता है

मलयागिरि के पीठि सवारी बेनी नाग चढ़ा जनु कारी।

लहर देत पीठि जनु चढ़ा चीर ओढ़ावा कचुंकि मढ़ा। (११५ २३)

यहाँ झीने वस्त्र के नीचे ढंकी हुई वेणी को कवि ने कंचुकि मढ़ा सर्प कहा है झीने वस्त्र से ढकी होने से वह स्पष्ट नहीं दिख रही है। उसकी केवल रेखायें और रंग ही भासित हो रहे हैं जिससे कवि उसके लिए कैंचुली मढ़े सर्प की कल्पना करता है। यहाँ झीने वस्त्रों के नीचे वेणी का यह स्वरूप कवि ने मुगल दरबारों या राज्य परिवारों की नायिकाओं से लिया है। इस प्रकार के झीने वस्त्र पहनने का प्रचलन हिन्दू समाज में नहीं था। यह परम्परा मुगलों की ही थी। जायसी ने कभी इस प्रकार के रूप को देखा-सुना होगा जो कालान्तर में उनकी हिन्दू राज्य परिवार की नायिका के लिए कल्पित हो गया है। स्पष्टतः हिन्दू संस्कृति और हिन्दू कथा का ग्रहण करने पर भी उसका मुसलमानी संस्कार उसके काव्य में बिम्ब विधान के माध्यम से सर्वत्र प्रकट हुआ है।

जायसी जीवन में सौन्दर्य-द्रष्टा रहे हैं। सत्यं शिवं सुन्दरम् की उन्होंने अपने काव्य में उचित व्याख्या प्रस्तुत की है फिर भी बिम्बों का विश्लेषण करने पर प्रकट होता है कि जीवन में सुन्दरम् का तत्व उन्हें विशेष आकर्षित करता था। जीवन में सर्वत्र सुन्दर सुखकर और प्रिय रूप की कल्पना ही उन्होंने की है। इसी कारण उनके काव्य में बीभत्स और असुन्दर दृश्य कहीं मिलते ही नहीं। दुर्गन्धियों कठोर स्पर्शों कर्णकटु शब्दों का उल्लेख पूरे पद्मावत में कहीं नहीं हुआ है। उनमें बीभत्स और घृणास्पद वस्तुओं का एकदम अभाव है। सर्वत्र सुरुचि और प्रियता का भाव उनमें प्रधान रहा है। सुन्दर दृश्यों मोहक गन्धों मधुर स्वादों व कोमल स्पर्शों का ही उनमें उल्लेख है जिससे उनकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है।

जायसी के व्यक्तित्व की एक विशेषता उनकी गम्भीरता भी है। जीवन में ऊपरी दिखावे ओछेपन प्रदर्शन झूठ वाचालता आदि से वह कोसों दूर रहे होंगे। उनमें रहस्यवादी होने की एक गरिमा एक उच्चता है जिसने शृंगार के वृत्तान्तों में भी उन्हें ऊपर उठाए रखा है। उनके शृंगार के बिम्ब किसी भोक्ता के भोगलिप्त जीवन का संकेत नहीं देते वरन् वह उनके उदात्त और तटस्थ व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। यद्यपि शृंगार में उनका हृदय खूब रमा है परन्तु उसमें लिप्त नहीं हुआ है उनमें एक उच्चता है। एक बिम्ब के विवेचन से यह अधिक स्पष्ट हो सकती है। विरानीय ग्रस्त पद्मावती की व्याकुल स्थिति के लिए कवि ने राहु ग्रस्त चंद्र का बिम्ब

दिया है—

भोर जस धनि बैठि तरासी सहस करा होइ सुरुज गरासी ।
तेहि क जार गहन अस गही भै निरंग मुख जोति न रही ।(१२८ ४ ५)

सूर्य की किरणों (पति के तेज) ने उसका सारा रूप समाप्त कर दिया था और अब वह मलिन—ग्रहण ग्रस्त चांद की भांति हो गई थी । इसी परिस्थिति का रीतिकालीन बिम्ब लीजिये । यहाँ कभी ग्रहण ग्रस्त चन्द्र का उल्लेख नहीं है उसकी जगह मरगजी माल या फूल का उपमान आया है । माला या फूल और चन्द्र में जीवन से नैकट्य का अन्तर है । एक जीवन का भोग्य है दूसरा मनोरम । चन्द्र में सदैव एक दूरी बनी रहती है वह अप्राप्य है जबकि माला या फूल जीवन में सहज प्राप्य है । एक बिम्ब उदात्तता प्रकट करता है और दूसरा लिप्सा । यही उन कवियों के व्यक्तित्व का अन्तर है । श्रृंगार बिम्बों में भी जायसी का हृदय लिप्त नहीं है । उनके बिम्बों में रहस्यवादी कवि की गरिमा है । इसी गरिमा के कारण वह सदा उच्च और गम्भीर है । हास्य का कोई स्थल कोई उपकरण उनके काव्य में नहीं आया है जिससे प्रतीत होता है कि जीवन के अधिक गहन गम्भीर स्तरों पर उनकी दृष्टि थी अटपटापन या कौतुक या हास्य का कारण बन सके उनके व्यक्तित्व में था ही नहीं इसी कारण काव्य में भी उसका अभाव है ।

जायसी मूलतः रहस्यवादी कवि हैं । उनके काव्य में अध्यात्म के प्रेम का बड़ा प्रसार है । कथा के अतिरिक्त उन्होंने इसके अनेक संकेत भी दिये हैं । उनकी कथा की प्रतीकात्मकता इसके रहस्यवादी रूप को प्रकट करती है । साथ ही पद्मावती की विदा आदि के स्थल पर भी उन्होंने अध्यात्मिक के संकेत दिये हैं यद्यपि यह सांकेतिकता कथा की प्रतीकात्मकता में बाधक होती है परन्तु इससे कवि के रहस्यवादी रूप की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है ।

जायसी को रसायन शास्त्र व ज्योतिषशास्त्र में विशेष रुचि थी । सोने और सुहागे के उपमान इसको भलीभांति व्यक्त कर रहे हैं । पद्मावती के जन्म को उन्होंने रसायन की सलोनी प्रक्रिया के माध्यम से स्पष्ट किया है—

चंपावति जो रूप सत मांझा, पदुमावति कै जोति मन सांझा
भै चाहै असि कथा सलोनी मिटै न जाइ लिखी जस होनी ।(२० १ २)

रत्नसेन की योग जनित विरक्ति को प्रेम रूप कंचन में सीसा मिल जाने के रूपक से व्यंजित किया है जो रसायन प्रक्रिया से ही गृहीत है । ज्योतिष शास्त्र से सम्बन्धित बिम्ब भी उनमें पर्याप्त हैं । नक्षत्रों और तारों के बिम्ब उन्हें विशेष प्रिय रहे हैं जो ज्योतिष के प्रति कवि की जिज्ञासा का परिचय देते हैं ।

जायसी पर अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभाव थे वह मुख्यतः सूफी थे परन्तु नाथ सिद्ध साहित्य बौद्ध साहित्य आदि से भी उन्होंने पर्याप्त ग्रहण किया था । मसनवी शैली और प्रतीकात्मकता उन्होंने फारसी साहित्य के प्रभाव से ली है परन्तु सूर्य-चन्द्र शरीर आदि के रूपक नाथ और सिद्ध साहित्य के प्रभाव से प्रयुक्त किये

अवश्य परिचित रहा होगा। यदि उसने इस तरह भवास में बैठकर वर्षाकाल की पृथ्वी का न भी देखा होता तो भी परम्परा से परिचित होने के कारण वह इसकी कल्पना कर सका है। यह मुसलमानी परम्परा उसने अपने हिन्दू-नायक-नायिका पर आरोपित की है जो उसके मुसलमानी संस्कारों के कारण है। इस संस्कार का स्पष्टीकरण पद्मावती के रूप-वर्णन में भी हुआ है। वेणी वर्णन करता हुआ कवि कहता है

मलयागिरि के पीठि सवारी वेनी नाग चढ़ा जमु कारी।

लहरें देत पीठि जमु चढ़ा चीर ओढ़ावा कचुकि मढ़ा। (११५ २-३)

यहाँ झीने वस्त्र के नीचे ढंकी हुई वेणी को कवि ने कचुकि मढ़ा सर्प कहा है झीने वस्त्र से ढकी होने से वह स्पष्ट नहीं दिख रही है। उसकी केवल रेखायें और रंग ही भासित हो रहे हैं जिससे कवि उसके लिए केंचुली मढ़े सर्प की कल्पना करता है। यहाँ झीने वस्त्रों के नीचे वेणी का यह स्वरूप कवि ने मुगल दरबारों या राज्य परिवारों की नायिकाओं से लिया है। इस प्रकार के झीने वस्त्र पहनने का प्रचलन हिन्दू समाज में नहीं था। यह परम्परा मुगलों की ही थी। जायसी ने कभी इस प्रकार के रूप को देखा-सुना होगा जो कालान्तर में उनकी हिन्दू राज्य परिवार की नायिका के लिए कल्पित हो गया है। स्पष्टतः हिन्दू संस्कृति और हिन्दू कथा का ग्रहण करने पर भी उसका मुसलमानी संस्कार उसके काव्य में बिम्ब विधान के माध्यम से सर्वत्र प्रकट हुआ है।

जायसी जीवन में सौन्दर्य-द्रष्टा रहे हैं। सत्य शिव सुन्दरम् की उन्होंने अपने काव्य में उचित व्याख्या प्रस्तुत की है फिर भी बिम्बों का विश्लेषण करने पर प्रकट होता है कि जीवन में सुन्दरम् का तत्व उन्हें विशेष आकर्षित करता था। जीवन में सर्वत्र सुन्दर सुखकर और प्रिय रूप की कल्पना ही उन्होंने की है। इसी कारण उनके काव्य में वीभत्स और असुन्दर दृश्य कहीं मिलते ही नहीं। दुर्गन्धियों कठोर स्पर्शों कर्णकटु शब्दों का उल्लेख पूरे पद्मावत में कहीं नहीं हुआ है। उसमें वीभत्स और घृणास्पद वस्तुओं का एकदम अभाव है। सर्वत्र सुरुचि और प्रियता का भाव उसमें प्रधान रहा है। सुन्दर दृश्यों मोहक गन्धों मधुर स्वादों व कोमल स्पर्शों का ही उसमें उल्लेख है जिससे उनकी परिष्कृत रुचि का परिचय मिलता है।

जायसी के व्यक्तित्व की एक विशेषता उनकी गम्भीरता भी है। जीवन में ऊपरी दिखावे थोथा प्रदर्शन झूठ वाचालता आदि से वह कोसों दूर रहे होंगे। उनमें रहस्यवादी होने की एक गरिमा एक उच्चता है जिसने शृंगार के वृत्तान्तों में भी उन्हें ऊपर उठाए रखा है। उनके शृंगार के बिम्ब किसी भोक्ता के भोगलिप्त जीवन का संकेत नहीं देते वरन् वह उनके उदात्त और तटस्थ व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। यद्यपि शृंगार में उनका हृदय खूब रमा है परन्तु उसमें लिप्त नहीं हुआ है उनमें एक उच्चता है। एक बिम्ब के विवेचन से यह अधिक स्पष्ट हो सकती है। मिलनाप रात्र पद्मावती की व्याकुल स्थिति के लिए कवि ने ग्रहण ग्रस्त चन्द्र का बिम्ब

लिया है—

> चाँद जस धनि उँजि तरासो सहस करा होइ सुरुज गरासी।
>
> तेहि क चार गहन अस गही भै निरग मुख जोति न रही।(१२८ ४ ५)

सूर्य की किरणों (पति के वेग) ने उसका सारा रूप समाप्त कर दिया था और अब वह मलिन—ग्रहण ग्रस्त चंद्र की भांति हो गई थी। इसी परिस्थिति का रीतिकालीन बिम्ब लीजिये। यहाँ कभी ग्रहण ग्रस्त चन्द्र का उल्लेख नहीं है उसकी जगह मरगजी माल या फूल का उपमान पाया है। माला या फूल और चन्द्र में जीवन व नैकट्य का अन्तर है। एक जीवन का भोग्य है दूसरा अभोग्य। चन्द्र में सर्दव एक दूरी बनी रहती है वह अप्राप्य है जबकि माला या फूल जीवन में सहज प्राप्य है। एक बिम्ब उदात्तता प्रकट करता है और दूसरा लिप्सा। यही उन कवियों के व्यक्तित्व का अन्तर है। शृंगार बिम्बों में भी जायसी का हृदय लिप्त नहीं है। उनके बिम्बों में रहस्यवादी कवि की गरिमा है। इसी गरिमा के कारण वह सदा उच्च और गम्भीर है। हास्य का कोई स्थल कोई उपकरण उनके काव्य में नहीं आया है जिससे प्रतीत होता है कि जीवन के अधिक गहन गम्भीर स्तरों पर उनकी दृष्टि थी, चटपटापन या कौतुक या हास्य का कारण बन सके उनके व्यक्तित्व में था ही नहीं इसी कारण काव्य में भी उसका अभाव है।

जायसी प्रधानतः रहस्यवादी कवि हैं। उनके काव्य में अव्यक्त के प्रेम का बड़ा प्रसार है। कथा के अतिरिक्त उन्होंने इसके अनेक संकेत भी दिये हैं। उनकी कथा की प्रतीकात्मकता इसके रहस्यवादी रूप को प्रकट करती है। साथ ही पद्मावती की विदा आदि के स्थल पर भी उन्होंने आध्यात्मिकता के संकेत दिये हैं यद्यपि यह अभि[illegible] कथा की प्रतीकात्मकता में बाधक होती है परन्तु इससे कवि के [illegible] रूप की स्पष्ट व्याख्या हो जाती है।

जायसी को रसायन शास्त्र व ज्योतिषशास्त्र में विशेष रुचि थी। मान और सुहाग के उपमान इसको भलीभाँति व्यक्त कर देते हैं। पद्मावती के जन्म को उन्होंने रसायन की सलोनी प्रक्रिया के माध्यम से स्पष्ट किया है—

> पद्मावति जो रूप जस मोहा, पद्मावति के जोस मन छोहा।
>
> मैं चाहे अति कथा सलोनी मिटी न जाइ लिखो जस होनी।(१० [illegible])

रत्नसेन की जोग जनित विरक्ति को प्रेम रूप कञ्चन में [illegible] के रूपक से व्यंजित किया है जो रसायन प्रक्रिया से ही [illegible] है। [illegible] से सम्बन्धित बिम्ब भी उनमें पर्याप्त हैं। नखतों और तारों के [illegible] प्रिय रहे हैं जो ज्योतिष के प्रति कवि की विज्ञता का [illegible] है।

जायसी पर अनेक धार्मिक सम्प्रदायों के प्रभाव [illegible] परन्तु नाथ-सिद्ध साहित्य लोक साहित्य आदि में [illegible] मसनवी शैली और प्रतीकात्मकता उन्होंने [illegible] सूर्य-चन्द्र शरीर आदि के रूपक नाथ और सिद्ध [illegible]

थे। प्राचीन साहित्यिक परम्पराओं से भी उनका परिचय था। उन्होंने बहुत से प्राचीन उपमानों को उन्हीं के सदर्भ में ज्यों का त्यों प्रयुक्त किया है। इस प्रकार वह एक परम्परा से प्रभावित कवि थे परन्तु मौलिकता का अभाव भी उनमें न था। मसनवी शैली से उन्होंने प्रतीकात्मक पद्धति ली परन्तु उसका विकास अपने मौलिक ढंग पर किया। पद्मावती रत्नसेन की कहानी भी यद्यपि उन्होंने लोक साहित्य से ग्रहण की थी परन्तु बिम्बों के विशिष्टत्व के आधार पर उनकी पद्मावती एक अलौकिक पात्र बन गई है। लोक कथाओं में पद्मावती का यह रूप नहीं है। यह कवि की अपनी मौलिकता है। सिद्ध और नाथ साहित्य से गृहीत बिम्बों (चन्द्र-सूर्य) व लोक जीवन के बिम्बों (कैलाश आदि) में भी यह मौलिकता बराबर परिलक्षित होती है। इस प्रकार उनके बिम्ब विधान से स्पष्ट है कि वह परम्परागत होते हुए भी एकदम रूढ़िबद्ध नहीं है वरन् स्वच्छन्द है। परम्परा का प्रयोग उन्होंने मौलिक रूप से किया है जो उनकी बिम्ब योजना को और अधिक व्यापक बना देता है। जायसी के परम्परा ग्रस्त इन्द्र के रूपक में भी उनकी मौलिकता द्रष्टव्य है। यहाँ जायसी पर पड़े संस्कारों की छाया है पर उसका विकास भी नूतन है। उनके राजा के संस्कार प्राप्त व परम्परागत रूप इन्द्र को ही नहीं देखा है वरन् वहां उनकी कल्पना ने कलाश-स्वर्ग का एक सम्पूर्ण चित्र निर्मित कर लिया है जहां रानियां अप्सरायें हैं राजमहल स्वर्ग की अट्टालिकाएँ हैं हाथी एरावत है आदि आदि। यह सब कल्पना कवि की मौलिक है। इस प्रकार स्पष्ट है कि यद्यपि कवि परम्पराओं से प्रभावित है पर उसके कारण उसकी प्रतिभा कहीं कुण्ठित नहीं हुई है परम्पराओं का सम्यक प्रयोग करना कवि जानता है।

बिम्बों के अध्ययन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि जीवन में कवि की पर्याप्त रुचि थी। उसने जीवन के प्रत्येक पहलू को बड़ी निकटता से देखा था। सामान्यतः प्रकृति से उसे मानवीय जीवन ने अधिक आकृष्ट किया था। प्रकृति में उसे सूर्योदय और सूर्यास्त के दृश्य विशेष प्रिय थे। आकाश की गहन नीलिमा तारा गणों आदि ने भी कवि को प्रभावित किया था। वनस्पतियों में लताओं और पुष्पों में उसकी विशेष रुचि थी। पक्षियों के कलरव से गूंजती लतायें उसे विशेष रुचिकर होती थी। सरोवर ने भी उसे बहुत आकर्षित किया है। उसका प्रत्येक रूप उसे प्रिय है। ग्रीष्म में विदीर्ण तल वर्षा से सुरभित मिट्टी जलपूरित रूप और तट पर क्रीड़ा करते पक्षियों का स्वरूप—सभी उसे प्रिय हैं। मणियों में उसकी रुचि थी हीरा मोती मूगा आदि उसे रंग और मूल्य के आधार पर आकृष्ट करते हैं। पक्षियों में बलपक्षी उसे विशेष प्रिय थे। सारस कौड़िल्ला हंस आदि उसकी दृष्टि को सदैव आकर्षित करते हैं। पशुओं में उसकी रुचि कम थी पर जंतुओं में उसकी रुचि थी। सर्प का उल्लेख उसने बार-बार किया है। खेलकूदों में वह शतरंज को विशेष पसंद करता था। सम्भवत वह शतरंज के खेल का शौकीन रहा हो अन्य किसी खेलकूद में उसकी विशेष रुचि नहीं है।

इस प्रकार स्पष्टतः जीवन को उसने पूरी समग्रता के साथ देखा था उसका प्रत्येक सम्भावित पहलू उसके काव्य में आ गया है।

समष्टि में यह है बिम्ब विधान के माध्यम से जायसी के व्यक्तित्व का स्वरूप।

अध्याय ६

उपसंहार

काव्य एक अनिर्वचनीय सृष्टि है। परन्तु उसमें किस तत्व में अनिर्वचनीयता अमरता और उदात्तता निहित है ? इस प्रश्न की सार्थकता ने अनेक वादों मतों या मान्यताओं आदि को जन्म दिया। भारतीय हिन्दी और संस्कृत के काव्य समीक्षकों ने पाठक की दृष्टि से इस पर विचार किया और सौन्दर्य अभिव्यक्ति प्रभाव और जीवन मीमांसा को काव्य का प्रमुख तत्व स्वीकार किया। सौन्दर्य के अन्तर्गत अलंकारवादी रीतिवादी वक्रोक्तिवादी और औचित्यवादी मान्यताओं को रख सकते हैं। सौन्दर्य को इन सभी ने बाह्य सौन्दर्य के रूप में देखा है। केवल औचित्य सम्प्रदाय ही व्यापक सौन्दर्य का बोध कराने में सफल हो सका है। अभिव्यक्ति के अन्तर्गत हम ध्वनि सिद्धान्त को रख सकते हैं। उन्होंने ध्वनि के रूप में वस्तुतः काव्य के बाह्य पक्ष-अभिव्यक्ति अथवा भाषा का अध्ययन किया है परन्तु भाव से भी यह अनिवार्य रूप से सम्बद्ध है। प्रभाव के अन्तर्गत हम रस सम्प्रदाय की चर्चा कर सकते हैं। उसमें काव्यानन्द में पाठक की स्थिति को अनिवार्यता प्रदान कर रस स्थिति की सम्भावना प्रस्तुत की गई है। वस्तुतः रस सम्प्रदाय काव्य के प्रभाव का ही विश्लेषण करता है। जीवन मीमांसा को आज की संघर्षशील सामाजिक और वैयक्तिक परिस्थितियों ने काव्य-तत्व के रूप में स्वीकृत कराया है। इसमें हम प्रगतिवादी और प्रयोगवादी मान्यताओं को रख सकते हैं। भारतीय दृष्टि से स्वीकृत यह काव्य तत्व यद्यपि स्पष्ट रूप से बिम्ब की उपयोगिता और अनिवार्यता का उल्लेख नहीं करते परन्तु बिम्ब का सम्बन्ध प्रत्येक मान्यता से रहा है और व्यापक रूप से स्वीकृत रस सिद्धान्त के मूल में ही बिम्ब की मान्यता रही है। इस प्रकार बिम्ब की अनिवार्यता के प्रच्छन्न उल्लेख ही यहाँ मिल सकते हैं। पाश्चात्य समीक्षा में काव्य के चार प्रमुख तत्व—भाव, विचार, कल्पना और भाषा स्वीकार किये गये हैं। जिनको तीन विभागों में रखा जा सकता है भाव-विचार, कल्पना व भाषा। पाश्चात्य समीक्षकों की मान्यता चाहे वह भाववादी रही हो या अभिव्यक्ति पर बल देती हो कल्पना और बिम्ब विधान के महत्व से अवगत है। वहाँ सदैव कल्पना और बिम्ब विधान को काव्य का अनिवार्य तत्व स्वीकृत किया गया है। बिम्ब विधान की चर्चा इसी कारण सर्वप्रथम पाश्चात्य समीक्षा में हुई। उन्होंने

स्पष्टतः बिम्ब की अनिवार्यता को स्वीकार किया है। यद्यपि भारतीय और पाश्चात्य दृष्टि में पर्याप्त अन्तर रहा है परन्तु बिम्ब की अनिवार्यता दोनों में असंदिग्ध है। वस्तुतः यही एक ऐसा तत्व है जिसे देश, काल, समय और जाति की सीमाओं से परे काव्य का एकमात्र प्राण तत्व कहा जा सकता है।

इस रूप में बिम्ब काव्य का प्राण है उसका महत्व निर्विवाद है। बिम्ब शब्द का प्रयोग बड़े व्यापक रूप में होता है। मनोविज्ञान और अध्यात्मशास्त्र में होता है। मनोविज्ञान और अध्यात्मशास्त्र में इस पर विशेष चर्चा उपलब्ध है। परन्तु उसका रूप साहित्यिक बिम्ब से भिन्न है। साहित्यिक बिम्ब कवि-कल्पना का एक महान् निर्माण है। इसी कारण प्रत्येक युग के कवियों आलोचकों आदि ने इसके महत्व को स्वीकार किया है। बिम्ब के स्वरूप के विषय में विद्वानों में न्यूनाधिक मतभेद रहा है। प्रायः सबने उसे पूर्व अनुभूतियों एवं काल्पनिक भावनाओं का मूर्तीकरण माना है जिसमें ऐन्द्रियता अपेक्षित है। वासना, संवेग और भावना इसकी अन्य भाव स्वरूपायें हैं। यह अलंकारों मुहावरों उपमानों या इन सबसे पृथक होकर भी अभिव्यक्त हो सकता है। बिम्ब में कतिपय गुण भी अपेक्षित हैं। उसमें भाव को उत्तेजित करने की शक्ति तीव्र करने की शक्ति नवीनता परिचितता उर्वरता और औचित्य अपेक्षित हैं। इन्हीं गुणों के आधार पर उसका काव्य में महत्वपूर्ण स्थान है। बिम्ब काव्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण और उपयोगी तत्व है। उसकी उपयोगिता अथवा उसके कार्य को हम कई रूपों में देख सकते हैं। वह काव्य में सहजतात्मकता लाता है उसका अलंकरण करता है प्रभविष्णुता लाता है उसे प्राणवान बनाता है उसमें क्रमबद्धता लाता है साथ ही बाह्य वस्तु जगत के साथ कवि व पाठक का भावनात्मक सम्बन्ध स्थापित कराता है अमूर्त एवं मर्मस्पर्शी भावों को अभिव्यक्ति देता है। इस रूप में उसकी महत्ता सर्वस्वीकृत है। यहां बिम्ब की निर्माण प्रक्रिया पर दृष्टि डालना भी अनिवार्य एवं स्वाभाविक है। बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया वस्तुतः काव्य निर्माण की प्रक्रिया है। वह कवि के मानसिक पुनर्निर्माण की कहानी है। वह कवि के चेतन और अचेतन मन का निर्माण है। आचार्य शुक्ल ने बिम्ब निर्माण के तीन सोपानों का संकेत किया है वह है प्रत्यक्ष रूप विधान स्मृत रूप विधान और कल्पित रूप विधान। इन्हीं को हम प्रत्यक्ष बिम्ब स्मृत-बिम्ब और कल्पित बिम्ब कह सकते हैं। कल्पित बिम्ब ही साहित्यिक बिम्ब है। प्रत्यक्ष और स्मृति इसके विधान के सोपान हैं। साहित्यिक बिम्ब की भाषा में स्थिति भी चिन्तनीय है। बिम्ब वाक्य वाक्य अथवा वाक्यांशों सभी से प्राप्त हो सकता है। अकेले एक क्रिया संज्ञा या विशेषण भी बिम्ब निर्माण में समर्थ होते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि साहित्यिक बिम्ब कल्पना का निर्माण होते हुए भी भाषा के आधार की आवश्यकता रखते हैं। वस्तुतः वह भाषा और भाव के बीच की स्थिति है। जिसे हम व्यापक रूप में कल्पना कह सकते

है। कल्पना ही बिम्ब का निर्माण करती है।

बिम्ब निर्माण कल्पना का एक प्रमुख कार्य है परन्तु इसके इतर भी यह अनेक कार्य करती है उसका रूप बड़ा व्यापक है। कल्पना के विषय में भारतीय साहित्यशास्त्री मौन रहे हैं। राजशेखर ने कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा में ही उसे समाहित कर दिया है। संस्कृत समीक्षा में कल्पना पर स्वतंत्र विचारों का अभाव है। कल्पना को पाश्चात्य विद्वानों ने विशेष महत्व दिया है। वह एक ऐसी सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि है जो सत्य-ग्राह्य और आन्तरिकता का प्रकाशन करती है और काव्य के भावोद्रेक में सहायक होकर नूतन सृष्टि का निर्माण करती है। पाश्चात्य आलोचकों ने कल्पना के कई भेद किए हैं कालरिज ने उसे प्राथमिक और प्रतिनिधि कल्पना के दो भेदों में विभाजित किया है। इसके अतिरिक्त कल्पना का एक अन्य भेद भी है वह है विकल्पना। विकल्पना कल्पना का ही एक अंश है जिसमें गम्भीरता संयम संयोजन और नियंत्रण कम रहता है। काव्य में कल्पना और विकल्पना दोनों ही बिम्ब निर्माण कर सकती हैं। काव्य में कल्पना के कई कार्य हैं इसका उल्लेख किया जा चुका है। कल्पना के ये कार्य काव्य की कथा चरित्र और अभिव्यक्ति से सम्बन्धित हैं। यहाँ हम उसके अभिव्यक्ति में प्रकट होने वाले रूप की ही चर्चा करेंगे। अभिव्यक्ति में वह तीन रूपों में प्रकट होती है वह है बिम्ब प्रतीक और उपमान। यद्यपि यह तीनों कल्पना के ही निर्माण हैं परन्तु समानताएँ होने के साथ-साथ इनमें अनेक असमानताएँ भी हैं। प्रतीक काव्य में विशिष्ट स्थान रखता है। इसका क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है। साहित्यिक प्रतीक के विषय में प्रायः सभी विद्वानों ने कुछ न कुछ लिखा है। प्रतीक किसी अदृश्य या अव्यक्त सत्ता के दृश्य और व्यक्त रूप होते हैं। यह कार्य उपमान और बिम्ब भी कर सकते हैं वस्तुतः यह उपमा या रूपक के संक्षिप्त संस्करण ही हैं। काव्य में प्रतीकों के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं वह परम्परागत और स्वच्छन्द दोनों हो सकते हैं। परन्तु दोनों रूपों में वह अव्यक्त और अमूर्त को प्रतिविधान के द्वारा व्यक्त और मूर्त बनाते हैं। इस रूप में वह बिम्ब के बहुत निकट आ जाते हैं। वस्तुतः प्रतीक मूल में बिम्ब ही होते हैं आवृत्ति और समय के साथ साथ वह रूढ़ हो जाने पर प्रतीक बन जाते हैं। उनका जन्म बिम्ब से ही होता है परन्तु फिर भी वह एक नहीं हैं उनमें कुछ मौलिक अन्तर हैं। प्रतीक जातीय चेतना द्वारा निर्मित होते हैं जबकि बिम्ब वैयक्तिक चेतना का निर्माण है। प्रतीक का उद्देश्य प्रतिनिधित्व है जबकि बिम्ब का उद्देश्य मूर्तीकरण है। इस प्रकार एक कल्पना के निर्माण होते हुए भी दोनों भिन्न हैं। कल्पना का दूसरा प्रमुख निर्माण है उपमान। उपमान को हम समानता का सहज प्रकाशन कह सकते हैं। साम्य वैषम्य और प्रतिभाव के रूप में अप्रस्तुत रूप से जो भी हमारे सामने आया जाता है उसे हम उपमान कह सकते हैं मूर्तता और ऐन्द्रियता उपमानों में भी हो सकती है परन्तु समस्त उपमान बिम्ब नहीं हो सकते। उपमान का क्षेत्र बिम्ब का क्षेत्र

नहीं है न ही बिम्ब उपमान है। यद्यपि दोनों में पर्याप्त साम्य है परन्तु कुछ स्पष्ट अन्तर भी है। उनमें प्रस्तुत-अप्रस्तुत का और भावगत अन्तर है। उपमानों के चार प्रयाम् मूर्त के लिए अमूर्त अमूर्त के लिए मूर्त मूर्त के लिए मूर्त और अमूर्त के लिए अमूर्त स्वीकृत हैं परन्तु इनमें सर्वत्र बिम्ब विधान नहीं होता। इसी प्रकार रूप, गुण धर्म प्रभाव और काल्पनिक साम्य में भी सर्वत्र बिम्ब विधान नहीं होता। बिम्ब ऐन्द्रियता और भाव पर आधारित है। उपमान योजना जहां भी इन गुणों से युक्त होती है वहीं बिम्ब विधान हो जाता है। इस रूप में स्पष्टत पर्याप्त साम्य रखते हुए भी उपमान और बिम्बों को एक नहीं कहा जा सकता। उपमान रूपक आदि अलंकारों में यद्यपि बिम्ब की सम्भावना रहती है। परन्तु बिम्ब विधान उनकी अनिवार्य शर्त नहीं है। इस प्रकार स्पष्ट है कि कल्पना के अनेक रूपों में पर्याप्त समानता और भिन्नता है। यद्यपि बिम्ब का क्षेत्र बहुत व्यापक है फिर भी वह कल्पना के सभी रूपों से पृथक है और विशिष्ट है।

बिम्ब विधान का भाव के साथ भी अनिवार्य सम्बन्ध है। भाव वस्तुत काव्य का प्रधान तत्व है। भाव की अभिव्यक्ति ही बिम्ब का जन्म देती है। भावहीन बिम्ब की कल्पना ही असम्भव है। भाव की अस्पष्टता को भी बिम्ब ही रूपायित करता है। भाव की प्रबलता और भाव की प्रेषणीयता की रक्षा भी बिम्ब द्वारा ही होती है। भाव की तन्मयता ही बिम्ब की जन्मदात्री होती है। भावात्मक तन्मयता की स्थिति में ही कवि बिम्बविधान करता है। इसलिए बिम्ब विधान कवि के हृदय के निकट तम भाव अर्थात् अकुंठित भाव का परिचय भी देता है। वस्तुत बिम्ब और भाव का सम्बन्ध अंगअंगी का सम्बन्ध है। काव्य में दोनों अन्योन्याश्रित हैं। भाव की चरम परिणति रस में भी बिम्ब विधान का महत्वपूर्ण स्थान है। रस सामग्री-विभाव अनु भाव और व्यभिचारी भाव के आधार पर बिम्ब की आवश्यकता को स्वीकार किया जा सकता है। रस के पूर्ण परिपाक का कोई भी स्थल ऐसा नहीं हो सकता जहां बिम्ब विधान न हो। इस प्रकार रस और भाव म अभिव्यक्ति के कारण बिम्ब की अनिवार्यता को स्वीकार किया जा सकता है। बिम्ब भाव और भाषा के बीच की शृंखला है। भाव से जन्म लेकर वह भाषा में अभिव्यक्त होता है। बिम्ब भाषा में भी कुछ विशेषताएं ला देता है। ये विशेषताएं हैं रूपकात्मकता चमत्कार ह्रीनता व्यंजकता और सरसता। इस प्रकार बिम्ब म भाव और भाषा के सम्बन्ध का स्पष्टीकरण हो जाता है।

जायसी का बिम्ब विधान हमारा प्रमुख विषय है। बिम्ब के सम्बन्ध में इन मूलभूत तत्वों को जानकर अब हम जायसी के बिम्ब विधान का परीक्षण करेंगे। जायसी मध्यकाल के श्रेष्ठ कवियों में से हैं। उनकी भाषा बिम्ब के प्रयोगों से ओतप्रोत है। उनके पद्मावत का आधे से अधिक भाग बिम्बात्मक भाषा में अभिव्यक्त हुआ है। बिम्ब के प्रति उनमें विशेष रुचि है। सम्भवत काव्य की बिम्बात्मकता में वह

परिचित थे इसलिए स्थल स्थल पर उन्होंने काव्य के विभिन्न् अंगों के उल्लेख किये हैं। कवि की बिम्ब योजना का विश्लेषण-विवेचन कई आधारों पर किया जा सकता है। यहाँ हम सर्वप्रथम उसकी बिम्ब योजना का विभिन्न आधारों पर वर्गीकरण करेंगे।

वर्गीकरण का प्रमुख आधार है उपात्त वस्तु। अर्थात् वह वस्तुएं जिनको कवि बिम्बविधान के लिए लाया है। वस्तुतः कवि की उपात्त वस्तु उसके जीवन का मुखर प्रतिबिम्ब होती है उसकी परिस्थितियाँ रहन सहन जीवन स्तर रुचि रुझान संस्कार सब उसकी उपात्त वस्तु से प्रकट हो जाते हैं। उपात्त वस्तु के दो प्रमुख भेद हैं—प्रकृति और प्रकृतीतर जीवन। जायसी ने जीवन से अधिक प्रकृति से बिम्ब लिए हैं। प्रकृति में जलीय आकाशीय वनस्पतीय पर्वतीय खनिज समय और मौसम जीव-जन्तु सभी से सम्बन्धित बिम्ब उनमें उपलब्ध हैं। उनके आकाशीय बिम्बों की बड़ी संख्या और मार्मिकता एक विस्मय की वस्तु है। जीवन में लोक जीवन मानव जीवन क्रियाएं वेशभूषा खानपान अस्त्र शस्त्र—अर्थात् जीवन के सभी सम्भावित पहलुओं पर उनकी दृष्टि गई है। वर्गीकरण का दूसरा आधार है संवेदना जो कवि की संवेदनात्मकता का परिचय देती है। संवेदनाओं में हम दृष्टि, स्पर्श घ्राण श्रवण और स्वाद परक संवेद मार्गों को ले सकते हैं। जायसी के दृष्टि परक बिम्ब उसकी विशिष्ट संवेदनात्मकता का संकेत देते हैं। वर्गीकरण का तीसरा आधार है भाव। बिम्ब की सार्थकता मार्मिकता और व्यंजना उस भाव के प्रति कवि की विशेष रागात्मकता की परिचायक होती है। जायसी के भावों में हम रति (संयोग वियोग) उत्साह क्रोध भय आश्चर्य शोक घृणा और निर्वेद को ले सकते हैं। हास्य का उल्लेख जायसी में नहीं है। इनमें रति भाव और विशेषतः वियोग पक्ष में प्रस्तुत बिम्ब विधान ही अधिक और मार्मिक है जो उनके प्रति कवि की विशेष रागात्मकता का परिचय देता है। वर्गीकरण का चौथा आधार है बिम्बों की प्रकृति। कवि बिम्बों का प्रयोग कई कारणों से करता है। बिम्बों के नाना रूप काव्य में मिल सकते हैं। किन्हीं कवियों में मूर्तता का आग्रह विशेष रहता है किसी में अमूर्तता का तो कोई अमूर्त का मूर्तीकरण अपनी शैली बना लेता है। जायसी की भी यही शैली है यद्यपि उसमें मूर्तता का आग्रह भी है पर अमूर्त बिम्ब विधान की प्रवृत्ति नहीं के बराबर है। वर्गीकरण का अन्तिम आधार है अभिव्यक्ति के रूप अर्थात् भाषा में बिम्ब किस रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। अभिव्यक्ति के प्रमुख रूप ये हो सकते हैं—अभिधा लक्षणा अलंकार मानवीकरण, मुहावरे व लोकोक्तियां और प्रतीक। इनमें जायसी ने प्राय सभी रूपों का सफल प्रयोग किया है। मानवीकरण की प्रवृत्ति अवश्य उनमें कम है। इस प्रकार वर्गीकरण से जायसी की बिम्ब योजना के क्षेत्रों और जायसी का एक अध्ययन हो सकता है।

इसके अतिरिक्त अन्य अनेक आधारों पर भी कवि की बिम्ब योजना का परीक्षण हो सकता है। बिम्ब की सफलता असफलता प्रभाव परम्परा आदि इसके द्वारा ज्ञात हो जाती है। जायसी के प्राय सभी बिम्ब सफल हैं क्योंकि वे अनेक गुणों से पुष्ट हैं। उनकी सफलता के ये गुण हैं यथार्थकता तीव्रता नवीनता, परिचितता

व्यंजकता औचित्य कथा में योगदान और भावों का प्रकाशन । परन्तु कहीं कहीं बिम्ब योजना असफल भी है जिसका कारण बिम्ब विधान के कतिपय दोष हैं ये दोष हैं भाव अनुपकारता क्लिष्टता सधर्म की उपेक्षा अति नवीनता बौद्धिकता और अनौचित्य । कवि एक सामाजिक प्राणी होता है । अपने समाज में प्रचलित परम्पराओं और इतर साहित्यिक परम्पराओं से वह किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित रहता है । परन्तु साथ ही वह नवीन कल्पना दृष्टि से युक्त भी होता है । इस कारण उसमें परम्परागत और नवीन दोनों प्रकार की उपमान योजना प्राप्त हो जाती है । जायसी समसामयिक अथवा पूर्ववर्ती सिद्ध और नाथ साहित्य की परम्पराओं प्रेमाख्यानक ग्रंथों की परम्परा फारसी मसनवियों की परम्परा व साथ ही प्रचलित साहित्यिक परम्पराओं से न्यूनाधिक रूप से प्रभावित था । फलतः उसमें इन सभी परम्पराओं से गृहीत उपमानों की योजना प्राप्त है । किसी का विशेष प्रभाव उस पर दृष्टिगोचर नहीं होता परन्तु प्रत्येक परंपरा से भावों के साथ-साथ कुछ उपमानों का ग्रहण भी उसने कर लिया है । जायसी परंपरा से बहुत प्रभावित नहीं हैं वरन् उनसे दूर और अछूता है और उत्कृष्ट कल्पना दृष्टि से समन्वित है इस कारण उसमें नवीन उपमानों की योजना बहुत अधिक हुई है । उसने अनेक नवीन उपकरणों को सादृश्य के लिए प्रस्तुत किया है जिनमे लोक जीवन से गृहीत उपकरणों का महत्वपूर्ण स्थान है । साथ साथ ही उसने प्राचीन उपकरणों में नये प्रयोग करके उनसे नवीन भाव व्यंजना कराकर भी नवीनता की सृष्टि की है ।

बिम्बों के वर्गीकरण और परीक्षण के उपरान्त जायसी के भावों और बिम्ब के सम्बन्ध का विचार आवश्यक है क्योंकि भाव या विचार बिम्ब की एक अनिवार्य आवश्यकतायें हैं । कवि विशिष्ट स्थलों पर ही बिम्बों का प्रयोग करता है सब और सर्वत्र नहीं जिसका कारण होता है उस स्थल के भाव विचार या वस्तु के प्रति कवि की रागात्मकता जो उसके जीवन का संकेत देती है । जायसी ने संयोग वियोग सौन्दर्य आदि के विशेष स्थलों पर ही बिम्ब विधान किया है सब और सर्वत्र नहीं । उनके बिम्ब विधान के स्थल उनके प्रेम पीर के ज्ञाता व सूफी साधक और सहृदय कवि के रूप को स्पष्ट प्रदर्शित करते हैं । जायसी को अनेक रूपक विशेष प्रिय हैं उनका उसने बार-बार उन्हीं विचारों के सम्बन्ध में उल्लेख किया है । और अपनी उत्कृष्ट कल्पना से उनका व्यापक रूप प्रस्तुत किया है जो विचारों अथवा भावों से भी परिलक्ष है । ऐसे चित्र हैं चन्द्र-सूर्य ज्योति कमल हंस सरोवर आदि के । जो कवि की सूक्ष्म परिवेक्षण में कुशल कल्पना के साथ-साथ उसकी बौद्धिकता भावकता एवं आध्यात्मिकता का स्पष्ट परिचय देते हैं । ये परम्परित चित्र जायसी के विशेष ज्ञान और विशिष्ट कल्पना दृष्टि के परिचायक हैं । बिम्बों द्वारा कवि जायसी ने अपने विचारों भावों और सिद्धान्तों का प्रकाशन भी किया है । भावों आदि के प्रकाशक यह बिम्ब उनके प्रति कवि की विशेष दृष्टि को प्रकट करते हैं । उनके उस रूप को स्पष्ट कर देते हैं जिसकी कल्पना

कवि ने की है। जायसी के बिम्बों के माध्यम से उनके गुरु, प्रेम, संसार, ईश्वर, जीव ज्ञान, द्रव्य आदि के प्रति विचारों का अध्ययन किया गया है और जायसी के दृष्टिकोण को स्पष्ट किया गया है। बिम्ब एवं भावों के सम्बन्ध विचार का अगला सोपान है पद्मावत की सांकेतिकता और पद्मावत का बिम्ब विधान। यहाँ पद्मावत के पात्रों के लिए प्रयुक्त बिम्ब विधान के आधार पर उनके प्रति जायसी के दृष्टिकोण और उनकी सांकेतिकता को परखने का प्रयास किया गया है। उनके पात्रों-पद्मावती रत्नसेन नागमती राघव चेतन अलाउद्दीन आदि की सांकेतिकता किन्हीं अंशों में उनके बिम्बों द्वारा सिद्ध हो जाती है फिर भी उसकी अवस्था संदिग्ध है। सम्भवतः सांकेतिकता की यह कल्पना कवि के मानस में थी किन्तु वह किन्हीं कारणों से पूरा नहीं कर पाया है। जायसी के विचारों भावों एवं बिम्ब का सम्बन्ध इस प्रतीकात्मकता का कोई विशेष निष्कर्ष नहीं निकाल सका है।

इस अध्ययन से जायसी के बिम्ब विधान की उत्कृष्टता प्रकट हो जाती है। वस्तुतः मध्यकालीन सभी कवियों में उनका बिम्ब विधान विशिष्ट है। मध्यकाल के प्रमुख कवि हैं कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी, देव, मतिराम और घनानंद। इन्हीं की तुलना में जायसी के बिम्ब विधान का विवेचन किया गया है। तुलना के आधार हैं—बिम्बों की उपादान वस्तु, बिम्बगत संवेदना, बिम्ब और भाव, अमूर्त तथा मूर्त बिम्ब विधान व बिम्बगत गुण। इन सभी आधारों पर जायसी का बिम्ब विधान उसके व्यक्तित्व के अनुसार सभी मध्यकालीन कवियों से पृथक प्रतीत होता है। उसका जीवन उसके बिम्ब विधान में निहित है। जिसके कारण एक युग के कवि होने पर भी सूर, तुलसी, बिहारी, घनानंद आदि से उसका बिम्ब विधान विशिष्ट प्रकार का है।

इस प्रकार जायसी के बिम्ब विधान से हम उसके स्वरूप अर्थात् व्यक्तित्व की भी कल्पना कर सकते हैं। अन्तिम अध्याय का दूसरा भाग जायसी के व्यक्तित्व को स्पष्ट करने का एक प्रयास है।

सहायक पुस्तक-सूची

हिन्दी ग्रन्थ

१	अंचल	समाज और साहित्य
२	अज्ञेय स० ही० वात्स्यायन	तार सप्तक (सम्पादित)
३		दूसरा सप्तक (स०)
४		काव्य संग्रह (स०)
५		चिन्ता
६		हरी घास पर क्षण भर
७		अरी ओ करुणा प्रभामय
८		त्रिशंकु
९	अग्रवाल डा० वासुदेव शरण	पद्मावत मूल और संजीवनी टीका (सं
१०		कल्पायन (सं०)
११	उपाध्याय बलदेव प्रसाद	भारतीय साहित्य शास्त्र
१२	कुलश्रेष्ठ डा० कमल	हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्य
१३		मलिक मोहम्मद जायसी
१४	केशव	रामचन्द्रिका
१५	गुप्त माता प्रसाद	पद्मावत (सं०)
१६	,,	मधुमालती (सं०)
१७	गुप्त मैथिलीशरण	साकेत
१८	'गुप्त' लीलाधर	पाश्चात्य आलोचना के सिद्धांत
१९	गुप्ता डा० आशा	खड़ी बोली काव्य में अभिव्यंजना शिल्प
२०	गुप्ता डा० सुरेश	आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धांत
२१	चतुर्वेदी परशुराम	सूफी काव्य संग्रह (सं०)
२२	,,	उत्तर भारत की सन्त परम्परा
२३	चतुर्वेदी माखनलाल	साहित्य देवता
२४	जयदेव	सूफी महाकवि जायसी

२५ तिवारी रामपूजन — सूफी मत साधना और साहित्य

२६ तुलसी — रामचरित मानस

२७ दास श्यामसुन्दर — कबीर ग्रन्थावली (सं०)

२८ — साहित्यालोचन

२९ दिनकर — काव्य की भूमिका

३० — मिट्टी की ओर

३१ — चक्रवाल

३२ — उर्वशी

३३ — अर्ध नारीश्वर

३४ द्विवेदी महावीर प्रसाद — प्राचीन पण्डित और कवि

३५ — अशोक के फूल

३६ द्विवेदी हजारी प्रसाद — सिद्धों और नाथों की वानिया (सं०)

३७ „ — कबीर

३८ दीक्षित डा० आनन्द प्रकाश — रस सिद्धांत स्वरूप-विश्लेषण

३९ नगेन्द्र — भारतीय काव्यशास्त्र की परम्परा

४० „ — रीतिकाव्य की भूमिका

४१ नरपति नाल्ह — बीसलदेव रासो

४२ नारायण दास — छिताई वार्ता (सं०)

४३ निराला — अपरा

४४ — परिमल

४५ नीरज — दर्द दिया है।

४६ — बादर बरस गयो

४७ „ — गीत भी अगीत भी

४८ „ — ग्राम गीत

४९ पंत सुमित्रानन्दन — पल्लव

५० — गुञ्जन

५१ — आधुनिक कवि भाग—२

५२ प्रसाद जयशंकर — कामायनी

५३ — आँसू

५४ प्रसाद विश्वनाथ — घनानन्द कवित्त (सं०)

५५ पाठक, शिवसहाय — पद्मावत का काव्य सौन्दर्य

५६ पांडेय चन्द्रबली — तसव्वुफ और सूफीमत

५७	फिराक गोरखपुरी	उर्दू कविता पर बात चीत
५८	बड़थ्वाल पीताम्बरदत्त	Nirguna shcool of Hindi poetry
५९		गोरखबानी
६०	भारती धर्मवीर	प्रगतिवाद एक समीक्षा
६१		सिद्ध साहित्य
६२	माथुर गिरिजा कुमार	धूप के धान
६३	मिश्र पण्डित रामदहिन	काव्य में अप्रस्तुत योजना
६४	रत्नाकर, जगन्नाथदास	बिहारी रत्नाकर
६५		उद्धव-शतक
६६	वर्मा भगवती चरण	भैंसा-गाड़ी
६७	वर्मा महादेवी	क्षणदा
६८	वर्मा रामकुमार	साहित्य शास्त्र
६९	"	आधुनिक कवि भाग—१
७०	वर्मा लक्ष्मीकांत	नई कविता के प्रतिमान
७१	वर्मा सत्य जीवन	चित्रावली (स०)
७२	वियोगीहरि	विनय पत्रिका (सं०)
७३	वर्मा हरिद्वारीलाल	काव्य और कला
७४	शर्मा डा० ओम प्रकाश	हिन्दी अलंकार साहित्य
७५	शुक्ल रामचन्द्र	गोस्वामी तुलसीदास
७६		चिन्तामणि
७७		रस मीमांसा
७८	"	भ्रमर गीत की भूमिका (सं०)
७९	,	जायसी ग्रन्थावली (सं०)
८०	"	त्रिवेणी
८१		गीतावली (सं०)
८२	,	हिन्दी साहित्य का इतिहास
८३	शुक्ल डा० सरला	हिन्दी सूफी कवि और काव्य (जायसी के पूर्ववर्ती)
८४	सत्येन्द्र	कला कल्पना और साहित्य
८५	सांकृत्यायन राहुल	आधुनिक काव्य धारा
८६	सिन्हा डा० सावित्री	ब्रजभाषा के कवियों का अभिव्यंजना शिल्प

८७	सिंह, केदारनाथ	कल्पना और छायावाद
८८	सिंह, रामलाल	समीक्षा दर्शन
८९	सिंह शम्भूनाथ	छायावाद युग
९०	सुमन	मान धूमर
९१	हरिऔध	रस कलश
९२	श्रीवास्तव डा० हरिकान्त	भारतीय प्रेमाख्यानक काव्य
९३	त्रिपाठी डा० जगदीश नारायण	आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान
९४	त्रिपाठी रामनरेश	कविता कौमुदी

पत्रिकायें

१ कल्पना
२ अवन्तिका
३ नई कविता
४ हिन्दी साहित्य कोष

उर्दू ग्रन्थ

५	देवल रानी खिज्र खां	खुसरो
६	मतला अल अनवार	
७	शिरर अल औलिया	

BIBLOGRAPHY

1	Armstrong E.A.	Shakespeare's Imagination.
2.	Barfeld Owen	Poetic Diction
3	Bartlett	Remembering
4	Bowra, C.M	Inspiration and Poetry
5		Romantic Imagination
6.	Brooks and Warren	Understanding poetry
7	Brown Stephen J	The World of Imagery
8.	Browne, C.G	The literary History of Persia
9	Caudwell, C	Illusion and Reality
10	Clemmen W H	The development of Shakespeare's Imagery
11	Coleridge S. T	Stateman's Manual (complete work)
1+		Biographia Literaria
13.	Chiari Joseph	Realism and Imagination
14	Eliot T S	Selected Essays
15		Uses of poetry and criticism.
16	Furlong E T	Imagination
17	Fogle R.H	The Imagery of Keats and Shelley
18.	Ghiselin B	The Creative Process.
19	Gibran, Khalil	Jesus the son of man.
20	Gohean Robert F	The Imagery of Sophocle's Antigony

21	Holmes, Elizabeth	Aspects of Elizabethan Imagery
22.	Houser Arnold	Symbols and Values.
23.	Hudson	Introduction to the Study of Literature
24	Hughes G	Imagism and Imagists
25.	Hulme T E	Speculation
26	Hunt, J H L.	An answer to the question what is poetry
27	Kenneth Barnes	The Creative Imagination
28	Kermode Franke	Romantic Image
29	Lewis C Day	The Poetic Image
30	Lowes	The Road to Xanadu
31	Mascall E L	Words and Images
32.	Murry J M	Problem of Style
33	Pear T H	The place of imagery in Mental process.
34	Perry Bliss.	The Study of poetry
35.	Pound Ezra	Make it New
36.	Raghavan	Some Concepts on Alankar Shastra
37	Richards I A	Philosophy of Rhetorics.
38.		Principles of Literary Criticism
39	"	Coleridge on Imagination.
40	Rosenthal and Smith	Exploring poetry
41	Sartre Jean Paul	The psychology of Imagination
42.	Shipley Joseph T	Dictionary of World Literature
43.	Shireph A G	Padmavati
44	Singh J B	A critical study of Shelley's Imagery and revaluation of his poetic arts (original thesis)
45.	Spurgeon C.F	Shakespeare's Imagery and what it tells to us
46.	Tindall, William	The literary symbol
47	Tolstoy Leo	What is Art
48.	Tuve Rosemound	Images and themes in five poems in Milton.
49	"	Elizabethan and Mytaphisical Imagery
50	Underhill, C.	Mysticism
51	Urban W H.	Language and Reality
52.	Wellek and Warren	Theory of Literature.
53	Whelley George	Poetic Process
54	Wordsworth	English Critical Essays, 19th Century
55	"	Poetical Works.
56.	Encyclopaedia Brittanica	Volume 12 14 18 21
57	New English Dictionary	